पत्रकारिता सबन्धी विधि पुस्तको मे प्रथम महत्व की एक उपयोगी पुस्तक

जी एल गर्ग की टिप्पणियों सहित

प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867

और साथ मे प्रेस परिषद अधिनियम 1978

अद्यपर्यन्त यथासशोधित

मुद्रण यत्र सचालन
पुस्तक प्रकाशन
समाचार-पत्र प्रकाशन
पत्रकारिता मानदड

उच्चतम न्यायालय व
विभिन्न उच्च न्यायालयो तथा प्रेस परिषद
के निर्णयो से युक्त व्याख्यात्मक टिप्पणिया रेडी रिकोनर के
रूप मे विभिन्न तालिकाए व प्रपत्र तथा साथ मे
कई प्रकार के इन्डेक्स दोनो अधिनियमो पर
चुने हुए प्रश्न सहित ।

गोवर्धन लाल गर्ग

1989

प्रकाशक

अद्वितीय प्रकाशन

वासुदेव भवन, गगापुर सिटी (राज) 322 201
दूरभाष 309/176

G L GARG KEE TIPPANIYO SAHIT PRESS AUR PUSTAK REGISTRIKARAN ADHINIYAM 1867

लेखक

गोवधनलाल गग

वासुदेव भवन

गगापुर सिटी (राज) 322 201

दूरभाष 309, 176

प्रकाशक

(श्रीमती) सुशीलादेवी गग

स्वत्वाधिकारी

अद्वितीय प्रकाशन

वासुदेव भवन

गगापुर सिटी (राज) 322 201

दूरभाष 309, 176

मुद्रक

जयपुर प्रिटस प्रा लि

एम आई रोड, जयपुर

(राज) 302 001

दूरभाष 73822 62468

मूल्य रु 125/

(सजिल्द)

प्रथम सस्करण

अक्टूबर 1989

प्रतियां – 2000

इस पुस्तक के अशों को निम्नप्रकार उद्धरित किया जा सकता है –
"जी एल गग का प्र पु अधि प्रथम सस्करण 1989 देखिए पृ स "

ज्ञातव्य हो

इस पुस्तक में 'प्रेस परिषद् अधि 1978', प्रस परिषद् जाच (प्रक्रिया) विनियम 1979 के मूल हिन्दी पाठ व प्रेस परिषद् को 'शिकायत कसे करें' नामक आलेख प्रेस परिषद् की वार्षिक रपट 1987 से तथा केन्द्रीय अधिसूचना दिनांकित जुलाई 15, 1981 का मूल हिन्दी पाठ प्रेस परिषद् की वार्षिक रपट 1981 से हूबहू लिया गया है। केन्द्रीय अधिसूचना दिनांकित माच 14, 1988* का हिन्दी अनुवाद स्वय लेखक ने किया है।

प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधि 1867* का हिन्दी मूल पाठ राजस्थान राजपत्र भाग 5(क) दि 5 5 60 से लिया गया है जो 1 4 56 तक ही संशोधित था। हिन्दी में अद्यपयन्त यथा सशोधित प्रति उपलब्ध न होने के कारण राज्यो द्वारा किए गए सशोधना सहित इसकी अधिकांश धाराओ तथा प्रेस और रजिस्ट्रीकरण अपीलेंट बोड व्यवहार और प्रक्रिया आदेश 1961* व समाचार-पत्रों का पजीकरण (केन्द्रीय नियम) 1956* के अग्रजी के मूल पाठों का हिन्दी अनुवाद स्वय लेखक ने किया है।

अत प्रतिलिप्याधिकार अधि 1957 की धारा 52 (आर) के तहत यह कथन अवगत हो कि लेखक द्वारा * से चिह्नित का हिन्दी अनुवाद सरकार द्वारा प्रमाणित अनुवाद के रूप मे प्राधिकृत या स्वीकृत नहीं है। अत लेखक का पाठकों से निवेदन है कि वे इन्हें लेखकीय टिप्पणियो के रूप मे ही लें।

– लेखक

आमुख

इस पुस्तक के लेखक श्री गोवर्धनलाल गर्ग का मुझसे सर्वप्रथम परिचय सन् 1973 मे हुआ था जब वे जयपुर मे उच्च न्यायालय की पीठ स्थापित किये जाने की माग को लेकर राज्य के वकीलो द्वारा चलाये जा रहे आन्दोलन के सिलसिले मे अभिभाषक सघ गगापुर सिटी के सचिव की हैसियत से आन्दोलन के लिए बनी सघर्ष समिति की बैठकों मे आया करते थे। मैं उस समय इस सघर्ष समिति मे सयोजक अध्यक्ष पद पर कार्य कर रहा था। बाद मे श्री गर्ग ने अपने द्वारा तैयार की गई एक भेंटवार्ता— "वकीलो की कहानी वकीलो की जुबानी" जो साप्ताहिक हिन्दुस्तान (8 सितम्बर, 1974) के साथ-साथ कई प्रतिष्ठित दैनिक समाचारपत्रो मे भी प्रकाशित हुई थी, मे मुझे भी शामिल किया था।

मैंने श्री गर्ग की इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को पढा है। पढ़ने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर आया हूँ कि हिन्दी मे इस तरह की पुस्तक केवल विरले लोग ही लिख सकते हैं। पुस्तक को पढने के बाद लेखक की प्रतिभा से प्रभावित हुए बिना नही रहा जा सकता। लेखक के इस दावे की कि इस विषय पर हिन्दी मे इस प्रकार की टीका पुस्तक अभी तक लिखी ही नही गयी, की पुष्टि में कम से कम मैं अपने बारे मे कह सकता हूँ कि मैंने अपनी 25 वर्ष की अभिभाषकीय अवधि में अभी तक इस विषय पर इस प्रकार की अलग से विस्तृत टीका पुस्तक हिन्दी मे तो क्या अंग्रेजी मे भी नही देखी। उपयुक्त तो यह होगा कि एक बेजोड विषय चयन करने के लिए भी इन्हे बधाई दी जाए।

वस्तुत यह पुस्तक तैयार करके लेखक ने अभियोजन और बचाव पक्ष दोनो को ही एक एक तलवार सौंप दी है तो साथ मे एक एक ढाल भी। यही पुस्तक निर्णायक पक्ष से तय करा सकेगी कि कौन दोषी है और कौन निर्दोष।

जहाँ 'प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867' नये-नये समाचार-पत्रों व पत्रिकाओ के प्रकाशन को प्रोत्साहित करेगा वहाँ 'प्रेस परिषद् अधिनियम 1978' ऐसे नये प्रकाशकों को साथ मे, पुराने प्रकाशको को भी पत्रकारिता का मानदण्ड बनाये रखने को प्रोत्साहित करेगा। कहीं ऐसा न हो कि लोग नये-नये

समाचारपत्र व पत्रिकाएँ तो निकालने लगे लेकिन वे पत्रकारिता के मानदडो की उपेक्षा कर बठे, इसी खतरे को भापते हुए श्री गग ने अपनी इस पुस्तक म इन दोनो अधिनियमा को एक साथ जो शामिल किया है, यह जहाँ श्री गग की दूर दर्शिता का प्रतीक है वहा यह इनकी पत्रकारिता के प्रति सत्यनिष्ठा को भी उजागर करता है । ठीक भी है जो नय-नय निर्माण हो वे विध्वसकारी क्यो हो ?

मैं श्री गग के इस प्रयास की अ तस्तल से प्रशसा करता हूँ और इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ ।

महाधिवक्ता, राजस्थान
स्टेशन रोड जयपुर
अगस्त 18, 1989

दिनेशच द्र स्वामी
एडवोकेट, भू०पू० राज्यसभा सदस्य

लेखकीय प्राक्कथन

प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 पर एक "टीका-पुस्तक" लिखने के लिए मैं विशेषकर निम्न दो बातो से प्रेरित हुआ —

(क) विभिन्न पत्रकार अधिवेशनो मे समय समय पर इस प्रकार की पुस्तक की आवश्यक्ता महसूस किये जाने पर

(ख) सन् 1975-76 मे आपात्काल के दौरान कार्यकारी मजिस्ट्रेटस द्वारा हजारो समाचारपत्रो विशेषकर लघु समाचारपत्रो के घोषणा-पत्र निरस्त किये जाने पर।

आपात्काल में जिन हजारो समाचारपत्रो के घोषणा-पत्र निरस्त किए गए थे उनम से अधिकाश के घोषणा-पत्र कानूनन निरस्त करने योग्य ही थे। फर्क इतना ही पडा कि सरकार ने इन घोषणा पत्रो को आपातकाल म निरस्त करने का फसला लिया अन्यथा ये सामान्य स्थिति मे भी निरस्त होने योग्य थे।

उक्त दो बातो से मैं सोचने लगा कि क्यो नहीं इस अधि पर एक ऐसी 'गाइड बुक' तयार की जावे जो समाचारपत्रो के मालिको का इस कानून के तहत अपने अपने समाचारपत्रो को 'अपटूडेट' रखन मे सहायक सिद्ध हो। ऐसी 'साथी पुस्तक' का प्रकाशन विशेष कर हिन्दी भाषा म इस पुस्तक से पूर्व मेरी निगाह मे कहीं देखने को आया भी नही। ऐसे मे तो मुझे इस पुस्तक की 'मार्केट वेल्यू' और भी अधिक नजर आई।

आज भी मेरा एसा मानना है कि हजारो समाचारपत्र/पत्रिकाओ के घोषणा-पत्र अब भी अवध चले आ रहे हैं जिन्हें कभी भी निरस्त किया जा सकता है अर्थात् ऐसे समाचारपत्रो क मालिको पर डेमोकलस (एक अंग्रेजी उपन्यास का पात्र) की नगी तलवार निरन्तर लटकी हुई है।

दूसरी तरफ यह भी एक सचाइ है कि कई जिला/मिट्रोपालिटान/उपखड मजिस्ट्रेटस को इस बात का ज्ञान नही है कि घोषणा-पत्र के प्रमाणीकरण के समय किन कानूनी पूर्तियो को पूरा करना आवश्यक होता है तथा घोषणा-पत्रो को किन आधारो पर निरस्त किया जा सकता है। परिणाम यह होता है कि ऐसे मजिस्ट्रेट्स शुरू मे ही घोषणा-पत्रो को गलत ढग से प्रमाणित कर देते हैं और गलत आधारो पर घोषणा-पत्रो को निरस्त कर देते हैं।

इस सबका यह मतलब नही कि ऐसे मजिस्ट्रेट्स को कोई कानूनी ज्ञान नही। यह सब कुछ इस अवधि पर एक 'टीका-पुस्तक' के अभाव के कारण हो रहा है।

कई प्रकाशक विशेषकर मध्यम व बड़े समाचारपत्रों के, प्रेस कानूनों के बारे में अपना मूल्यांकन अधिक ही मापे हुए हैं जबकि वास्तविकता मे स्थिति ठीक इससे उलटी है। उनके प्रकाशन प्रेस कानूनों के सबंध में बहुत खामियां रखते हैं, बावजूद इस तथ्य के कि उनके प्रकाशन लाखों रुपया का बजट रखते हैं। ऐसा ही बड़े-बड़े छापाखाना व पुस्तक प्रकाशको के यहाँ भी हो रहा है।

पत्रकारिता मे 25 वर्ष और कानून म 22 वर्ष का व्यावहारिक ज्ञान रखने के कारण मैं अधिकारिक रूप से कह सकता हूँ कि एक छोटी-सी लापरवाही समाचारपत्र प्रकाशन, मुद्रणयंत्र संचालन और पुस्तक प्रकाशन को धक्का पहुँचा सकती है। इन तीनों वर्गों को यह याद रखना चाहिए कि सफलता का रास्ता अपने से संबंधित कानूनी ज्ञान से निरंतर विज्ञ बने रहने का ही रास्ता है।

हिन्दी में कानून संबंधी पुस्तक लिखना बड़ा कष्टसाध्य काम होता है क्योंकि नवीनतम कानूनी प्रावधानो का अधिकृत हिन्दी अनुवाद मिलना मुश्किल होता है। इस पुस्तक के संबंध म, मेरे साथ भी यही हुआ। जिन जिन प्रावधानो का अधिकृत हिन्दी अनुवाद मुझे मिला उनको अद्यपर्यन्त करने के लिए मुझे मेरी तरफ से हिन्दी म अनुवाद करना पड़ा।

जो लोग हिन्दी के मूल पाठो की क्लिष्टता से बचते हुए प्रस्तुत विषय का मात्र सतही ज्ञान करना चाहते हैं, उन्हें मेरी सलाह है कि वे मात्र मेरी टिप्पणियां तथा मेरे द्वारा तैयार की गई सामग्री, जैसे — सुझावात्मक प्रपत्र व विभिन्न तालिकाएं आदि ही पढ़ लें, उन्हें उनका उद्देश्य पूरा होता नजर आयेगा।

टिप्पणियां लिखते समय मैंने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि ये टिप्पणियां न केवल हिन्दी के मूल पाठों से ही संगत हों बल्कि ये टिप्पणियां अंग्रेजी के मूल पाठों से भी संगत हों।

'प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधि 1867 प्रेस से संबंधित सभी कानूनों म प्रथम महत्व का कानून है। विभिन्न प्रेस संबंधी कानूनों म से सिर्फ 'प्रेस परिषद् अधिनियम 1978 को ही मैंने इस कानून के साथ जो शामिल किया है उसके भी निम्न दो कारण हैं —

(क) यह विचार रखते हुए कि इस पुस्तक के जारी होने के पश्चात् निश्चित रूप से नए समाचारपत्रों/पत्रिकाओं की शुरुआत बढ़ेगी। सिर्फ नए समाचार-पत्र/पत्रिकाओं की ही बढोतरी क्या हो, इनके स्तर में भी तो बढोतरी

होनी चाहिए और प्रेस परिषद् अधि यह सब कुछ प्रदान करता है। यदि एक पुस्तक नए समाचारपत्रो के प्रकाशन को प्रोत्साहित करती है तो उसे पीली पत्रकारिता अपनाने वालों को निरुत्साहित भी करना चाहिए। वास्तव मे, भारत में प्रेस के विकास के लिए नये नये समाचारपत्रो/पत्रिकाओ मे बढोतरी होनी चाहिए बशर्ते वे पत्रकारिता का स्तर बनाये रखें।

(ख) विश्वविद्यालय व अन्य सस्थाए जो पत्रकारिता म डिप्लोमा या डिग्री का कोर्स आयोजित करते हैं उनको इन कोर्सों मे 'पत्रकारिता से सबधित भारतीय कानून' नामक एक प्रश्न पत्र रखना चाहिए, जिसके दो भाग हों। प्रथम भाग म प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधि 1867 तथा प्रेस परिषद अधि 1978 और इनके तहत बने नियम/विनियम शामिल हों। द्वितीय भाग मे प्रतिलिप्याधिकार अधि 1957, सरकारी गोपनीयता अधि 1923, अदालत की अवमानना अधि 1971, और ससदीय कार्यवाही (प्रकाशन से सुरक्षा) अधि 1977 आदि शामिल हो। मैंने इस पुस्तक का इस प्रस्तावित प्रश्न-पत्र के प्रथम भाग की दृष्टि से भी एक आदर्श पुस्तक बनाने का प्रयास किया है। यही कारण है कि मैंने इसमे इन दोनों अधिनियमो पर ढेर सार चुने हुए प्रश्न भी दे दिये हैं।

चूकि प्रे पु अधि की विषयवस्तु – (i) मुद्रणयत्रों (ii) समाचारपत्रों और (iii) पुस्तकों को समेटे हुए हैं। इसलिए इन तीनो से सीधे सबधित वग जसे नए मुद्रणयत्रों को खोलने के इच्छुक या वतमान में मुद्रणयत्रो के धारक, नए समाचारपत्रो/पत्रिकाओं को शुरू करने के इच्छुक या वतमान म समाचारपत्र/पत्रिकाओं के मालिक/प्रकाशक/सपादक/मुद्रक तथा नई पुस्तक प्रकाशित करने के इच्छुक या वतमान म पुस्तक प्रकाशन मे कायरत लोगो के साथ साथ इस अधि की पालना कराने व इसका उल्लघन करने वालों को दडित करने वाली मशीनरी से सबधित लोग – जनसपक अधिकारी, एडवोकेटस व जिला/उपखड/मेट्रोपालिटान मजिस्ट्रेटस के लिए भी यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रे प अधि के शामिल किए जाने के कारण यह पुस्तक पत्रकारों के सभी वर्गों – श्रमजीवी पत्रकार, सपादक सवाददाता, रिपोटर, स्तम्भ लेखक, फोटोग्राफर, कार्टूनिस्ट आदि के साथ साथ सरकारी अफसर, जन प्रतिनिधियों व सामाजिक कायकर्ताओं मे से वे लोग जो पीली पत्रकारिता से पीडित हैं, के लिए भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रेस की आजादी के पक्षधरा – राजनीतिज्ञों, सामाजिक कायकर्ताओं व अन्य विचारकों के लिए तो यह पुस्तक एक अच्छी-खासी तथ्यात्मक जानकारी देने वाली सिद्ध होगी।

मेरा मानना है कि यदि मैं मात्र एडवोकेट ही होता अथवा मात्र पत्रकार ही होता तो ऐसी पुस्तक नहीं लिख पाता। यह सब कुछ एडवोकेट के साथ-साथ पत्रकार होने के कारण हुआ है। पत्रकार जगत व जनता के अन्य लोग किस प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त करना चाहते हैं, इन सबसे मैं पत्रकार होने के नाते ही विज्ञ हो पाया और इन जानकारियों को कानूनी दृष्टि से किस प्रकार प्रस्तुत किया जाय, इन सबसे मैं एडवोकेट होने के नाते ही विज्ञ हो पाया।

इस पुस्तक को तयार करने के दौरान मेरे से डिक्टेशन लेने, रफ कॉपी को फेयर करने तथा फिर उन्हें टाइप करने आदि का काय मेरे ज्येष्ठ पुत्र सद्भाव भाव, एम काम, पी जी डी जे ने किया। जब मैं कभी कुछ आलस्य करने लगता तो यही युवा मेरा उत्साहवधन करता और मुझे लिखने को बाध्य कर देता। ऐसे म, मैं इस युवा का आभार प्रकट किये बिना कसे रह सकता हूँ। क्या एक पिता असाधारण मामलों में अपने पुत्र के प्रति आभार प्रकट नहीं कर सकता ?

पाठकों के सम्मुख बडी नम्रता के साथ यह पुस्तक मैं इस आशा और विश्वास के साथ प्रस्तुत कर रहा हूँ कि पाठकगण मुझे अपने अमूल्य सुझावो से परिचित करायें जो इस पुस्तक के अगले सस्करण को और अधिक सवारने में मददगार सिद्ध हों।

(गोवधनलाल नग)
सस्थापक सपादक — प्रजाजन (हि दै)

बासुदेव भवन, गगापुर सिटी
दूरभाष 309, 176
अगस्त 15, 1989

सक्षेपणो की व्याख्या

अधि
– अधिनियम
आ दे
– आदेश सख्या
आ प्रे
– आन्ध्र प्रदेश
आई एल आर
– इडियन लॉ रिपोर्ट्स
आर एल डब्लू
– राजस्थान ला वीकली
आर एन आई
– रजिस्ट्रार ऑफ न्यूज पेपर्स फार इडिया
ए
ए आई आर
– ऑल इडिया रिपोर्टर
एस डी एम
– सब डिविजनल मजिस्ट्रेट
क्र स
– क्रम सख्या
के नि
– समाचारपत्रो का पजीयन (केन्द्रीय) नियम 1956
क्री आर
– क्रीमिनल रिपोर्ट्स
क्री एल जे
– क्रीमिनल लॉ जनल
ख पी
ख पी
– खडपीठ
ज प्र
– जनप्रतिनिधित्व अधिनियम
दे
– देखिए
द प्र स
– दड प्रक्रिया सहिता
दि
– दिनांक
धा
– धारा
धा स
– धारा सख्या
नि दि
– निर्णय दिनाक
नि स
– नियम सख्या
प ब
प ब
– पश्चिम बगाल
पृ
पृ स
– पृष्ठ सख्या
प्रे पु अधि
– प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867
अथवा
मुद्रण व पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867
प्र न
– प्रश्न नम्बर
प्रे प
– प्रेस परिषद्
पु प्र नियम
– पुस्तक प्रदान (सावजनिक पुस्तकालय) नियम 1955
पी आर ए बी
– प्रेस एण्ड रजिस्ट्रीकरण अपीलेट बोर्ड
पी सी (पी ए) आर
– प्रेस काउन्सिल (प्रोसीजर ऑफ इन्क्वायरी) रूल्स 1979
प्रे अ बो (व्य प्र) आ
– प्रेस और रजिस्ट्रीकरण अपीलेट बोर्ड (व्यवहार व प्रक्रिया) आदेश 1961
अथवा
मुद्रण व रजिस्ट्रीकरण अपीलेट बोर्ड (व्यवहार व प्रक्रिया) आदेश 1961
भा द स
– भारतीय दड सहिता
भा प्रे प
– भारतीय प्रेस परिषद्
म प्र
– मध्यप्रदेश
मु पु अधि
– मुद्रण व पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867
अथवा
प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867
मु र अ बो (व्य प्र) आ
– मुद्रण व रजिस्ट्रीकरण अपीलेट बोर्ड (व्यवहार व प्रक्रिया आदेश 1961
अथवा
प्रेस और रजिस्ट्रीकरण अपीलेट बोर्ड (व्यवहार व प्रक्रिया) आदेश 1961
रा नि
राज नि
– राजस्थान प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स रूल्स 1951
वि स
– विनिमय सख्या
वा रि
– वार्षिक रिपोर्ट
हि प्र
– हिमाचल प्रदेश

भाग 5

भाग 5 (क)

समाचारपत्रों का रजिस्ट्रीकरण

भाग 6

प्रकीर्ण

भाग 3

पुस्तकों का परिदान

भाग 4

शास्तिया

भाग 5

भाग 5 (क)

समाचारपत्रों का रजिस्ट्रीकरण

भाग 6

प्रकीर्ण

धारा स			पृष्ठ स
8	(क)	वह व्यक्ति जिसका नाम सम्पादक के रूप मे अशुद्धत प्रकाशित हो गया है मजिस्ट्रेट के सामने घोषणा कर सकेगा।	041
8	(ख)	घोषणा का निरस्तीकरण	042
8	(ग)	अपील	050

भाग 3

पुस्तकों का परिदान

9		इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् मुद्रित पुस्तकों की प्रतिया सरकार को मूल्य लिये बिना परिदत्त का जायेंगी	052
10		धारा 9 के अधीन परिदान की गई प्रतियों के लिये पावती	056
11		धारा 9 क अधीन परिदान की गई प्रतियों का व्ययन	057
11	(क)	भारत म मुद्रित समाचारपत्र की प्रतिया सरकार को मूल्य लिये बिना परिदत्त की जायेंगी	059
11	(ख)	समाचारपत्रो की प्रतियां प्रेस रजिस्ट्रार को परिदत्त की जायेंगी	060

भाग 4

शास्तिया

12		धारा 3 के नियम के प्रतिकूल मुद्रण के लिये शास्ति	062
13		धारा 4 द्वारा अपेक्षित घोषणा किये बिना मुद्रणयन्त्र रखने के लिये शास्ति	065
14		मिथ्या कथन करने के लिये दड	066
15		नियमों के अनुवतन के बिना समाचारपत्र मुद्रित या प्रकाशित करने के लिये शास्ति	067
15	(क)	धारा 8 क अधीन घोषणा करने मे असफल रहने के लिये शास्ति	067
16		पुस्तकों का परिदान न करने या मुद्रक को मानचित्रो का प्रदाय न करने के लिये शास्ति	067
16	(क)	सरकार को समाचारपत्रों की प्रतिया मूल्य लिये बिना परिदत्त करने मे असफल रहने के लिये शास्ति	069
16	(ख)	प्रेस रजिस्ट्रार को समाचारपत्रो की प्रतियां परिदत्त करने म असफलता के लिये शास्ति	069
17		जब्त की गई राशियो की वसूली और उनका व्ययन	070

भाग 5

भाग 5 (क)

समाचारपत्रों का रजिस्ट्रीकरण

भाग 6

प्रकीर्ण

3 प्रेस और रजिस्ट्रीकरण अपीलेंट बोर्ड (व्यवहार और प्रक्रिया) आदेश 1961

4 समाचारपत्रो का पजीकरण (केन्द्रीय) नियम 1956

□5 प्रेस परिषद् अधिनियम 1978

अध्याय 1

प्रारम्भिक

अध्याय 2

प्रेस परिषद् की स्थापना

अध्याय 3

परिषद की शक्तियां और कृत्य

अध्याय 4

प्रकीर्ण

□6 प्रेस परिषद की लेवी

□7 प्रेस परिषद (जाच प्रक्रिया) विनियम 1979

देशना (इन्डेक्स)

प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम का संक्षिप्त इतिहास

पहली बार, तत्कालीन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशकों के कोर्ट ने यह महसूस किया कि भारत में प्रकाशित प्रत्येक महत्त्वपूर्ण एवं रुचिकर कृतियों की प्रतियां इंग्लैण्ड स्थित 'इण्डियन हाउस' के पुस्तकालय में निक्षेप (जमा) करने हेतु भेजी जाया करें। यह 19वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशकों के इस कोर्ट के आदेशों की पालना करने के लिए लन्दन स्थित रोयल एसियाटिक समिति ने समय समय पर भारतीय प्रकाशकों को सेक्रेट्री आफ स्टेट फार इण्डिया के जरिये ऐसी हिदायतें भेजी।

प्रारम्भ में ये हिदायतें लोवर बंगाल के प्रान्त तक ही सीमित थी लेकिन बाद में ये हिदायतें सम्पूर्ण भारत के प्रसंग में आने लगी। सन् 1852 में इस प्रकार की प्रथम सूची बनाई गई जो कि यद्यपि अपूर्ण थी। यह कार्य पूरी तरह स्वच्छिक था। इसलिए इसके सन्तोषप्रद परिणाम न आ सके।

अतः इस प्रे० पु० बिल के जरिये यह प्रस्तावित किया गया था कि इस मामले में एक बाध्यकारी तरीका स्थापित किया जावे। यह भी रखा गया था कि यह बिल अधिसूचना के जरिये साम्राज्य के किसी भी हिस्से में विस्तारित किया जा सकता है। प्रे० पु० अधि० 22 मार्च, 1867 को लागू हुआ।

प्रारम्भ में इस अधिनियम के क्षेत्र में मुद्रण यन्त्र और पुस्तकें ही शामिल की गई थी। बाद में, समाचारपत्र भी इसमें शामिल कर लिये गये।

1955 के 55वें संशोधन अधिनियम और 1960 के 26वें संशोधन अधिनियम ने अपने संशोधन खण्डों के जरिये मूल प्रे० पु० अधि० को बहुत अधिक प्रभावित किया है।

राज्य सरकारों द्वारा की गयी सिफारिशों और प्रेस विधियों की जाँच करने हेतु केन्द्र सरकार द्वारा गठित प्रेस विधियाँ जाँच समिति की सिफारिशों और प्रथम प्रेस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर 1955 का 55वां संशोधन अधिनियम संसद द्वारा पारित किया गया।

मुद्रण अथवा प्रकाशन के स्थान मे अस्थाई परिवतन, एक विशिष्ट अवधि के अन्दर प्रकाशन प्रारम्भ करना और समाचारपत्रो के सम्बन्ध म प्रेस रजिस्ट्रार की स्थापना विषयक प्रावधान इस 1955 के 55वें सशोधन अधिनियम के प्रभाव से आये। सन् 1955 के 55वें अधि की विशेषताओ म से एक विशेषता – समाचारपत्रों के पजीयन से सम्बन्धित भाग V क का शामिल करना है।

पहले स ही पूव प्रमाणित घोषणा को निरस्त करने, प्रेस और पजीयन अपीलेंट बोड की स्थापना, जिन मामलो म एक नवीन घोषणा आवश्यक है, घोषणाकर्ता का भारत म साधारणत निवास और उसकी वयस्कता और प्रे पु अधि से समाचारपत्रों के किसी वग को भारत सरकार की पूव सलाह से राज्य सरकारो द्वारा अपवर्जित करने विषयक विशिष्ट प्रावधान 1960 के 26वें सशोधन अधिनियम के कारण प्रभाव म आयें।

1965 के 16वें अधि 1968 के 30वें अधि और 1978 के 37वें अधि ने भी प्रे पु अधि को प्रभावित किया। 1965 के 16वें अधि ने प्रे पु अधि सम्पूण भारत म लागू कर दिया गया। इस सशोधन अधि के पूव यह जम्मू और कश्मीर का छोड कर शेष भारत पर लागू था।

1978 के 37वें अधिनियम ने प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन अपीलेंट बोड की स्थापना के सम्बन्ध म प्रे पु अधि की धारा 8 ग का सशोधित किया। अब भारतीय प्रेस परिषद् द्वारा अपने ही सदस्या क बीच म से इस बोड के चेयरमैन और एक दूसरे सदस्य को मनोनित किया जाता है। वास्तव म, यह सशोधन प्रेस की आजादी की धारणा को मजबूत करता है। अब, किसी समाचारपत्र के सम्बन्ध म पक्षपातपूण तरीके स घोषणा को निरस्त करना अथवा घोषणा को प्रमाणित करने के लिए अस्वीकार करना उस तरह आसान काम नही है जिस तरह पहले था क्योकि भारत की प्रेस परिषद् म प्रेस से सम्बन्धित व्यक्ति बहुमत में है जो कि इस अपीलेंट बोड का गठन अपने ही सदस्यो के बीच म करता है।

यह दिखाई दता है कि मूल प्रे पु अधि 1867 विभिन्न सशोधन अधिनियमो के कारण लगभग पूरी तरह बदला जा चुका है।

मुद्रणयन्त्र तथा पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1867

(1867 का अधिनियम सख्या 25)

(22 मार्च, 1867)

एक अधिनियम –

मुद्रणयन्त्रों और समाचारपत्रों के विनियमन, भारत मे मुद्रित पुस्तको तथा समाचारपत्रो की प्रतियो के परिरक्षण तथा ऐसी पुस्तको और समाचारपत्रो के रजिस्ट्रीकरण के लिये ।

प्रस्तावना –

चूकि यह ईप्सित है कि मुद्रणयन्त्रों और समाचारपत्रा के विनियमन, भारत मे मुद्रित प्रत्येक पुस्तक तथा समाचारपत्र की प्रतियो के परिरक्षण तथा ऐसी पुस्तका और समाचारपत्रो के रजिस्ट्रीकरण के लिये उपबन्ध किया जावे अत एतद्द्वारा निम्नरूपेण अधिनियमित किया जाता है ।

टिप्पणी

प्रस्तावना से उजागर होता है कि मु पु अधि निम्न विषयो तक ही सीमित हैं –

(i) मुद्रणयन्त्र (ii) समाचारपत्र और (iii) पुस्तकें ।

यह अधिनियम मुद्रणयन्त्रो और समाचारपत्रो के नियमन और पुस्तको तथा समाचारपत्रो के पजीयन तथा रख रखाव के उद्देश्य से आशयित है ।

नियन्त्रणार्थ नहीं

यह अधिनियम मुद्रणयन्त्रो और समाचारपत्रो के मात्र नियमन के लिए है न कि इनके नियन्त्रण के लिए । नियमन का अर्थ, नियमो के तहत एकरूपता मे व्यवस्थित करने को निर्देशित करता है । (1955 मध्य भारत बी एल जे) (एल सी आर (392) ख पी)

दावो की बहुतायत को रोकना

दावा की बहुतायत और दायित्वो की अनिश्चितता का दूर करने की दृष्टि से यह विचार किया गया था कि स्टाफ के व्यक्तियो मे से पत्र मे प्रकाशित सामग्री के लिए किसी एक व्यक्ति को जिम्मेदार माना जावे ताकि कोई भी पीडित व्यक्ति मु पु अधि के तहत उसका जुम्मेदार सिद्ध कर सके ताकि किय गये अपराध के लिए कौन जिम्मेदार है, इसकी जाच के लिए पीडित व्यक्ति इधर उधर भटक नही सके। (ए 1979 उच्चतम न्यायालय 154)

स्थल का बदलाव

मु पु अधि एक समाचारपत्र के प्रकाशन स्थल के बदलाव का नही रोकता है। (1966) मैसूर एल० आर (598)

भाग 1

प्रारम्भिक

1 निवचन खण्ड

इस अधिनियम मे जब तक कि विषय या प्रसग म कोई बात विरुद्ध न हो

"पुस्तक" क अन्तगत किसी भाषा मे का प्रत्येक ग्रन्थ ग्रन्थ का भाग या खण्ड और पुस्तिका और पृथकतया मुद्रित सगीत मानचित्र चाट या रेखाक का प्रत्यक पत्रक है

"सम्पादक" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो किसी समाचारपत्र मे प्रकाशित विषयवस्तु क सवरण पर नियन्त्रण रखता है,

"मजिस्ट्रेट" स ' मजिस्ट्रट की सम्पूण शक्तियो का प्रयोग करने वाला कोई व्यक्ति अभिप्रेत है और इसके अन्तगत पुलिस का मजिस्ट्रेट है

समाचारपत्र" से सावजनिक समाचारो या सावजनिक समाचारों की आलोचनाओ को अतर्विष्ट करने वाली कोई मुद्रित नियतकालिक रचना अभिप्रत है

"पत्र" स पुस्तक स भिन्न समाचारपत्र के सहित काई दस्तावेज अभिप्रत है

' विहित ' स धारा 20 क अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए नियमा द्वारा विहित अभिप्रेत है

"प्रेस रजिस्ट्रार" से धारा 19 क के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त 'समाचारपत्र रजिस्ट्रार, भारत" अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत प्रेस रजिस्ट्रार के सब या किन्ही कृत्यो का पालन करने के लिये केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त कोई अन्य व्यक्ति है,

"मुद्रण" के अन्तर्गत साइक्लोस्टाइल करना और लिथोग्राफी करना है

"रजिस्टर" से धारा 19 ख के अधीन रखा जाने वाला समाचारपत्रों का रजिस्टर अभिप्रेत है।

2 इस अधिनियम मे विधि का कोई प्रसग जो जम्मू कश्मीर मे लागू नही है, वह उस राज्य के सम्बन्ध म उस राज्य मे लागू मिली-जुली विधि के प्रसग मे न्यायार्थित होगी।

राज्यों द्वारा सशोधन

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र राज्य मे इसकी प्रयुक्ति म मजिस्ट्रेट की परिभाषा अपमार्जित होगी – 1954 का बम्बई अधि 8, धारा 2 व अनुसूची भाग II (10-2-1954) *(1961 का महाराष्ट्र अधि 07, धारा 2 (4 2 1961)*

गुजरात

महाराष्ट्र जसा ही – 1961 का गुजरात अधि 23 धारा 2 (18 5-1961)

मसूर

"मजिस्ट्रेट की सम्पूर्ण शक्तियों का प्रयोग करने वाला कोई व्यक्ति अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत पुलिस का मजिस्ट्रेट है" के शब्दों के स्थान पर "मजिस्ट्रेट से अभिप्राय न्यायिक मजिस्ट्रेट होता है", प्रतिस्थापित किया जावे – 1965 का मैसूर अधि 13, धारा 66 व अनुसूची (1-10 1965)

टिप्पणी

पुस्तक

"पुस्तक" और "मुद्रण" की जो अलग-अलग परिभाषाएँ दी हुई है, वह एक ऐसी पुस्तक का भाव देता है जो किसी भी भाषा मे मुद्रण यन्त्र से मुद्रित हो अथवा साइक्लोस्टाइल्ड हो अथवा लिथोग्राफी से

पम्फलेट्स, पृथकतया, मुद्रित सगीत, नक्शे, चार्ट या रेखाक का प्रत्येक पन्ना चाहे उनका मुद्रण अलग-अलग ही हुआ हो पुस्तक ही माने गए हैं।

पुस्तक की परिभाषा अपने आप मे पूर्ण

"पुस्तक" की परिभाषा अपने आप मे पूर्ण है और इसकी परिभाषा मे विशिष्टत दिये गये दस्तावेजो के अलावा दूसरे दस्तावेज शामिल नही किये जा सकते। (ए 1940 पटना 613)

4 पेज का एक मानहानिजन्य लिफलेट जिसकी सिलाई नहीं की हुई है, एक पम्फलेट है, यह पुस्तक की परिभाषा म आता है। (ए 1958 राजस्थान 350)

एक मुद्रित लिफलेट जिसमे धार्मिक अपील करते हुए चन्दे के लिए निवेदन किया गया को पत्र माना गया (1973 इलाहाबाद क्रीमनल रिपोर्ट 475)

पीरियोडिकल्स (नियतकालिक पत्रिका)

एक नियतकालिक पत्रिका को एक पुस्तक और यहाँ तक की एक समाचारपत्र से भी अलग माना गया है। (1966 आन्ध्र डब्लू आर 332)

समाचारपत्र

समाचारपत्र और मुद्रण की जो अलग-अलग परिभाषाए दी हुई हैं वे सयुक्त रूप से ऐसे समाचारपत्र का भाव देती हैं जो कोई भी नियतकालिक जिसमे सावजनिक खबरें अथवा सावजनिक खबरो पर टिप्पणी की गई हो और जो मुद्रण यन्त्र मे मुद्रित हुई हो अथवा साइक्लोस्टाइल्ड की हुई हो अथवा लियोग्राफी से मुद्रित की हुई हो, समाचारपत्र है। (1973 इलाहाबाद डब्लू० आर) एच० सी०) 661

मुद्रणयत्र से तात्पय

मु पु अधि की प्रस्तावना और इस अधि के विभिन्न स्थानो मे आये शब्द मुद्रणयत्र की परिभाषा या व्याख्या स्वय इस अधिनियम मे नही की गई है। केवल शब्द – 'मुद्रण" का निवचन (व्याख्या) इस प्रकार किया गया है कि 'मुद्रण के अ तगत साइक्लोस्टाइल करना और लियोग्राफी करना है। लगता है मुद्रण का यह निवचन मुद्रण प्रेस का भी निवचन ही है। अत साइक्लोस्टाइलिग और लियोग्राफी द्वारा किया

गया मुद्रण भी मुद्रणयत्र के क्षेत्र मे आता है। इस तर्क के आधार पर साइक्लोस्टाइलिंग मशीन अथवा लियोग्राफी मशीन का धारक भी मुद्रक यन्त्र का धारक समझा जावे।

मजिस्ट्रेट

मु पु अधि मे मजिस्ट्रेट की परिभाषा जहाँ तक प्रक्रियात्मक विधि का सवाल है, निश्शेषी (पूर्ण) नही है मु पु अधि द प्र स से शासित होता है (दे धारा 4(2) द प्र स) अत मु पु अधि म दी गई मजिस्ट्रट की परिभाषा द प्र स मे दी गई मजिस्ट्रेट की परिभाषा के अधीन है।

द प्र स की धारा 3(4) के अनुसार निष्पादी (कायकारी) अथवा शासकीय प्रकृति के मामलो की सुनवाई एक निष्पादी मजिस्ट्रट द्वारा होनी है। चूकि मु पु अधि के तहत मामले शासकीय अथवा निष्पादी प्रकृति के हैं, अत वे निष्पादी मजिस्ट्रट द्वारा हल किए जायेंगे। शब्द 'निष्पादी मजिस्ट्रेट' द प्र स की धारा 20 मे परिभाषित किया हुआ है।

नई द प्र स मे पूव के प्रेसीडेन्सी क्षत्रो के स्थान पर मेट्रोपोलिटान क्षेत्रा की व्यवस्था की हुई है और ये क्षेत्र दस लाख की आबादी से ऊपर के होते हैं।

दण्ड प्रक्रिया की धारा 3(3) (ग) के अनुसार पूव के प्रसीडेन्सी मजिस्ट्रेट अथवा मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रट क्रमश मेट्रोपोलिटान मजिस्ट्रेट अथवा मुख्य मेट्रोपोलिटान मजिस्ट्रट कहलायेंगे, यही कारण है कि मद्रास, बम्बई, कलकत्ता और अहमदाबाद जो नई द प्र स के पहल प्रेसिडेन्सी कस्बे कहलाते थे, अब वे मेट्रोपालिटान क्षेत्र कहलाते हैं और यहा के निष्पादी मजिस्ट्रेट मेट्रोपोलिटान या मुख्य मेट्रोपोलिटान मजिस्ट्रेट कहलाते हैं।

मु पु अधि म दी गई मजिस्ट्रेट की परिभाषा अपने आप मे यह स्पष्ट करता है। ऐसा मजिस्ट्रेट, मजिस्ट्रट की पूण शक्ति स पूण होना चाहिए। लगता है विधि निर्माताओ का आशय यह था कि मजिस्ट्रट की शक्तिया प्रत्यायोजित (डेलिगेटड) नही होनी चाहिए।

साराशत द प्र स के प्रावधानो के तहत मु पु अधि के प्रयोजनाथ "मजिस्ट्रेट" से निम्न आशयित है –

(1) नोन मेट्रोपोलिटान क्षेत्र के लिए

निष्पादी (कायकारी) मजिस्ट्रेट
जिला मजिस्ट्रेट
उपखण्डीय मजिस्ट्रेट

(2) मेट्रोपोलिटान एरिया

राज्य सरकार द्वारा घोषित क्षेत्र जैसा वि द प्र स की धाराए 3 (4) (ख) ग्रौर 20(5) मे ग्राशयित है, निष्पादी मजिस्ट्रेट की शक्तियाँ रखने वाला मेट्रोपोलिट्रान मजिस्ट्रेट —

पुलिस ग्रायुक्त

सपादक

मु पु ग्रधि मे वधानिक सम्पादक की निम्न विशेषताएँ होती हैं --

(1) वह एक ऐसा व्यक्ति है जो समाचारपत्र मे प्रकाशित सामग्री के मवरण पर निय त्रण रखता है। (धा 1)

(2) वह एक ऐसा व्यक्ति है जा भारत मे साधारणतया निवास करता है। (धा 5(8)

(3) वह ऐसा व्यक्ति है जिसने भारतीय वयस्कता ग्रधि 1875 के उपबन्धो के ग्रनुकूल या वयस्कता प्राप्ति के सबध म जिस विधि के ग्रधीन है, उस विधि के ग्रनुकूल वयस्कता प्राप्त करली है (धारा 5(8)

वर्णन या पद सारहीन

भारत म साधारणतया निवास सम्ब धी प्रावधान 1960 के ग्रधि 26 द्वारा लागू हुग्रा है। कानून सिफ "सम्पादक" को जानता है। यही कारण है "सम्पादक" शब्द क ग्राग ग्रौर पीछे किसी लगने वाले विशेषण से युक्त 'सम्पादक' शब्द जसे प्रव ध सम्पादक, उपसम्पादक ग्रादि को कानून नही जानता।

जहा कोई व्यक्ति धारा 1 की शर्तो को पूरा नही करता ग्रौर सम्पादक के कार्यों की पालना नही करता, चाहे उसका कोई भी पद हो या वह किसी भी रूप मे वर्णित हो तो ग्रधि के प्रावधान उस पर लागू नही होगे। [ए 1979 उच्चतम यायालय 154(163)]

एक सम्पादक का शिक्षित ग्रौर ग्रशिक्षित होना कानून की निगाह मे महत्वहीन है।

कौन सम्पादक हो सकता है

द प्र स की धारा 2 मे कहा गया है कि जिन शब्दो और अभिव्यक्तियो की परिभाषाएँ स्वय द प्र स मे नही दी गई है, उनकी परिभाषाए भा द स मे दी गई परिभाषाओ से अभिग्रहण करनी होगी। मु पु अधि द प्र स से शासित होता है अत मु पु अधि अथवा द प्र स मे जिन शब्दो और अभिव्यक्तियो की परिभाषा नही दी गई है उनकी परिभाषा भा द स से अभिग्रहित करनी होगी।

मु पु अधि मे सम्पादक की परिभाषा मे आया शब्द "व्यक्ति" स्वय मु पु अधि यहा तक कि द प्र स मे भी परिभाषित नही है अत इसकी परिभाषा भा द स से अभिग्रहित करनी होगी।

भा द स की धारा 11 मे 'व्यक्ति' की परिभाषा निम्न प्रकार दी गई है –

"व्यक्ति से अभिप्राय कोई भी कम्पनी या सघ या व्यक्तियो के किसी मण्डल चाहे वो निगमित हो या नही, से है।"

मु पु अधि मे सम्पादक की परिभाषा और भा द स मे दी गई व्यक्ति की परिभाषा सयुक्त रूप से यह आशय प्रकट करती है कि कोई भी कम्पनी, सघ या व्यक्तियो का कोई मण्डल चाहे निगमित हो या नही, सम्पादक हो सकता है।

पत्र

कोई भी दस्तावेज एक पत्र है। एक समाचारपत्र भी एक पत्र है लेकिन एक पुस्तक को एक पत्र नही कहा गया है।

"पत्र" "समाचारपत्र" का समानार्थी नहीं

1955 के अधि 55 द्वारा धारा 1 मे पत्र की जो परिभाषा शामिल की गई है उससे अब यह नही कहा जा सकता कि शब्द "पत्र" जिसका प्रयोग धारा 3 मे हुआ है, वह समाचारपत्र से समानार्थी है या इसको ऐसी सामग्री समाहित करनी चाहिए जो साहित्यिक या ऐतिहासिक या सास्कृतिक मूल्यो से सम्बन्धित हो। (ए 1960 आ प्र 176, 177)

दस्तावेज से तात्पर्य

मु पु अधि मे परिभाषित "पत्र" मे आये शब्द "दस्तावेज" की परिभाषा भा द स मे इस प्रकार दी हुई है – शब्द "दस्तावेज" ऐसी

किसी वर्णित या अभिव्यक्त सामग्री का भाव देता है जो किसी वस्तु पर शब्दा, अको या चिह्नो अथवा इनमे से एक से अधिक कोई अन्य साधन उस सामग्री के साक्ष्य के रूप मे प्रयाग के लिए आशयित या जिसका प्रयोग किया जा सक्ता है, से है ।

स्पष्टीकरण

यह निस्सार है कि किन साधनो द्वारा अथवा किन वस्तुओ पर शब्द, अक अथवा चिह्न बनाये गए है । और यह भी निस्सार है कि आशयित अथवा सम्भावित साक्ष्य का प्रयोग अदालत म किया जावे या नही ।

2 (1835 के अधिनियम 11 का निरसन) निरसन अधिनियम, 1870 (1870 का 14) द्वारा निरसित ।

भाग — 2

मुद्रणयत्रो तथा समाचारपत्रो के सम्बन्ध में

3 पुस्तकों तथा पत्रों में मुद्रित की जाने वाली विशिष्टियाँ

भारत के अन्दर मुद्रित प्रत्यक पुस्तक या पत्र पर मुद्रक का नाम तथा मुद्रण का स्थान और (यदि पुस्तक या पत्र प्रकाशित किया गया है, तो) प्रकाशक का नाम और प्रकाशन का स्थान सुपाठ्यत मुद्रित होगा ।

टिप्पणी

यह एक वैधानिक प्रावधान है कि प्रत्येक मुद्रित पुस्तक अथवा पत्र पर मुद्रक और मुद्रण-स्थल का नाम तथा इसका ठीक-ठाक वर्णन सुपाठयत शब्दा म मुद्रित होना चाहिए और यदि पुस्तक या पत्र के प्रकाशित होने का मामला हो तो ऐसी दशा में प्रकाशक का नाम और प्रकाशन-स्थल का ब्यौरा भी सुपाठ्यत शब्दो मे मुद्रित होना चाहिए ।

इस वधानिक आदेश के उल्लघन का परिणाम दो हजार रुपये से अनधिक जुर्माना अथवा 6 माह की अनधिक सजा अथवा ये दोनो ही हैं । (दे० धा० 12 मु पु)

मनुष्य का नाम न कि दुकान का नाम

धारा 3 यह अपेक्षा करती है कि उन व्यक्तियो का नाम जो पुस्तक या पत्र को मुद्रित और प्रकाशित करते हैं मुद्रित हो न कि दुकान का नाम मुद्रित हो। दुकान का नाम तो कभी भी इच्छा अनुसार बदला जा सकता है। बिना मानव नाम के "कुतुबखान" द्वारा प्रकाशित को पर्याप्त नही माना गया। (ए आई आर 1960 इलाहाबाद 450)

जनता को सूचना करना

संशोधित अधिनियम जो मौजूदा मे अस्तित्व मे है के गठनकर्ताओ का आशय जनता को यह सूचित करना है कि पुस्तक, समाचारपत्र अथवा पत्र के मुद्रण व प्रकाशन के लिए कौन लोग जिम्मेदार है ताकि इसके मुद्रण व प्रकाशन से यदि कोई कानूनी परिणाम उत्पन्न होवे तो वे उसमे बच नही सकें। (1973 इलाहाबाद क्री० आर० 475) (487)

पुस्तक पर लेखक और प्रकाशक का नाम इस बात की धारणा पैदा नही करता कि वे प्रकाशक हैं। (ए 1960 उडीसा 126) (127) (128)

स्वेच्छाचारी वर्णन नहीं

मुद्रक और प्रकाशक को यह छूट नहीं है कि वे अधिनियम की पालना मे अपना मनमाना कोई वर्णन तय कर लेवें। उनको अधिनियम द्वारा निर्धारित वर्णन (प्रकार) ही प्रयोग मे लेना चाहिए। एक मैनेजर प्रकाशक के रूप मे महज इसलिए वर्णित नही हो सकता कि कई पत्रो का मैनेजर और प्रकाशक एक ही है। (1909) 10 क्री० एल० जे० 195 (198)

धारा 3 और समाचारपत्र

धारा 3 समाचारपत्रो को भी शामिल करती है। यही कारण है कि समाचारपत्रो पर मुद्रक का नाम सुपाठ्यत मुद्रित न करने की चूक एक दडनीय अपराध है लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि मुद्रक का वास्तविक नाम दिया जावे। यही पर्याप्त है कि यह बता दिया जावे कि वह अमुक के नीचे यह व्यवसाय करता है और साधारणत जाना जाता है। (1893) (16) मद्रास 443 (445, 447)

पब्लिक प्रोसीक्यूटर
बनाम
टी० प्रभूय के नियम

जस्टिस कृष्णा राव ने धारा 3 से सम्बन्धित निम्न नियम फौजदारी अपील पब्लिक प्रोसीक्यूटर बनाम टी० प्रभूय ए०आई०आर० 1960 आन्ध्र प्रदेश 176 म निर्धारित किय हैं।

(1) दस्तावेज क्या है

एक टिकाऊ प्रारूप मे दी गयी गूढवाचपरक (डसीफिरेबल) सूचना एक दस्तावेज है और यदि यह भारत में प्रकाशित होती है तो यह धारा 3 के क्षेत्र मे आयेगा। 1955 के अधि० 55 की धारा 1 द्वारा शामिल पत्र की परिभाषा को दृष्टि म रखते हुए यह कहना नही बनेगा कि धारा 3 म आया शब्द "पत्र" 'समाचारपत्र" का समानार्थी है अथवा इसे ऐसी सामग्री से युक्त होना चाहिए जो साहित्यिक अथवा ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक मूल्य की हो। यह सत्य है कि एक डिनर अथवा एक पार्टी चाह या किसी भी तरीके की हो, क लिए प्रत्येक मुद्रित आमन्त्रण पत्र और यहा तक कि अब मुद्रित विजिटिंग कार्ड भी एक 'पत्र' है। इसलिए इन्हें धारा 3 के अनुसरण मे मुद्रित किया जाना चाहिए। आम जनता को इससे जो परेशानी होती है, उसका उपचार धारा 21 म है जो राज्य सरकारों को इस अधिनियम की कार्यान्विति से पुस्तकों और पत्रों के किसी वर्ग को अपवर्जित करने की शक्तियाँ प्रदान करता है। (कडिका 4)

(2) प्रकाशक कौन होता है

प्रकाशक वह व्यक्ति है जो मुद्रक से मिलकर पुस्तक या पत्र को तैयार करवाता है और साथ ही इसे जनता के लिए जारी करता है।

(3) परिनियम के प्रयोजनो के अनुकूल अर्थ

किसी कानून को पेश करते वक्त विधान निर्मात्री सदनों में जो बहस मुबाहसा होता है, उसका किसी परिनियम म आये किसी शब्द के अर्थ पर कोई नियन्त्रण नही होता। यदि किसी परिनियम मे आये किसी शब्द का अर्थ संदेहजनक अथवा अस्पष्ट हो तो उसका अर्थ परिनियम के प्रयोजनों के अनुसरण मे अभिग्रहित होना चाहिए।

(4) प्रकाशक का कर्त्तव्य

प्रकाशक का कर्त्तव्य मात्र यही नही है कि वह मुद्रण की दृष्टि से उसका और प्रकाशन-स्थल का नाम दे । उसका यह भी कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि पुस्तक या पत्र धारा 3 के अनुकूल है या नही और यदि धारा 3 की अपेक्षाओ की पूर्ति नही होती हो तो वह इनके प्रकाशन से अपने आपको रोक ले । (कंडिका 9)

एक मुद्रित लिफलेट जिसमे एक सस्था द्वारा पुलिसवालो को अपील की गई थी, मे मात्र उन व्यक्तियो जिन्होने इसको जारी किया था और वह शिविर जहा से यह जारी हुआ था का ही नाम बताया गया था लेकिन मुद्रक और प्रकाशक और मुद्रण व प्रकाशन स्थल का नाम उसमे मुद्रित नही था ।

अत यह निर्णित हुआ कि इस लिफलेट मे धारा 3 की अपेक्षाओं की पूर्ति नही की गई थी ।

एलेवेंडर प्रकरण मे प्रतिपादित नियम

एलेवेंडर प्रकरण (ए आई आर 57 मद्रास 427) निम्न नियम प्रतिपादित करता है—

(1) धारा 3 का आशय

धारा 3 जो प्रत्येक पुस्तक अथवा पत्र पर मुद्रक, मुद्रण-स्थल, और प्रकाशक व प्रकाशन-स्थल का नाम सुपाठ्यत मुद्रित किये जाने की अपेक्षा करती है उसके पीछे यह आशय है कि जनता को यह अवगत कराया जावे कि इसका जिम्मेदार मुद्रक या प्रकाशक कौन है ।

(2) शब्द—"प्रकाशक" एक सीमित भाव मे

अधिनियम म प्रयोग मे आया शब्द "प्रकाशक" एक सीमित भाव मे है और यह पुस्तको अथवा समाचारपत्रो के विक्रेता को शामिल नही करता है । धारा 12 सपठित धारा 3 यह स्पष्टत बताती है कि ऐसे लोग प्रकाशको म शामिल नही हैं लेकिन एक ऐसा आदमी जो पुस्तक मुद्रित करवाता है और जनता मे इसको विक्रयार्थ जारी करता है, वह धारा 3 व 12 मे एक प्रकाशक है (आई एल आर 23 कलकत्ता 414)

(3) धारा 3 अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को सकुचित नहीं करती

प्रेस की आजादी जिसका की आजकल अर्थ लगाया जाता है, वह हाल ही की उत्पन्न धारणा है, इसका वर्णन इगलिश पिटिशन आफ राइटस मे नही मिलता। इस शब्द का शाब्दिक अर्थ सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना प्रकाशन की स्वतन्त्रता मात्र है। यानि कोई अदालत इस प्रकार के प्रकाशन की आजादी पर रुकावट नही डाल सकती। लेकिन वास्तव मे क्या छपा है, इसको अदालतें देख सकती है। इसी प्रकार का विचार अमेरिकन बिल ऑफ राइटस मे मिलता है। इस प्रकार बोलने व लिखने की आजादी सारत प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सेंसरसिप से मुक्त होने की आजादी है। अदालतों ने सविधान द्वारा सरक्षित मूलभूत मूल्यो के रक्षार्थ प्रेस की आजादी को व्याख्यायित किया है।

धारा 3 किसी भी तरह अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को सकुचित नही करती सिर्फ मानहानिजन्य, राष्ट्र विरोधी, अलगाववादी, अश्लील व अदालतो की अवमानना जसे कृत्यो से बचाने के लिए इस आजादी के दुरुपयोग पर रोक लगाती है। राज्य अपनी शासन शक्तियो के प्रयोग मे इस धारा मे वर्णित सूचनाओं से अवगत कराने पर जोर देता है। इस तरह से यह धारा भारतीय सविधान के अनुच्छेद 19(1) (क) द्वारा गारन्टीयुक्त मूल अधिकार से असगत नही है।

(4) मुद्रणयन्त्रपाल घोषणा करेगा

(1) ऐसी कोई व्यक्ति, पुस्तको या पत्रो के मुद्रण के लिए कोई मुद्रण यन्त्र अपने कब्जे म न रखेगा जिसने कि निम्नलिखित घोषणा उस जिला, प्रसीडेंसी या उप खण्ड मजिस्ट्रेट के समक्ष न की हो और हस्ताक्षरित न की हो जिसके स्थानीय क्षेत्राधिकार के अन्दर कि एसा मुद्रण-यन्त्र है

> मैं क ख घोषित करता हूँ कि मुद्रण के लिये मेरे पास एक मुद्रणयन्त्र म है।'

और रिक्त स्थान मे ऐसे स्थान का ठीक-ठीक अभिवर्णन भरा जायेगा जहाँ कि एसा मुद्रणयन्त्र आस्थित है।

(2) जितनी बार वह स्थान जहाँ मुद्रणयन्त्र रखा है, बदला जाये, उतनी बार नई घोषणा आवश्यक होगी

परन्तु जबकि परिवर्तन साठ दिवस के अनधिक किसी कालावधि के लिए है और वह स्थान जहाँ परिवर्तन के पश्चात् मुद्रणयन्त्र रखा गया है उप धारा (1) मे निर्दिष्ट मजिस्ट्रेट के स्थानीय क्षेत्राधिकार के अन्दर है, तब यदि

(क) उस परिवतन से सम्बद्ध कथन उक्त मजिस्ट्रेट को परिवतन के चाबीस घटे के अन्दर दे दिया गया है, और

(ख) मुद्रणयन्त्रपाल वही व्यक्ति चला आ रहा हो तो कोई नई घोषणा आवश्यक न होगी।

राज्यों द्वारा सशोधन

हिमाचलप्रदेश

हिमाचलप्रदेश राज्य मे इसकी प्रयुक्ति में पजाब जसे सशोधन ही हैं सिवाय उपधारा 3 मे आए शब्द (अनलेश दी सिजेशन इन फोस) के (– 1974 का हि प्र अधि 17 (27 8 1974)

पजाब हरियाणा चण्डीगढ

पजाब, हरियाणा और केन्द्रशासित चण्डीगढ राज्यो म इसकी प्रयुक्ति में, धारा 4 मे निम्न उपधाराएँ जैसी कि 1957 क पजाब अधि 15 द्वारा पुन सस्थाकन की हुई है जोडी हुई मानी जायेगी अर्थात् –

(3) ज्योंही पुस्तकें व पत्रो के मुद्रणार्थ एक मुद्रणयत्र जो बद पडा हुआ था, पुन काम करना चालू कर देता है, एक नया घोषणापत्र आवश्यक होगा जब तक कि भारतीय मुद्रण (आपातकाल शक्तियाँ) अधि 1931 की धारा 3 (3) या 5 (1) अथवा अन्य प्रवतनीय विधि के तहत दिए गए आदेश की अनुपालना न करने के कारण उसका निवर्तन न हुआ हो।

(4) इस अधिनियम के उद्देश्यों के लिये एक मुद्रणयत्र काम करने स बद पडा माना जाएगा यदि उसम 6 माह से अनवरत कोई पुस्तक या पत्र मुद्रित नहीं किए गए हैं – 1942 का पजाब अधि 14 धारा – 2 (1 1-1943) 1966 का अधि 31, धारा 88 (1-11 1966)

तमिलनाडु

सम्पूर्ण तमिलनाडु मे इसकी प्रयुक्ति मे धारा 4 में उपधारा 2 के बाद निम्न उपधारा और अर्थात् –

(3) (क) जहां कोई मुद्रणयत्र जिसके सम्बन्ध मे इस धारा के तहत एक घोषणा की हुई है।

(i) इस घोषणा के 3 माह की अवधि म पुस्तकों या पत्रों का मुद्रण प्रारम्भ नहीं करता है तो ऐसी घोषणा शून्य होगी या

(ii) उपखण्ड (1) म वर्णित अवधि के दौरान मुद्रण तो प्रारम्भ हो गया हो परन्तु 3 माह स अधिक की अवधि के लिए पुस्तको और पत्रो का मुद्रण बन्द पडा हो तो ऐसी घोषणा प्रभावशील नही रहेगी।

(ख) कोई भी मुद्रणयत्र जिसकी घोषणा इस धारा के तहत पेश की हुई है जो खण्ड (क) मे शून्य या प्रभावहीन हो चुकी है एक नई घोषणा को पेश किए बिना पुस्तको या पत्रो के मुद्रण हेतु प्रारम्भ या पुन प्रारम्भ नही होगा — 1960 का तमिलनाडु अधि 14 धारा – 2 (14 9 1960) 1962 का 14 धारा – 2 और अनुसूची 1 – (9 1 1963)

राज्य सशोधनो द्वारा नयी धारा

पजाब हरियाणा चण्डीगढ

पजाब हरियाणा और केन्द्रशासित चण्डीगढ राज्यो म इसकी प्रयुक्ति म, धारा 4 के बाद निम्न नई धारा जोडी जावे अर्थात् —

4क जहा एक मुद्रणयन्त्र के सम्बन्ध म धारा 4 के तहत कोई घोषणा प्रस्तुत की और हस्ताक्षरित की जाती है घोषणा (मुद्रणयन्त्र का वही व्यक्ति धारक हो के मामलो को छोडकर) स्वीकार नही की जावगी जब तक कि राज्य सरकार से या अन्यथा जाचापरान्त मजिस्ट्रेट सतुष्ट न हो कि जो मुद्रणयन्त्र प्रारम्भ होने को है उसका नाम पजाब राज्य मे पहले स ही अस्तित्व म आये हुए किसी दूसरे मुद्रणयन्त्र के नाम से हूबहू मिलता न हो — 1957 का पजाब अधि 15 धारा 4 (13-7 1957) 1966 का अधि 31 धारा 88 (1 11 1966)

हिमाचलप्रदेश

हिमाचलप्रदेश राज्य म इसकी प्रयुक्ति मे पजाब राज्य जसे ही सशोधन हैं सिवाय इसके कि इन सशोधना में "पजाब शब्द के स्थान पर हिमाचलप्रदश वर्णित किया गया जाता है — 1974 का हि प्र अधि 17, धारा 3 (27 8 1974)

टिप्पणियाँ

धारा 4 यह आदेश देती है कि एक मुद्रणालय रखने के पूर्व उसके धारक को इस आशय की एक घोषणा प्रस्तुत व हस्ताक्षरित करनी होगी की वह अमुक स्थान पर एक मुद्रणालय रखता है। यह घोषणा उस जिला/मेट्रोपालिटान/उपखण्डीय मजिस्ट्रट जिसके कि क्षेत्र मे यह मुद्रणालय स्थित है, के सम्मुख पेश और हस्ताक्षरित करनी होगी।

द्वि आशय

यह धारा द्वि आशय रखती है। प्रथम, कार्यकारी प्राधिकारी यह जान सके कि यह मुद्रणालय कहा स्थित है और द्वितीय, वह यह भी जान सके कि इस मुद्रणालय का कौन व्यक्ति प्रभारी है। (ए 1931 अवध 81 (82)

मजिस्ट्रेट के सम्मुख घोषणा

एक सक्षम मजिस्ट्रेट के सम्मुख मुद्रणालय रखने के लिए वैधानिक घोषणा आवश्यक है। (ए आई आर 1960 उडीसा 126 (127)

यद्यपि इस धारा मे इस प्रकार की घोषणा के लिए कोई विस्तृत प्रपत्र नही दिया गया है तब भी घोषणाकर्त्ता को जहा मुद्रणालय स्थित है, उसका ठीक ठीक वास्तविक विवरण और स्वय धारक को अपना विश्वसनीय पता भी कानूनी पेचीदगियो से बचने के लिए देना चाहिए। इस धारा के उल्लघन पर 2000/- रु तक का जुर्माना और 6 माह तक की सजा अथवा दोनो ही दी जा सकती हैं।

यहा "पत्र" से तात्पर्य न केवल "समाचारपत्र" ही नही बल्कि कोई दस्तावेज भी है। मात्र घोषणा प्रस्तुत करना ही पर्याप्त नही है बल्कि इस पर नीचे घोषणाकर्त्ता के हस्ताक्षर भी यह सहमति व्यक्त करने के लिए होने चाहिए कि घोषणाकर्त्ता घोषणा की विषयवस्तु से सहमत है।

राजस्थान मे मुद्रणालय के धारक को यदि मुद्रणालय किसी भवन के किसी भाग मे स्थित है तो घोषणा मे उस भाग का ठीक-ठाक वर्णन जो उस मजिस्ट्रेट के मत मे जिसके सम्मुख घोषणा की जानी है, उस स्थान को पहचानने मे पर्याप्त है भी देना होगा। (देखिये राजस्थान नियम 3)

यदि दो या दो स अधिक व्यक्ति एक ही मुद्रणालय के धारक होने की घोषणा करें तो जिला मजिस्ट्रेट प्रत्येक घोषणाकर्त्ता से यह अपेक्षा करेगा कि वह घोषणा मे यह वर्णित करे कि वह उस प्रेस का सयुक्त धारक है (देखिय राजस्थान नियम 3 ख) मु पु अधि की धारा 4 स्पष्टतया धारा 5(2) मे वर्णित प्रावधान की तरह मजिस्ट्रेट के सम्मुख व्यक्तिश अथवा किसी एजेन्ट द्वारा उपसजात होने के बारे मे नही बताती लेकिन "मजिस्ट्रेट के सम्मुख" आया शब्द यह उजागर करता

दिखाई देता है कि इस धारा के गठनकर्त्ताओं का आशय यह रहा है कि घोषणा को पेश करना और हस्ताक्षरित करने का काय एक मजिस्ट्रेट के सम्मुख ही होना चाहिए । इस तक के आधार पर इस धारा के तहत डाक से घोषणा भेजना आशयित नही है । मु पु अधि की धारा 4(2) के तहत एक सामान्य नियम यह है कि ज्योंही मुद्रणालय का स्थान बदला जावे तो एक नई घोषणा जरूरी होगी लेकिन ऐसे स्थान का अस्थाई परिवतन इसका अपवाद है । बशर्ते –

(i) यह परिवतन 60 दिनो से अधिक का न हो और

(ii) परिवर्तित स्थान उक्त धारा 1 मे वर्णित मजिस्ट्रेट के स्थानीय क्षेत्राधिकार मे आता हो और

(iii) मुद्रणालय का धारक पूववत ही हो और

(iv) ऐसे परिवतन की सूचना 24 घण्टो के भीतर वर्णित मजिस्ट्रेट क यहां भिजवा दी गई हो ।

स्वामित्व

ऐसी घोषणा के प्रस्तुतिकरण और सत्यापन के अभाव मे मुद्रणालय के धारक के मुद्रणालय पर स्वामित्व को मान्यता नही दी जा सकती । (ए 1969 आ प्र 530 (532)

मुद्रणालय का घोषित धारक कोई जरूरी नही कि वह उसका ऐसा स्वामी भी हो जो किसी दूसरे को उसका स्वामित्व हस्तान्तरित कर सके ।

मुद्रणालय का स्वामित्व सामान्य विधि का विषय है । अत ऐसी स्थिति मे सामान्य विधि का अनुसरण करना चाहिए । (ए 1962 सुप्रीम कोट 586 (588)

मुद्रणालय का प्रयोग

कोई मुद्रणालय धारा 4 मे आता है या नही यह इस बात पर निभर करता है कि यह मुद्रणाथ है अथवा इसका धारक इसको मुद्रणाथ रखने का आशय रखता है या नही । (ए 1931 पटना 351(352)

व्यक्ति अथवा परिसर मे परिवतन

यदि घोषित मुद्रणालय उसी स्थान पर है जिसके सम्बन्ध मे घोषणा की गई है चाहे उसका धारक बदल गया हो, कोई नई घोषणा की आवश्यकता नही है । (ए 1931 अवध 1981 (82)

जव एक वार धारा 4 मे मुद्रणालय घोषित हो गया है तो उसी स्थानीय क्षेत्राधिकार मे इसके परिसर मे मामूली परिवतन नई घोपणा की आवश्यकता पैदा नही करता। (1889 पूना (त्री) न 9 पृ 49 (50)

विपयवस्तु की जानकारी

धारा 4 की घोपणा किसी पम्फलेट की विपयवस्तु की घोपणा-कर्त्ता की जानकारी मे होने की साक्ष्य नही है यद्यपि इस पर ऐसे प्रश्न को तय करने के लिए अन्य सामग्री के साथ विचार किया जा सकता है। विपयवस्तु की जानकारी दूसरे तथ्यो की तरह ही सिद्ध किया जाना चाहिए। जस्टिस क्रम्प ने कहा है कि मुद्रणालय के धारक का मुद्रित सामग्री से कोई सम्बन्ध है, इसकी विस्तार मे जाये बिना यह धारणा लेना असम्भव है कि वह अपनी प्रेस मे मुद्रित प्रत्येक पुस्तक की विपय-वस्तु को जानता है। (ए 1923 बम्बई 255 (258, 260)

एक आपत्तिजनक लेख के प्रकाशन के पूव लम्बे समय तक जेल मे रहने वाला घोपणाकर्त्ता का मुद्रणालय पर नियन्त्रण नही माना जा सकता। अत वह उस लेख के प्रकाशन के लिए दोप सिद्ध नही किया जा सकता। (मद्रास 714)

घोपणा को प्राप्त करना एक प्रशासकीय कर्तव्य

धारा 4 मे अपेक्षित घोपणा एक बार मजिस्ट्रेट के सम्मुख प्रस्तुत कर दी गई हो तो इस अधिनियम के तहत मजिस्ट्रेट को यह शक्ति नही है कि वह इसे निलम्बित अथवा निरस्त कर दे अथवा सम्बन्धित मुद्रणा-लय के स्वामित्व अथवा कब्जा सम्बन्धी प्रश्न को तय करे। धारा 4 मे अपेक्षित घोपणा को प्राप्त करना पूणतया एक मन्त्रालयिक काय है न कि ऐसा न्यायिक काय जिसमे मजिस्ट्रेट को घोपणा पेश करने की स्वीकृति देने अथवा न देने सम्बन्धी जाच का अधिकार होता है। (ए 1964 गुजरात 278 (281)

धारा 6 का प्रमाणीकरण धारा 4 पर लागू नहीं

मु पु अधि की धारा 6 मे एक घोपणा जो धारा 5 मे प्रस्तुत हुई है, प्रमाणिकरण करने तत्सम्बन्धी प्रावधान धारा 4 मे प्रस्तुत घोपणा पर लागू नही होते। (ए 1964 गुजरात 278 (281)

धारा 3 व 4 मे कौन परिवाद कर सकता है

धारा 3 व 4 के प्रावधानों को उल्लघन करने सम्बन्धी अपराध सावजनिक नीति के विरुद्ध हैं अत एक सामान्य व्यक्ति भी धारा 12 व 13 के तहत मुद्रणालय के प्रभारी व नियन्त्रक के विरुद्ध परिवाद कर सकता है। (1973) 2 मैसूर एल जे 553 (556)

5 समाचारपत्र प्रकाशन सम्बन्धी नियम

कोई समाचारपत्र एतत्पश्चात् बनाये गये नियमों के अनुवर्तन के सिवाय भारत में प्रकाशित नहीं किया जायेगा।

(1) धारा 3 के प्रावधानो को आघात पहुँचाये बिना ऐसे प्रत्येक समाचार पत्र की प्रत्येक प्रति म उसके मालिक व सम्पादक का नाम प्रकाशन की तिथि स्पष्टत मुद्रित रूप म अन्तर्विष्ट होगी।

(2) ऐसे प्रत्येक समाचारपत्र का मुद्रक तथा प्रकाशक स्वय या धारा 20 के अधीन बनाए गए नियमो के अनुकूल इस सम्बन्ध म प्राधिकृत अभिकर्ता द्वारा उस जिला, प्रेसीडेंसी या उप-खण्ड मजिस्ट्रेट के समक्ष उपसजात होगा जिसके स्थानीय क्षेत्राधिकार के अन्दर ऐसा समाचारपत्र मुद्रित या प्रकाशित किया जायेगा और दो प्रतिया म निम्नलिखित घोषणा करेगा

"मैं, क ख घोषित करता हूँ कि मैं नामक और मैं यथास्थिति मुद्रित या प्रकाशित किये जाने वाले या मुद्रित और प्रकाशित किये जाने वाले समाचारपत्र का मुद्रक (या प्रकाशक या मुद्रक और प्रकाशक) हूँ।

और घोषणा के इस प्रारूप के परवर्ती रिक्त स्थान म उस परिसर का ठीक-ठाक पता भरा जायगा जहाँ मुद्रण या प्रकाशन किया जाता है।

(2क) नियम (2) के अधीन प्रत्येक घोषणा में समाचारपत्र का नाम वह भाषा जिसमें उसका प्रकाशन होने वाला है तथा उसके प्रकाशन की कालावधीयता का उल्लेख होगा और ऐसी अन्य विशिष्टियाँ अन्तर्विष्ट होंगी जैसी कि विहित की जावें।

2(ख) जब नियम 2 के तहत घोषणा करने वाला समाचारपत्र का मुद्रक या प्रकाशक उसका मालिक नहीं हो तो घोषणा मालिक के नाम के कथन से युक्त होगी तथा घोषणा के साथ मालिक द्वारा लिखित म वह प्राधिकार भी होगा जिसम उसे ऐसी घोषणा करने तथा उस पर हस्ताक्षर करने का प्राधिकार दिया गया हो।

2 (ग) समाचारपत्र प्रकाशित करने के पूर्व नियम-2 के तहत उस समाचारपत्र के सम्बन्ध में एक घोषणा और उसका धारा 6 तहत प्रमाणीकरण आवश्यक होगा।

2 (घ) जब किसी समाचारपत्र का शीर्षक या इसकी भाषा या इसके प्रकाशन की कालावधि परिवर्तित हो तो घोषणा प्रभावशील नहीं रहेगी और उस समाचारपत्र को जारी कर सकने के पूर्व एक नई घोषणा आवश्यक होगी।

2 (ङ) जितनी बार एक समाचारपत्र का स्वामित्व बदला जावे उतनी बार नई घोषणा आवश्यक होगी।

3 जितनी बार मुद्रण या प्रकाशन का स्थान बदला जाये, नई घोषणा आवश्यक होगी

परन्तु जब कि परिवर्तन तीस दिन से अनधिक कालावधि के लिये है और परिवर्तन के बाद के मुद्रण या प्रकाशन का स्थान नियम (2) में निर्दिष्ट मजिस्ट्रेट के स्थानीय क्षेत्राधिकार में है, तब यदि

(क) उस परिवर्तन के सम्बन्ध में कथन उक्त मजिस्ट्रेट को परिवर्तन के चौबीस घंटे के अन्दर दे दिया जाता है, और

(ख) उस समाचारपत्र का मुद्रक या प्रकाशक या मुद्रक और प्रकाशक वही बना रहता है,

तो कोई नयी घोषणा आवश्यक न होगी।

4 जितनी बार मुद्रक या प्रकाशक जिसने यथा पूर्वोक्त घोषणा की हो, नब्बे दिन से अधिक अवधि के लिये भारत के बाहर जायेगा, या जहाँ ऐसा मुद्रक या प्रकाशक शारीरिक अक्षमता या किन्हीं कारणों से परिस्थितिवश जो उसकी नियुक्ति अवकाशजन्य न हो नब्बे दिन से अधिक अवधि के लिए अपने कर्त्तव्यों के निर्वाहन में असमर्थ हो तो एक नई घोषणा करना आवश्यक होगा।

5 जहाँ कि

(क) सप्ताह में एक या एक से अधिक बार प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्र की अवस्था में घोषणा के धारा 6 के तहत प्रमाणीकरण से 6 सप्ताह के अन्दर और

(ख) किसी अन्य समाचारपत्र की अवस्था में घोषणा के धारा 6 के तहत प्रमाणीकरण के तीन मास के अन्दर, समाचारपत्र का प्रकाशन आरम्भ नहीं हो जाता, वहाँ समाचारपत्र की बाबत की गई प्रत्येक घोषणा शून्य हो जायगी और प्रत्येक ऐसी अवस्था में समाचारपत्र के प्रकाशित प्रकाशित किये जा सकने के पूर्व नई घोषणा आवश्यक होगी।

(6) जहाँ कि तीन मास की किसी कालावधि मे कोई दैनिक पाक्षिक, त्रिसाप्ताहिक, अधसाप्ताहिक या साप्ताहिक समाचारपत्र जिस सख्या मे धक प्रकाशित करता है वह उस सख्या की आधे से कम है जितनी मे कि तन्निमित्त की गई घोषणा के अनुकूल वह प्रकाशित होना चाहिए था, वहाँ घोषणा प्रभाव शील न रहेगी और इसके पूव कि समाचारपत्र प्रकाशन जारी रखा जा सके, नई घोषणा आवश्यक होगी।

(7) जहाँ कि किसी अन्य समाचारपत्र ने अपना प्रकाशन बारह मास से अधिक कालावधि के लिए बन्द रखा है वहाँ तन्निमित्त की गई प्रत्येक घोषणा प्रभावशील न रहेगी और इसके पूव कि समाचारपत्रपुन प्रकाशित किया जा सके नई घोषणा आवश्यक होगी।

(8) समाचारपत्र के सम्बन्ध म प्रत्येक विद्यमान घोषणा उस मजिस्ट्रेट द्वारा अपखडित कर दी जायेगी जिसके सामने उसी समाचारपत्र के सबध म नई घोषणा की और हस्ताक्षरित की जाती है

परन्तु इस धारा द्वारा विहित घोषणा करने के लिए अनुज्ञा ऐसे किसी व्यक्ति को नही दी जावगी जो भारत में साधारणत निवास न करता हो अथवा जिसने भारतीय वयस्कता अधिनियम 1875 (1875 का 9) के उपबधों के अनुकूल या वयस्कता प्राप्ति क सबध मे जिस विधि के वह अधीन है, उस विधि के अनुकूल वयस्कता प्राप्त नहीं कर ली है और न एसा कोई व्यक्ति किसी समाचारपत्र का सपादन करेगा।

राज्यों द्वारा सशोधन

पजाब, हरियाणा और चण्डीगढ़

पजाब हरियाणा और केन्द्रशासित चण्डीगढ़ राज्यों में इसकी प्रयुक्ति म 1942 क पजाब अधि 14 द्वारा धारा 5 म शामिल उप धारा (2क) व धारा 5 क पजाब अधि 15 (1957 का) की धारा 3 (13 7 1975) द्वारा निरसित कर दी गई थी – 1966 का अधि 31 धारा 88 (1 11 1966)

टिप्पणियाँ

इस धारा मे समाचारपत्रो के प्रकाशन सम्बन्धी विस्तृत नियम दिये गये है जिनकी अनुपालना के बिना कोई समाचारपत्र प्रकाशित नहीं होगा।

मु पु अधि की धारायें 3 व 5 (1) सपठित के नि 8 अपेक्षा करती है कि प्रत्येक समाचारपत्र के प्रत्येक अंक की प्रत्येक प्रति पर निम्न विवरण सुपाठ्यत मुद्रित होगा —

(1) मुद्रक का नाम
(2) मुद्रण-स्थल यानि मुद्रणालय का नाम, इसके ठीक-ठाक वास्तविक वर्णन के साथ
(3) प्रकाशक का नाम
(4) प्रकाशन का स्थल
(5) स्वामी का नाम
(6) सम्पादक का नाम
(7) इसके प्रकाशन की तिथि
(8) फुटकर बिक्री मूल्य अथवा "यह नि शुल्क वितरण के लिए है", जसी भी अवस्था हो

धाराएँ 3 व 5(1) इस बात के लिए बाध्य नही करती कि उपरोक्त विवरण किसी विशेष पृष्ठ के विशेष स्थान पर ही प्रकाशित हो लेकिन इन धाराओ के कानून निर्माताओ का आशय यह दिखाई देता है कि यह विवरण उपयुक्त स्थान पर जो प्रथम पृष्ठ व अन्तिम पृष्ठ हो सकता है, पर मुद्रित होना चाहिए, ताकि पाठकगण इन नामो और स्थानो के बारे मे आसानी से अच्छी तरह जान सकें।

क्रम सख्या 1 से 6 के विवरण केन्द्रीय नियमो के नियम 8(2) द्वारा निर्धारित इम्प्रिन्ट लाइन मे पहले से ही शामिल किये हुए हैं। नियम 8(2) निम्न प्रकार है —

प्रत्येक समाचारपत्र की प्रत्येक प्रति मे निम्न प्रारूप मे साफ तौर से मुद्रक, प्रकाशक, मालिक और सम्पादक का नाम और मुद्रण तथा प्रकाशन का स्थान मुद्रित होगा —

मालिक का नाम " की तरफ से (मुद्रक का नाम) द्वारा (मुद्रण यत्र का नाम) मे मुद्रित और (प्रकाशक का नाम) द्वारा (प्रकाशन स्थल का नाम) से प्रकाशित।

नोट —यह प्रारूप प्रत्येक समाचारपत्र की परिस्थितियो के अनुसार सशोधित किया जा सकता है, उदाहरणतया जहाँ मुद्रक, प्रकाशक और मालिक एक ही हो तो इम्प्रिन्ट लाइन द्वारा मुद्रित, प्रकाशित

ग्रौर स्वामित्वाधीन छापी जा सकती है। फिर भी, सम्पादक का नाम प्रत्येक मामले मे ग्रलग से दिया जावेगा। इन धाराग्रो की कार्यान्विति को सहज ही नही लेना चाहिए। मुद्रक, मुद्रण-स्थल, प्रकाशक, प्रकाशन-स्थल, स्वामी ग्रौर सम्पादक के स्थायी या डाक के ठीक-ठाक पते मुद्रित होने चाहिए। इन नामो के मुद्रण मे किसी प्रकार की ग्रस्पष्टता या द्विग्रथता नही होनी चाहिए। इन विवरणो के ग्रप्रकाशन से 4000 रु तक जुर्माना ग्रौर एक वर्ष तक की सजा ग्रथवा दोनो (यानि धाराएँ 12 ग्रौर 15 मे प्रत्येक मे 2000/ 2000/- तक का जुर्माना ग्रौर 6 6 माह तक की सजा या दोनो) घोषणा का निरस्तीकरण इन सजाग्रो से ग्रलग है, दिया जा सकता है।

प्रत्येक वर्ष के फरवरी माह के ग्रन्तिम दिन के पश्चात प्रकाशय प्रथम ग्रक मे के नि 8(1) मे दिये गये फार्म IV के विवरणो को प्रकाशय प्रकाशित करेगा।

धारा 19 घ(ख) द्वारा फार्म IV मे ग्रपेक्षित वार्षिक विवरणा के ग्रप्रकाशन से धारा 19 ट के तहत 500 रु तक का जुर्माना किया जा सकता है।

घोषणा को प्रस्तुत करना व हस्ताक्षरित करना

प्रत्यक समाचारपत्र का मुद्रक व प्रकाशक या इस सम्बन्ध मे कोई ग्रधिकृत एजेन्ट सबधित राज्य सरकार द्वारा धारा 20 मे बनाय गये यदि कोई नियम हो तो उनके तहत जिला/मेट्रोपोलिटान/उपखडीय मजिस्ट्रेट जिसके कि स्थानीय क्षेत्राधिकार मे ऐसा समाचारपत्र मुद्रित ग्रथवा प्रकाशित होगा, के सम्मुख उपस्थित होगा ग्रौर के नि 3 के निर्धारित फार्म I मे दो प्रतियो मे घोषणा पत्र ग्रौर हस्ताक्षरित करेगा।

धारा 5 (2 ग) के तहत किसी समाचारपत्र को प्रकाशित करने के पूव धारा 5 (2) के तहत घोषणा को प्रस्तुत करना ग्रौर उसे धारा 6 मे प्रमाणित कराना ग्रावश्यक होगा।

स्वामी द्वारा प्राधिकार

जब धारा 5 (2) के तहत घोषणा को पेश करने वाला समाचार-पत्र का मुद्रक या प्रकाशक उस समाचारपत्र का मालिक नही हो तो घोषणा पत्र मे मालिक का नाम विशेष रूप से उल्लेख मे ग्रायेगा ग्रौर घोषणा पत्र के साथ मालिक द्वारा प्रदत्त इस ग्राशय का लिखित

प्राधिकार की घोषणा प्रस्तुतकर्त्ता को ऐसी घोषणा पेश करने और हस्ताक्षरित करने का प्राधिकार है, सलग्न करना होगा।

नई घोषणा कब आवश्यक होती है ?

(i) जब समाचारपत्र का नाम या इसकी भाषा या इसकी अवधिकालिका परिवर्तित हो।

(ii) जब समाचारपत्र का स्वामित्व बदले।

(iii) जब मुद्रण या प्रकाशन का स्थान बदले।

अपवाद

उपरोक्त नियम का एक निम्न अपवाद भी है –

(क) जब परिवतन तीस दिनो से अधिक का न हो।

(ख) और परिवर्तित मुद्रण अथवा प्रकाशन का स्थान स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट के क्षेत्र मे हो यदि

(ग) इस परिवतन से सम्बन्धित विवरण इस वर्णित मजिस्ट्रेट के यहा भिजवा दिया गया हो और

(घ) मुद्रक या प्रकाशक या मुद्रक व प्रकाशक समाचारपत्र का वही हो।

(iv) (क) जब मुद्रक या प्रकाशक जिसने कि ऐसी घोषणा की है 90 दिनो से अधिक अवधि के लिए भारत छोडकर चला गया हो या

(ख) जब मुद्रक या प्रकाशक शारीरिक अक्षमता या अन्यथा 90 दिनों से अधिक अवधि के लिए अपने व्यावसायिक कर्त्तव्यों को करने में असमथ हो। लेकिन यह अवधि उसकी नियुक्तिजन्य अवकाश नही होना चाहिए।

(v) जब समाचारपत्र प्रारम्भ न हो –

(क) एक सप्ताह मे अथवा कभी-कभी प्रकाशित होने वाले समाचारपत्र के मामले मे घोषणा के प्रमाणित होने के 6 सप्ताह के अन्दर समाचारपत्र के प्रकाशन की शुरूआत न होने पर और

(ख) अन्य समाचारपत्र के मामले मे घोषणा के प्रमाणीकरण के 3 महीनो क अन्दर उसके प्रकाशन की शुरूआत न होने पर।

(vi) जब 3 मास की किसी अवधि मे कोई दनिक, पाक्षिक, त्रिसाप्ताहिक, अर्द्धसाप्ताहिक या साप्ताहिक समाचारपत्र निश्‍चित संख्या मे

अक प्रकाशित करता है वह उस सख्या के आधे से कम है जितने कि इस सम्बन्ध मे की गई घोषणा के अनुसार प्रकाशित होने चाहिए थे ।

(vii) जब किसी अन्य समाचारपत्र ने अपना प्रकाशन 12 मास की अवधि से अधिक अवधि के लिए बन्द रखा हो ।

जब नई घोषणा आवश्यक होती है तो ऐसी स्थिति मे कानून निर्माताओ की इच्छा यह उजागर दिखती है कि निकटस्थ पुरानी घोषणा प्रभावहीन हो जाएगी, बावजूद इस तथ्य के कि ऐसी इच्छा सम्बन्धित धारा मे उजागर की गयी हो या नही ।

धारा 5 और के नि 3 के तहत फार्म I यह दिखाते नजर आते है कि धारा 5 के प्रयोजनो के लिए सभी प्रकार की घोषणाएँ उदाहरणत अभिनव घोषणा अथवा किसी भी प्रकार के परिवर्तन के सम्बन्ध मे घोषणा अथवा नई घोषणा के लिए फार्म I ही निर्धारित किया हुआ है ।

घोषणाकर्त्ता की वयस्कता और उसका भारत मे साधारणत निवास

धारा 5 की उपधारा 8 की शुरूआती कण्डिका एक सामान्य नियम से सम्बन्धित है जिसमे कहा गया है कि समाचारपत्र के सम्बन्ध मे प्रत्येक विद्यमान घोषणा उस मजिस्ट्रेट द्वारा निरस्त कर दी जाएगी जिसके सामने उसी समाचारपत्र के सम्बन्ध मे नई घोषणा प्रस्तुत और हस्ताक्षरित की गई हो ।

इस उपधारा की अन्तिम कण्डिका एक "परन्तु" से सम्बन्धित है जो उपरोक्त सामान्य नियम का "परन्तु" दिखाई देता है जिसमे कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति इस धारा के तहत घोषणा करने को स्वीकृत नही होगा यदि –

(1) घोषणाकर्त्ता भारत मे साधारणत निवास नही करता हो या ।

2 (क) घोषणाकर्त्ता ने भारतीय वयस्कता अधिनियम 1875 के उपबन्धो के अनुकूल वयस्कता प्राप्त न की हो या

(ख) उसने उस विधि के अनुकूल वयस्कता प्राप्त न की हो जिस विधि के वह अधीन है ।

इस उपधारा से यह स्पष्ट नही होता है कि यह प्रावधान शुरूआती कण्डिका मे वर्णित नई घोषणा अथवा अभिनव घोषणा (यानि समाचार-

पत्र के मुद्रण व प्रकाशन के प्रारम्भ करने के पूर्व वाली घोषणा) या दोनो से सम्बन्धित है।

शुरूआती कन्डिका मे आये शब्द "एक नई घोषणा" और इस धारा द्वारा निर्धारित घोषणा एक दूसरे से विरोधाभासी दिखाई देते हैं। यह स्पष्ट नही है कि यह धारा स्वय धारा 5 से अथवा धारा 5 की उपधारा 8 से तात्पय रखती है। यदि यह धारा 5 से सम्बन्ध रखती है तब तो यह अभिनव और नई घोषणा दोनो से ही सम्बन्ध रखती है और यदि यह सिर्फ धारा 5 की उपधारा 8 से ही तात्पय रखती है तो यह सिर्फ नई घोषणाओ पर ही लागू होगा।

अन्तिम कन्डिका में जो भारत मे साधारणत निवास से सबधित है, के तत्काल बाद आया शब्द "अथवा" लगता है। इस उपधारा मे गलती से वर्णित हो गया है। अत सन्दर्भों को देखते हुए यहा शब्द "अथवा" से अर्थ "और" से लिया जाना चाहिए क्योकि भारत मे साधारणत निवास और वयस्कता प्राप्ति सम्बन्धी प्रावधान इतने महत्त्वपूर्ण प्रावधान हैं कि कानून निर्माताओ का आशय इस रूप मे लिया जाना चाहिए कि एक घोषणाकर्त्ता जो मुद्रक/प्रकाशक/मुद्रक व प्रकाशक कोई भी हो सकता है, को भारत का साधारणत निवासी होने के साथ साथ उसका वयस्क होना भी जरूरी है। और यह प्रावधान अभिनव व नई दोनो ही प्रकार की घोषणाओ पर लागू होता है।

वयस्कता प्राप्ति से सम्बन्धित प्रावधान 1922 के अधिनियम 14 और भारत मे साधारणत निवास से सम्बन्धित प्रावधान 1960 के अधिनियम 26 द्वारा शामिल किए गए हैं। लेकिन के नि 3 मे निर्धारित फार्म I को अभी तक तदानुसार सशोधित नही किया गया है। अत फार्म I की प्रविष्टियो के अतिरिक्त भी इस प्रकार का विवरण और दिया जाना चाहिए।

मु पु अधि की धारा 5 (8) के प्रयोजनो के लिए भारतीय वयस्कता अधिनियम 1875 के सम्बन्धित प्रावधान इस अधिनियम की द्वितीय कन्डिका की धाराएँ 3 (भारत मे निवास कर रहे व्यक्तियो की वयस्कता आयु) और धारा 4 (वयस्कता की आयु की प्रगणना किस प्रकार की जानी है) मे हैं।

भारतीय वयस्कता अधिनियम 1875 की द्वितीय कन्डिका मे कहा गया है कि भारत मे निवास कर रहा प्रत्येक व्यक्ति जब वयस्क माना जाएगा जब उसने अपनी आयु के 18 वर्ष पूरे कर लिए हो।

ऐसा न करने पर 31 दिसम्बर 1968 के बाद मुद्रणयन्त्र का धारक उस मुद्रणयत्र को अपने कब्जे म नही रख सकेगा तथा किसी समाचारपत्र का सम्पादक मुद्रक या प्रकाशक बने रहन स रुक जायेगा।

यह धारा नई-नई शामिल की गयी है (देखिए 1965 का अधि 16 और 1968 का अधि 30) इस नई धारा मे उपधारा – 1, मुद्रणालया व उपधारा-2 समाचारपत्रा स सम्बधित है।

इस नयी धारा का समावेश इसलिए जरूरी हो गया था कि मु पु अधि की धारा – *1* म 'भारत" की परिभाषा म जो जम्मू कश्मीर राज्य को अपवर्जित रखा गया था, वह तत्सम्बन्धी प्रावधान 1965 के अधि 16 द्वारा लोप कर दिया गया है। अब मु पु अधि सम्पूर्ण भारत पर लागू होता है। (देखिए धारा 22)

(6) घोषणा का प्रमाणीकरण

यथापूर्वोक्त की और हस्ताक्षरित की गई प्रत्येक घोषणा की दो मूल प्रतिया म से प्रत्येक को वह मजिस्ट्रेट अपने हस्ताक्षर करके और पदीय मुद्रा लगा कर प्रमाणीकृत करेगा जिसके सामने कि उक्त घोषणा की गई है।

परन्तु जहाँ कि किसी समाचारपत्र की बाबत कोई घोषणा धारा 5 क अधीन की और हस्ताक्षरित की गई है वहाँ जब तक कि मजिस्ट्रेट का समाधान प्रेस रजिस्ट्रार से की गयी जाँच से न हो जाये कि प्रकाशित किये जाने के लिये प्रस्थापित समाचारपत्र का नाम या तो वही या वसा ही नहीं है जो कि या ता उसी भाषा म या उसी राज्य म प्रकाशित किसी अन्य समाचार का है वह घोषणा उस समाचारपत्र की अवस्था म के सिवाय, जिसका स्वामी वही व्यक्ति है ऐसे प्रमाणीकृत न की जायगी।

निक्षेप

उक्त मूल प्रतिया मे से एक मजिस्ट्रट के कार्यालय के अभिलेख मे निक्षिप्त की जायेगी और दूसरी उच्च न्यायालय के या उस स्थान के जहाँ उक्त घोषणा की गई है आरम्भिक क्षेत्राधिकार वाले प्रधान व्यवहार न्यायालय के अभिलेख म निक्षिप्त की जायेगी।

प्रतियो का निरीक्षण और प्रदाय

प्रत्यक मूल प्रति का भारसाधक पदाधिकारी एक रुपये की फीस दिये जाने पर उस मूल प्रति का निरीक्षण किसी व्यक्ति को करने देगा और उक्त घोषणा की ऐसी प्रति, जो कि उस न्यायालय की मुद्रा से अभिप्रमाणित है जिसकी

अभिरक्षा में मूल प्रति है दो रुपये की फीस के दिये जाने पर आवेदन करने वाले किसी व्यक्ति को देगा।

मजिस्ट्रेट की पदीय मुद्रा से अभिप्रमाणित उस घोषणा या घोषणा के प्रमाणीकरण को करने के अस्वीकारी आदेश की एक प्रति यथासंभव घोषणा करने और हस्ताक्षरित करने वाले व्यक्ति तथा प्रेस रजिस्ट्रार को भेजी जावेगी।

टिप्पणियाँ

धारा 6 इस प्रक्रिया को दर्शाती है कि एक घोषणा किस प्रकार प्रमाणित की जाती है। एक समाचारपत्र के सम्बन्ध मे धारा 5 मे प्रस्तुत व हस्ताक्षरित कोई घोषणा उस मजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित होगी जो स्थानीय क्षेत्राधिकार रखता है। घोषणा के प्रमाणीकरण के पूर्व प्रेस रजिस्ट्रार से जांच करने के बाद मजिस्ट्रेट का यह सन्तोष लेना आवश्यक है कि प्रस्तावित प्रकाशय समाचारपत्र का नाम या तो एक ही भाषा अथवा एक ही राज्य मे किसी अन्य प्रकाशित समाचारपत्र के नाम से हूबहू नही मिलता हो।

अपवाद

उपरोक्त नियम का एक अपवाद है—ऐसा समाचारपत्र जो एक ही व्यक्ति के स्वामित्व मे हो—

धारा 6 अभिनव यहाँ तक कि नई घोषणाओ पर भी लागू होती है क्योंकि धारा 5 स्वयं अभिनव और नई दोनों घोषणाओ पर लागू होती है।

शीर्षक (नाम) निष्कासन

धारा 6 आशय प्रकट करती है कि धारा 5 के तहत प्रस्तुत व हस्ताक्षरित घोषणा की प्राप्ति के बाद मजिस्ट्रेट प्रेस रजिस्ट्रार से यह जाँच करेगा कि प्रकाशन को प्रस्तावित समाचारपत्र या तो उसी भाषा में या एक ही राज्य मे प्रकाशित किसी अन्य समाचारपत्र के नाम से हूबहू नही मिलता है। इस प्रकार का निष्कासन प्रमाण-पत्र प्रेस रजिस्ट्रार से प्राप्त करने के बाद वह घोषणा को प्रमाणित करेगा अन्यथा नही।

इस प्रकार का शीर्षक निष्कासन मजिस्ट्रेट के जरिये प्रेस रजिस्ट्रार से धारा 5 मे घोषणा को प्रस्तुत व हस्ताक्षर करने के पूर्व भी शीर्षक

पुष्टि के रूप मे प्राप्त किया जाकर घोषणा के साथ सलग्न किया जा सकता है। ऐसी दशा मे, मजिस्ट्रट के सम्मुख सिवाय घोषणा को प्रमाणित, करने के अन्य कोई विकल्प नही रहता है।

घोषणा के साथ इस प्रकार का शीर्षक निष्कासन प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना धारा 6 मे निहित आशय को फौत नहीं करता है।

प्रमाणीकरण

इस प्रकार प्रस्तुत व हस्ताक्षरित प्रत्येक घोषणा की दोनो मूल प्रतियो मे से हरेक को मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर व पदीय मुद्रा के द्वारा प्रमाणित किया जाएगा।

धारा 6 विस्तार से यह नही बताती कि घोषणा को किस प्रकार प्रमाणित किया जावे। लेकिन मात्र शब्द – "प्रमाणित" अथवा इससे मिलता जुलता कोई दूसरा शब्द मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर और अदालत की पदीय मुद्रा लगाने के पूव लिख देना मात्र इस धारा की भावना को पूरा नही करता। इस धारा की भावना को पूरी तरह कार्यान्वित करने के लिए एक छोटा सा निर्णय घोषणा फार्म की पीठ अथवा इसके हाँसिए पर लिखा जाना चाहिए।

इस प्रकार के सक्षिप्त निर्णय का प्रारूप निम्न प्रकार हो सकता है —

अदालत का नाम

श्री पुत्र जाति आयु

निवासी स्वय घोषणाकर्त्ता/या घोषणाकर्त्ता की तरफ से अधिकृत एजेन्ट मेरे सम्मुख उपस्थित हुआ और मु पु अधि की धारा के तहत उसने मेरे सम्मुख यह घोषणा प्रस्तुत व हस्ताक्षरित की।

मैं सन्तुष्ट हूँ कि घोषणा के साथ प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा जारी शीर्षक निष्कासन प्रमाण-पत्र के सलग्न किये जाने अथवा प्रेस रजिस्ट्रार से यह जाच किये जाने पर कि प्रकाशन के लिए प्रस्तावित समाचारपत्र का नाम या तो एक ही भाषा या एक ही राज्य मे प्रकाशित किसी अन्य समाचारपत्र के नाम से हूबहू नही मिलता है।

मैंने स्वामी द्वारा दिये गये प्राधिकार पत्र जिसके तहत इस घोषणा-कर्त्ता को यह घोषणा प्रस्तुत व हस्ताक्षरित करने का प्राधिकार दिया गया है का भी अवलोकन किया/अथवा घोषणाकर्त्ता स्वय ही प्रस्तावित समाचारपत्र का स्वामी है अत स्वामी से प्राधिकार अपेक्षित नही है।

अत यह घोषणा मु पु अधि की धारा 6 के तहत आज दिनांक माह" सन् को मेरे हस्ताक्षर और इस अदालत की पदीय मुद्रा के तहत प्रमाणित किया जाता है।

हस्ताक्षर मजिस्ट्रेट

पदीय मुद्रा

दिनांक

मोहर

यदि मजिस्ट्रेट इस निष्कर्ष पर आता है कि घोषणा प्रमाणित नहीं की जानी चाहिए तो उसको घोषणा फार्म की पीठ या उसके हाँसिए पर इसके कारणों का उल्लेख करते हुए तत्सम्बन्धी आदेश पारित करने चाहिए।

अभिप्रमाणित प्रतियों का प्रेषण

मजिस्ट्रेट को पदीय मुद्रा से अभिप्रमाणित उस घोषणा या घोषणा के प्रमाणीकरण, को करने के अस्वीकारी आदेश, की एक प्रति यथासम्भव घोषणा करने और हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति तथा प्रेस रजिस्ट्रार को भेजी जावेगी।

निक्षेप (जमा करना)

प्रमाणित मूल प्रतियों मे से एक

(i) मजिस्ट्रेट के कार्यालय के अभिलेख मे और

(ii) दूसरी उच्च न्यायालय के या उस स्थान के जहां उक्त घोषणा की गई है, के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार वाले प्रधान व्यवहार न्यायालय के अभिलेख मे जमा की जावेगी।

यद्यपि धारा 5(2) और धारा 6 की तृतीय कण्डिका की अपेक्षाओं के अनुसार प्रमाणीकरण के लिए दो प्रतियो मे घोषणा – एक उच्च-न्यायालय अथवा मूल क्षेत्राधिकार के मुख्य दीवानी अदालत के लिए तथा एक स्वय मजिस्ट्रेट के ऑफिस के लिए प्रस्तुत करना पर्याप्त है। फिर भी घोषणा की दो अतिरिक्त प्रतिया और पेश करनी चाहिए ताकि ज्योंही घोषणा प्रमाणित हो तो उन दो अतिरिक्त प्रतियो को अभि-प्रमाणित किया जा सके। जिनमे से एक प्रेस रजिस्ट्रार के लिए और एक स्वय घोषणाकर्त्ता के लिए दी जा सकती है। इन अतिरिक्त प्रतियों

के अभाव मे मजिस्ट्रेट को ऐसी अभिप्रमाणित प्रतिया तयार करानी होगी जिसमे अनावश्यक समय भी लग सकता है जो स्वय घोषणाकर्त्ता के हित मे नही है ।

प्रमाणित प्रति बनाम अभिप्रमाणित प्रति

धारा 8 यह उजागर करती नजर आती है कि एक घोषणा की प्रमाणित प्रति और उसी की एक अभिप्रमाणित प्रति मे बहुत अन्तर होता है ।

घोषणा की एक प्रमाणित प्रति वह मूल प्रति होती है जो घोषणा-कर्त्ता द्वारा प्रस्तुत व हस्ताक्षरित होती है और जिस पर मजिस्ट्रेट इसकी विषयवस्तु पर सन्तुष्ट होने के बाद अपने हस्ताक्षर व पदीय मुद्रा चस्पा करता है जबकि एक अभिप्रमाणित प्रति उस मूल प्रमाणित प्रति की एक सत्यापित प्रति होती है ।

प्रतियो का निरीक्षण व प्रदाय

कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय या मूल क्षेत्राधिकार रखने वाली मुख्य दीवानी अदालत या मजिस्ट्रेट के अभिलेख मे रखी हुई प्रमाणित घोषणा का निरीक्षण एक रुपया शुल्क की अदायगी पर तथा उसकी एक प्रति दो रु शुल्क की अदायगी पर प्राप्त कर सकता है ।

अनुचित प्रतिस्पर्धा को रोकने

दो व्यक्तियो द्वारा एक ही नाम के दो समाचारपत्रो के बीच अनुचित प्रतिस्पर्धा को रोकना धारा 6 के 'परन्तु' का स्पष्ट आशय नजर आता है । यह 'परन्तु' वतमान मे चल रहे एक समाचारपत्र की उसके नाम के सम्बन्ध मे रक्षा भी करता है । (ए 1959 मद्रास 519)

मजिस्ट्रेट का कत्तव्य मात्र प्रशासकीय

*एक पत्र को प्रारम्भ करने और तत्सम्बन्धी घोषणा को पेश करने का अधिकार किसी प्राधिकार द्वारा लाइसेंस देने पर निभर नही है । इसका अथ यह हुआ कि सम्बन्धित मजिस्ट्रेट मे किसी घोषणा को धारा 6 के "परन्तु" मे वर्णित दशा को छोडकर उसे अस्वीकार करने का स्वविवेक निहित नही है । मजिस्ट्रेट का कत्तव्य मात्र प्रशासकीय है कि वह घोषणा को रिकार्ड करे अथवा "परन्तु" मे वर्णित समाचारपत्र होने पर उसे अस्वीकार करे । यदि जिस दिन याचिकाकर्त्ता ने अपने

जनल के सम्बन्ध मे एक विशेष शीषक को लेकर एक घोषणा प्रस्तुत की है और उस दिन उसी नाम का कोई हूबहू समाचारपत्र प्रकाशित नही होता है तो उसको धारा 5 (2) के तहत घोषणा पेश करने का हक है और मजिस्ट्रेट को यह क्षेत्राधिकार नही है कि वह उसके और उसके प्रतिद्वन्दी जिसने बाद मे आवेदन किया है, के बीच तुलनात्मक गुणावगुणो का जायजा ले कि उनमे से कौन इस नाम का हकदार होगा। (ए 1959 मद्रास 519)

* एक जिला मजिस्ट्रेट जब धारा 6 के तहत काय करता है तो वह फौजदारी अथवा दीवानी अदालत के क्षेत्राधिकार के रूप मे काम नही करता और न किसी भी भाव मे इसकी कायवाहियो को इस धारा के तहत न्यायिक कायवाही कहा जा सकता है। उसकी इस धारा मे की गई कायवाही शुद्धत मन्त्रालयिक है। (19 श्री एल जे 621 (ख पी)

* एक घोषणा का निरस्त करने से अस्वीकार करने का आदेश — अद्धन्यायिक नही है। अत भारतीय सविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा कोई दखल नही दिया जा सकता है। (ए 1965 म प्र 128)

विद्यमान समाचारपत्र के नए सस्करण पर "परन्तु" लागू नहीं

घोषणा को प्रमाणित करने का मजिस्ट्रेट का आदेश अपने चरित्र मे प्रशासकीय होता है। अत यह मसला सिरस्योरी (रिट का एक रूप) लायक नही है। धारा ■ की अपेक्षा यह है कि प्रस्तावित पत्र का मालिक एक ऐसे पत्र को प्रकाशित नही करता होना चाहिए जिसका नाम "परन्तु" मे वर्णित अन्य समाचारपत्र से हूबहू मिलता हो। "परन्तु" मुख्य धारा का एक अपवाद है और विद्यमान समाचारपत्र के किसी नए सस्करण पर लागू नही होता है (1966)। मैसूर एल जे 592

शीर्षक के चयन मे सीमित सकोचन

एक समाचारपत्र के शीषक के चयन मे धारा 6 के "परन्तु" मे वर्णित दशा को छोडकर अन्य किसी प्रकार का सकोचन नही है। इस तरह से यह सकोचन एक सीमित सकोचन ही कहलाएगा। (ए 1965 म प्र 128 (130)

धारा 6 धारा 4 पर लागू नहीं

धारा 6 मे प्रमाणीकरण के प्रावधान धारा 5 मे प्रस्तुत की गई घोषणा पर लागू होते हैं न कि धारा 4 मे प्रस्तुत की गई घोषणा पर। एक मुद्रणालय के धारक का मात्र यह दायित्व है कि वह धारा 4 के तहत घोषणा को प्रस्तुत व हस्ताक्षरित कर दे। उसकी इस घोषणा को धारा 6 के तहत प्रमाणित कराने की आवश्यकता नहीं है (ए 1964 गुजरात 278 एक पी)

7 घोषणा की कार्यालय वाली प्रति प्रथम दृष्टया साक्ष्य होगी

किसी भी वैध कार्यवाही में, चाहे वह व्यवहार हो या दण्डिक, यथापूर्वोक्त ऐसी घोषणा की ऐसी प्रति की, जो कि ऐसे किसी न्यायालय की मुद्रा द्वारा अभिप्रमाणित है जिसे कि ऐसी घोषणा को अपने अभिरक्षा में रखने के लिए इस अधिनियम के अधीन सशक्त किया गया है या किसी सपान्क की अवस्था म उस समाचारपत्र की प्रति की, जिस पर उसका नाम सपादक के रूप म मुद्रित है पेशी जब तक प्रतिकूल सिद्ध म किया जाये उस व्यक्ति के खिलाफ जिसका नाम यथास्थिति ऐसी घोषणा पर हस्ताक्षरित है या ऐसे समाचारपत्र पर मुद्रित है इस बात का पर्याप्त साक्ष्य समझी जायेगी कि उक्त व्यक्ति ऐसे प्रत्येक समाचार पत्र के जिसका नाम घोषणा में वर्णित समाचारपत्र के नाम से मिलता है प्रत्येक प्रभाग का उन शब्दों के अनुरूप (जो कि उस घोषणा के हो) प्रकाशक या मुद्रक या प्रकाशक और मुद्रक है या उस समाचारपत्र के, जिसकी प्रति पेश की गई है प्रत्येक अंक के प्रत्येक प्रभाग का सपादक है।

टिप्पणियाँ

मुद्रक और प्रकाशक के विरुद्ध धारणा

किसी कानूनी कार्यवाही उदाहरणतया फौजदारी या दीवानी मे ऐसी अदालत जो प्रमाणित घोषणा की अभिरक्षा रखने के लिए सक्षम हो, द्वारा अपनी पदीय मुद्रा के तहत अभिप्रमाणित किसी प्रमाणित घोषणा की एक प्रति पेश किये जाने पर जब तक कि प्रतिकूल सिद्ध न किया जावे, उस व्यक्ति के खिलाफ जिसका नाम यथास्थिति ऐसी घोषणा पर हस्ताक्षरित है या ऐसे समाचारपत्र पर मुद्रित है, इस बात का प्रथम दृष्टया साक्ष्य समझी जावेगी कि वही ऐसे समाचारपत्र का प्रकाशक या मुद्रक या प्रकाशक और मुद्रक है।

"यहाँ" शब्द "अभिरक्षा" महत्वपूर्ण शब्द है। घोषणा की अभिप्रमाणित प्रति एक उचित अभिरक्षा से और विधि प्रदत्त प्रक्रिया के तदानुकूल प्राप्त की जानी चाहिए।

मुद्रक की अस्थायी उपस्थिति

धारा 7 मे एक पजीकृत मुद्रक प्रत्येक कालावधिक कति के प्रत्येक प्रभाग का जिसका नाम घोषणा मे वर्णित नाम से मिलता है जब तक कि अन्यथा सिद्ध न हो जाए, मुद्रक माना जाना चाहिए। मुद्रक की अस्थायी उपस्थिति अपेक्षित तथ्य को सिद्ध नही करती (1905) 2 क्री एल जे 31 (33)

जो कुछ छपा है, उसकी जानकारी

*एक मुद्रक और प्रकाशक जिसने अधि के तहत घोषणा की है, के सम्बन्ध मे यह धारणा ली जानी चाहिए कि उसने जो कुछ मुद्रित और प्रकाशित किया है, उससे वह जानकारी रखता है (1908) 7 क्री एल जे 10 (18) (ख पी) कलकत्ता।

* जहाँ एक व्यक्ति ने एक घोषणा पेश की है कि वह एक पत्र का मुद्रक और प्रकाशक है, धारणा यह है कि उस पत्र के अक मे क्या मुद्रित और प्रकाशित हुआ था, उससे वह जानकारी रखता है। घोषणा उस द्वारा पत्र के प्रत्येक समाचारो के प्रकाशन की प्रथम दृष्टया साक्ष्य है। उसको आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन से महज इसलिए मुक्त नही किया जा सकता कि रोजमर्रा के काम मे उसने सम्पादक को समाचारो के सवरण को कह दिया था (ए 1966 पजाब 93 (95)।

सिद्ध करने का भार

* धारा 7 मुद्रक को जुम्मेदार बनाती है चाहे आपराधिक लेख का लेखक कोई भी हो। प्रतिकूल सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर है (1908) 8 क्री एल जे 438 (444) कलकत्ता

* जब अभियोजन पक्ष यह सिद्ध नही कर पाये कि अमुक पुस्तक अमुक मुद्रणालय विशेष मे मुद्रित हुई है तो मुद्रणालय का धारक मात्र इस साक्ष्य पर सिद्ध दोष नही किया जा सकता कि पुस्तक पर मुद्रण का यह विवरण छपा था कि यह कहाँ मुद्रित हुई थी क्योंकि इससे धारा 7 म कोई धारणा उत्पन्न नही होती और यह उसके विरुद्ध कोई साक्ष्य

नहीं है। धारा 7 मे उत्पन्न धारणा उस व्यक्ति के विरुद्ध उत्पन्न होती है जिसे मुद्रक और प्रकाशक के रूप मे बताया गया है (ए 1953 मद्रास 418 (419)।

अजनबी के विरुद्ध कोई धारणा नहीं

मुद्रको, प्रकाशको और सपादको के विरुद्ध उनके उत्तरदायित्व को तय करने के लिए घोषणा की अभिप्रमाणित प्रति पेश करने पर उनके विरुद्ध ऐसी धारणात्मक सिद्धी उत्पन्न होती है लेकिन ऐसी प्रति एक अजनबी पर उत्तरदायित्व डालने की दृष्टि से धारणात्मक सिद्धी नही है चाहे मुद्रक, प्रकाशक और सपादक के विरुद्ध कोई बीच का निर्णय बनता हो।

मु पु अधि बनाम ज प्र अधि

* जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 123 (4) के सम्बन्ध मे धारा 7 मे उत्पन्न धारणा की शक्ति परिस्थितियो के अनुसार बदल जाएगी। (ए 1971 उच्चतम न्यायलय 856 (859)।

* यह मानते हुए कि धारा 7 के तहत धारणा चुनाव कार्यवाहियो पर भी आकर्षित होता है और इसका खण्डन न हुआ हो तब भी इसको इस रूप म प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए कि चुनाव याचिका का प्रतिवादी कथन को झूठा माने या उसे सत्य नही मानने का विश्वास रखता था।

सपादक के विरुद्ध धारणा

इसी तरह जब समाचारपत्र की एक प्रति जिसमे एक सम्पादक का नाम सपादक के रूप मे मुद्रित हुआ है, पेश करने पर उस सम्पादक के विरुद्ध धारा 7 मे प्रथम दृष्टया धारणा उत्पन्न होती है कि वह उस पेश किए गए समाचारपत्र के अक के प्रत्येक अभाग का सम्पादक है।

सद्भाव से अस्थाई प्रबन्ध

धारा 5 मे एक सम्पादक द्वारा किया गया घोषणा पत्र एक लेख के प्रकाशन के सम्बन्ध मे प्रथम दृष्टया साक्ष्य है यदि यह साक्ष्य न आया हो कि उसने एक उपयुक्त व्यक्ति को अस्थाई प्रबन्ध सद्भाव से सभला दिया था और उसकी अनुपस्थिति मे उसकी जानकारी के बिना यह लेख प्रकाशित हुआ था। (1972 आर एल डब्लू 337)

धारणा जो खण्डनीय है

एक खण्डनीय धारणा से अधिक कोई धारणा नही होती। यदि परिस्थितिया यह सिद्ध करें कि वास्तव मे सम्पादक प्रकाशन के लिए जिम्मेदार नही था या उसे प्रकाशन की जानकारी नही थी तो धारणा खडित मानी जायेगी (1972) 49 इ एल आर 160 (167) (उडीसा)।

सम्पादक के सिवाय और अन्य का वधिक अस्तित्व नहीं

* मात्र मुख्य सपादक के नाम का वर्णन धारा 7 के प्रावधानो को आकर्षित नही करता। जहा तक सम्पादक की जुम्मेदारियो का सवाल है, सिवाय सम्पादक के अन्य किसी वधिक अस्तित्व को अधिनियम मान्यता नही देता (ए 1979 उच्चतम न्यायालय 154, 162)।

* उच्च न्यायालय की अवमानना सबधी एक लेख समाचार के सम्पादक ने इस आशय का शपथ-पत्र प्रस्तुत किया कि उसे इस लेख की कोई जानकारी नही थी क्योंकि उसकी अनुपस्थिति मे लेख को संयुक्त सपादक ने मुद्रणार्थ भेज दिया था। यह निर्णय हुआ कि धारा 7 मे उत्पन्न धारणा कि वह समाचारपत्र के अंक के प्रत्येक प्रभाग का सपादक था, खडित नही हुआ। अत दोनो को अवमानना का दोषी पाया गया (ए 1949 लाहौर 266 (270)।

* जब "एम" का नाम मानहानिजन्य लेख वाले पत्र मे सपादक के रूप मे मुद्रित किया गया और यहा तक कि "एम" ने यह भी स्वीकार किया कि लेख उसके द्वारा लिखा गया था। धारा 7 के तहत धारणा सिर्फ "एम" के विरुद्ध उत्पन्न होगी, यद्यपि सपादकीय मण्डल मे अन्य तीन जन और दिखाय गये थे (ए 1968 उच्चतम न्यायालय 110 (111)।

* पत्र का सम्पादक यद्यपि यहाँ तक कि वह अपने पत्र मे प्रकाशित मानहानिजन्य कथन के लिए जुम्मेदार नही हो सकता, धारा 7 के कारण जुम्मेदार को आकर्षित करता है (ए 1968 कलकत्ता 296 (298)।

* समाचारपत्र मे अपमान लेख – अभियुक्त के सपादक व प्रकाशक होने सबधी प्रमाण मे मुद्रणयत्र व पुस्तक रजिस्ट्रेशन अधिनियम की धारा 7 के तहत घोषणा सबधी जानकारी पर्याप्त है (1962 (2) क्री एल जे 142 (केरल)।

विषयवस्तु से विदित होना

समाचारपत्र की विषयवस्तु से विदित होना सबधी धारणा केवल उस सम्पादक के विरुद्ध उत्पन्न हो सकती है जिसका नाम समाचारपत्र मे प्रकाशित घोषणा मे आया है । कायकारी सपादक/समाचार सेवा सम्पादक जिसका नाम घोषणा मे शामिल नही है, को मानहानि के लिए अन्वीक्षा हेतु सम्मन करने का आदेश अनुचित है ।

स्वामी पर बाध्यकारी नहीं

* समाचारपत्र के अक मे प्रकाशित स्वामित्व व अन्य विशिष्टियो मे "ए" को समाचारपत्र का स्वामी बताया गया है, धारा 7 मे यह वणन स्वामी पर बाध्यकारी नही है । धारा 7 के अनुसार सम्पादक के नाम का मुद्रण सम्पादक के विरुद्ध इस सीमा तक कि वह प्रस्तुत अक की प्रति के प्रत्येक प्रभाग का सपादक है, पर्याप्त साक्ष्य है । जहा तक 'ए' का सवाल है, उस पर इसका कोई प्रभावकारी असर नही है (ए 1959 राज 280 (286) ख पी ।

पुस्तकों के सबध मे धारणा नहीं

मु पु अधि मे पुस्तको के सबध मे ऐसे समान प्रावधान नही हैं । पुस्तको मे मुद्रित नाम प्रथमदृष्टया साक्ष्य के रूप मे नही लिय जा सकते जब तक कि सबधित व्यक्तियो द्वारा इसका खडन नही कर दिया गया हो । परिवादी को यह खुला है कि वह अधि की धारा 18 म रखे गये रजिस्टर की प्रविष्टि की एक प्रति पेश करे । ऐसी कोई धारणा नही है कि जिसे लेखक के रूप मे वर्णित किया गया है, उसके द्वारा यह लिखी गयी है जब तक कि साक्ष्य अधि की धारा 87 सपठित धारा 57(3) द्वारा शामिल की गयी पुस्तको के सीमित वग मे से किसी एक वग मे वह नही आती हो । जहा तक मुद्रको और प्रकाशको का सवाल है, परिवादियो को धारा 4 के तहत की गयी घोषणा की सत्यापित प्रति व धारा 18 मे की गयी प्रविष्टिया को सिद्ध करने के लिये इन्हे साक्ष्य मे मगाने के लिये कहना चाहिये (ए 1929 बम्बई 255) ।

पम्फलेटस के मामले मे कोई धारणा नहीं

अवधिकालिकाओ के मामलो मे धारा 7 मे विषयवस्तु की जानकारी के बारे मे उत्पन्न प्रारम्भिक धारणा उन पेम्फलेट्स जिसमे

अलगाववादी सामग्री होने, का आरोप है, वे मामले में उत्पन्न नहीं होती (ए 1931 लाहौर 182(183) ।

8 उन व्यक्तियों द्वारा नई घोषणा जिन्होंने घोषणा हस्ताक्षरित की है तथा जो उसके पश्चात मुद्रक या प्रकाशक नहीं रहे

यदि किसी व्यक्ति ने किसी समाचारपत्र के सम्बन्ध में कोई घोषणा धारा 5 के अधीन हस्ताक्षरित की है और वह घोषणा मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 6 के अधीन प्रमाणीकृत की गई है और उसके पश्चात वह व्यक्ति ऐसी घोषणा में उल्लिखित समाचारपत्र का मुद्रक या प्रकाशक नहीं रहा है तो वह किसी जिला, प्रेसीडेंसी या उपखण्ड मजिस्ट्रेट के सामने उपसजात होगा और दो प्रतियों में निम्नलिखित घोषणा करेगा और हस्ताक्षरित करेगा –

"मैं क ख घोषित करता हूँ कि मैं नामक *समाचारपत्र का मुद्रक या प्रकाशक या मुद्रक और प्रकाशक नहीं रहा हूँ।"*

प्रमाणीकरण और फाइल करना

पश्चातवर्ती घोषणा की प्रत्येक मूल प्रति को वह मजिस्ट्रेट अपने हस्ताक्षर और मुद्रा से प्रमाणीकृत करेगा जिसके सामने उक्त पश्चात्वर्ती घोषणा की गई है और उक्त पश्चातवर्ती घोषणा की एक मूल प्रति पूर्ववर्ती घोषणा की प्रत्येक मूल प्रति के साथ फाइल की जावेगी ।

प्रतियों का निरीक्षण और प्रदाय

पश्चात्वर्ती घोषणा की प्रत्येक मूल प्रति का भारसाधक पदाधिकारी एक रुपये की फीस दिये जाने पर उस मूल प्रति का निरीक्षण किसी व्यक्ति को करने देगा और उक्त पश्चातवर्ती घोषणा की ऐसी प्रति जो कि उस न्यायालय की मुद्रा से अभिप्रमाणित है, जिसकी अभिरक्षा म मूल प्रति है, दो रुपये की फीस के दिये जाने पर आवेदन करने वाले किसी व्यक्ति को देगा ।

प्रति को साक्ष्य के रूप मे पेश करना

उन सब कार्यवाहियों म जिनमे पूर्ववर्ती घोषणा की यथापूर्वोक्त अभिप्रमाणित प्रति साक्ष्य मे पेश की गई हो, पश्चात्वर्ती घोषणा की यथापूर्वोक्त अभिप्रमाणित *प्रति को साक्ष्य में पेश करना विधि पूर्ण होगा और पूर्ववर्ती* घोपणा इस बात का साक्ष्य नहीं समझी जायेगी कि घोषणा करने वाला उल्लिखित समाचारपत्र का मुद्रक या प्रकाशक ऐसी किसी कालावधि म था जो कि पश्चात्वर्ती घोषणा की तारीख से बाद की है ।

मजिस्ट्रेट की पदीय मुद्रा से अभिप्रमाणित पश्चातवर्ती घोषणा की एक प्रति प्रेस रजिस्ट्रार के पास भेजी जायेगी।

टिप्पणियां

यह धारा यह अपेक्षा करती है कि वह व्यक्ति जो धारा 6 के तहत घोषणा प्रमाणीकरण के बाद समाचारपत्र का मुद्रक अथवा प्रकाशक अथवा मुद्रक और प्रकाशक नहीं रहा, स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित होगा और दो प्रतियो मे एक नई घोषणा प्रस्तुत व हस्ताक्षरित करते हुए घोषणा करेगा कि वह समाचारपत्र का मुद्रक अथवा प्रकाशक अथवा मुद्रक और प्रकाशक नही रहा है।

इस प्रकार की पश्चात्वर्ती घोषणा की प्रत्येक मूल प्रति का प्रमाणीकरण धारा 6 की प्रथम कडिका मे वर्णित नियमो के अनुसार किया जायेगा और उक्त प्रमाणित घोषणा की एक मूल प्रति पूववर्ती घोषणा की प्रत्येक मूल प्रति के साथ शामिल की जावेगी।

इस पश्चात्वर्ती प्रमाणित घोषणा की विधिवत अभिप्रमाणित एक प्रति प्रेस रजिस्ट्रार को भेजी जावेगी।

यहाँ "पूववर्ती" का तात्पय वह अतिम घोषणा है जिसके तहत समाचारपत्र प्रकाशित किया जा रहा है।

ऐसी इस पश्चात्वर्ती घोषणा की प्रतियो के निरीक्षण और प्रदाय के नियम वही हैं जो धारा 6 की चौथी कडिका मे वर्णित हैं। इस पश्चात्वर्ती घोषणा के घोषणाकर्त्ता को यह वैधानिक अधिकार है कि वह किसी भी अन्वीक्षा मे साक्ष्य के रूप मे इस पश्चात्वर्ती घोषणा की एक अभिप्रमाणित प्रति प्रस्तुत करे ताकि पूववर्ती घोषणा से उत्पन्न धारणा का खण्डन हो सके। यह सिद्ध माना जायेगा कि इस पश्चात्वर्ती घोषणा की तिथि के बाद किसी भी अवधि के लिए घोषणाकर्त्ता सम्बन्धित समाचारपत्र का मुद्रक अथवा प्रकाशक या मुद्रक और प्रकाशक जसी भी स्थिति हो, नही था।

सामान्यत शब्द "अन्वीक्षा" का सम्बन्ध सिफ फौजदारी प्रकरणो से होता है लकिन यहाँ लगता है कि विधि निर्माताओ का आशय इसका सम्बन्ध दीवानी, फौजदारी अथवा अन्य वधिक कायवाही जसी भी है, से है। पूववर्ती घोषणा से उत्पन्न, धारणा को किन तरीको से खण्डित किया जा सकता है, धारा 8 उनमे से एक तरीका बताती है।

8 (क) वह व्यक्ति जिसका नाम सम्पादक के रूप मे अशुद्धत प्रकाशित हो गया है, मजिस्ट्रेट के सामने घोषणा कर सकेगा ।

यदि ऐसा कोई व्यक्ति, जिसका नाम समाचारपत्र की प्रति पर सम्पादक के रूप मे छपा है, इस बात का दावा करता है कि वह उस सस्करण का सम्पादक नही था जिसमे उसका नाम इस रूप म छपा है तो वह इस बात के कि उसका नाम इस प्रकार प्रकाशित हुआ है पता लगने के दो सप्ताह के अन्दर जिला, प्रमीडेसी या उपखण्ड मजिस्ट्रेट के सामने उपसजात होगा और यह घोषणा करेगा कि मेरा नाम उस अक मे उसके सम्पादक के रूप मे अशुद्धत प्रकाशित किया गया था और यदि मजिस्ट्रेट का समाधान ऐसी जाँच करने या कराने के बाद, जैसा कि वह आवश्यक समझे हो जाये कि ऐसी घोषणा सत्य है तो वह तदनुकूल प्रमाणित करेगा और उस प्रमाण पत्र के दे दिये जाने पर धारा 7 के उपबन्ध समाचारपत्र के उस सस्करण के सम्बन्ध म उस व्यक्ति को लागू नही होंगे ।

जहाँ कि मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाता है कि ऐसा व्यक्ति पर्याप्त कारणो स उस कालावधि के अन्दर उपसजात होने और घोषणा करने से निवारित रहा है वहाँ वह इस धारा द्वारा समनुज्ञात कालावधि को बढा सकेगा ।

टिप्पणियाँ

यह धारा उन प्रावधानो से सम्बन्धित है जिनमे कहा गया है कि वह व्यक्ति जिसका नाम सपादक के रूप मे अशुद्धत प्रकाशित हो गया था, प्रकाशन तिथि से जानकारी होने के दो सप्ताह के अन्दर सक्षम मजिस्ट्रेट के सम्मुख इस आशय की घोषणा कर सकता है कि उसका अमुक अक मे उसके सपादक के रूप मे नाम अशुद्धत प्रकाशित हो गया था ।

व्याकरण की दृष्टि से शब्द – "अशुद्धत" का तात्पय "शुद्ध नही" यानि "यथायत नही" "ठीक ठाक नही" जिसका मतलब यह हुआ कि कुछ न कुछ तो अस्तित्व मे है लेकिन वह तथ्यानुकूल नही है ।

लेकिन यहाँ शब्द "अशुद्धत" का अथ "गलती से" दिखाई देता है । शब्दावली – "सपादक नही था" भी इसी आशय को उजागर करती है ।

यदि मजिस्ट्रेट जाँचोपरान्त इस निष्कप पर आता है कि यह घोषणा सही है तो वह उसे तदानुसार सत्यापित करेगा ।

ऐसा प्रमाणपत्र देने पर धारा 7 मे सम्पादक के विरुद्ध उत्पन्न धारणा समाचारपत्र के उस ग्रक के सबध मे लागू नही होगी। ऐसा व्यक्ति किसी भी वैधिक कार्यवाही मे धारा 7 मे उत्पन्न धारणा के खडनार्थ ऐसे प्रमाण-पत्र को पेश कर सकता है।

मजिस्ट्रेट का स्वविवेक

जब ऐसा व्यक्ति पर्याप्त कारणो से प्रकाशन से ग्रपनी जानकारी की तिथि से दो सप्ताह के ग्रन्दर उपसजात होने ग्रौर घोषणा करने से निवारित रहा हो तो मजिस्ट्रेट उसकी इस ग्रवधि को बढाने का स्वविवेक रखता है।

यह स्वविवेक स्वेच्छाचारी न होकर न्यायिक होना चाहिए।

जब किसी का नाम सपादक के रूप मे दिखाया ही नहीं गया हो

जब एक व्यक्ति का नाम समाचारपत्र मे उसके सपादक के रूप मे मुद्रित हुग्रा हो तब ही धारा 7 मे ऐसे सपादक के विरुद्ध खडनीय धारणा की ग्रोर ध्यान खीचा जा सकता है लेकिन जब पत्र मे उसका नाम सम्पादक के रूप मे दिखाया ही नही गया हो तब धारा 7 मे किसी धारणा की ग्रोर ध्यान नही खीचा जा सकता ग्रौर यह तय होना चाहिए कि वह प्रकाशन से कोई सम्बन्ध नही रखता। (ए 1959 उच्चतम न्यायालय 154 (159, 160)

8 (ख) घोषणा का निरस्तीकरण

प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा या ग्रन्य तरीके से मजिस्ट्रेट का प्रार्थना-पत्र दिये जाने पर इस ग्रधिनियम के तहत एक घोषणा को प्रमाणीकरण करने के लिए सक्षम मजिस्ट्रेट जब इस मत का हो कि किसी समाचारपत्र के सम्बन्ध म की गयी घोषणा निरस्त की जानी चाहिए तो वह सम्बन्धित व्यक्ति को प्रस्तावित कार्यवाही के विरुद्ध कारण बताग्रो नोटिस देने के उपरान्त इस विषय म जाँच प्रारम्भ कर सकता है। ग्रौर यदि कोई कारण ऐसे व्यक्ति द्वारा दिखाए गए हों तो उन पर विचारोपरात ग्रौर उसे सुनवाई का ग्रवसर देने के उपरान्त, वह सन्तुष्ट है कि–

(i) जिस समाचारपत्र के सम्बन्ध म घोषणा की गयी है, वह समाचारपत्र इस ग्रधिनियम के प्रावधानो या इसके तहत बने नियमो के उल्लघन में प्रकाशित हो रहा है या

(ii) घोषणा म वर्णित मुद्रक या प्रकाशक समाचारपत्र का मुद्रक या प्रकाशक नहीं रहा हो या

(iii) घोषणा मे वर्णित समाचारपत्र ऐसा शीर्षक रखता है जो या तो एक ही भाषा मे या एक ही राज्य मे प्रकाशित किसी दूसरे समाचारपत्र के नाम से हूबहू मिलता है या

(iv) घोषणा मिथ्या प्रतिनिधित्व या किसी सारत तथ्य के छिपाव पर या ऐसे किसी प्रवधिपरक प्रकाशन जो एक समाचारपत्र न हो, के सम्बन्ध में की गयी हो मजिस्ट्रेट आदेश के द्वारा घोषणा निरस्त कर सकता है और यथासभव एक प्रति घोषणा करने व हस्ताक्षरित करनेवाले व्यक्ति को और प्रेस रजिस्ट्रार को भी भेजेगा।

टिप्पणियाँ

यह धारा उन आधारो पर प्रकाश डालती है जिनको लेकर एक समाचारपत्र की घोषणा निरस्त की जा सकती है। यह धारा 1960 के अधिनियम 26 द्वारा शामिल की गई है।

निम्न आधारो मे से एक या एक से अधिक पर इस प्रकार का घोषणा पत्र निरस्त किया जा सकता —

(1) यदि वह घोषणा जिसके तहत समाचारपत्र प्रकाशित हो रहा है, समाचारपत्र स्वय मु पु अधि के प्रावधानो के उल्लघन मे प्रकाशित हो रहा हो।

जब एक समाचारपत्र जिसकी घोषणा की हुई है, प्रकाशित होने के बाद उसकी एक प्रति धारा–II क के तहत सरकार को प्रदाय नही की गई हो और जब प्रकाशक सालभर मे एक भी अक प्रकाशित करने मे असफल रहा हो तो यह माना जाएगा कि प्रकाशक अब प्रकाशक नही रहा है और धारा 8 क मे घोषणा काबिले निरस्त है। (1975 डब्ल्यू एल एन (यू सी) 528 (530) राज।

(2) यदि ऐसा समाचारपत्र मु पु अधि की धारा 20 क के तहत बनाए गए केन्द्रीय नियमो के उल्लघन मे प्रकाशित हो रहा हो।

(3) यदि ऐसा समाचारपत्र मु पु अधि की धारा 20 के तहत राज्य सरकार के द्वारा बनाए गए नियमो के उल्लघन मे प्रकाशित हो रहा हो।

(4) यदि घोषणा मे वर्णित समाचारपत्र का नाम या तो एक ही भाषा या एक ही राज्य मे प्रकाशित किसी अन्य समाचारपत्र के नाम से हूबहू मिलता हो।

(5) यदि इस प्रकार की घोषणा मे वर्णित मुद्रक अब समाचार-पत्र का मुद्रक नहीं रहा हो।

(6) यदि इस प्रकार की घोषणा मे वर्णित प्रकाशक अब समाचारपत्र का प्रकाशक नही रहा हो।

(7) यदि घोषणा मिथ्या प्रतिनिधित्व के आधार पर की गई हो अथवा।

(8) यदि घोषणा किसी सारत तथ्य के छुपाव पर की गई हो।

(9) यदि घोषणा एक ऐसे अवधिपरक प्रकाशन जो एक समाचारपत्र नही हो, के सम्बन्ध मे की हुई हो।

निरस्त करने को-कौन सक्षम

जो मजिस्ट्रेट मु पु अधि के तहत एक घोषणा को प्रमाणित करने के लिए सक्षम है, वही उस घोषणा को निरस्त करने के लिए सक्षम होता है।

दो अवसर

यह एक वैधानिक प्रावधान है कि सम्बन्धित व्यक्ति को मजिस्ट्रेट निम्नप्रकार के दो अवसर प्रदान करेगा—

(i) प्रस्तावित कार्यवाही के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस और (ii) सुनवाई का अवसर।

जब घोषणा मे वर्णित परिसरो के नाम मे प्रारम्भिक कमी थी और अधिकारियों ने घोषणा को स्वीकार कर लिया तथा 8 वर्ष तक प्रकाशन को चलने दिया। ऐसी परिस्थितियो मे धारा 8 क के तहत बिना जांच किए घोषणा को निरस्त करना न्यायोचित नही है। (1978 आर एल डब्ल्यू 17)।

जसा कि यह धारा आशय प्रकट करती है उसके अनुसार घोषणा को प्रस्तुत व हस्ताक्षरित करनेवाले को ऐसे नोटिस दिए जाने चाहिए लेकिन सामान्य बुद्धि का तकाजा है कि इस प्रकार का नोटिस सम्बन्धित समाचारपत्र के प्रकाशक को भी भेजा जाना चाहिए क्योंकि एक समाचारपत्र उसके प्रकाशक द्वारा ही सही रूप से चला माना जाता है।

किसके आवेदन पर

इस धारा के तहत मजिस्ट्रट निम्न स्रोतो से आवेदन होने पर कार्यवाही करने के लिये सक्षम है—

(क) प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा अथवा

(ख) किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अथवा

(ग) अन्यथा।

यहाँ लगता है कि शब्द "अन्यथा" अपने आप में स्वयं मजिस्ट्रेट द्वारा की जाने वाली स्वतः कार्यवाही को भी समेटे हुए है।

यद्यपि प्रथम कण्डिका में आया शब्द "सकता" मजिस्ट्रेट को ऐसी कार्यवाही शुरू करने के लिये स्वविवेक प्रदान करता है। तब भी यह स्वविवेक स्वेच्छाचारी न होकर न्यायिक होना चाहिए।

निरस्तीकरण आदेश की एक-एक प्रति यथासम्भव घोषणा को करने और हस्ताक्षरित करने वाले व्यक्ति और प्रेस रजिस्ट्रार को भेजी जानी चाहिए।

जैसा कि सामान्य बुद्धि अपेक्षा करती है, इस प्रकार की एक प्रति सम्बंधित समाचारपत्र के प्रकाशक को भी भेजी जानी चाहिए।

संपादक के मूल अधिकार का उल्लंघन

जब एक समाचारपत्र के संबंध में घोषणा को प्रस्तावित कार्यवाही के विरुद्ध कारण बताओ नोटिस दिये बिना इस आधार पर निरस्त कर दिया गया था कि समाचारपत्र का नाम उस विद्यमान समाचारपत्र के नाम से हूबहू मिलता था, ऐसी कार्यवाही गलत है और यह सम्पादक के समाचारपत्र के सम्पादक संबंधी व्यवसाय यहाँ तक कि समाचार के प्रकाशन के व्यापार के मूल अधिकार का उल्लंघन करता है। (ए 1973 उच्चतम न्यायालय, 213 (215)

जब द प्र सं की धारा 195 (1) (ग) आकर्षित नहीं होती

जब धारा 19घ के अंतर्गत संपादक और प्रकाशक द्वारा मजिस्ट्रेट को की गयी घोषणा मिथ्या आरोपित हो और धारा 8 म के तहत कार्यवाही विचाराधीन हो तब धारा 19घ के अन्तर्गत मिथ्या घोषणा करने का आरोपित अपराध पक्षकार द्वारा नहीं किया माना जाता क्योंकि मजिस्ट्रेट एक अदालत की तरह काम करता हुआ नहीं होता। अतः द प्र सं की धारा, 195(1)(ग) आकर्षित नहीं होती। (क्री एल जे 90 (93)

जब अनुच्छेद 226 आकर्षित नहीं होता

* समाचार के शीर्षक का चुनाव—मजिस्ट्रेट घोषणा को प्रमाणित करने अथवा निरस्त करने का स्वविवेक रखता है—घोषणा को निरस्त करने का अस्वीकारी आदेश अर्द्धन्यायिक नही है—भारतीय सविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा कोई दखल नहीं। (ए 1965 म प्र 126)

* धारा 8 ख के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के पुनर्विचार (रिव्यू) हेतु अनुच्छेद 226 के तहत प्रार्थना-पत्र—याचिकाकर्त्ता पीडित नही—याचिका यदि स्वीकार हो तो यह सभावना है कि विरोधी पक्षकार का धारा 8 ग मे अपील करने का अधिकार प्रभावित होगा। (ए 1965 म प्र 128)

सेंसर हेतु पेश न करना—निरस्तीकरण का आधार नहीं

प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन अपीलेट बोर्ड के तत्कालीन अध्यक्ष जस्टिस ए एन ग्रोवर ने सम्पादक प्रजाजन बनाम जिलाधीश सवाईमाधोपुर के प्रकरण (अपील न 27/14/81 सेक्रे (पी आर ए बी) दि जनवरी 28, 1982) मे विचार व्यक्त किया है कि मु पु अधि मे ऐसा कोई प्रावधान नही है जो घोषणा के निरस्तीकरण को इस धारा पर न्यायोचित ठहराता हो कि समाचारपत्र सेसरशिप के लिए प्रस्तुत नही किया गया था। उपरोक्त दिये गए कारणो व इस तथ्य का मद्देनजर रखते हुए कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा अपीलेन्ट को सुनवाई का उचित अवसर नही दिया गया था, अत उसका घोषणा निरस्तीकरण का आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

पुनर्विचार याचिका स्वीकार नहीं

एक पुनर्विचार याचिका इसलिए खारिज कर दी गयी थी कि बोर्ड का यह मत था कि जबतक एक ट्रिब्यूनल पर पुनर्विचार की शक्तियाँ स्पष्टत प्रदत्त न की गयी हो अथवा न्यायिक या अर्द्धन्यायिक कार्यों को करनेवाला एक प्राधिकार न हो तब तक वह ऐसे किसी आदेश पर पुनर्विचार नही कर सकता जो पहले से ही गुणावगुण पर पारित हुआ हो। (प्रे प रिव्यू, ग्र थ 3 न 4 पृ स 23)

प्रशासकीय परेशानियां—कोई आधार नहीं

सयुक्त मोर्चा (अलीगढ से एक साप्ताहिक) की घोषणा जुलाई 8, 1975 को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इन आधारो पर निरस्त कर दी गयी

थी कि पत्र का प्रकाशन जिला अलीगढ के शातिपूर्ण वातावरण को दूषित करनेवाला था और जिले की शातिपूर्ण स्थितियो को नष्ट कर सकता था व प्रशासकीय परेशानियाँ पैदा कर सकता था ।

निर्णय बोर्ड ने आदेश दिया कि मु पु अधि के सबधित प्रावधानो मे घोषणा को ऐसे आधारो पर निरस्त करने की कोई आवश्यकता प्रतिपादित नही की गयी है अत जिला मजिस्ट्रेट का आदेश पूर्णत गैरकानूनी है अत यह निरस्त किया जाता है ।

समाचारपत्र को चलाने की शक्ति का प्रत्यायोजन

दरभगा जिले के जिला मजिस्ट्रेट और उपखड अधिकारी के विरुद्ध 6 मार्च, 1980 को दरभगा जिले के श्री शीतेश चौधरी द्वारा प्रस्तुत अपील मे कहा गया था कि जिला मजिस्ट्रेट/उपखड अधिकारी दरभगा से समाचारपत्र "विप्लवी दुनिया" की घोषणा प्रमाणित नही की यद्यपि भारत के समाचारपत्रो के पजीयक द्वारा उसका नाम श्री मिश्रीलाल चौधरी के पक्ष मे 27 जून, 1978 को पुष्ट किया जा चुका था । अपीलेन्ट के पितामह ने उचित तरीके से अपनी वृद्धावस्था को देखते हुए अपीलेन्ट को समाचारपत्र चलाने का प्राधिकार प्रत्यायोजित कर दिया था ।

उपखड अधिकारी दरभगा ने समाचारपत्रो के पजीयक से कुछ मुद्दो को स्पष्ट कराने के लिए लिखा । बताया जाता है कि वहाँ से कोई जवाब नही आया । जिला मजिस्ट्रेट दरभगा ने इस मामले को उपखड अधिकारी के यहाँ फिर भेज दिया लेकिन उपखड अधिकारी समाचारपत्रो के पजीयक से निदेश प्राप्त करने का इन्तजार कर रहे थे ।

अपीलेंट के अनुसार जिला मजिस्ट्रेट और समाचारपत्रो के पजीयक को घोषणा के प्रमाणीकरण के सम्बन्ध मे कुछ नही करना था – जबकि उपखण्ड अधिकारी इस घोषणा को स्वीकार करने और अस्वीकार करने मे सक्षम थे ।

निर्णय – बोर्ड का सोचना था कि अपीलेंट द्वारा उठाये गये मुद्दे विचारणीय थे और मु पु अधि के सगत प्रावधानो के तहत मामले को उपखण्ड अधिकारी द्वारा नही निपटाने के पीछे कोई न्यायोचित कारण नही था । अत बोर्ड ने उपखण्ड अधिकारी दरभगा को आदेश दिया कि वह अपीलेंट द्वारा पेश की गई घोषणा के प्रमाणीकरण के

प्रश्न पर 25 अगस्त 1982 से एक माह के अन्दर आदेश प्रसारित करें। (प्रे प रिव्यू, ग्रथ 3 न 4 पृ स 23–24)

यथास्थिति को कायम करने के लिए अन्तरिम आदेश

एक अपील के विचाराधीन होने के दौरान बोर्ड यह महसूस करे कि समाचार की घोषणा के निरस्त होने अथवा उसके निलम्बन होने के परिणामस्वरूप अपीलेंट को अपूर्णीय क्षति होने की सम्भावना है तो वह स्थिति को कायम करने के लिए अन्तरिम आदेश दे सकता है।

इस प्रकार के कई आदेश बोर्ड द्वारा कई अपीलो मे दिये जा चुके हैं। (प्रे प रिव्यू ग्रथ 3 नम्बर 4 पृ स 24–25 और ग्रथ 7 न –1, जनवरी 1986) पृ 44

अनुसरण का उचित तरीका

कई प्रकरणो मे प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन अपीलेंट बोर्ड ने विचार व्यक्त किया है कि जो समाचारपत्र पत्रकारिता की नतिकता का उल्लघन करते पाये जावें तो उनके विरुद्ध प्रेस परिषद् अधिनियम 1978 के प्रावधानो के तहत परिवाद पेश करने का उचित तरीका होता है न कि उनकी घोषणाओ को निरस्त करने का। (प्रे प रिव्यू के ग्रथ 4 नम्बर–1 पृ स 20)

स्वामित्व सम्बन्धी प्रथम दृष्टया स्थिति

"ब" मूलत साप्ताहिक "वी" का स्वामी था। यह बाद मे दनिक हो गया। "ब" ने दैनिक समाचारपत्र का स्वामित्व "क" के नाम हस्तातरित कर दिया। हस्तान्तरण के साथ जो पत्र "ब" ने लगाया उसका यह अर्थ लेते हुए कि पूर्ण स्वामित्व के लिए हस्तान्तरण किया गया है, दनिक 'वी" के सम्बन्ध मे घोषणा प्रमाणित कर दी गई जिसमे "क" को स्वामी और सम्पादक बताया गया और "ब" को मुद्रक और प्रकाशक। वह समाचारपत्र चलता रहा और प्रिंट लाइन मे "क" को स्वामी और "ब" को मुद्रक और प्रकाशक बताया जाता रहा।

स्वामित्व सम्बन्धी विवाद उस समय उत्पन्न हुआ जब "ब" ने एक साप्ताहिक 'वी" के सम्बन्ध मे घोषणा को प्रमाणीकरण करवाने हेतु घोषणा प्रस्तुत की। अगले दिन, यह घोषणा उपखण्ड मजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित कर दी गयी। "क" ने भी दनिक समाचारपत्र के सबध

मे घोषणा को प्रमाणित कराने के लिए घोषणा प्रस्तुत की और साथ से यह प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया कि "ब" नाम के बजाय उस स्वय का नाम मुद्रक और प्रकाशक के रूप मे शामिल किया जावे।

उपखण्ड अधिकारी इस मत के थे कि मु पु अधि के तहत उनकी अदालत को यह तय करने का क्षेत्राधिकार नही है कि क्या पत्र बेच दिया गया है और उसका स्वामी कौन है। एस डी एम ने आगे विचार व्यक्त किया कि "ब" का यह दावा कि उसका नाम मुद्रक और प्रकाशक के रूप मे रखा जावे, स्वीकार नही किया जा सकता क्योंकि स्वामित्व का प्रश्न स्वय विवादग्रस्त है और मामला क्षेत्राधिकार के बाहर का है और साप्ताहिक "वो" के सम्बन्ध मे "ब" द्वारा प्रस्तुत घोषणा-पत्र स्वीकार किया जाता है और बाद मे "क" द्वारा प्रस्तुत घोषणा-पत्र इस आधार पर निरस्त किया जाता है कि एक ही शीर्षक के तहत दो समाचारपत्र प्रकाशित नही किये जा सकते।

बोर्ड ने मत व्यक्त किया कि एस डी एम का इन विवादो से कोई मतलब नही था और उसे यह देखने का अधिकार था कि कौन अपनी घोषणा को प्रमाणित करवाने के लिए प्रथम दृष्टया अधिकार रखता है। इन तथ्यो को मद्देनजर रखते हुए कि "ब" अक्टूबर 1979 से 1 फरवरी 1982 की पूरी अवधि तक "ब" के किसी विरोध के बिना समाचारपत्र का स्वामी दिखाया जाता रहा है। अत प्रथम दृष्टया स्वामित्व उसमे निहित होता है और घोषणा को प्रमाणित करवाने का उसका आवेदन चाहे मुद्रक और प्रकाशक के बदलने के बाद मे ही पेश हुआ हो, फिर भी स्वीकार किया जाना चाहिए।

बोर्ड ने यह भी विचार व्यक्त किया कि सिर्फ मुद्रक और प्रकाशक ही प्रमाणीकरण के लिए प्रार्थना-पत्र पेश कर सकते हैं। "क" अपने स्वामित्व के अधिकार के प्रयोग मे जो "ब" द्वारा प्रदत्त किया गया है, मुद्रक व प्रकाशक को बदलने का अधिकार रखता है जब तक स्वामित्व सम्बन्धी मामला दीवानी अदालत से तय नही हो जावे।

बोर्ड ने अपील को स्वीकार करते हुए एस डी एम को निर्देश दिया कि "क" द्वारा प्रस्तुत घोषणा को प्रमाणित करने और साप्ताहिक "वो" के सम्बन्ध मे ब को स्वीकृत घोषणा को निरस्त करे। बोर्ड ने साथ ही, यह भी स्पष्ट किया कि यह आदेश एक समक्ष न्यायालय द्वारा पक्षकारो के अधिकारो पर दिये गये निर्देशो को प्रभावित नही करेगा।

ऐसा होने पर, प्रमाणीकरण के मामले में, बाद में उचित कार्यवाही की जावेगी। (प्रे प रिव्यू ग्रंथ 4 न -1 पृ 20)

स्वामित्व का विवाद–निरस्तीकरण का आधार नहीं

एक साप्ताहिक के स्वामित्व के प्रश्न के सम्बन्ध में सिर्फ विवाद घोषणा को निरस्त करने का उचित आधार नहीं है। साप्ताहिक के स्वामित्व का प्रश्न, वास्तव में, दीवानी अदालत द्वारा तय किये जाने का मामला है। (प्रे प रिव्यू ग्रंथ 7 न -1 (जनवरी 1986) पृ 44

8 (ग) अपील

(1) धारा 6 के तहत एक घोषणा को प्रमाणीकरण करने के मजिस्ट्रेट के अस्वीकारी आदेश या धारा 8 क के तहत एक घोषणा को निरस्त करने के मजिस्ट्रेट के आदेश से पीड़ित कोई व्यक्ति उस तिथि के 60 दिवस के अन्दर जिस दिन ऐसा आदेश उसे सूचारित हुआ है अपीलेंट बोर्ड जो प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन अपीलेंट बोर्ड कहलाएगा, जिसमें भारतीय प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978 की धारा 4 के तहत गठित भारतीय प्रेस परिषद् के द्वारा अपने सदस्यों के बीच में से चेयरमैन और एक अन्य सदस्य मनोनीत किया गया हो।

परन्तु अपीलेंट बोर्ड उपरोक्त अवधि के बाद भी एक अपील को दर्ज कर सकता है यदि वह सन्तुष्ट है कि अपीलेन्ट समय के अन्दर अपील को प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त कारणों से निवारित रहा है।

(2) इस धारा के तहत एक अपील की प्राप्ति पर अपीलेंट बोर्ड मजिस्ट्रेट से रिकार्ड मंगवाने और जैसा वह सोचे आगे की जाँच किए जाने पर उस आदेश जिसके विरुद्ध अपील की गयी है, को पुष्ट, संशोधित या निरस्त कर सकता है।

(3) उपधारा 2 के प्रावधानों को मद्देनजर रखते हुए अपीलेंट बोर्ड अपने आदेश से अपने व्यवहार व प्रक्रिया का निर्धारण कर सकता है।

(4) अपीलेंट बोर्ड का निर्णय अंतिम होगा।

टिप्पणियाँ

यह धारा इस प्रक्रिया पर प्रकाश डालती है कि धारा 6 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा घोषणा को निरस्त करने से अस्वीकार करने के आदेश अथवा धारा 8क के तहत एक घोषणा को निरस्त करने के आदेश के विरुद्ध किस प्रकार अपील की जाती है।

इस प्रकार की अपील के लिए 60 दिवस की मियाद निर्धारित की हुई है। जिस दिन पीडित व्यक्ति को ऐसा आदेश सचारित हो, उस तिथि से 60 दिनो के अन्दर यह अपील की जानी चाहिए।

यह अपील इस धारा के तहत गठित प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन अपीलेंट बोड के यहा की जानी है।

यह एक वैधानिक प्रावधान है कि इस बोर्ड मे भारतीय प्रेस परिषद् द्वारा अपने सदस्यो के बीच मे से इसका अध्यक्ष और दूसरा सदस्य मनोनीत किया जावेगा।

प्रथम कडिका मे आया शब्द "सकता" का आशय यह है कि अपीलेंट बोड उक्त मियाद समाप्त होने के बाद भी किसी अपील को दज करने का स्वविवेक रखता है। यदि यह सन्तुष्ट है कि अपीलेन्ट समय के अन्दर पर्याप्त कारणो से अपील पेश करने के लिए निवारित रहा है।

इस प्रकार का स्वविवेक स्वेच्छाचारी न होकर न्यायिक होना चाहिए।

इस धारा की उपधारा 3 मे प्रदत्त शक्तियो के प्रयोग मे अपीलेंट बोड ने अपने कार्य-व्यवहार के लिए प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ अपीलेंट बोड (व्यवहार व प्रक्रिया आदेश) 1961 बनाया है।

यह अपीलेंट बोड उस आदेश को जिसके विरुद्ध अपील की गई है, उसको पुष्ट, सशोधित अथवा निरस्त कर सकता है।

यह एक वैधानिक प्रावधान है कि इस बोड का निर्णय इसके चैयरमैन अथवा दूसरे सदस्य द्वारा हस्ताक्षरित किया जावेगा। (नियम 8 मु र अ बो (व्य प्र) आ)

एक वकील को बोड के सम्मुख उपसजात होने, वकालत करने और काय करने के लिए अनुमति दी हुई है।

यद्यपि उपधारा 4 मे यह वर्णित किया गया है कि इस अपीलेंट बोड का निर्णय अन्तिम होगा जिसका अर्थ यह हुआ कि इस बोड पर आगे और कोई अपीलीय प्राधिकार नही है तब भी उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय के यहाँ न्याय द्वारा अपेक्षित होने पर सवधानिक याचिकायें प्रस्तुत की जा सकती हैं।

अपील सबसे पहले हो

जब एक प्रकरण मे जिला मजिस्ट्रट द्वारा घोषणा को प्रमाणित करने के लिए अस्वीकार आदेश पारित कर दिया गया था तो यह निणय दिया गया कि चूकि इस प्रकार का आदेश एक अपील योग्य आदेश है। अत रिट याचिका पेश करने के पूव अपील का उपचार पहले भोगना चाहिए। चूकि अपील पेश नही की गयी थी अत रिट याचिका स्वीकार योग्य नही है। (1971 आर एल डब्ल्यू 17)

भाग – 3

पुस्तको का परिदान

9 इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात मुद्रित पुस्तकों की प्रतिया सरकार को मूल्य लिये बिना परिदत्त की जायेंगी।

ऐसी प्रत्येक सम्पूण पुस्तक की मुद्रित प्रतिया, जो इस अधिनियम के प्रवतन म आने के पश्चात् भारत मे मुद्रित की जाये, अपने म के सब मानचित्रो मुद्रणो या अन्य उत्किरणो सहित जो कि उसकी सर्वोत्तम प्रतियो म की रीति म पूरे किये गये और रगे हुए हैं उसके मुद्रक या प्रकाशक (यदि पुस्तक प्रकाशित की जाय) के बीच के किसी करार के होते हुए मुद्रक द्वारा ऐसे स्थान पर और ऐसे पदाधिकारी को जसाकि राज्य सरकार राजकीय गजट मे अधिसूचना द्वारा समय समय पर निर्दिष्ट करे और सरकार राजकीय गजट म अधिसूचना द्वारा समय समय पर निर्दिष्ट करे और सरकार का कोई व्यय हुए बिना निम्नलिखित रूप मे मर्यात् –

(क) हर अवस्था में, उस दिन के पश्चात् एक कलेन्डर मास के अन्दर जिस दिन कि ऐसी कोई पुस्तक मुद्रणालय से सवप्रथम परिदत्त की गई है, ऐसी एक प्रति और

(ख) यदि राज्य सरकार मुद्रक से दो से अनधिक अन्य ऐसी प्रतिया परिदत्त करने की अपेक्षा ऐसे दिन से एक कलेन्डर वष के अन्दर करे तो जिस दिन कि राज्य सरकार द्वारा ऐसी कोई अधियाचना मुद्रक से की गई हो, उस दिन के एक कलेन्डर मास के अन्दर ऐसी एक अपर प्रति या ऐसी दो प्रतिया जैसा कि राज्य सरकार निर्दिष्ट करे, परिदत्त की जायेगी और इस प्रकार परिदत्त प्रतिया जिल्द बधी, सिली हुई और टाकी हुई होगी और उस ही सर्वोत्तम कागज पर होगी जिस पर कि पुस्तक की कोई प्रति मुद्रित हुई है।

प्रकाशक या वह व्यक्ति, जिसने कि मुद्रक को नियोजित किया है, यथा पूर्वोक्त तयार किये हुए और रंगे हुए उन सब मानचित्रों, मुद्रणों और उत्किरणों का परिदान उक्त मास के अवसान के पूर्व किसी युक्तियुक्त समय पर मुद्रक को करेगा जो कि उसे उपरोक्त अपेक्षाओं का अनुपालन करने के लिए समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हो। इस धारा के पूर्ववर्ती भाग की कोई बात –

(i) किसी पुस्तक के किसी ऐसे द्वितीय या पश्चात्वर्ती संस्करण को जिस संस्करण में उस पुस्तक म के अनुलिपि मुद्रण या मानचित्रों, पुस्तक मुद्रणों या अन्य उत्किरणों में कोई परिवर्धन या परिवर्तन नहीं किये गये हैं और जिस पुस्तक के प्रथम या किसी पूर्वगामी संस्करण की प्रति इस अधिनियम के अधीन परिदान की जा चुकी है या

(ii) इस अधिनियम की धारा 5 के अधीन बनाये गये नियमों के अनुवर्तन मे प्रकाशित किसी समाचारपत्र को

राज्यो द्वारा संशोधन

आन्ध्रप्रदेश

मैसूर की तरह ही सिवाय इसके कि "ब्लाक प्रिन्ट" की जगह "बुक प्रिन्ट" पढ़ें – 1960 का आन्ध्रप्रदेश अधि 8, धारा 27 (1 4 1960)

गुजरात

महाराष्ट्र की तरह ही – 1961 का गुजरात अधि 23 (18-5 1961)

केरल

मलाबार जिला – 1948 के मद्रास अधि 24 की धारा 19 लुप्त होगी और मुद्रणयन्त्र व पुस्तक पंजीयन अधि 1867 की मलाबार जिला में प्रयुक्ति उसी तरह रहेगी जसे कि चर्चित धारा अधिनियमित ही नही हो – 1956 का केरल का एल ओ (1 11-1956)

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र राज्य मे इसकी प्रयुक्ति मे, धारा 9 में –

(क) पार्श्व टिप्पण में जोड़ा जावे शब्द – "और अधिसूचित पुस्तकालयों को और

(ख) प्रथम कंडिका के बाद निम्न नयी कंडिका शामिल की जावे अर्थात्–

पुस्तक की प्रतियों की ऐसी सख्या जो 5 से अधिक नहीं हो मुद्रक द्वारा ऐसे सावजनिक पुस्तकालयो को जिनकी अधिसूचना राज्य सरकार राजपत्र म समय-समय पर निर्दिष्ट करे उस दिन के पश्चात् एक कलेण्डर मास के अन्दर जिस दिन कि ऐसी कोई पुस्तक मुद्रणालय स सर्वप्रथम परिदत्त की गई है नि शुल्क प्रदाय होगी – (1948 का बम्बई अधि 61 धारा 2 (3 12 1948) सपठित 1961 का महाराष्ट्र अधि 7 (4 2 1961) की धारा–2

मैसूर

मैसूर राज्य म इसकी प्रयुक्ति मे, धारा 9 में –

(i) कडिका – 1 के खण्ड (क) मे निम्न प्रस्थापित किया जावे –

(क) हर अवस्था मे उस दिन के पश्चात् एक कलेण्डर मास के अन्दर जिस दिन कि ऐसी कोई पुस्तक मुद्रणालय से सवप्रथम परिदत्त की गई है ऐसी 3 प्रतियाँ और

(ii) अन्तिम कडिका के खण्ड (i) मे निम्न प्रतिस्थापित किया जावे –

(i) किसी पुस्तक के किसी ऐसे दूसरे या अनुवर्ती सस्करण को जिस सस्करण मे उस पुस्तक में के अनुलिपि मुद्रण या मानचित्रो ब्लाक मुद्रणों या अन्यों उत्किरणों में कोई परिवधन या परिवर्तन नहीं किए गए हैं और उस पुस्तक के प्रथम या कुछ पूववर्ती सस्करण की तीन प्रतियाँ इस अधिनियम या 1965 के मसूर अधि 10 की धारा 5 के तहत प्रदत्त हो चुकी हो (1-4 1966)

तमिलनाडु

तमिलनाडु राज्य म इसकी प्रयुक्ति म, धारा 9 में –

(क) प्रथम कडिका के खण्ड (क) म एक ऐसी प्रति' के स्थान पर 'एसी पाँच प्रतियाँ" प्रस्थापित की जावें और

(ख) अन्तिम कडिका के खण्ड (1) म 'प्रथम की एक प्रति' के स्थान पर प्रथम की पाँच प्रतियाँ ' प्रस्थापित की जावें' – 1948 का तमिलनाडु अधि 24, धारा 19 ।

पश्चिम बगाल

पश्चिम बगाल मे इसकी प्रयुक्ति म, प्रथम 4 कडिका का खण्ड (क) निम्न प्रकार से प्रतिस्थापित होगा –

(क) हर अवस्था म, उस दिन के पश्चात् एक कलेण्डर मास के अन्दर जिस दिन कि ऐसी कोई पुस्तक मुद्रणालय से सवप्रथम परिदत्त की गई हो, एसी तीन

प्रतियाँ और – 1979 का प ब अधि 39 धारा 24 (अभी तक प्रवर्तनीय नहीं)।

टिप्पणियाँ

यह एक वैधानिक प्रावधान है कि एक पुस्तक के मुद्रक को अपनी मुद्रित पुस्तक की प्रतिया जैसा कि राज्य सरकार समय-समय पर निर्दिष्ट करे कि यह प्रति अमुक स्थान पर अमुक ऑफीसर के यहाँ प्रदाय की जावे, नि शुल्क प्रदाय करनी होगी। यह धारा निम्न नियम प्रतिपादित करती है –

(1) मुद्रित पुस्तक के मुद्रणालय से छपते ही पहली बार बाहर होने से एक कलेन्डर माह के अन्दर मुद्रक अपने आप मुद्रित पुस्तक की एक प्रति नि शुल्क प्रदाय करेगा।

(2) यदि राज्य सरकार इस दिन से एक कलेन्डर वर्ष के दौरान मुद्रित पुस्तक की दो से अधिक अतिरिक्त प्रतियो की अपेक्षा करे तो इस अपेक्षा के दिन से एक कलेन्डर माह के अन्दर मुद्रक उस दूसरी प्रति अथवा अन्य दो प्रतिया को जैसा कि अपेक्षित हो, प्रदाय करेगा।

(3) इस प्रकार परिदत्त प्रतियाँ जिल्द बधी, सिली हुई और टाकी हुई होगी और उस ही सर्वोत्तम कागज पर होगी जिस पर कि पुस्तक की कोई प्रति मुद्रित हुई है।

(4) इस प्रकार परिदत्त प्रतिया यथापूर्वोक्त तैयार किये हुए और रगे हुए उन सब मानचित्रो, मुद्रणो और उत्किरणो के साथ होनी चाहिए।

(5) यदि पुस्तक प्रकाशित भी हुई है यानि उसका प्रकाशक भी है तो मुद्रक और प्रकाशक के बीच यदि कोई ऐसा ठहराव जिसमे मुद्रक को इस वैधानिक कर्त्तव्य की पालना करने से मुक्त रखा गया था, तब भी मुद्रक इस वैधानिक कर्त्तव्य से मुक्त नही हो सकेगा।

(6) प्रकाशक या वह व्यक्ति जिसने कि मुद्रक को नियोजित किया है, यथापूर्वोक्त तयार किये हुए और रगे हुए उन सब मानचित्रो, मुद्रणो, और उत्किरणो का परिदान उक्त मास के अवसान के पूर्व किसी युक्तियुक्त समय पर मुद्रक को करेगा जो कि उसे उपरोक्त अपेक्षाओ का अनुपालन करने के लिए समर्थ बनाने के लिए आवश्यक है।

अपवाद

उपरोक्त वर्णित प्रावधान यानि मुद्रित पुस्तक/एँ का नि शुल्क प्रदाय निम्न अवस्थाओ मे लागू नही होगा –

(i) इस अधि के तहत पहले से ही परिदत्त किसी पुस्तक के किसी ऐसे द्वितोय या पश्चातवर्ती सस्करण को, जिस सस्करण मे उस पुस्तक मे के अनुलिपि मुद्रणो या मानचित्रो, पुस्तक मुद्रणो या अन्य उत्किरणो मे कोई परिवधन या परिवतन नही किये गये है अथवा

(ii) इस अधि की धारा 5 के अधीन बनाये गये नियमो के अनुवतन मे प्रकाशित किसी समाचारपत्र पर ।

राज्यों के नियम

राजस्थान के नियमो मे धारा 9(क) मे अपेक्षित उस ऑफीसर का नाम खोला गया है जिसको मुद्रक द्वारा मुद्रित पुस्तक की एक प्रति नि शुल्क प्रदान करनी है –

(1) निदेशक जनसम्पक, राजस्थान, जयपुर ।

धारा 9(ख) के प्रयोजनार्थ निम्न नाम हैं –

(2) जिला मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्र मे मुद्रणालय स्थित है ।

(3) अतिरिक्त पुलिस महानिरीक्षक – क्रीमनल इन्वेस्टीगेशन डिपाटमेन्ट एण्ड इन्टेलीजेन्स ब्रान्च राजस्थान, जयपुर । (दे 1951 के राज नियम 5 और सशोधित अधिसूचना न एफ (2)(11)36/पब/51 दि 24 6-53 राज, राजपत्र भाग IV (ब) दिनाक 27 6 53 मे प्रकाशित) ।

विधि प्रकरण

पत्र की एक सिंगल सीट जिसमे कुछ ताजा मुद्दो पर एक लेख था – इसको एक ऐसी पुस्तक नही माना गया जिसकी प्रति अधि के तहत सबधित आफीसर को नि शुल्क प्रदाय करना अपेक्षित है । (ए 1940 पटना 613 (614) ।

(10) धारा 9 के अधीन परिदान की गई प्रतियो के लिए पावती

वह पदाधिकारी जिसको पूर्वगामी अतिम धारा के अधीन पुस्तक परिदान की गई है उसके लिए मुद्रक को लिखित पावती देगा ।

राज्यों द्वारा संशोधन

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र राज्य मे इसकी प्रयुक्ति मे, धारा 10 मे "ऑफीसर" शब्द के बाद शब्द शामिल किए जावें – "या पुस्तकालय का प्रभारी व्यक्ति जैसी भी स्थिति हो' – 1948 का बम्बई अधि 61। (13 12 1948) सपठित 1961 का महाराष्ट्र अधि 7 (4 2-1961) 1961 का महाराष्ट्र अधि 7 धारा 2 (4 2 1961)।

गुजरात

महाराष्ट्र की तरह ही – 1961 का गुजरात अधि 23 धारा 2 (18-5 64)।

टिप्पणियाँ

धारा 9 के तहत राज्य सरकार द्वारा नियुक्त ऑफीसर मुद्रक द्वारा उसको प्रदत्त पुस्तको की प्रतियो की लिखित रसीद मुद्रक को देगा।

राज्यों के नियम

राजस्थान

रा नि 6 मु पु अधि की धारा 9 मे अपेक्षित रसीद का निम्न प्रारूप निर्धारित करता है –

मु पु अधि 1867 की धारा 9 के खण्ड (क) (ख) मे अपेक्षित पुस्तक की एकप्रति मुद्रक (नाम)
द्वारा मुझे (ऑफीसर का नाम) को प्रदत्त की गयी, उसकी एतद्द्वारा प्राप्ति मैं स्वीकार करता हूं।

हस्ताक्षर

(ii) धारा 9 के अधीन परिदान की गई प्रतियों का व्ययन

इस अधिनियम की धारा 9 की प्रथम कडिका के खण्ड (क) के अनुसरण में परिदान की गई प्रति का व्ययन इस प्रकार किया जायेगा जैसा कि राज्य सरकार समय-समय पर अवधारण करे। उक्त कडिका के खण्ड (ख) के अनुसरण मे परिदान की गई प्रतियाँ केन्द्रीय सरकार को पारेषित की जायेंगी।

राज्यो द्वारा सशोधन

मसूर

धारा – II म प्रथम वाक्य के स्थान पर निम्न प्रतिस्थापित किया जावे – इस प्रधिनियम की धारा 9 की प्रथम कडिका के खण्ड (क) के अनुसरण म प्रदत्त तीन प्रतिया म ■ एक प्रति मसूर सावजनिक पुस्तकालय अधि 1965 म सदभित राज्य केन्द्रीय पुस्तकालय बगलोर को भेजा जाएगी और शेष दो प्रतियाँ ऐसी रीति से निबटायी जायेंगी जैसा कि राज्य सरकार समय-समय पर तय करें – 1965 का मसूर अधि 10 धारा 51 (1 4 1965)

आन्ध्रप्रदेश

सिवाय अधि का नाम, मसूर की तरह ही भाग इस तरह पढा जावे – आन्ध्रप्रदेश सावजनिक पुस्तकालय अधि 1960 धारा 27 के खण्ड (क) म सदभित आ प्र केन्द्रीय पुस्तकालय हैदराबाद' – 1960 का आन्ध्रप्रदेश अधि धारा 27 (1 4 1960)।

केरल

देखिए केरल के नीचे धारा 9 के तहत राज्य सशोधन।

तमिलनाडु

तमिलनाडु राज्य म इसकी प्रयुक्ति मे, धारा 11 मे प्रथम वाक्य मे निम्न वाक्य प्रतिस्थापित किया जावे अर्थात् –

इस अधि की धारा 9 की प्रथम कडिका के खण्ड (क) के अनुसरण म प्रदत्त पाँच प्रतियों में से मद्रास सावजनिक पुस्तकालय अधि 1948 की धारा 4 खण्ड (क) म सदभित चार प्रतियाँ केन्द्रीय पुस्तकालय को भेजी जाएगी और पाँचवी प्रति ऐसी रीति ■ निबटायी जाएगी जैसा कि राज्य सरकार समय-समय पर तय करे – 1948 तमिलनाडु अधि 10 धारा 19।

पश्चिम बगाल

पश्चिम बगाल राज्य मे इसकी प्रयुक्ति मे, धारा 11 म प्रथम कडिका के स्थान पर निम्न प्रकार प्रतिस्थापित किया जावे –

इस अधि की धारा 9 की प्रथम कडिका के खण्ड (क) के अनुसरण म परिदान की हुई तीन प्रतियों मे से एक प्रति ऐसी रीति से निबटानी होगी जसा कि सरकार समय समय पर तय करे' 1979 का पश्चिम बगाल अधि 39 धारा 24 (अभी तक प्रवर्तनीय नहीं)।

टिप्पणियाँ

यह धारा उन नियमो पर प्रकाश डालती है जिनके तहत धारा 9 मे प्राप्त प्रतियो को निबटाया जाता है।

(i) धारा 9 (क) मे प्रदत्त प्रति समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा तय किए जाने के अनुसार निबटायी जाएगी।

(ii) धारा 9 (ख) म प्रदत्त प्रति/या केन्द्रीय सरकार को हस्तातरित की जावेगी।

राज्यों के नियम

राजस्थान

(i) रा नि '8क' के अनुसार धारा 9 (क) के तहत निदेशक जनसम्पर्क द्वारा प्राप्त पुस्तकें, नियम 8 मे सदर्भित पुस्तक सूची मे उसको समावेश करने के बाद महाराजा सावजनिक पुस्तकालय जयपुर को भेजी जावेगी।

परन्तु जो पुस्तकें राज्य सरकार के ध्यान मे लाने को अपेक्षित हों, उन्हें गृह विभाग मे राजस्थान सरकार के सचिव को भेजी जावेगी।

(ii) इसी तरह रा नि 8 ख के अनुसार प्रत्येक जिला मजिस्ट्रेट और अतिरिक्त पुलिस महानिरीक्षक धारा 9 (ख) मे उनको प्राप्त पुस्तकों को राजस्थान सरकार के गृह विभाग के सचिव को केन्द्र सरकार को हस्तान्तरित करने हेतु भेजेंगे।

नियम 8 क और 8 ख सशोधित अधिसूचना 24-6-53 द्वारा शामिल किए गए हैं।

11 (क) भारत मे मुद्रित समाचारपत्र की प्रतियाँ सरकार से मूल्य लिये बिना परिदत्त की जावेंगी।

भारत म प्रत्येक समाचारपत्र का मुद्रक ऐसे समाचारपत्र मे प्रत्येक सस्करण की दो प्रतियाँ उनके प्रकाशित होते ही ऐसे स्थान पर और ऐसे पदाधिकारी को जसा कि राज्य सरकार राजकीय गजट की अधिसूचना द्वारा समय-समय पर निर्दिष्ट करे और सरकार को कोई व्यय कराय बिना परिदत्त करेगा।

राज्यों द्वारा संशोधन

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र राज्य म इसकी प्रयुक्ति मे धारा 11 क में शब्द – "दो" के स्थान पर शब्द – 'तीन' प्रस्थापित किया जावे – 1951 का बम्बई अधि 6 सपठित 1961 का महाराष्ट्र अधि 7 (4 2 1961) 1961 का महाराष्ट्र अधि 7 धारा – 2 (4 2-1961) ।

गुजरात

महाराष्ट्र की तरह ही – 1961 का गुजरात अधि 23 धारा 2 (18 5-1961) ।

मैसूर

मैसूर राज्य मे इसकी प्रयुक्ति मे धारा 11 क मे शब्द "दो" के स्थान पर शब्द तीन' प्रतिस्थापित किया जावे – 1972 का मसूर अधि 10, धारा 2 (अभी तक प्रवर्तनीय नही) ।

टिप्पणियाँ

यह एक वधानिक प्रावधान है कि प्रत्येक समाचारपत्र का मुद्रक ज्योही समाचारपत्र प्रकाशित हो उस स्थान व उस ऑफीसर के यहाँ जसा कि राज्य सरकार निर्दिष्ट करे, ऐसे समाचारपत्र के प्रत्येक अक की दो प्रतियाँ नि शुल्क भेजेगा ।

राज्यों के नियम

राजस्थान

रा नि 4 के अनुसार समाचारपत्र का प्रत्येक मुद्रक समाचारपत्र की एक-एक प्रति निम्ना को नि शुल्क भेजेगा –

(i) निदेशक जनसम्पक, राजस्थान, जयपुर ।

(ii) अतिरिक्त महापुलिस निरीक्षक सी आई डी , आई बी , राजस्थान ।

(iii) जिला मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्र म मुद्रणालय स्थित है ।

11 (ख) समाचारपत्रो की प्रतियां प्रेस रजिस्ट्रार को परिदत्त की जायेगी

ऐसे किन्हीं नियमो के अधीन रहते हुए, जसे कि इस अधिनियम के अधीन बनाये जायें, भारत के प्रत्येक समाचारपत्र का प्रकाशक ऐसे समाचारपत्र के प्रत्येक

संस्करण की एक प्रति उसके प्रकाशित होते ही प्रेस रजिस्ट्रार को कोई व्यय कराये बिना परिदत्त करेगा।

टिप्पणियाँ

प्रत्येक समाचारपत्र का प्रकाशक ज्योंही समाचारपत्र प्रकाशित होता है, त्योंही ऐसे समाचारपत्र के प्रत्येक अंक की एक प्रति प्रेस रजिस्ट्रार को निःशुल्क भेजेगा।

इस सम्बन्ध में के नि 5 निम्न नियम प्रदान करता है –

(i) प्रत्येक प्रकाशक अपने समाचारपत्र के अंक के प्रकाशन के 48 घण्टों के अन्दर उसकी एक प्रति डाक अथवा सन्देशवाहक के द्वारा प्रेस रजिस्ट्रार को भेजेगा।

(ii) जब एक ही समान घोषणा के तहत एक समाचारपत्र के एक से अधिक संस्करण प्रकाशित होते हों और वे फुटकर विक्रय मूल्य अथवा पृष्ठों की संख्या के सम्बन्ध में एक-दूसरे से भिन्न हों, तो प्रत्येक संस्करण के अंक की एक-एक प्रति भी प्रकाशक के द्वारा प्रेस रजिस्ट्रार को भेजी जावेगी।

(iii) हिन्दी, उर्दू अथवा अंग्रेजी में और दो भाषाओं में प्रकाशित वह समाचारपत्र जिनकी एक भाषा हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी में से एक हो, वाले समाचारपत्रों के अंकों की प्रतियां प्रेस रजिस्ट्रार नई दिल्ली को भेजी जावेंगी –

(iv) निम्न क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित समाचारपत्रों के अंकों की प्रतियां निम्नानुसार पत्र सूचना कार्यालय के क्षेत्रीय अधिकारी को भेजी जावेंगी।

भाषा	पसूका का क्षेत्रीय अधिकारी
पंजाबी	जालन्धर
बंगाली, उड़िया और असमी	कलकत्ता
तमिल	मद्रास
तेलगू	हैदराबाद
मलयालम	एरनाकुलम
मराठी व गुजराती	अहमदाबाद
कन्नड	बंगलौर
कोंकणी	बम्बई
पुर्तगाली	बम्बई

ऐसे क्षेत्रीय दफ्तर प्रेस रजिस्ट्रार की ओर से ऐसे समाचारपत्रो की प्राप्ति लेंगे ।

(v) किसी अन्य भाषा मे प्रकाशित समाचारपत्रो के अंको की प्रतियाँ प्रेस रजिस्ट्रार नई दिल्ली को भेजी जावेंगी ।

पु प्र नियम

20 मई, 1954 से भारत मे प्रकाशित पुस्तकें यहाँ तक कि समाचार-पत्र के प्रत्येक प्रकाशन की एक एक प्रतिया पुस्तक प्रदान (सावजनिक पुस्तकालय, अधिनियम 1954) 1954 का अधि 27 के तहत बने पुस्तक प्रदान (सावजनिक पुस्तकालय नियम) 1955 की धारा 3 के तहत निम्नो को प्रदाय की जावेगी —

(1) नेशनल लाईब्रेरी बेलीविडेर, कलकत्ता-27

(2) कोनिमेरा पब्लिक लाईब्रेरी एममोर, मद्रास 8

(3) दी सेन्टल लाईब्रेरी टाउन हॉल, बम्बई-1

भाग 4

शास्तियाँ

(12) धारा 3 के नियम के प्रतिकूल मुद्रए के लिए शास्ति

जो कोई किसी पुस्तक या पत्र को इस अधिनियम की धारा 3 म अन्तर्विष्ट नियम के अनुवतन से अन्यथा मुद्रित या प्रकाशित करेगा वह मजिस्ट्रेट के सामने सिद्ध दोप होने पर दो हजार रुपये स अनधिक जुर्माने से, या छ मास से अनधिक अवधि के लिए साधारण कारावास से या दोनो से दण्डित किया जायगा ।

राज्यो के सशोधनों के लिए देखिए पृ स 67

विधि प्रकरण

न्यायमूर्ति एम सी देसाई ने अब्दुल हकीम बनाम स्टेट (ए 1960 इलाहाबाद 450) नामक निगरानी प्रकरण मे धारा 3 व 12 के सबध मे निम्न नियम प्रतिपादित किये हैं ।

(क) किसी अन्य व्यक्ति के नाम का मुद्रण

एक पुस्तक का मुद्रक पुस्तक पर मुद्रण-स्थल व अपना नाम मुद्रित नही करके किसी दूसरे का नाम व अन्य किसी दूसरे स्थान का नाम मुद्रित करता है तो मुद्रक धारा 12 के तहत अपराध करता है।

(ख) एक ही स्थल पर मुद्रण

यदि पूरा ग्रन्थ किसी एक व्यक्ति द्वारा एक स्थान पर मुद्रित होता है तो पूरा ग्रन्थ एक पुस्तक है और यदि मुद्रक व मुद्रण स्थल का नाम इसके किसी भी स्थान पर सुपाठयत मुद्रित किया जाता है तो धारा 3 की पालना पूरी मानी जायेगी। ऐसे नाम पुस्तक के एक ही स्थान न कि दो या दो से अधिक स्थानो पर मुद्रित किये जाने की अपेक्षा है। पुस्तक की परिभाषा मे एक ग्रन्थ का भाग शामिल है लेकिन जब ग्रन्थ के विभिन्न भाग विभिन्न लोगो द्वारा विभिन्न स्थानो पर मुद्रित किये जाते हों तो प्रत्येक ग्रन्थ या एक ग्रन्थ का प्रत्येक भाग एक व्यक्ति द्वारा इस स्थान पर मुद्रित किया जाना एक पुस्तक है। जब प्रार्थी द्वारा बाहर और अन्दर दोनो के आवरण अपने मुद्रणालय मे छापे गये हो तो यह नही कहा जा सकता कि वे दो अलग-अलग पुस्तकें बनती हो तथा पूर्ववर्ती मे पश्चातवर्ती मे मुद्रित इम्प्रिन्ट लाइन से अलग इम्प्रिन्ट लाइन छपनी चाहिये।

यह तथ्य कि बाहरी आवरण मे भीतरी आवरण मे मुद्रित मुद्रक व मुद्रणालय के नाम से भिन्न मुद्रक व मुद्रणालय का नाम मुद्रित है, आम जनता मे यह धारणा बना सकता है कि बाहरी आवरण उस स्थान पर व उस व्यक्ति द्वारा मुद्रित हुआ है जिनका उसमे नाम वर्णित हुआ है। ऐसी दशा मे, आम जनता में ऐसी धारणा फैलाकर मुद्रक धोखा देने का अपराधी तो हो सकता है परन्तु वह धारा 3 मे दोषी नही हो सकता।

एक पुस्तक जिसमे नाम है, किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी स्थान पर मुद्रित हो सकती है। यदि प्रार्थी ने अपना व मुद्रण-स्थल का नाम भीतरी आवरण मे मुद्रित नही किया है तो उसको धारा 3 का उल्लघनकर्त्ता इस आधार पर तो माना जा सकता है कि उसने मुद्रक व मुद्रण-स्थल का नाम किसी भी तरह मुद्रित नही किया न कि इस आधार पर कि उसने बाहरी आवरण पर ऐसे व्यक्ति का जो मुद्रक नही था और ऐसे मुद्रण-स्थल का जो मुद्रण स्थल नहीं था, नाम मुद्रित किया था।

(ग) मुद्रण बनाम प्रकाशन

धारा 3 केवल पुस्तक के मुद्रण के प्रसग मे है न कि इसके प्रकाशन के प्रसग मे। अत धारा 12 मे शब्दावली "पुस्तक -धारा 3 मे अ तर्विष्ट नियम के अनुवर्तन से अन्यथा या प्रकाशित" का कोई अथ नही रह जाता। अत धारा 12 मे आये शब्द "या प्रकाशित" की उपक्षा होनी चाहिए। अत एक पुस्तक का प्रकाशन जो धारा 3 मे अ तर्विष्ट नियम की अनुपालना मे मुद्रित न हुई हो, धारा 3 सपठित 12 मे कोई अपराध नही है।

(घ) यदि पहले से ही उल्लघन तो कोई उकसाया नहीं

एक पुस्तक का प्रकाशन जो यद्यपि मुद्रक के नाम के मुद्रण के मामले मे धारा 3 की अपेक्षाओ को पूरा नही करता, को धारा 3 के उल्लघन को उकसाने वाला नही माना जा सकता जब किसी दूसरे मुद्रक द्वारा पहले से ही उसका उल्लघन किया जा चुका हो।

दो मुद्रणालयों मे पम्फलेट्स का मुद्रण

पेम्फलेट्स का एक भाग एक मुद्रणालय मे व दूसरा भाग दूसरे मुद्रणालय मे मुद्रित हुआ। पूववर्ती मुद्रणालय के धारक का नाम पुस्तक मे मुद्रक के रूप मे दिखायी नही दिया।

यह निणय हुआ कि अभियुक्त धारा 3 मे सजा पाने योग्य है (1912) 13 क्री एन जे 139 (स पी) बम्बई।

अपराधी मन की सिद्धि जरूरी नहीं

मुद्रक और मुद्रण स्थल के नाम के मुद्रण की चूक मुद्रणालय के मालिक की तरफ से वधानिक कत्तव्य का उल्लघन है। अपराध पूरा हो चुका है। अपराधी मन की सिद्धि जरूरी नही। मुद्रणालय का सक्षेपण/ प्रारम्भिक अक्षर पर्याप्त नही है (1962) (1) क्री एल जे 824(826) मनीपुर।

* धारा 3 और 12 का सबध अभिप्राय से नही है। यदि धारा 3 मे अ तर्विष्ट नियम की पालना नही की जाती है तो एक अपराध सम्पन्न माना जायेगा और वह धारा 12 मे दडनीय है। (1909) 10 क्री ल जे 195 (198) ए 1933 रगून 4 (4)

साइक्लोस्टाइल मशीन की सहायता से

साइक्लोस्टाइल मशीन की सहायता से एक अवधिकालिक समाचारपत्र की प्रतियाँ निकालना – प्रतियो पर प्रकाशक का नाम नहीं और उस स्थान का नाम भी नही जहाँ वे मुद्रित हुई तो यह निर्णय हुआ कि धारा 12 के तहत सिद्ध दोषी उचित थी। (ए 1931 पटना 351 (352), 1973 इलाहाबाद क्री भार 475 (479, 480, 481)।

वितरण प्रकाशन के तुल्य

जब एक व्यक्ति सडको पर एक विशेष मुद्रित पेम्फलेट्स या पत्र जिनमें विशेष बठक की सूचना है, बाटता है तो वह धारा 12 के तहत इस आधार पर दोषी नही है कि धारा 12 के तहत पेम्फलेट्स का बाटना पुस्तक या पत्र के प्रकाशक के तुल्य है (ए 1937 बम्बई 28(29, 30)।

प्रबधक के जरिए मुद्रण कार्य

मुद्रणालय का मालिक जो अपने प्रबधक के माफत मुद्रण व्यवसाय करता है, उसे धारा 3 के उल्लघन मे पुस्तको को मुद्रित करते हुए माना जाना चाहिये यद्यपि यहाँ तक कि उसे मुद्रणालय के प्रबध मे कुछ भी करना नही था। (ए 1933 रगून 4 (4)।

जब एक लेखक दायित्व से बच नहीं सकता

मुद्रित पेम्फलेट का एक लेखक जो शिक्षित व्यक्ति है और जो यह भी स्वीकार करता है कि पेम्फलेटस मे लिखित सामग्री उसने लिखी है, वह मात्र यह कहने से अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता कि वह मुद्रणालय से सबधित नही है और न उसका सबध इसके वास्तविक मुद्रण से है (ए 1970 आसाम 128 (129)।

प्रकाशक कौन है

एक प्रकाशक वह व्यक्ति है जो प्रत्येक या पम्पलेट्स का मुद्रण व वितरण सावजनिक उपभोग के लिए करता है (ए 1966 पजाब 342 (343)।

13 धारा 4 द्वारा अपेक्षित घोषणा किये बिना मुद्रण यन्त्र रखने के लिए शास्ति

जो कोई इस अधिनियम की धारा 4 मे अन्तर्विष्ट किसी उपबन्ध के उल्लघन मे यथापूर्वोक्त जैसा कोई मुद्रणयन्त्र अपने कब्जे मे रखेगा वह मजिस्ट्रेट के सामने

सिद्ध दोप होने पर दो हजार रुपय से ग्रनधिक जुर्माने से या छ मास स ग्रनधिक ग्रवधि के लिये साधारण कारावास से या दोनों से दंडित किया जायेगा।

राज्य सशोधनों के लिए पृष्ठ म 67 देखिए।

विधि प्रकरण

क्या मुद्रणालय मुद्रण के लिए ठीक था

धारा 13 के तहत सिद्ध दोप करने के लिए यह खोजना ग्रावश्यक है कि मुद्रणालय पुस्तको व पत्रो के मुद्रण काय करने को पर्याप्त रूप से ठीक ग्रवस्था मे थी (ए 1929 कलकत्ता 635 (636)।

14 मिथ्या कथन करने के लिए दड

जो कोई व्यक्ति इम ग्रधिनियम के प्राधिकार के ग्रधीन कोई घोपणा या ग्रन्य कथन करने मे कोई एमा कथन करेगा जो मिथ्या है ग्रौर (जिसके मिथ्या होने का उसे ज्ञान या विश्वास है या जिसके सत्य होने म वह विश्वास नहीं करता है) वह मजिस्ट्रेट के सामने सिद्ध दोप होने पर दो हजार रुपये से ग्रनधिक जुर्माने से छ मास से ग्रनधिक ग्रवधि के लिए कारावास से दंडित किया जायेगा।

राज्य सशोधनो के लिए देखिए पृ स 67।

विधि प्रकरण

जब प्रबधक ग्रौर सपादक के विरुद्ध ग्रभियोजन नहीं

ग्रब मुद्रक ग्रौर प्रकाशक धारा 19 घ के तहत घोपणा करने के उसके कत्तव्य को पूरा करने से मना कर रहा था तो प्रबधक ग्रौर सपादक ने प्रकाशक के रूप में धारा 19 घ के तहत घोपणा प्रस्तुत कर दी। चूंकि घोपणा पेश करके प्रबधक ग्रौर सपादक ने मुद्रक को कोई क्षति या हानि नही पहुँचाई इसलिए उनके विरुद्ध धारा 14 मे मिथ्या कथन करने के लिए कोई ग्रभियोजन नही चलाया जा सकता (1975 क्री एल जे 90 (95)।

मात्र मिथ्या कथन पेश करना धारा 14 मे दण्डनीय नहीं

मात्र लिखित मिथ्या कथन या घोपणा मजिस्ट्रेट को पेश करना कोई ग्रपराध नही है।

ऐसे घोपणाकर्त्ता को धारा 14 सपठित धारा 4 मे दण्डनीय करने के लिए ऐसे घोपणाकर्त्ता द्वारा यह मजिस्ट्रेट के सम्मुख प्रस्तुत व हस्ताक्षरित होनी चाहिए। (ए 1923 लाहौर 440)

15 नियमो क अनुवतन के बिना समाचारपत्र मुद्रित या प्रकाशित करने के लिए शास्ति

(1) जो कोई एतत्पूण विहित नियमो का अनुवतन किये विना किसी समाचारपत्र का सम्पादन मुद्रण या प्रकाशन करेगा या जो कोई इस बात को जानते हुए कि किसी समाचारपत्र के सम्बन्ध मे उक्त नियमो का पालन नही किया गया है उस समाचारपत्र का सम्पादन, मुद्रण या प्रकाशन करेगा या उसका सम्पादन, मुद्रण या प्रकाशन करायेगा वह मजिस्ट्रेट के सामने सिद्धदोष होने पर दो हजार रुपये से अनधिक जुर्माने से या छ मास से अनधिक अवधि के लिए कारावास से या दोनों से दडित किया जायेगा ।

राज्य सशोधन के लिए देखिऐ पृष्ठ स 67 ।

15 क धारा 8 के अधीन घोषणा करने में असफल रहने के लिए शास्ति

यदि एसा कोई व्यक्ति जो किसी समाचारपत्र का मुद्रक या प्रकाशक रहने से परिविरत हो गया है धारा 8 के अनुवतन मे घोषणा करने म असफल रहता है या उपेक्षा करता है तो वह मजिस्ट्रेट के सामने सिद्धदोष होने पर दो सौ रुपये से अनधिक जुमाने से दण्डनीय होगा ।

(2) जहाँ अपराध एव समाचारपत्र के सबध मे उपधारा (1) के तहत किया जाता है मजिस्ट्रेट उपरोक्त उपधारा मे दिए गए दण्ड के स थ-साथ उस समाचारपत्र के सम्बन्ध मे घोषणा को भी निरस्त कर सकता है ।

राज्यों द्वारा सशोधन (धाराए 12 से 15 क)

पजाब, हरियाणा और चडीगढ़

पजाब, हरियाणा और केन्द्रशासित चडीगढ राज्यों मे इन धाराओ की प्रयुक्ति मे प्रत्येक धारा मे से शब्द "मजिस्ट्रेट के सामने" लोप किए जावें (देखिए 1964 का पजाब अधि 25 धारा 2 व अनुसूची, भाग II (2 10 1964) 1966 का अधि 31 धारा III (1 11 1966)

16 पुस्तकों का परिदान न करने या मुद्रक को मानचित्रों का प्रदाय न करने के लिए शास्ति

यदि ऐसी किसी पुस्तक का कोई मुद्रक, जैसा कि इस अधिनियम की धारा 9 मे निर्दिष्ट है उस धारा के अनुसरण म उस पुस्तक की प्रतियाँ परिदान करने में उपेक्षा करे तो वह ऐसी प्रत्येक चूक के लिये दण्ड स्वरूप पचास रुपये से अनधिक इतनी राशि जितनी कि उस स्थान म क्षेत्राधिकार रखने वाला म

जहाँ कि वह पुस्तक मुद्रित हुई थी उस परिस्थितियो म चूक के लिये युक्तियुक्त शास्ति उस पदाधिकारी के जिसको प्रतियाँ परिदत्त की जानी चाहिए थी, या उस पदाधिकारी द्वारा तन्निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति के आवेदन पर अवधारित कर और इतनी राशि के अतिरिक्त, इतनी अपर राशि जिसे कि वह मजिस्ट्रेट उन प्रतियों का मूल्य अवधारित करे, जो कि मुद्रक द्वारा परिदत्त की जानी चाहिये थी, जब्ती के रूप मे सरकार को देगा।

यदि कोई प्रकाशक या अन्य व्यक्ति जो कि किसी ऐसे मुद्रक को नियोजित करता है वे मानचित्र मुद्रण या उत्किरण जो कि मुद्रक को उस धारा के उपबन्धो का अनुवर्तन करने मे समर्थ बनाने के लिये आवश्यक है इस अधिनियम की धारा 9 की द्वितीय कण्डिका मे विहित रीति मे परिदत्त करने में उपेक्षा करे तो ऐसा प्रकाशक या अन्य व्यक्ति ऐसी प्रत्येक चूक के लिये दण्डस्वरूप पचास रुपये से अनधिक इतनी राशि, जितनी कि यथा पूर्वोक्त जसा मजिस्ट्रेट उन परिस्थितियो में उस चूक के लिये युक्तियुक्त शास्ति यथा पूर्वोक्त जैसे आवेदन पर अवधारित करे, और इतनी राशि के अतिरिक्त इतनी अपर राशि, जिसे कि वह मजिस्ट्रेट उन मानचित्रों, मुद्रणो या उत्किरणों का मूल्य अवधारित करे जो कि ऐसे प्रकाशक या अन्य व्यक्ति द्वारा परिदत्त किये जाने चाहिए थे जब्ती के रूप मे सरकार को देगा।

राज्यों द्वारा सशोधन

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र राज्य मे इसकी प्रयुक्ति मे धारा 16 मे (क) प्रथम कण्डिका म शब्द (इन दिस बिहाफ) के बाद शब्द या उस पुस्तकालय प्रभारी के आवेदन पर जिसको पुस्तक की एक प्रति प्रदत्त की जानी चाहिए शामिल किए जाए और (ख) द्वितीय कण्डिका मे शब्द द्वितीय' के स्थान पर शब्द तीन प्रतिस्थापित किया जावे – 1948 का बम्बई अधि 61 धारा 4 (3 12 1948) सपठित 1961 का महाराष्ट्र अधि 7 (4 2 1961) 1961 का महाराष्ट्र अधि 7 धारा 2 (4 2 61)

गुजरात

महाराष्ट्र जसा ही – 1961 का गुजरात अधि 23, धारा 2 (18 5 1961)

विधि प्रकरण

कब पुस्तक का प्रदान पूर्ण होता है

मुद्रणालय से बाहर पुस्तक प्रदान उस समय पूर्ण नही होता जब पुस्तक छप चुकी होती है बल्कि उस समय होता है जब किसी प्रति का

मुद्रणालय से बाहर वास्तविक प्रदान हो उसके पूर्व मुद्रण कार्य पूरा हो सका हो। (ए 1927 इलाहाबाद 237)।

धारा 16 क्या प्रावधान नहीं करती

धारा 16 सिद्धदोष और कारावास का प्रावधान नही करती। (ए 1940 पटना 613) 614)

16 (क) सरकार को समाचारपत्रों की प्रतियाँ मूल्य लिये बिना परिदत्त करने मे असफल रहने के लिए शास्ति

यदि भारत म प्रकाशित किसी समाचारपत्र को कोई मुद्रक धारा 11क के अनुवतन मे उसकी प्रतियो का परिदान करने में उपक्षा करता है तो उस पदाधिकारी के, जिसको प्रतियाँ परिदान की जानी चाहिये थीं या उस पदाधिकारी द्वारा तन्निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति के परिवाद पर वह उस स्थान मे क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा सिद्धदोष किये जाने पर, जहाँकि वह समाचारपत्र मुद्रित किया गया था, ऐसी प्रत्येक चूक के लिए पचास रुपये तक के जुर्माने से दण्डनीय होगा।

विधि प्रकरण

धारा 8 ख, 11 क – 16 क के बीच सबध

प्रकाशक द्वारा सरकार को समाचारपत्र की प्रतियो का प्रदान न होना – धारा 11क क प्रावधानो की पालना नही – यह कहा जा सकता है कि समाचारपत्र अधि के प्रावधानो के उल्लघन मे प्रकाशित हो रहा है – प्रकरण धारा 8ख, खण्ड (1) क तहत आता है और घोषणा का निरस्तीकरण वध है – प्रकाशक के विरुद्ध प्रशासकोय कार्यवाही घोषणा के निरस्तीकरण के साथ साथ उसके विरुद्ध धारा 16क म भी अभियोजन चलाया जा सकता है। 1975 डब्लू एल एन (यूसी) (530) राजस्थान।

16 (ख) प्रेस रजिस्ट्रार को समाचारपत्रों की प्रतियाँ परिदत्त करने मे असफलता के लिए शास्ति

यदि भारत मे प्रकाशित किसी समाचारपत्र का कोई प्रकाशक धारा 11ख के अनुवतन म उसकी प्रतिया का परिदान करने म उपक्षा करता है तो प्रेस रजिस्ट्रार के परिवाद पर वह उस स्थान म क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट द्वारा

(10) यह बात कि क्या संस्करण प्रथम, द्वितीय या अन्य संख्यक है।

(11) उस संस्करण मे जितनी प्रतियाँ छपी हैं उनकी संख्या।

(12) यह बात कि पुस्तक मुद्रित की गई है, साइक्लोस्टाइल की गई है या लियोग्राफ की गई है।

(13) वह मूल्य जिस पर पुस्तक सार्वजनिक रूप से बेची जाती है।

(14) प्रतिलिप्याधिकार के या ऐसे प्रतिलिप्याधिकार के किसी भाग के स्वत्वधारी का नाम और निवास स्थान।

प्रत्येक पुस्तक की अवस्था मे धारा 9 की प्रथम कंडिका के खड (क) के अनुसरण मे उसकी प्रति के परिदान के पश्चात यथासाध्य शीघ्र ऐसा ज्ञापन तैयार किया और रजिस्ट्रीकृत किया जावेगा।

टिप्पणियां

यह धारा उन पुस्तको के पंजीयन संबंधी प्रक्रिया पर प्रकाश डालती है जिनका धारा 9(क) के तहत परिदान हो चुका है। राज्य सरकार द्वारा नियुक्त एक अधिकारी इन पुस्तकों का ज्ञापन – 'सूचीपत्र' अपने कार्यालय मे करवाने का प्रबंध करेगा। धारा 9(क) मे पुस्तक का परिदान प्राप्त होने पर यथाशक्य धारा 18 के मद न० 1 से 14 की विशिष्टियो का इस सूचीपत्र मे दर्ज किया जावेगा।

राजस्थान नियम

धारा 9 क और धारा 18 के प्रयोजनार्थ निम्न अधिकारी को राजस्थान सरकार द्वारा नियुक्त किया गया है। (रा नि 5 और 8)

"निदेशक – जनसम्पर्क, राजस्थान, जयपुर"।

19 रजिस्ट्रीकृत ज्ञापन का प्रकाशन

प्रत्येक तिमासे मे उक्त "सूची" म रजिस्ट्रीकृत ज्ञापन ऐसे तिमासे के समाप्त होने क पश्चात् यथाशीघ्र राजकीय गजट मे प्रकाशित किया जायेगा और इस प्रकार प्रकाशित ज्ञापन की एक प्रतिलिपि केन्द्रीय सरकार को भेजी जावेगी।

टिप्पणियां

धारा 18 मे पंजीकृत पुस्तका का ज्ञापन – 'सूचीपत्र' राजकीय गजट मे हर तिमाही प्रकाशित होगा और इस तरह प्रकाशित इस ज्ञापन की एक प्रति केंद्रीय सरकार का भेजी जावेगी।

यान नियम
निदेशक, जनसम्पर्क, राजस्थान, गजट में इस तरह प्रकाशित इस की एक प्रति राजस्थान सरकार के गृह विभाग के सचिव को य सरकार को प्रेषण हेतु भेजेंगे ।

भाग 5 क

समाचारपत्रों का रजिस्ट्रीकरण

(19 क) प्रेस रजिस्ट्रार तथा अन्य पदाधिकारियों की नियुक्ति

केन्द्रीय सरकार भारत के समाचारपत्रों का एक रजिस्ट्रार तथा प्रेस रजिस्ट्रार के साधारण अधीक्षण और नियन्त्रण के अधीन अन्य ऐसे पदाधिकारी, जैसे कि इस अधिनियम के द्वारा या अधीन उनको समनुदिष्ट कृत्यों का पालन, करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो, नियुक्त कर सकेगी, और साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस अधिनियम के अधीन उनके द्वारा पालन किये जाने वाले कृत्यों के वितरण या आवंटन का उपबन्ध कर सकेगी ।

(19 ख) समाचारपत्रों का रजिस्ट्रीकरण

(1) प्रेस रजिस्ट्रार समाचारपत्रों का रजिस्टर विहित रीति में रखेगा ।

(2) जहां तक साध्य हो रजिस्टर के अन्तर्गत भारत में प्रकाशित प्रत्येक समाचारपत्र के सबंध में निम्नलिखित विशिष्टियां होंगी, अर्थात् —

(क) समाचारपत्र का नाम,

(ख) वह भाषा जिसमें समाचारपत्र प्रकाशित किया जाता है

(ग) समाचारपत्र के प्रकाशन की कालावधीयता,

(घ) समाचारपत्र के संपादक मुद्रक और प्रकाशक का नाम,

(ङ) मुद्रण और प्रकाशन का स्थान,

(च) प्रति सप्ताह पृष्ठों की औसत संख्या

(छ) वर्ष में प्रकाशन के दिनों की संख्या,

(ज) मुद्रित प्रतियों की औसत संख्या, जनता को बेची गई प्रतियों की औसत संख्या तथा जनता को मूल्य लिये बिना वितरित प्रतियों की औसत संख्या, यह औसत ऐसी कालावधि की बाबत निकाली जायगी जैसे कि विहित की गई

(ङ) प्रत्येक प्रति का फुटकर विक्रय मूल्य,

(च) समाचारपत्र के स्वामियों का नाम और पते और स्वामित्व संबंधी ऐसी विशिष्टियाँ जैसी की विहित की जायें,

(ट) अन्य कोई विशिष्टियाँ जो कि विहित की जायें।

(3) प्रेस रजिस्ट्रार उपरोक्त विशिष्टियों के संबंध में समय-समय पर जानकारी प्राप्त होने पर रजिस्टर में सुसंगत प्रविष्टियाँ करायेगा और रजिस्टर को अद्यतन रखने के लिये उसमें ऐसे आवश्यक परिवर्तन और शुद्धियाँ कर सकेगा जैसे कि अपेक्षित हों।

(19 ग) रजिस्ट्रीकरण के प्रमाण-पत्र

प्रेस रजिस्ट्रार धारा 6 के अधीन किसी समाचारपत्र के संबंध में घोषणा की एक प्रति मजिस्ट्रेट से प्राप्त होने तथा ऐसे समाचारपत्र के प्रकाशन होने पर तत्पश्चात यथासाध्य शीघ्र उस समाचारपत्र के संबंध में रजिस्ट्रीकरण का एक प्रमाण-पत्र उस समाचारपत्र के प्रकाशक को देगा।

(19 घ) समाचारपत्रों द्वारा दिये जाने वाले वार्षिक विवरण, इत्यादि

प्रत्येक समाचारपत्र के प्रकाशक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) प्रेस रजिस्ट्रार को उस समाचारपत्र के संबंध में ऐसे समय पर और धारा 19 ख की उपधारा 2 में निर्दिष्ट विशिष्टियों में से ऐसी विशिष्टियों वाला, जैसी कि विहित की जाये एक वार्षिक विवरण दे।

(ख) समाचारपत्रों में ऐसे समय पर और धारा 19 ख की उपधारा (2) में निर्दिष्ट समाचारपत्र संबंधी ऐसी विशिष्टियाँ प्रकाशित करे जैसी की प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा इस निमित्त उल्लिखित की गई हो।

(19 ङ) समाचारपत्रों द्वारा दी जाने वाली विवरणियाँ और प्रतिवेदन

प्रत्येक समाचारपत्र का प्रकाशक धारा 19 ख की उप धारा (2) में निर्दिष्ट किसी विशिष्टि के संबंध में ऐसी विवरणियाँ, आंकड़े तथा अन्य जानकारी प्रेस रजिस्ट्रार को देगा जैसी कि प्रेस रजिस्ट्रार समय-समय पर अपेक्षित करे।

(19 च) अभिलेखों तथा दस्तावेजों तक पहुंच का अधिकार

प्रेस रजिस्ट्रार या उसके द्वारा तन्निमित्त लिखित रूप में प्राधिकृत किसी गजटेड पदाधिकारी की पहुँच इस प्रयोजन के लिये कि वह किसी समाचारपत्र के

संबंध की कोई जानकारी इस अधिनियम के अधीन एकत्रित करे उस समाचारपत्र के संबंध रखने वाले किसी सुसंगत अभिलेख या दस्तावेज तक होगी और वह किसी युक्तियुक्त समय में ऐसे किसी परिसर में प्रवेश कर सकेगा जिसकी बाबत उसका विश्वास है कि उसके अन्दर ऐसे अभिलेख या ऐसी दस्तावेज है या वह सुसंगत अभिलेखों या दस्तावेजों की नकल कर सकेगा या वह इस अधिनियम के अधीन जो जानकारी दी जानी अपेक्षित है उसे अभिप्राप्त करने के लिये आवश्यक कोई प्रश्न पूछ सकेगा।

(19 छ) वार्षिक प्रतिवेदन

प्रेस रजिस्ट्रार ने भारत के समाचारपत्रों के संबंध में गत वर्ष में जो भी जानकारी अभिप्राप्त की है उसका सार अन्तर्विष्ट रखने वाला और ऐसे समाचार पत्रों के कमत्व या विवरण देने वाला वार्षिक प्रतिवेदन ऐसे प्रारूप में और प्रत्येक वर्ष ऐसे समय पर, जैसा कि विहित किया जाये, तैयार करेगा और उसकी प्रतियाँ केन्द्रीय सरकार को भेजी जायेंगी।

(19 ज) रजिस्टर के उद्धरणों की प्रतियाँ देना

प्रेस रजिस्ट्रार रजिस्टर के किसी उद्धरण की प्रति के प्रदाय के लिए किसी व्यक्ति के आवेदन पर और ऐसी फीस दिये जाने पर, जैसी कि विहित की जाये, ऐसी प्रति आवेदक को ऐसे प्रारूप में और ऐसी रीति में देगा जैसा या जैसी कि विहित किया या की जाये।

(19 झ) शक्तियों का प्रत्यायोजन

इस अधिनियम के और तद्धीन बनाये गये विनियमों के अधीन रहते हुए प्रेस रजिस्ट्रार इस अधिनियम के अधीन अपनी शक्तियों में से सबको या किसी को अपने अधीनस्थ किसी पदाधिकारी को प्रत्यायोजित कर सकेगा।

(19 ञ) प्रेस रजिस्ट्रार तथा अन्य पदाधिकारी लोकसेवक होंगे

प्रेस रजिस्ट्रार तथा इस अधिनियम के अधीन नियुक्त किये गये सब पदाधिकारी भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोकसेवक समझे जायेंगे।

(19 ट) धारा 19 घ या 19 ङ इत्यादि के उल्लंघन के लिये शास्ति

यदि किसी समाचारपत्र का प्रकाशक—

(क) धारा 19 घ या धारा 19 ङ के उपबंधों का अनुवर्तन करने से इन्कार करता है या करने में उपेक्षा करता है, या

(ख) समाचारपत्र म धारा 19 घ के खड मे (ख) के अनुसरण मे उस समाचारपत्र के सबध म कोई ऐसी विशिष्टियाँ प्रकाशित करता है। जिनकी बाबत यह विश्वास करने का उसके पास कारण है कि वह मिथ्या है, तो वह एसे जुर्माने स जो पाँच सौ रुपये तक का हो सकेगा दण्डनीय होगा।

(19 ठ) जानकारी के अनुचित सप्रकटीकरण के लिए शास्ति

यदि इस अधिनियम के अधीन जानकारी सग्रह के सबध मे काम मे लगा हुआ कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन दी गई कोई जानकारी या किसी विवरणो मे अन्तर्विष्ट बातें इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यो के निष्पादन से या इस अधिनियम म या भारतीय दड सहिता (1860 का 45) के अधीन किसी अपराध के लिय अभियोजन करने के प्रयोजनो मे अन्यथा कामत प्रकट करता है तो वह ऐसी अवधि के कारावास से जो छ मास तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपये तक हो सकेगा या दोना से दण्डनीय होगा।

टिप्पणियाँ (धाराएँ 19 क से 19 ठ)

धारा 19 क – एक ऐसी सस्था जिसका नाम भारत के समाचारपत्रा के पजीयक (आर एन आई) है, की स्थापना से, धाराएँ 19 ख से 19 ञ – आर एन आई के वधानिक अधिकारो, कत्तव्यो व दायित्वो से, धाराए 19 ख व 19 ग समाचारपत्रो के पजीयन सम्बन्धी प्रक्रिया से, धाराएँ 19 घ और 19 ङ प्रकाशक के वधानिक कत्तव्यो और 19 ट उनके उल्लघन की शास्तियो से तथा 19 ठ जानकारी के अनुचित सप्रकटीकरण के लिए शास्ति के सामान्य शास्ति दड से सबध रखती है।

आर एन आई की स्थापना और इसके अधिकार, कत्तव्य व दायित्व

(1) मु पु अधि के भाग 5 क के प्रयोजनाथ केन्द्रीय सरकार समाचारपत्रा के पजीयक की नियुक्ति करेगी।

(2) आर एन आई अपन अधीनस्थ किसी अधिकारी को अपनी सभी या कोई भी शक्ति प्रत्योजित कर सकेगी।

(3) मु पु अधि के तहत नियुक्त आर एन आई और सभी अफसर द प्र स की धारा 21 के अथ म लोकसेवक माने जाएग।

(4) किसी समाचारपत्र के सबध मे सूचना एकत्रित करने के प्रयोजनाथ –

* आर एन आई प्रकाशक के कब्जे मे रखे किसी भी सगत अभिलेख या दस्तावेज तक अपनी पहुच रखेगा।

* आर एन आई उस परिसर मे वहा ऐसे अभिलेख या दस्तावेज रखे जाने का इसे विश्वास हो, एक युक्तियुक्त समय मे प्रवेश ले सकेगा।

* आर एन आई सगत अभिलेख या दस्तावेज का निरीक्षण कर सकेगा या उनकी प्रतिया ले सकेगा या मु पु अधि के तहत अपेक्षित किसी सूचना के लिए कोई आवश्यक प्रश्न पूछ सकेगा।

(5) यदि कोई व्यक्ति आवेदन पर धारा 19 ख के तहत रखे गये रजिस्टर के किसी उद्धरण की प्रति लेना चाहे तो आर एन आई उसे ऐसी प्रति प्रदान करेगा।

^/(6) आर एन आई प्रत्येक वष की 30 अप्रैल या इसके पूव समाचारपत्रो से सबधित सूचना और सारियकी विशेष कर इनकी विभिन्न श्रेणियो मे प्रसार की प्रवृत्ति और एक से अधिक समाचारपत्र के सामान्य स्वामित्व के निर्देशन मे प्रवृत्ति से युक्त एक वार्षिक प्रतिवेदन केन्द्र सरकार को प्रस्तुत करेगा (धारा 19 छ सपठित के नि 11)।

ऐसी रिपोट प्राप्त होने पर, केन्द्र सरकार द्वारा ससद मे पेश करने के काम आयेगी।

(7) आर एन आई समाचारपत्रो का एक अद्यतन रजिस्टर रखेगी जिसमें धारा 19 ख की उपधारा 2 के मद स क से ट की विशिष्टिया समावेश होगी।

(8) प्रकाशक को फाम V मे समाचार पजीयन का प्रमाण पत्र जारी करने हेतु आर एन आई को सबसे पहले यह देखना है कि आया धारा 6 मे प्रमाणित घोषणा की एक प्रति और ऐसे समाचारपत्र के प्रकाशित प्रथम अक की एक प्रति आर एन आई को पहुँच गयी है या नही (धारा 19 ग सपठित के नि 10)।

प्रकाशक के वैधानिक कत्तव्य

प्रत्येक समाचारपत्र का प्रकाशक निम्न वैधानिक कत्तव्य रखता है—

(i) सबधित वष के अगले प्रत्येक वष के फरवरी माह के अन्तिम दिन तक या इसके पूव आर एन आई को फाम II मे वार्षिक विवरण भेजना (धारा 19 घ (क) सपठित के नि 6 (1)।

(ii) प्रत्येक वष की फरवरी माह के अन्तिम दिन के पश्चात् प्रकाश्य प्रथम अक मे फाम IV मे निर्धारित की हुई विशिष्टियों का प्रकाशन करना (धारा 19 ख सपठित के नि 8)।

(iii) समय 2 पर आर एन आई द्वारा अपेक्षित विवरण, साख्यकी और अन्य सूचना भेजना (धारा 19 ञ) आर एन आई प्रत्येक दनिक समाचारपत्र के प्रकाशक से यह अपेक्षा करता है कि प्रत्येक वष की 28 फरवरी तक फाम ए आर 4 भर कर भेजे।

(iv) प्रकाशन के 48 घटा के अदर समाचारपत्र के प्रत्येक अक की एक प्रति डाक अथवा सदेशवाहक द्वारा आर एन आई को भिजवाना (के नि 5)।

(v) समाचारपत्र के फुटकर विक्रय मूल्य के परिवतन की सूचना ऐसे परिवर्तन के 48 घटा के अन्दर आर एन आई को देना (के नि 6)।

(vi) पहले से ही जारी समाचारपत्र पजीयन प्रमाण पत्र की विशिष्टियो मे यदि कोई परिवतन हो तो ऐसे प्रमाण पत्र को पुन जारी करवाने हेतु आर एन आई को लौटाना (के नि 10 (3)।

प्रकाशक के वैधानिक कत्तव्यो की पालना न करने पर शास्तियाँ

मु पु अधि मे एक अलग से भाग यानि भाग IV शास्तियो के सबध म दिया हुआ है। धाराएँ 19 ट और 19 ठ भी यहाँ शास्ति सबधी दड खड है।

धारा 19 ट के अनुसार निम्न मे से कोई भी अवस्था प्रकाशक को 500/- रु से अनधिक के जुर्माने से दडित करा सकती है —

(i) जब प्रकाशक आर एन आई को धारा 19 (घ) (क) मे अपेक्षिक वार्षिक विवरण भेजने को मना कर दे या ऐसा करने म लापरवाही बरते।

(ii) जब प्रकाशक प्रत्येक वष के फरवरी माह के अन्तिम दिन के बाद प्रकाश्य प्रथम अक मे धारा 19 (घ) (ख) मे अपेक्षित फाम IV मे निर्धारित की हुई विशिष्टियाँ प्रकाशित करने से मना कर दे या ऐसा करने मे लापरवाही बरते।

(iii) जब धारा 19 ञ म आशयित किसी सूचना को आर एन आई को भेजने से प्रकाशक मना कर दे या ऐसा करने मे लापरवाही बरते।

(iv) जब प्रकाशक धारा 19 घ के खड ख की पालना मे समाचार-पत्र के सबध मे ऐसी सूचना समाचारपत्र मे प्रकाशित करे जिसे वह मिथ्या मानने का विश्वास रखता हो।

जानकारी के अनुचित सप्रकटीकरण के लिए शास्ति

धारा 19 ठ के अनुसार निम्न मे से कोई भी दशा निम्न से सबधित व्यक्ति को 6 मास से अनधिक का कारावास या 1000/ रु से अनधिक का जुर्माना या दोनो से दडित करा सकती है ।

जब मु पु अधि के तहत सूचना एकत्रीकरण के काय मे लगा हुआ एक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यो की पालना के बजाय कामत (जानबूझकर) ।

(i) मु पु अधि के तहत दिये गये या भेजे गये किसी विवरण की विषय वस्तु या किसी सूचना को प्रकट करता है अथवा

(ii) मु पु अधि या भा द स के तहत किसी अपराध मे अभियोजन करने के प्रयोजनार्थ ऐसा कामत प्रकट करता है ।

विधि प्रकरण

वार्षिक प्रतिवेदन बनाम रिटन

प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा प्रकाशित वार्षिक प्रतिवेदन मे एक व्यक्ति को एक समाचारपत्र के सपादक के रूप मे दिखाया गया जो वार्षिक प्रतिवेदन धारा 19 घ(ख) के तहत प्रकाशित रिटन मे जिसमे ऐसे व्यक्ति का नाम न होकर किसी दूसरे का नाम है, के प्रभाव को नगण्य नही कर सकता । (ए 1971 उच्चतम न्यायालय 856 (859, 860) ।

जब मुद्रक और प्रकाशक पुन हस्ताक्षर करने से मना कर दे

जब समाचारपत्र के मुद्रक और प्रकाशक ने पुन हस्ताक्षर करने व मुद्रक और प्रकाशक की हैसियत से अपने कर्त्तव्यो की पालना करने से मना कर दिया तब पत्र के प्रबधक व सपादक ने धारा 19 घ मे प्रकाशक के नाम से घोषणा प्रस्तुत की तो प्रबधक और सपादक भा द स की धारा न तो 465 मे और न धारा 471 मे दड योग्य माने गये । (1975 क्री एल जे 90 (95) ।

जब द प्र स की धारा 195(1) आकर्षित नहीं होती

जब मजिस्ट्रेट धारा 19 घ मे सपादक और प्रबधक द्वारा की गयी घोषणा को प्राप्त करता है तो वह अदालत की तरह काम नही करता अत मिथ्या घोषणा करने का आरोपित अपराध सबधित पक्षकार द्वारा किया नही माना जाता क्योकि द प्र स की धारा 195(1) यहा आकर्षित नही होती । (1975 क्री एल जे 90(95) ।

भाग 5

प्रकीर्ण

20 नियम बनाने की शक्ति

केन्द्रीय सरकार द्वारा धारा 20 क के अधीन बनाये गये नियमो से सगत ऐसे नियम जैसे कि इस अधिनियम के उद्देश्यो को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक या वाछनीय हो, बनाने की और ऐसे नियमो को समय-समय पर निरस्त परिवर्तित करने या परिवर्धित करने की शक्ति राज्य सरकार को प्राप्त होगी।

ऐसे सारे नियम और उनके समस्त निरसन तथा परिवर्तन और उनमे किये गये परिवर्धन राजकीय गजट म प्रकाशित किये जायेंगे।

टिप्पणियाँ

मु पु अधि की धारा 20 के तहत राज्य सरकार मु पु अधि के उद्देश्यो को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाने तथा उन्हें राजकीय गजट मे प्रकाशित कराने को सक्षम है।

ऐसे नियम धारा 20 क के तहत केन्द्र सरकार द्वारा बनाये गये नियमो से असगत नही होने चाहिए।

राज्य सरकार के ऐसे नियमो की अनुपस्थिति मे मु पु अधि के उद्देश्यो की कार्यान्वित इन केन्द्रीय नियमो से शासित होगी।

राज्यों के नियम

कृते आन्ध्रप्रदेश – प्रस रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स रूल्स, 1960 (दे आन्ध्रप्रदेश गजट 24 11 1960 भाग II पृष्ठ 541)।

कृते बिहार – प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन (बिहार) रूल्स 1957 (दे बिहार गजट 20 3 1957 भाग II (न 2)।

कृते गुजरात – प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन रूल्स 1968 (दे गुजरात सरकार गजट 10 10 68 भाग IV क, पृष्ठ 693।

कृते जम्मू-कश्मीर – रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स रूल्स (दे जम्मू कश्मीर गजट 31 12 1963, भाग III अतिरिक्त। (न 39 ठ)।

कृते मध्यप्रदेश – प्रस एण्ड रजिस्ट्रेशन रूल्स 1954, (दे म प्र गजट 20 10 1954, भाग IV(ग) पृ 438)।

कृते महाराष्ट्र – प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स रूल्स 1923 (दे महाराष्ट्र सरकार गजट 1963 भाग IV ख पृष्ठ 412 ।

कृते राजस्थान – राजस्थान प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स रूल्स 1951 । ये नियम तत्काल प्रभाव से सम्पूर्ण राज पर लागू हो गये । (दे अधिसूचना दि जयपुर जून 28, 1951 न एफ 2 (II) (36) पत्र 51 गृह विभाग (प्रकाशन) राजस्थान राजपत्र मे दिनाक जुलाई 7, 1951 को भाग IV (ख) पृष्ठ 205 पर सर्वप्रथम प्रकाशित ।

जहाँ नियम नहीं

केरल – निदेशक, जनसम्पर्क (ग) विभाग त्रिवेन्द्रम ने अपने पत्र क्रमांक 1989 दिनाक 27 1 1986 द्वारा लेखक को सूचित किया कि पु पु अधि की धारा 20 के तहत यहाँ कोई नियम नही बनाये गये हैं ।

कर्नाटक – सूचना व प्रचार विभाग, कर्नाटक ने अपने पत्र दिनाक 29 नवम्बर, '85 को लेखक को सूचित किया कि पु पु अधि की धारा 20 के तहत यहा कोई नियम नही बनाये गये हैं ।

20क केन्द्र सरकार की नियम बनाने की शक्ति

केन्द्र सरकार राजकीय गजट मे एक अधिसूचना के जरिये नियम बना सकती है –

(क) वह विशिष्टियाँ विहित करने वाले, जो धारा 5 के अधीन की गई और हस्ताक्षरित घोषणा मे अन्तर्विष्ट हो सकेगी, और वह प्रारूप तथा रीति जिसमे समाचार के मुद्रक प्रकाशक मालिक और सम्पादक का नाम तथा इसके मुद्रण का स्थान व प्रकाशन का स्थान ऐसे समाचारपत्र की प्रत्येक प्रति पर मुद्रित हो सकेगा ।

(ख) वह रीति विहित करने वाले जिसम कि मजिस्ट्रेट की पदीय मुद्रा से अभिप्रमाणित किसी घोषणा या घोषणा क प्रमाणिकरण की अस्वीकारी के आदेश की प्रतियाँ घोषणा को पेश करने व हस्ताक्षरित करने वाले व्यक्ति तथा प्रेस रजिस्ट्रार को भेजी जा सकेंगी ।

(ग) वह रीति विहित करने वाले जिसके अनुसार किसी समाचारपत्र की प्रतियाँ प्रेस रजिस्ट्रार को धारा 11 ख के अधीन भेजी जा सकेंगी ।

(घ) वह रीति, जिसमें कि रजिस्टर धारा 19 ख के अधीन रखा जा सकेगा और वे विशिष्टियाँ, जो कि उसमे अन्तर्विष्ट हो सकेगी, विहित करने वाले ।

(ङ) ऐसे विशिष्टियाँ विहित करने वाले, जो कि उस वार्षिक विवरण म समाविष्ट हो सकेंगी जो कि समाचारपत्र के प्रकाशक द्वारा प्रेस रजिस्ट्रार को दिया जाना है।

(च) वह प्रारूप तथा रीति विहित करने वाले जिसम धारा 19 घ के खण्ड (क) के अधीन कोई वार्षिक विवरण या धारा 19 (ङ) के अधीन कोई वार्षिक विवरणी अथवा अन्य जानकारी प्रेस रजिस्ट्रार को भेजी जा सकेगी।

(छ) रजिस्टर के उद्धरणों की प्रतियाँ देने की फीस और वह रीति जिसमे ऐसी प्रतियाँ दी जा सकेंगी विहित करने वाले।

(ज) वह रीति विहित करने वाले, जिसम कि समाचारपत्र के सबध मे रजिस्ट्रीकरण का प्रमाणपत्र दिया जा सकेगा।

(झ) वह प्रारूप जिसमे और वह समय जिसके अन्दर वार्षिक प्रतिवेदन प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा तयार किये जा सकेंगे और केन्द्रीय सरकार को भेज जा सकेंगे विहित करने वाले।

(2) इस धारा के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम बनाये जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र ससद के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र म हो कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जायेगा। यह अवधि एक सत्र मे अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी। यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनो सदन उस नियम म कोई परिवतन करने के लिए सहमत हो जाए तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप मे ही प्रभावी होगा। यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाए कि वह नियम नही बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा। किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधि मान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नही पडेगा।

टिप्पणियाँ

मु पु अधि 20 क के तहत केन्द्र सरकार स्वय धारा 20 क की उपधारा-1 के मद न क से झ म वर्णित विशिष्टियो पर नियम बनाने को सक्षम है।

ये नियम राजकीय राजपत्र में एक अधिसूचना के जरिये बनाये जाने चाहिये।

धारा 20 क की उपधारा 2 जो 1960 के अधि 26 (1-10 60 से प्रभावशील) द्वारा प्रतिस्थापित की गई है, मे बताया गया है कि ये

नियम ससद द्वारा किस प्रकार पारित किये जायेंगे। यह एक वैधानिक प्रावधान है जिसके उल्लघन से इन नियमो को असवैधानिक करार दिया जा सकता है।

धारा 20 क 1955 के अधि 55 (1-7-1956 से प्रभावशील) द्वारा शामिल की गई है।

धारा 20 क मे प्रदत्त शक्तियो के प्रयोग मे केन्द्र सरकार ने केन्द्रीय नियम अर्थात समाचारपत्रो का पजीयन (केन्द्रीय) नियम 1956 बनाये है। (द अधिसूचना दिनाकित नई दिल्ली-2, जून 22, 1956/एस आर ओ 1519) भारत सरकार का गजट 1956 अतिरिक्त भाग II धारा 3 पृष्ठ 1537 मे प्रकाशित।

इसके नियम न 2 के अनुसार, ये नियम 1-7-1956 से लागू हो गये हैं।

20ख इस अधिनियम के तहत बने नियम निर्धारित कर सकते हैं कि इनका उल्लघन दडनीय होगा।

इस अधिनियम के किन्ही प्रावधानो के तहत बना कोई नियम निर्धारित कर सकता है कि इनका उल्लघन 100/ रु से अनधिक जुर्माना से दडनीय होगा।

टिप्पणियाँ

यह धारा 1960 के अधि 26 (1-10-1960 से प्रभावशील) द्वारा शामिल की हुई है। यह धारा प्रावधान करती है कि इस अधि के किसी भी प्रावधान के तहत बना कोई भी नियम यह प्रावधान कर सकता है कि उनका उल्लधन 100 रु से अनधिक जुर्माना मे दडनीय है जिसका तात्पय यह हुआ कि 1-10-60 या इसके बाद केन्द्र सरकार यहाँ तक कि राज्य सरकार यह प्रावधान कर सकती है कि उनके द्वारा बनाये गये नियमो का उल्लघन 100/ रु से अनधिक के जुर्माने से दडनीय होगा।

केन्द्रीय नियम ऐसी किसी शास्ति का प्रावधान नही रखते।

राजस्थान नियम

राजस्थान नियम भी ऐसी किसी शास्ति का प्रावधान नही रखते।

21 किसी विशेष प्रकार की पुस्तको को इस अधिनियम के प्रवतन से अपवर्जित करने की शक्ति

राज्य सरकार किसी विशेष प्रकार की पुस्तको या पत्रो को इस अधिनियम के सम्पूर्ण भाग या इसके किसी भाग या भागो के प्रवतन से राजकीय गजट में अधिसूचना द्वारा अपवर्जित कर सकेगी।

परन्तु समाचारपत्रों के किसी वग के सबध में ऐसी कोई अधिसूचना केन्द्र सरकार की सलाह के बिना जारी नही की जायेगी।

टिप्पणियां

यह धारा राज्य सरकार को मु पु अधि के किसी भाग या भागो की पूरण व आंशिक कार्यान्विति से पुस्तको व पत्रो के किसी वग को अपवर्जित करने को सक्षम बनाती है।

(i) ऐसी शक्ति राजकीय गजट मे एक अधिसूचना के जरिये काम मे ली जानी चाहिए और —

(ii) समाचारपत्रो के मामले मे ऐसी अधिसूचना केन्द्रीय सरकार से सलाह लिये बिना जारी नही करनी चाहिए।

विधि प्रकरण

धारा 3 जन्य जनसाधारण को असुविधा का उपचार धारा 21 मे

धारा 21 के कारण एक विजिटिंग काड और यहां तक कि डिनर पार्टी का दिया गया एक आम त्रण पत्र भी दस्तावेज है और ये धारा 3 के क्षत्र मे आयेंगे। आम जनता को इसमे जो परेशानी होती है, उसका उपचार धारा 21 मे है जो राज्य सरकारो को इस अधिनियम की कार्यान्विति से पुस्तको और पत्रो के किसी वग को अपवर्जित करने की शक्तियां प्रदान करता है। (ए 1960 आन्ध्रप्रदेश 176 (177)

राजस्थान नियम

रा नि 9 के अनुसार जब सरकार द्वारा जारी एक सूचना के अनुसार मु पु अधि की धारा 21 के तहत द प्र स की धारा 91 (क) (अब धारा 95) के तहत जब्त की हुई किसी पुस्तक को मु पु अधि के भाग V की कार्यान्विति से अपवर्जित कर दिया गया हो तो ऐसी पुस्तक के सदभ मे धारा 18 के तहत पुस्तको के "सूचीपत्र" मे की गयी प्रविष्टियां (यदि कोई हुई हो तो) लोप हो जायेगी।

कॉलेज व स्कूल की मैगजीनें

मु पु अधि के तहत कॉलेज व स्कूल की मैगजीनो को घोषणा पेश करने मे अपवर्जित रखा गया है। (दे अधिसूचना जयपुर जून 8, 1955/न एफ 35 (5) गृह II/55 राजस्थान राजपत्र दिनाक जून 18, 1955 भाग I (ख) पृष्ठ 221 मे प्रकाशित।

22 विस्तार

इस अधिनियम का विस्तार समस्त भारत पर है।

टिप्पणियाँ

सशोधन अधिनियम (1965 का अधि 16) के पूव शब्द "भारत" जिसका प्रयोग निवचन खड मे किया गया था, की परिभाषा यो थी – "भारत से अथ जम्मू व कश्मीर राज्य को छोडकर भारत की सीमा से है।" लेकिन इस सशोधन अधिनियम के द्वारा यह परिभाषा लोप कर दी गयी। इस सशोधन अधि के पूव धारा 22 म भी यह था कि इस अधि का विस्तार समस्त भारत पर होगा सिवाय जम्मू कश्मीर राज्य को छोडकर परन्तु इस सशोधन अधि द्वारा धारा 22 मे से "सिवाय जम्मू-कश्मीर राज्य को छोडकर" नामक शब्दावली लोप कर दी गयी है जिसका अथ यह हुआ कि मु पु अधि सम्पूर्ण भारत पर लागू होता है।

मु पु अधि जहा तक समाचारपत्रो का सवाल है सन् 1983 से सिक्कम राज्य पर भी लागू कर दिया गया है।

सामान्य टिप्पणियाँ

23 (प्रारम्भ) निरसन अधिनियम, 1870 (1870 का 14) द्वारा निरसित।

मु पु अधि के तहत शास्तियो की प्रकृति

धारायें 12 से 16 ख और 19 ट, 19 ठ और 20 ख मु पु अधि के तहत विभिन्न प्रकार के अपराधो के लिए विभिन्न प्रकार की शास्तियो से सम्बन्धित है।

इन धाराओ मे शास्तिया की निम्न प्रकृति पायी जाती है –

(i) जुर्माना
(ii) सम्पत्ति की जब्ती
(iii) जुर्माना या साधारण कारावास या दोनो
(iv) कारावास या जुर्माना या दोनो
(v) जुर्माना और कारावास

जुर्माना

प्रत्येक चूक के लिए निम्न स्थितियो मे 50/- रुपये से अधिक का जुर्माना लगाया जा सकता है –

(i) धारा 11 क की पालना मे यानि मुद्रक द्वारा सरकार को मुद्रित समाचारपत्र की प्रतियाँ नि शुल्क भेजना, की अवहेलना करने पर। (दे धारा 16 क)

(ii) धारा 11 ख यानि प्रकाशक द्वारा प्रकाशित समाचारपत्र की प्रतिया प्रेस रजिस्ट्रार को नि शुल्क भेजना, की अवहेलना करने पर। (दे धारा 16 ख)

मु पु अधि के तहत बने नियमो मे कोई भी नियम मे यह प्रावधान रखा जा सकता है कि इनका उल्लघन 100/- रुपये के अनधिक जुर्माने से दण्डनीय होगा। (दे धारा 20 ख)

धारा 8 के तहत घोषणा करने मे यानि उन व्यक्तियो द्वारा नई घोषणा जिन्होने घोषणा हस्ताक्षरित की है जो उसके पश्चात् मुद्रक और प्रकाशक नही रहे हैं, ऐसा करने मे असफल होने पर 200/- रुपय स अनधिक का जुर्माना लगाया जा सकता है। (दे धारा 15 क)

निम्न दशाओ मे 500/- रुपये से अनधिक का जुर्माना लगाया जा सकता है –

(i) धारा 19 घ (क) यानि समाचारपत्र के प्रकाशक द्वारा वार्षिक विवरण भेजना, के उल्लघन किये जाने पर। (दे धारा 19 ट)

(ii) धारा 19 घ (ख) यानि समाचारपत्र मे निर्दिष्ट समय पर निर्दिष्ट विशिष्टियाँ प्रकाशित करने के उल्लघन करने पर। (दे धारा 19 ट)

(iii) धारा 19 ञ यानि समाचारपत्र के प्रकाशक द्वारा रिटर्न् स और रिपोट् स भेजना, का उल्लघन करने पर। (देखिये धारा 19 ट)

(iv) धारा 19 घ के खण्ड (ख) की पालना के नाम पर मिथ्या विवरण समाचारपत्र मे प्रकाशित करना। (देखिये धारा 19 ट)

सम्पत्ति की जब्ती

50/- रुपये से अनधिक की राशि और पुस्तका य नक्शा का विनिश्चिय किया हुआ मूल्य जैसा भी मामला हो, सरकार द्वारा जब्त किया जायेगा।

(i) धारा 19 के तहत यानि मुद्रित पुस्तको की प्रतियो के सरकार को नि शुल्क प्रदाय करना, की अवहेलना करने पर। (देखिये धारा 16)

(ii) धारा 9 के तहत यानि प्रकाशक द्वारा मुद्रक को नक्शे आदि प्रदाय न करना। (दे धारा 16)

जुर्माना या साधारण कारावास या दोनों

2,000/- रु से अनधिक का जुर्माना या छह माह से अनधिक का साधारण कारावास या दोनो निम्न दशाओ मे लगाये जा सकते है –

(i) धारा 3 के नियम यानि पुस्तको व पत्रो पर विशिष्टिया मुद्रित करने, का उल्लघन करने पर। (दे धारा 12)

(ii) धारा 4 के नियम यानि मुद्रणालय के धारक द्वारा घोषणा करना, का उल्लघन करने पर। (दे धारा 13)

(iii) जो कोई एतत्पूर्ण विहित नियमो का अनुवतन किये बिना किसी समाचारपत्र का सम्पादन, मुद्रण या प्रकाशन करेगा। (दे धारा 15 (i)

क्या यहा घोषणा का निरस्तीकरण शास्ति प्रकृति का है।

धारा 15 (i) के तहत शास्ति के साथ-साथ एक समाचारपत्र का घोषणा-पत्र भी निरस्त किया जा सकता है।

यहा यह प्रश्न उठता है कि धारा 15 (2) मे घोषणा निरस्तीकरण का प्रावधान एक दण्डनीय प्रकृति का है या शासकीय कार्यवाही है। ऐसा दिखायी देता है, यह शासकीय कायवाही है।

कारावास या जुर्माना या दोनो

छह माह से अनधिक का कारावास या 1,000/- रु से अनधिक का जुर्माना या दोनो निम्न दशाओ मे लगाया जा सकता है –

(i) मु पु अधि के तहत सूचना सग्रह के काय मे लगे हुए किसी व्यक्ति द्वारा उस सूचना को अनुचित रूप से प्रकट करना।

(ii) इस प्रकार की सूचना के सप्रकटीकरण के पीछे इस व्यक्ति का प्रयोजन मु पु अधि अथवा भा द स के तहत व्यक्ति विशेप के विरुद्ध अभियोजन चलवाना रहा हो।

जुर्माना अथवा कारावास

2,000/- रु से अनधिक का जुर्माना अथवा छह माह से अनधिक का कारावास उस समय दिया जा सकता है जब कोई मु पु अधि के प्राधिकार के तहत मिथ्या कथन अथवा घोषणा करे। (दे धारा 14)

स्वत कार्यवाही बनाम परिवाद पर कार्यवाही

धारा 16 की प्रथम व द्वितीय कडिका मे चूक के लिए युक्तियुक्त शास्ति और प्रतियो या नक्शो के मूल्य का युक्तियुक्त मूल्य जसा भी मामला हो, उस अधिकारी जिसको कि प्रतियाँ भेजनी हैं द्वारा सबसे पहले मजिस्ट्रेट को लिखने पर किया जा सकता है।

यह एक वधानिक प्रावधान है कि धारा 16 क के तहत जब तक सम्बधित अधिकारी द्वारा जिसे की प्रतियाँ भेजनी हैं, मजिस्ट्रेट को लिखित परिवाद न करे तब तक कोई कायवाही नही की जा सकती।

इस तरह धारा 16 ख के तहत भी जब तक प्रेस रजिस्ट्रार मजिस्ट्रेट को परिवाद न करे तब तक कोई कायवाही नही की जा सकती है। दोनो ही धाराएँ 16 और 16 क के तहत यह अधिकारी इस उद्देश्य के लिए किसी दूसरे को अधिकृत कर सकता है।

यह उजागर होता है कि जहाँ दो धाराएँ 12 से 15 क के तहत मजिस्ट्रेट स्वत कायवाही कर सकता है वहाँ धाराएँ 16 से 18 ख के तहत वह स्वत कायवाही नही कर सकता है।

शब्द "कारावास" जब इसके आगे पीछे कोई विशेषण नही हो तो इसका अथ साधारण यहाँ तक कि सश्रम (कठोर) कारावास से भी माना जाना चाहिए। चूकि मु पु अधि के तहत शब्द "कारावास" के आगे पीछे कोई विशेषण नही ह, इसलिए इस अधिनियम के तहत सश्रम कारावास भी दिया जा सकता है।

अपराधो का विधिशास्त्र

इन धाराओ से उत्पन्न अपकृत्य (दोष) या तो आपराधिक अभिप्राय से या किसी विशेष चीज को करने या नही करने के पूण आपराधिक दायित्व के प्रति प्रमाद से उत्पन्न हुए हैं।

अभिप्राय दो चीजो से सिमटता पाया जाता है – यह दूर-दृष्टि कि कुछ विशेष परिणाम इस कृत्य से अनुसरित होंगे और उन

परिणामो की इच्छा जिसे अभिप्राय ने कृत्य करने को उकसाया। (होम्स, दी कामन लॉ, 53)

प्रमाद एक सदोष लापरवाही है। ग्रिल बनाम जनरल आईरन स्कूल कोलियरी क मे न्यायाधीश विलियम कहते हैं—ऐसी सावधानी की अनुपस्थिति जिसे प्रतिवादी प्रयोग मे लाने का कर्त्तव्य रखता था। (1866) एल आर आई सी पी पृष्ठ स 612)।

प्रमाद दो प्रकार का होता है, एक असावधानीयुक्त और दूसरा असावधानी युक्त। ध्यानावत प्रमाद साधारणत जानबूझकर "प्रमाद" अथवा "अविचारित" से सबोधित होता है। "असावधानी प्रमाद" को साधारण प्रमाद कहा जा सकता है। ध्यानावत प्रमाद मे अपकार (क्षति) सभावित रूप मे पहले से ही दिखायी देती है जबकि असावधानी प्रमाद में ऐसा न तो दिखायी देता है और न ऐसी कोई इच्छा की हुई होती है। (सामण्ड का विधि शास्त्र -- 11वा सस्करण पृष्ठ 422)

कईयो द्वारा यह माना गया है कि प्रमाद का अस्तित्व आवश्यक रूप मे "असावधानी" मे है। (दे आस्टिन, लेक्चर XX)

अभिप्राय की तुलना मे, प्रमाद आवश्यक रूप से व्यक्तिनिष्ठ है। प्रमाद घोर, साधारण या मामूली हो सकता है। मजिस्ट्रेट का जुर्माना या कारावास या दोनो से ही दडित करने का स्वविवेक प्रमाद की मात्रा के तदानुसार कुछ सीमा तक प्रयोग मे लाया जा सकता है।

मु पु अधि के तहत अपराधों की अन्वीक्षा

स्वय मु पु अधि इस बात पर चुप है कि इसके तहत किये गये अपराधो की अन्वीक्षा के लिए क्या प्रक्रिया अपनायी जायेगी। ऐसी स्थिति मे द प्र स मे निर्धारित अन्वीक्षा की प्रक्रिया इन अपराधो की अन्वीक्षा में अपनायी जावेगी। द प्र स की धारा 4 मे द प्र स द्वारा निर्धारित प्रक्रिया भा द स के तहत किये गये अपराधो और यहाँ तक कि "अन्य विधियो" के तहत किये अपराधों पर भी लागू होती है। यहाँ "अन्य विधियो" मे मु पु अधि भी शामिल है। इसी धारा 4 के अन्तिम भाग के अनुसार द प्र स की प्रक्रिया मु पु अधि पर लागू नहीं होती यदि स्वय मु पु अधि द्वारा या किसी अन्य ऐसी विधि जो विशेषकर मु पु अधि के लिए ही बनायी गयी हो, द्वारा ऐसी प्रक्रिया बनायी गयी होती।

कोई भी मामूली (प्रिटी) अपराध नहीं

मु पु अधि के तहत कोई-सा भी अपराध द प्र स की धारा 206 के खण्ड-2 में परिभाषित – मामूली अपराध के क्षेत्र में नहीं आता क्योंकि स्वय मु पु अधिनियम अपराधी की अनुपस्थिति में उसके दोष के लिये उसको दंडित करने का कोई प्रावधान नहीं रखता। इस प्रकार के प्रयाजन के लिये अन्य "दूसरी विधि (जिसका तात्पय यहाँ मु पु अधि से है)" में ऐसा प्रावधान होना पूव शत है।

सम्मन केसेज

मु पु अधिनियम म कोई भी दडनीय अपराध 2 वष से अधिक कारावास का नहीं है। अत ऐसा अपराध द प्र स की धारा-2 के तहत सम्मन केस की परिभाषा में आता है। यही कारण है कि सम्मन केस के लिए द प्र स में निर्धारित की गई प्रक्रिया इन अपराधों पर भी लागू होगी।

असज्ञेय व काबिले जमानत – मु पु अधि के तहत कोई-सा भी अपराध सज्ञय (पुलिस द्वारा हस्तक्षप योग्य) नहीं है। द प्र स की धारा 2(ग) म सज्ञय अपराध की परिभाषा दी गयी है।

सज्ञेय अपराध से अथ एव ऐसे अपराध से लिया गया है जिसमें पुलिस बिना अधिपत्र (वारन्ट) के मुलजिम को गिरफ्तार कर सकती है।

अन्य विधियों के सबध म अपराधों का वर्गीकरण जो द प्र स मे किया गया है, उस प्रथम अनुसूची के अनुसार मु पु अधि के तहत प्रत्येक अपराध असज्ञेय और काबिल जमानत है क्योंकि मु पु अधि के तहत प्रत्येक अपराध 3 वष के कारावास से कम कारावास के हैं।

निगरानी

द प्र स की धारा 372 के तहत किसी भी फौजदारी अदालत के निर्णय व आदेश के विरुद्ध अपील नहीं होगी सिवाय इसके कि ऐसा *प्रावधान द प्र स या अन्य विधि में उल्लिखित हो।* चूंकि मु पु अधि मे अपीलों से सबधित कोई प्रावधान नहीं है अत इस अधि के तहत अपराध अपील योग्य नहीं है। अत ऐसी स्थिति म ऐसे अपराधों में अदालत मातहत के विरुद्ध उच्च न्यायालय या स्थानीय क्षेत्र के सत्र न्यायाधीश के यहाँ सिफ निगरानी ही की जा सकती है।

चूंकि धारा 397 की व्याख्या मे कार्यकारी मजिस्ट्रेट को भी अदालत मातहत माना गया है और मु पु अधि के तहत अपराधो की अन्वीक्षा कार्यकारी मजिस्ट्रेट करता है इसलिए इसके निर्णयो या आदेशो के विरुद्ध निगरानी स्था क्षेत्र के सत्र न्यायाधीश या संबंधित उच्च न्यायालय के यहां होगी। वैसे कार्यकारी मजिस्ट्रेट जब मु पु अधि के तहत दंड पारित करता है तो वह न्यायिक अधिकारी की भूमिका निभाता है।

नई द प्र स के तहत किसी भी अन्तरिम आदेश के विरुद्ध निगरानी नही होगी।

जुर्माना की "न अदायगी" के लिए कारावास

स्वयं मु पु अधि जुर्माना की "न अदायगी के लिए कारावास सम्बन्धी प्रावधानो पर चुप है।

द प्र स की धारा 29 व 30 जो ऐसे प्रावधान रखती है, वे सिर्फ न्यायिक अदालतो पर लागू होती नजर आती है। चूंकि मु पु अधि के भाग 4 के तहत दण्ड देते समय मजिस्ट्रेट जो कार्य करता है उस समय वह एक न्यायिक अफसर की तरह कार्य करता है, ऐसी स्थिति मे दण्ड प्रक्रिया संहिता मे जुर्माना की चूक के लिए जो प्रावधान हैं वे मु पु अधि के भाग 4 पर भी लागू होगे।

दण्ड प्र स की धारा 30 के प्रकाश मे मु पु अधि के भाग 4 के तहत मजिस्ट्रेट दण्ड देते समय जुर्माने की चूक के लिए उस सजा की चौथाई सजा तक दे सकता है जो उसे मु पु अधि के तहत मूलत देने का हक है।

मु पु अधि के तहत अधिक से अधिक सजा 6 माह की है जो एक मजिस्ट्रेट दे सकता है। अत जुर्माना की चूक के लिए मजिस्ट्रेट डेढ माह तक का सजा दे सकता है।

जुर्माने की चूक के लिए जो सजा दी जायेगी वह अपराध के लिए दी गई मूल सजा से अतिरिक्त हो सकती है।

सज्ञान की मियाद (अवधि)

मु पु अधि अपराधो के सज्ञान के लिए अवधि सम्बन्धी प्रावधानो पर चुप है। ऐसे प्रावधान द प्र स के अध्याय 36 मे मिलते हैं। द प्र स की धारायें 467 व 468 की बनावट कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा अन्वीक्षा किये जाने वाले प्रकरणों पर भी लागू होती नजर आती है

मु पु अधि के अपराधो के सज्ञान की अवधि द प्र स की धारा 468(2)(क)(ख) द्वारा निम्न प्रकार सचालित होगी –

(क) छह माह – यदि अपराध सिर्फ जुर्माना से दडनीय हो।

(ख) एक वर्ष – यदि अपराध एक वर्ष से अनधिक कारावास का हो।

अभिसधय (राजीनामा) योग्य नहीं

मु पु अधि स्वय अपराधो के राजीनामा सबधी प्रावधानो पर चुप है। ऐसे प्रावधानो के अभाव मे, द प्र स की धारा 320 यहा लागू नही होगी क्योकि यह धारा भा द स के ही कुछ प्रकरणो पर लागू होती है।

द प्र स की धारा 320 का खण्ड 9 भी इस प्रकार का आशय रखता है जिसमे कहा गया है – कोई भी अपराध इस धारा द्वारा वर्णित अपराधो के सिवाय अभिसधय योग्य नही है।

प्रकरणों की वापसी

द प्र स की धारा 321 न्यायालय की सहमति से अभियोजन से प्रकरणो को वापिस लेने की प्रक्रिया के सबध मे बताती है। यदि वापसी चार्जेज (आरोप) लगाने के पूर्व होती है तो अभियुक्त डिस्चार्ज (आरोप रहित) माना जायेगा यदि वापसी आरोप लगाने के बाद होती है तो अभियुक्त दोषमुक्त (बरी) होने का हकदार है।

अदालत वापसी की सहमति देने के पूर्व उस जन-अभियोजक को जो केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त नही किया गया है, को यह निर्देश दे सकती है कि वह निम्न दशाओ से जन्य अभियोजन की वापसी वाले प्रकरणो मे केन्द्र सरकार की वापसी लेने की स्वीकृति पेश करें।

(i) जब ऐसा अपराध एक ऐसी विधि के विरुद्ध हो जिसमे केन्द्र की कार्यकारी शक्तियां विस्तारित होती हो अथवा

(ii) अपराध ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसने केन्द्र सरकार की सेवा मे रहते हुए अपने सरकारी कर्तव्यो की पालना के नाम पर यह किया है।

सुझायात्मक प्रपत्र (1)

प्रस्तावित समाचारपत्र के मालिक/प्रकाशक द्वारा शीर्षक (निष्कासन) पुष्टि हेतु आवेदन पत्र

भारत के समाचारपत्रो के पजीयक,
पश्चिम खड 8 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली 110066

जरिये –
जिला/मेट्रोपोलिटान/उपखड मजिस्ट्रेट

श्रीमान्जी,

मैं पुत्र श्री जाति
आयु निवासी तहसील
जिला राज्य एक समाचारपत्र
प्रकाशित करने का आशय रखता हूँ। इस प्रस्तावित समाचारपत्र के सबध मे आवश्यक जानकारी निम्न प्रकार है –

(1) निम्न मे से कोई एक शीर्षक (वैकल्पिता दिखाते हुए वरीयता क्रम में) आप द्वारा पुष्ट होना है –

(i) (ii) (iii)

(iv) (v)

(2) भाषा

(3) नियतकालिता

(4) प्रकाशन-स्थल

(क) गाव/कस्बा/शहर

(ख) तहसील

(ग) जिला

(घ) राज्य

कृपया उपरोक्त वर्णित शीर्षको मे किसी एक शीर्षक की पुष्टि करने का कष्ट करें ताकि मैं मुद्रणयन्त्र व पुस्तक पजीकरण अधिनियम 1867 की धारा 5 के तहत घोषणा प्रस्तुत कर सकू।

स्थान भवदीय

दिनाक

(प्रस्तावित समाचारपत्र के मालिक/प्रकाशक के हस्ताक्षर)

डाक का पूरा पता

नोट – इस प्रकार का आवेदन-पत्र दो प्रतियो मे प्रस्तावित समाचारपत्र के मालिक/प्रकाशक अथवा इस सबध म उसके द्वारा प्राधिकृत किसी एजेंट द्वारा स्वय उपस्थित होकर प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

सुझावात्मक प्रपत्र (2)

मुद्रणयन्त्र के धारक द्वारा घोषणा

(देखिये मु पु अधिनियम 1867 की धारा 4(1)

(मुद्रणयत्र) मसस के मामले म

जिला/मेट्रोपोलिटन/उपखड मजिस्ट्रेट

विषय – मुद्रण हेतु मुद्रणयत्र रखने तत्सबधी घोषणा

मैं पुत्र श्री जाति

आयु निवासी तहसील

जिला राज्य घोषणा करता हूँ

कि निम्न स्थान पर मैं एक मुद्रणयत्र मुद्रणार्थ रखता हूँ। (जहाँ मुद्रणयत्र स्थित है, उस स्थान का ठीक ठीक वर्णन दीजिये।)

मुद्रणयत्र की स्थिति

1 गाव/कस्बा/शहर

2 वाड/गली

3 तहसील

4 जिला

5 राज्य

6 अमुक के परिसर मे (स्वय का या किराये का)

(क) पूव दिशा मे

(ख) पश्चिम दिशा मे

(ग) उत्तर दिशा मे

(घ) दक्षिण दिशा मे

7 डाक का पता (मुद्रणयन्त्र के नाम सहित)

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि उपरोक्त वर्णित कथन मेरी व्यक्तिगत जानकारी के अधिकतम विश्वास से सही है। इसमे कुछ भी छुपाया नही गया है।

स्थान मुद्रणयन्त्र के धारक के हस्ताक्षर

दिनाक पद

सुझावात्मक प्रपत्र (3)

मुद्रणयन्त्र के धारक द्वारा विवरण

(देखिए मु पु अधिनियम 1867 की धारा 4 (2) क)
(मुद्रण यन्त्र का नाम) मैसस के मामले मे
जिला/मेट्रोपोलिटान/उपखड मजिस्ट्रेट

विषय – मुद्रणयत्र के स्थान में अस्थायी परिवर्तन

श्रीमान्जी,

मैं पुत्र श्री जाति
आयु--- -- निवासी तहसील राज्य
सूचना देता हूँ कि मैंने मेरे मुद्रणयत्र की स्थिति निम्न प्रकार से अस्थायी रूप से परिवर्तित की है –

परिवर्तित स्थान परिवर्तन के पूव का स्थान

(1) गाँव/कस्बा/शहर
(2) वार्ड/गली
(3) तहसील
(4) जिला
(5) राज्य
(6) अमुक के परिसर में
(7) जिसका हद्दूदरवा
   (क) पूव दिशा मे
   (ख) पश्चिम दिशा मे
   (ग) उत्तर दिशा म
   (घ) दक्षिण दिशा मे
(8) डाक का पता
    मुद्रणयत्र के नाम सहित
(9) परिवतन की
    तिथि व समय

मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि यह परिवतन 60 दिवस से अधिक के लिए नहीं है।

स्थान (मुद्रणयत्र के धारक के हस्ताक्षर)
दिनाक पद

नोट – यह विवरण तत्सबधी परिवतन क 24 घण्टो के अन्दर क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट के यहा दो प्रतियो म भिजवाया जाना है।

सुझावात्मक प्रपत्र (4)

(समाचारपत्र का नाम) के मुद्रक/प्रकाशक द्वारा विवरण

(देखिए मु पु अधिनियम 1867 की धारा 5 (3) (क)

जिला/मिट्रोपोलिटान/उपखड मजिस्ट्रेट

..

विषय – मुद्रण का स्थान अथवा/और प्रकाशन स्थल का अस्थायी परिवर्तन

मैं पुत्र श्री जाति आयु निवासी तहसील जिला .. .. राज्य आपको सूचना देता हू कि मैंने उपरोक्त नाम के समाचारपत्र का मुद्रण/प्रकाशन-स्थल निम्न प्रकार से अस्थायी रूप से परिवर्तित किया है –

	क		ख	
	परिवर्तित मुद्रण का स्थान	परिवर्तन के पूर्व	परिवर्तित प्रकाशन स्थल	परिवर्तन के पूर्व
1 गाँव/कस्बा/शहर	---- ---	.. ..	--- ..	..
2 वार्ड/गली	--- ..	---- ----	..	
3 तहसील	..	----	..	
4 जिला	---	.. ..		..
5 राज्य	.. ..		.. ..	
6 अमुक के परिसर मे	---- ----	.. ..		... ..
7 जिसका हुदूदरवा	..	....		....
(क) पूर्व दिशा मे	.. ..	...	.. ..	....
(ख) पश्चिम दिशा मे	-----	---- ..	.. .. ..	....
(ग) दक्षिण दिशा में	--- .. ---	....	--- -- ---	....
(घ) उत्तर दिशा म	--- ..	---- ----	....	

8 डाक का पता .. ..

9 परिवतन की तिथि
व समय

मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि यह परिवर्तन 60 दिनो से अधिक के लिए नही है ।

स्थान .. ..

दिनाक (मुद्रक या/और प्रकाशक के हस्ताक्षर)

नोट — तत्सबधी परिवतन के 24 घण्टों के अन्दर यह विवरण क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट के यहाँ भिजवाया जाना है ।

सुझायात्मक प्रपत्र (5)

उन व्यक्तियों द्वारा नई घोषणा जिन्होंने घोषणा हस्ताक्षरित की है तथा जो उसके पश्चात मुद्रक या प्रकाशक नहीं रहे हैं
(देखिए मु पु अधिनियम 1867 की धारा 8)

(समाचारपत्र का नाम) ...के मामले मे

जिला/मेट्रोपोलिटान/उपखड मजिस्ट्रेट

.. ..

..

प्रसग —धारा 5 के तहत प्रस्तुत व हस्ताक्षरित घोषणा जो दिनाक .... को प्रमाणित हुई ।

श्रीमान्जी,

उपरोक्त वर्णित प्रमाणित घोषणा के प्रसग मे मैं .. पुत्र श्री जाति आयु .. निवासी .. घोषणा करता हूँ कि मैं (समाचारपत्र का नाम) का मुद्रक या प्रकाशक या मुद्रक और प्रकाशक नहीं रहा ।

स्थान (घोषणाकर्त्ता के हस्ताक्षर)

दिनाक .. पद ..

नोट —घोषणाकर्त्ता मजिस्ट्रेट के सम्मुख स्वय उपस्थित होकर यह घोषणा दो प्रतियों में प्रस्तुत व हस्ताक्षरित करेगा ।

सुझावात्मक प्रपत्र (6)

उस व्यक्ति द्वारा घोषणा जिसका नाम सम्पादक के रूप मे
अशुद्धत प्रकाशित हो गया है
(देखिए मु पु अधि 1867 की धारा 8 क)

(समाचारपत्र का नाम) के मामले मे
जिला/मेट्रोपोलिटान/उपखड मजिस्ट्रेट

प्रसग – (स्थान) से प्रकाशित (समाचारपत्र का नाम) के अक सख्या दिनाक

श्रीमान्जी,

मैं पुत्र श्री " जाति आयु निवासी घोषणा करता हूँ कि (समाचारपत्र का नाम) " के अक सख्या दिनाक मे सम्पादक के रूप मे मेरा नाम गलत छप गया है। वास्तविकता यह है कि इस सबधित अक का मैं सम्पादक नही था।

कृपया जाच करके तदनुसार तस्दीक करने का कष्ट करें।

स्थान " (घोषणाकर्त्ता के हस्ताक्षर)
दिनाक डाक का पता

नोट —जब घोषणाकर्त्ता इस तथ्य से विज्ञ हो कि उसका नाम इस तरह प्रकाशित हो गया है तो वह विज्ञता के दो सप्ताह के अदर मजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित होकर इस तरह की घोषणा प्रस्तुत कर सकता है।

सुझावात्मक प्रपत्र (7)

कार्यालय – जिला/मेट्रोपोलिटान/उपखड मजिस्ट्रेट

क्रमाक दिनाक

प्रकाशक/मुद्रक/सपादक

विषय –मु पु अधि 1867 की धारा 8 ख के तहत कारण बताओ नोटिस

सूचित हो कि श्री " द्वारा प्रस्तुत परिवाद/प्राथना-पत्र अथवा* अन्यथा पर, मैं यह मत रखता हूँ कि (स्थान का नाम)

से प्रकाशित (समाचारपत्र का नाम) ..
के सबध मे आपके द्वारा दिनाक को प्रस्तुत व हस्ताक्षरित घोषणा जो मेरे या श्री द्वारा प्रमाणित हुई, को क्यों नही निरस्त कर दिया जावे। अत आपको प्रस्तावित कार्यवाही के विरुद्ध कारण बताने के लिए अवसर दिया जा रहा है कि दिवसो के अन्दर कारण बताएँ कि सबधित घोषणा क्यो न निरस्त कर दी जावे।
*

उस परिवाद/प्रार्थना-पत्र की एक प्रति आपके अवलोकनार्थ यहाँ सलग्न की जा रही है जिसके आधार पर यह नोटिस दिया जा रहा है।

पदीय मुद्रा (मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर)

नोट —जो लागू न हो, उसे काट दें।

सुझावात्मक प्रपत्र (8)

कार्यालय – जिला/मेट्रोपोलिटन/उपखड मजिस्ट्रेट ..

क्रमाक दिनाक

प्रकाशक/मुद्रक/सपादक,

..

....

विषय मु पु अधि 1867 की धारा 8 ख के तहत सुनवाई का अवसर

मु पु अधि 1867 की धारा 8 ख के तहत एक कारण बताओ नोटिस दिनाकित .. (स्थान का नाम)
से प्रकाशित (समाचारपत्र का नाम) के सबध मे दिनाक .. को आपके द्वारा प्रस्तुत व हस्ताक्षरित तथा मेरे द्वारा या श्री .. द्वारा प्रमाणित घोषणा को क्यो

नही निरस्त कर दिया जावे, विषयक आपको दिया गया था। वह नोटिस आपके द्वारा दिनाक को प्राप्त कर लिया गया था या वह नोटिस चपरासी/पोस्टमन की इस टिप्पणी के साथ बिना तामील के वापिस आ गया था।

सूचित हो कि इस विषय मे सुनवाई की दिनाक नियत की गयी है।

आपकी उपस्थिति मे प्रकरण की एकतरफा सुनवाई कर दी जावेगी।

...

पदीय मुद्रा (मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर)

नोट — जो लागू न हो उसे काट दें।

सुझावात्मक प्रपत्र (9)

चेयरमन साहेब,
प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन अपीलेंट बोर्ड,
फरीदकोट हाउस (ग्राउन्ड फ्लोर)
कापरनिकस मार्ग, नई दिल्ली।

मेमोरेण्डम ऑफ अपील
तहत धारा 8 ग मु पु अधि 1867

(नाम, पद और पता) — अपीलेन्ट

बनाम

श्री

मेट्रोपोलिटान/जिला/उपखण्ड मजिस्ट्रेट
(स्थान जिला राज्य)

उक्त मजिस्ट्रेट साहेब के आदेश दिनाकित के विरुद्ध अपील जिसमे धारा 8 के तहत घोषणा को प्रमाणित करने के लिए मना कर दिया अथवा धारा 8 ख के तहत घोषणा को निरस्त कर दिया।

श्रीमानूजी,

उपरोक्त वर्णित अपीलाट निम्न अपील पेश करता है –

(1) यह दिनाक   को आर एन आई से पुष्ट प्रस्तावित समाचारपत्र का नाम   (भाषा) (नियत कालिका)   के मुद्रक या प्रकाशक या मुद्रक और प्रकाशक की हैसियत से अपीलाट ने मु पु अधि की धारा 6 के तहत एक घोषणा प्रमाणित कराने हेतु उक्त मजिस्ट्रेट साहेब के सम्मुख धारा 5 के तहत प्रस्तुत व हस्ताक्षरित की।

अथवा

यह कि   राज्यान्तगत (प्रकाशन-स्थल)   (जिला)   से दिनाक   से (समाचारपत्र का नाम, भाषा और नियत-कालिका)   मेरे द्वारा मुद्रित/प्रकाशित/सपादित होता आ रहा है। यह समाचारपत्र भारत के समाचारपत्रो के पजीयक से पजीयत सख्या   से भी पजीकृत है।

(2) यह है कि उक्त मजिस्ट्रट साहेब ने अपने आदेश क्रमाक दिनाक   द्वारा मु पु अधिनियम के प्रावधानो के विरुद्ध गर कानूनी और पक्षपात पूर्ण तरीके से दिनाक   को उक्त घोषणा को प्रमाणित करने से मना कर दिया। अत यह आदेश निरस्त फरमाया जावे।

अथवा

यह है कि उक्त मजिस्ट्रेट साहेब ने अपने आदेश क्रमाक दिनाक   द्वारा अपीलेट के – —   (समाचारपत्र का नाम, भाषा और नियतकालिका) को गरकानूनी और पक्षपातपूर्ण तरीके से निरस्त कर दिया।

उक्त आदेश के विरुद्ध अपीलाट अपील के निम्न आधार प्रस्तुत करता है –

(क) यह है कि उपरोक्त मजिस्ट्रेट साहेब का उपरोक्त आदेश मु पु अधिनियम, 1867 के प्रावधानो के विरुद्ध है अत यह निरस्त योग्य है।

(ख) यह है कि मु पु अधि की धारा 8 ख के तहत अपीलान्ट को सुनवाई का कोई अवसर नही दिया गया।

(ग) यह है कि उपरोक्त मजिस्ट्रेट साहेब ने मु पु अधि, 1867 की धारा 5(8) की व्याख्या गलत की है। इस धारा मे तो सिर्फ यह प्रावधान है कि समाचारपत्र के संबंध मे प्रत्येक विद्यमान घोषणा उस मजिस्ट्रेट द्वारा अपखण्डित कर दी जायेगी जिसके सामने उसी समाचारपत्र के संबंध मे नई घोषणा की और हस्ताक्षरित की जाती है। अपीलान्ट का प्रकरण तो बिलकुल इससे भिन्न है। अपीलान्ट ने अपने विद्यमान समाचारपत्र के संबंध मे कोई नयी घोषणा प्रस्तुत नही की अत उस पर यह धारा कैसे लागू हो सकती है अत उक्त मजिस्ट्रेट साहेब अपीलान्ट की विद्यमान घोषणा को अपखण्डित कर ही नही सकते।

(घ) यह है कि मु पु अधि के तहत सिर्फ धारा 8 ख ही एक ऐसी धारा है जिसके तहत विद्यमान समाचारपत्र की घोषणा इस अधि के प्रावधानो के उल्लंघन किये जाने पर विखण्डित की जा सकती है। 'अपीलान्ट ने इस अधिनियम के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नही किया है।

(ङ) यह है कि इस अधिनियम के तहत समाचारपत्रो की नियमितता के संबंध मे एक विशिष्ट प्रावधान (धारा) है जो अपीलान्ट के समाचारपत्र पर लागू होती है। इस प्रावधान के तहत " " की अवधि मे अपीलान्ट द्वारा प्रकाश्य अंको मे से अंक प्रकाशित करने पर ही अपीलान्ट के समाचारपत्र की नियमितता कायम मान लेनी चाहिये थी। लेकिन अपीलान्ट ने तो इस अवधि के लिए अपेक्षित अंको के बजाय प्रकाशित अंक प्रस्तुत किये हैं।

ऐसी दशा मे, उक्त मजिस्ट्रेट साहेब द्वारा उक्त संबंधित अवधि के लिए अपीलान्ट से " " "अंको के प्रकाशन की अपेक्षा करना कानून गलत है।

अथवा

(च) " " " ...

(छ) " " " " " " ... ...

(3) यह है कि उक्त मजिस्ट्रेट साहेब का उक्त आदेश दिनाकित " अपीलाण्ट को दिनाक को साधारण/पजीकृत डाक से मिला ।

(4) यह है कि अपील प्रस्तुत किये जाने के लिए समयावधि समाप्त होने जा रही थी । अत यह अपील समयावधि के अन्दर ही प्रस्तुत की जा रही है ।

अथवा

अपील अवधि बाहर इसलिए पेश की जा रही है क्योकि अपीलाण्ट समय के अन्दर अपील को प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त कारणो से निवारित रहा है । (पर्याप्त कारणो को दिखाने विषयक एक शपथ-पत्र श्री द्वारा तस्दीकशुदा यहा सलग्न है ।

(5) यह है कि यदि अपीलाण्ट को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया गया तो हरवक्त बहस आपकी सेवा मे प्रस्तुत किये जायेंगे ।

अत अपीलाण्ट विनम्र निवेदन करता है कि श्रीमान् अपील की सुनवाई करके उक्त मजिस्ट्रेट साहेब के उक्त आदेश क्रमाक दिनाक को निरस्त फरमाने तथा प्रकरण की परिस्थितियो मे जो आदेश आप उपयुक्त समझें, वह प्रदान करने का कष्ट करें ।

उस आदेश की तस्दीकशुदा एक प्रति जिसके विरुद्ध यह अपील प्रस्तुत की जा रही है, यहा सलग्न है ।

दिनाक हस्ताक्षर अपीलाण्ट

स्थान

(नाम, पद और पता)

नोट – ज्ञातव्य हो मेमोरेण्डम आफ अपील के लिए यह कोई निर्धारित प्रपत्र नही है, यह मात्र सुझावात्मक है अत अनावश्यक को काटते हुए तथा आवश्यक को जोडते हुए अपने केस मे उठाये जा रहे मुद्दो को ध्यान मे रखकर नये सिरे से मेमोरेण्डम ऑफ अपील वर्गीकृत (मदो के क्रम) रूप मे लिखी जानी चाहिए ।

विभिन्न समयावधियों की तालिका

धारा	विवरण	समयावधि	समय जहाँ से अवधि शुरू होती है।	किसको
1	2	3	4	5
	मु० पु० अधि० के तहत			
4(2) (ख)	जब मुद्रण यन्त्र के स्थान का परिवर्तन 60 दिनों से अधिक हेतु न हो, मुद्रणयन्त्रपाल द्वारा विवरण।	24 घण्टे	ज्योंही मुद्रणयन्त्र का स्थान बदला जावे।	स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट
5(3) (क)	जब समाचारपत्र का प्रकाशन अथवा मुद्रण और प्रकाशन का स्थल 60 दिनों से अधिक हेतु नहीं हो। समाचारपत्र के मुद्रक या प्रकाशक और मुद्रक और प्रकाशक द्वारा विवरण।	24 घण्टे	ज्योंही ऐसा परिवर्तन हो।	स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट
5(5) (क)	एक सप्ताह में एक या एक से अधिक बार समाचारपत्र के प्रकाशन का प्रारम्भ होना।	6 सप्ताह	ज्योंही धारा 6 के तहत घोषणा प्रमाणित हो।	स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट
5(5) (ख)	किसी दूसरे प्रकार के समाचारपत्र के प्रकाशन का प्रारम्भ होना।	3 मास	ज्योंही धारा 6 के तहत घोषणा प्रमाणित हो।	स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट
8क	उस व्यक्ति द्वारा घोषणा जिसका नाम सम्पादक के रूप में अशुद्ध छपा हो और जो यह दावा करे कि वह अमुक पत्र का सम्पादक नहीं है।	2 सप्ताह	इस तथ्य से विज्ञ होने से कि उसका इस तरह नाम प्रकाशित हो गया है से	स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट

1	2	3	4	5
8ग	धारा 6 के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणीकरण के लिए अस्वीकारी आदेश के विरुद्ध अपील	60 दिन	जब इस तरह का आदेश पीड़ित व्यक्ति को संचारित हो, से	प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन अपीलेट बोर्ड
	धारा 8ख के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा घोषणा को निरस्त करने के आदेश के विरुद्ध अपील	60 दिन		
9(क)	मुद्रक द्वारा मुद्रित पुस्तक की एक प्रति का निःशुल्क परिदान।	एक कलेण्डर मास के अन्दर	जब ऐसी पुस्तक मुद्रण यन्त्र से सर्वप्रथम परिदत्त की गयी हो, के पश्चात् वाले दिन से।	ऐसे स्थान पर और ऐसे पदाधिकारी को जैसा कि राज्य सरकार समय समय पर निर्दिष्ट करे।
9(ख)	यदि राज्य सरकार मुद्रक से दो से अनधिक अन्य ऐसी प्रतियाँ परिदत्त करने की अपेक्षा ऐसे दिन से एक कलेण्डर वर्ष के अन्दर करे तो	एक कलेण्डर मास के अन्दर	जिस दिन कि राज्य सरकार द्वारा ऐसी कोई अधियाचना मुद्रक से की गई हो, से	
	प्रकाशक द्वारा (क) और (ख) में अपेक्षित सारे नक्शे मुद्रक को प्रदाय करने	युक्तियुक्त समय	उपरोक्त माह की समाप्ति के पूर्व से	
11(क)	मुद्रक द्वारा मुद्रित समाचारपत्र के प्रत्येक अंक की दो प्रतियों का निःशुल्क परिदान।	युक्तियुक्त समय	ज्योंही यह प्रकाशित हो से	
11(ख) के नि 5	प्रकाशक द्वारा मुद्रित समाचारपत्र के प्रत्येक अंक की एक प्रति का निःशुल्क परिदान।	48 घण्टों के अन्दर	ज्योंही यह प्रकाशित हो से	प्रेस रजिस्ट्रार आफ इण्डिया (आर० एन० आई०)

1	2	3	4	5
20क (2)	धारा 20क (1) के अन्दर बनाये गये नियम, बनते ही सत्र मे चालू ससद के दोनो सदनो मे रख जायेंगे ।	30 दिन	नियम बनाये जाने के पश्चात् यथा शीघ्र	
		के० नि० तहत		
6(1)	प्रकाशक द्वारा भेजे जाने वाला वार्षिक विवरण	आगे आने वर्ष की फरवरी माह के अन्तिम दिन या उसके पूर्व	प्रत्येक कलेन्डर वर्ष की प्रथम जनवरी से	प्रेस रजिस्ट्रार आफ इन्डिया (आर० एन० आई०)
6(2)	प्रकाशक द्वारा समाचार पत्र के खुदरा मूल्य मे परिवर्तन की सूचना	48 घण्टों के अन्दर	ऐसे परिवर्तन से	प्रेस रजिस्ट्रार आॅफ इन्डिया (आर० एन० आई०)
8	समाचारपत्र से सबधित विशिष्टियो का प्रकाशक द्वारा प्रत्येक समाचारपत्र मे प्रकाशन	प्रत्येक वर्ष के फरवरी माह की समाप्ति के बाद प्रथम प्रकाशन [illegible] मे	अवधिकालिका के अनुसार परिवर्तनीय	
10	आर० एन० आई० द्वारा रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र जारी करने ।	घोषणा की प्रति को प्राप्त करने के पश्चात् यथाशीघ्र	घोषणा की प्रति को प्राप्त करने के समय से	प्रकाशक
11	प्रस रजिस्ट्रार द्वारा केन्द्रीय सरकार को वार्षिक प्रतिवेदन पेश करने	प्रत्येक वर्ष की 30 अप्रैल को या इसके पूर्व	सबधित धारा मे चर्चित	केन्द्रीय सरकार

1	2	3	4	5
	पी० सी (पी ए) आर० के तहत			
3(च) (1)	एक समाचारपत्र अथवा समाचार अभिकरण के संबंध में किसी सामग्री के प्रकाशन या अप्रकाशन से संबंधित परिवाद के प्रकरण में			
	(क) दैनिक समाचार /अभिकरण साप्ताहिक	दो माह के अन्दर	इसके प्रकाशन या अप्रकाशन से	भारतीय प्रेस परिषद् के यहाँ
	(ख) दूसरे प्रकरण में	4 माह के अन्दर	इसके प्रकाशन या अप्रकाशन से।	"
3(च) (ii)	एक संपादक अथवा श्रमजीवी पत्रकार जिसने कोई व्यावसायिक अति चार किया हो के विरुद्ध परिवाद के प्रकरण में	4 माह के अन्दर	अतिचार जिसके विरुद्ध परिवाद किया गया से	'
5	कारण बताओ नोटिस को जारी करना।	यथासंभव लेकिन 15 दिन के बाद नहीं	परिवाद की प्राप्ति की तिथि से	समाचारपत्र, समाचार अभिकरण, संपादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार
6	समाचारपत्र, समाचार अभिकरण, सम्पादक अथवा अन्य श्रमजीवी पत्रकार द्वारा अपने विरुद्ध किये गये परिवाद का जवाब दावा पेश करना	14 दिनों के भीतर	विनियम 5 के तहत परिवाद और नोटिस की प्रति की तामील की तिथि से	भारतीय प्रेस परिषद् को

विभिन्न दंड खंडो की तालिका

(मु पु अधि 1867 के तहत)

दंड धारा	धारा जिसका उल्लघन है जो	सजा	किसके द्वारा
1	2	3	4
12 धारा 3 के नियम के प्रतिकूल मुद्रण के लिए शास्ति	3 पुस्तकों तथा पत्रों मे मुद्रित की जाने वाली विशिष्टियाँ	दो हजार रुपये से अनधिक जुर्माने से, या छह माह से अनधिक अवधि के लिए साधारण कारावास से या दोनो से ।	उस क्षेत्र का मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्र मे मुद्रण या प्रकाशन हुआ है ।
13 धारा 4 द्वारा अपेक्षित घोषणा किए बिना मुद्रण यंत्र रखने के लिए शास्ति	4 मुद्रणयन्त्रपाल द्वारा घोषणा करना	"	जिस मजिस्ट्रेट के क्षेत्राधिकार मे ऐसा मुद्रणयन्त्र स्थित हो ।
14 मिथ्या कथन करने के लिए दंड	इस अधिनियम के तहत प्राधिकार द्वारा	दो हजार रुपये से अनधिक जुर्माने से और छह माह से अनधिक अवधि के लिए कारावास	मजिस्ट्रेट जिसके यहाँ ऐसी घोषणा अथवा कथन पेश किया जाना है ।
15 नियमो के अनुपालन के बिना समाचारपत्र संपादित, मुद्रित या प्रकाशित करने के लिए शास्ति	एतत्पूर्व विहित नियमो	दो हजार रुपये से अनधिक जुर्माने से या छह माह से अनधिक अवधि के लिए कारावास से या दोनों से दंड उक्त दंड के साथ साथ समाचार के संबध में की गई घोषणा को भी निरस्त किया जा सकता है ।	मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्राधिकार में ऐसा संपादन, मुद्रण और प्रकाशन होता है ।

1	2	3	4	5
	पी० सी० (पी ए) आर० के तहत			
3(घ) (I)	एक समाचारपत्र अथवा समाचार अभिकरण के संबंध मे किसी सामग्री के प्रकाशन या अप्रकाशन से संबंधित परिवाद के प्रकरण मे			
	(क) दैनिक समाचार /अभिकरण साप्ताहिक	दो माह के अन्दर	इसके प्रकाशन या अप्रकाशन से	भारतीय प्रेस परिषद् के यहाँ
	(ख) दूसरे प्रकरण मे	4 माह के अन्दर	इसके प्रकाशन या अप्रकाशन से।	
3(घ) (II)	एक संपादक अथवा श्रम जीवी पत्रकार जिसने कोई व्यावसायिक अति चार किया हो के विरुद्ध परिवाद के प्रकरण मे	4 माह के अन्दर	अतिचार जिसके विरुद्ध परिवाद किया गया से	
5	कारण बताओ नोटिस को जारी करना।	यथासम्भव लेकिन 15 दिन के बाद नही	परिवाद की प्राप्ति की तिथि से	समाचारपत्र समाचार अभि करण, संपादक या अन्य श्रम जीवी पत्रकार
6	समाचारपत्र, समाचार अभिकरण, सम्पादक अथवा अन्य श्रमजीवी पत्रकार द्वारा अपने विरुद्ध किये गये परिवाद का जवाब दावा पेश करना	14 दिनो के भीतर	विनियम 5 के तहत परिवाद और नोटिस की प्रति की तामील की तिथि से	भारतीय प्रेस परिषद् को

विभिन्न दड खडों की तालिका

(मु पु अधि 1867 के तहत)

दड धारा	धारा जिसका उल्लघन है जो	सजा	किसके द्वारा
1	2	3	4
12 धारा 3 के नियम के प्रतिकूल मुद्रण के लिए शास्ति	3 पुस्तकों तथा पत्रों मे मुद्रित की जाने वाली विशिष्टियाँ	दो हजार रुपये से अनधिक जुर्माने से, या छह माह से अनधिक अवधि के लिए साधारण कारावास से या दोनों से।	उस क्षेत्र का मजिस्ट्रट जिसके क्षेत्र म मुद्रण या प्रकाशन हुआ है।
13 धारा 4 द्वारा अपेक्षित घोषणा किये बिना मुद्रण यत्र रखने क लिए शास्ति	4 मुद्रणयत्रपाल द्वारा घोषणा करना	"	जिस मजिस्ट्रेट के क्षेत्राधिकार म ऐसा मुद्रणयत्र स्थित हो।
14 मिथ्या कथन करने के लिए दड	इस अधिनियम के तहत प्राधिकार द्वारा	दो हजार रुपये से अनधिक जुर्माने स और छह माह से अनधिक अवधि के लिए कारावास	मजिस्ट्रेट जिसके यहाँ एसी घोषणा अथवा कथन पेश किया जाता है।
15 नियमो के अनुवतन के बिना समाचारपत्र सपादित, मुद्रित या प्रकाशित करने के लिए शास्ति	एतत्पूव विहित नियमो	दो हजार रुपये से अनधिक जुर्माने से या छह माह से अनधिक अवधि के लिए कारावास से या दोनों से दड उक्त दड के साथ-साथ समाचार के सबध मे की गई घोषणा को भी निरस्त किया जा सकता है।	मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्राधिकार मे ऐसा सपादन मुद्रण और प्रकाशन होता है।

1	2	3	4
15क धारा 8 के अधीन घोषणा करने मे असफल रहने के लिए शास्ति	8 उन व्यक्तियों द्वारा नई घोषणा जिन्होंने घोषणा हस्ताक्षरित की है तथा जो उसके पश्चात् मुद्रक या प्रकाशक नहीं रहे।	दो सौ रुपये से अनधिक जुर्माना	मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्राधिकार मे ऐसा मुद्रण या प्रकाशन हो रहा है।
16 पुस्तकों का परिदान न करने या मुद्रक को मानचित्रों का प्रदाय न करने के लिए शास्ति	9 मुद्रक द्वारा मुद्रित पुस्तकों की प्रतियाँ सरकार को मूल्य लिए बिना परिदत्त की जायेगी।	पचास रुपये से अनधिक इतनी राशि जितनी कि युक्तियुक्त समझी जावे और इतनी राशि के अतिरिक्त इतनी अपर राशि जो उन प्रतियों का मूल्य अवधारित किया जावे मुद्रक से जब्ती के रूप मे सरकार को देय।	मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्राधिकार म पुस्तक प्रकाशित हुई थी।
	प्रकाशक द्वारा मुद्रक को मानचित्र आदि का प्रदाय करना।	पचास रुपये स अनधिक इतनी राशि जितनी कि युक्तियुक्त समझी जावे और इतनी राशि के अतिरिक्त इतनी अपर राशि जो उन मानचित्रों, मुद्रणों या उत्किरणों का मूल्य अवधारित करें प्रकाशक स जब्ती के रूप में सरकार को देय।	"

1	2	3	4
16क सरकार को समाचारपत्रों की प्रतियाँ मूल्य लिए बिना परिदत्त करने में असफल रहने के लिए शास्ति	11क (मुद्रक द्वारा) भारत में मुद्रित समाचारपत्र की निःशुल्क प्रति सरकार को प्रदाय करना।	प्रत्येक चूक के लिए 50 रु से अनधिक जुर्माना।	वह मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्राधिकार में समाचारपत्र मुद्रित हुआ था।
16ख प्रेस रजिस्ट्रार को समाचारपत्रों की प्रतियाँ परिदत्त करने में असफलता के लिए शास्ति।	11ख (प्रकाशक द्वारा) समाचारपत्रों की प्रतियाँ प्रेस रजिस्ट्रार को निःशुल्क प्रदाय करना।	प्रत्येक चूक के लिए 50 रु से अनधिक जुर्माना।	वह मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्राधिकार में समाचारपत्र प्रकाशित हुआ था।
19ट धारा 19घ या 19ङ इत्यादि के उल्लंघन के लिए शास्ति	19घ(क) समाचारपत्र के प्रकाशक द्वारा वार्षिक विवरण आदि भेजना	रु 500/– से अनधिक जुर्माना	क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट
	(ख) समाचारपत्र में अमुक समय अमुक विशिष्टियाँ प्रकाशित करना।	"	
	19ङ समाचारपत्र के प्रकाशक द्वारा दी जाने वाली विवरणियाँ और प्रतिवेदन	रु 500/– से अनधिक जुर्माना	स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट

1	2	3	4
15क धारा 8 के अधीन घोषणा करने में असफल रहने के लिए शास्ति	8 उन व्यक्तियों द्वारा नई घोषणा जिन्होंने घोषणा हस्ताक्षरित की है तथा जो उसके पश्चात् मुद्रक या प्रकाशक नहीं रहे।	दो सौ रुपये से अनधिक जुर्माना	मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्राधिकार में ऐसा मुद्रण या प्रकाशन हो रहा है।
16 पुस्तकों का परिदान न करने या मुद्रक को मानचित्रों का प्रदाय न करने के लिए शास्ति	9 मुद्रक द्वारा मुद्रित पुस्तकों की प्रतियाँ सरकार को मूल्य लिए बिना परिदत्त की जायेगी।	पचास रुपये से अनधिक इतनी राशि जितनी कि युक्तियुक्त समझी जावे और इतनी राशि के अतिरिक्त इतनी अपर राशि जो उन प्रतियों का मूल्य अवधारित किया जावे, मुद्रक से जब्ती के रूप में सरकार को देय।	मजिस्ट्रेट जिसके क्षेत्राधिकार में पुस्तक प्रकाशित हुई थी।
	प्रकाशक द्वारा मुद्रक को मानचित्र आदि का प्रदाय करना।	पचास रुपये से अनधिक इतनी राशि जितनी कि युक्तियुक्त समझी जावे और इतनी राशि के अतिरिक्त इतनी अपर राशि जो उन मानचित्रों, मुद्रणों या उत्किरणों का मूल्य अवधारित करें प्रकाशक से जब्ती के रूप में सरकार को देय।	

विभिन्न फीसों की तालिका

धारा/नियम	विवरण	फीस
1	2	3
	मु पु अधि के तहत	
6 और 8	मजिस्ट्रेट आदि के यहाँ निक्षेपित (जमा) मूल प्रमाणित घोषणा का निरीक्षण	रु 1/- प्रति
	उक्त मूल प्रति की एक प्रति प्रमाणित करना ।	रु 2/- प्रति
	के नि के तहत	
	मु पु अधि की धारा 19ख के तहत प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा रखे हुए रजिस्टर से उद्धरण देना ।	रु 5/- प्रत्येक समाचारपत्र के संबंध में

1	2	3	4
19ट(ग) समाचार के सबंध में मिथ्या विवरण प्रकाशित करना।	पारा 19घ(ख) के अनुसरण में	रु 500/- से अनधिक जुर्माना	स्थानीय क्षेत्राधिकार रखने वाला मजिस्ट्रेट
19ठ जानकारी के अनुचित स्पष्टीकरण के लिए शास्ति	मु पु अधि या आ द स के तहत अभियोजन करने के प्रयोजनाय मु पु अधि के तहत प्राप्त जानकारी का अनुचित स्पष्टीकरण	छह माह का अनधिक कारावास या एक हजार रु से अनधिक जुर्माना या दानो	
20(ख) इस अधि के तहत बने नियम निर्धारित कर सकते हैं कि इसका उल्लघन दण्डनीय होगा।	-	रु 100/- के अनधिक जुर्माने स दण्डनीय	

विभिन्न फीसों की तालिका

धारा/नियम	विवरण	फीस
1	2	3
	मु पु अधि के तहत	
6 और 8	मजिस्ट्रेट आदि के यहाँ निक्षेपित (जमा) मूल प्रमाणित घोषणा का निरीक्षण	रु 1/– प्रति
	उक्त मूल प्रति की एक प्रति प्रदाय करना।	रु 2/– प्रति
	के नि के तहत	
9	मु पु अधि की धारा 19ख के तहत प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा रखे हुए रजिस्टर से उद्धरण देना।	रु 5/– प्रत्येक समाचारपत्र के संबंध में

मुद्रणायत्र और रजिस्ट्रीकरण अपीलेंट बोर्ड (व्यवहार और प्रक्रिया) आदेश 1961

भारत सरकार

नई दिल्ली – 2 अप्रल 20 1961

अधिसूचना

(भारत सरकार के गजट दिनांक अप्रल 29 1961 के भाग 11 धारा 3 (1) पृष्ठ 743 मे प्रकाशित)

जी एस आर 625 – मुद्रणायत्र एव पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 (1867 का 25वा) की धारा 8 ग की उपधारा 3 द्वारा प्रदत्त शक्तिया की पालना म, उक्त धारा के तहत गठित अपीलेंट बोर्ड अपने व्यवहार और प्रक्रिया को नियमित करने हेतु निम्न आदेश पारित करता है अर्थात् –

1 संक्षिप्त शीर्षक – इस आदेश का नाम मुद्रणायत्र और रजिस्ट्रीकरण अपीलेंट बोर्ड (व्यवहार और प्रक्रिया) आदेश 1961 है।

2 परिभाषाएं – इस आदेश म (क) अधिनियम से तात्पय मुद्रणायत्र और रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 (1867 का 25वा) से है।

(ख) बोर्ड से तात्पय इस अधिनियम की धारा 8 ग के तहत गठित मुद्रणायत्र और रजिस्ट्रीकरण अपीलेंट बोर्ड से है।

3 अपील का प्रारूप – (1) इस अधिनियम की धारा 8 ग के तहत बोर्ड को पेश करने वाली प्रत्यक अपील अपीलेन्ट के हस्ताक्षर युक्त, एक ज्ञापन के रूप म होगी और इस ज्ञापन क साथ उस आदेश की एक प्रति सलग्न की जावेगी जिसके विरुद्ध अपील की जानी है।

(2) इस ज्ञापन म अपीलेन्ट का पूरा नाम व पता होगा और उस आदेश जिसके विरुद्ध अपील की जा रही है के विरुद्ध आपत्तिया क आधारो का वर्णन सक्षिप्त किया जावेगा।

4 अवधि बाहर अपीलों को निरस्त करना – जब अधिनियम की धारा 8 ग की उपधारा – 1 म निर्दिष्ट अवधि म अपील प्रस्तुत नही की गयी हो और बोर्ड सतुष्ट है कि अपीलेन्ट समयावधि में अपील पेश करन म किसी पर्याप्त कारण स निवारित नहीं रहा था तो बोर्ड अपील को निरस्त कर सकता है।

5 रिकार्ड स मगाने की शक्ति – यदि खड 4 के तहत अपील निरस्त नहीं की गयी है तो बोर्ड उस मजिस्ट्रेट जिसके आदेश के विरुद्ध अपील पेश की गयी है के यहां प्रकरण के रिकार्ड स को मगायेगा।

6 सुनवाई की तिथि – (1) प्रकरण के रिकार्ड स में प्राप्त हो जाने के बाद, बोर्ड अपील की सुनवाई की तिथि तय करेगा।

(2) अपील की सुनवाई की तिथि का एक नोटिस अपीलेन्ट को दिया जावेगा और यह नोटिस अन्य व्यक्ति जिसे बोर्ड उपयुक्त समझे, को भी दिया जा सकता है।

7 अपील की सुनवाई – (1) अपील की सुनवाई की तिथि तय हो जाने पर या अपील की सुनवाई की तिथि आगे सरक जाने की किसी तिथि पर बोर्ड उन उपस्थित व्यक्तियों को सुनेगा जिन्हें खड 6 के उपखड 2 के तहत नोटिस दिए गए हैं।

(2) उपखड – 1 में उल्लिखित व्यक्तियों को सुनने और रिकार्ड स का अवलोकन करने के बाद बोर्ड अपील को विनिश्चित कर सकता है।

8 अपील में दिए गए आदेश की विषय वस्तु – बोर्ड का आदेश लिखित होगा निर्णय के आधारों का संक्षिप्त रूप से वर्णित किया जावेगा और उस पर बोर्ड के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्य के हस्ताक्षर होंगे।

9 आदेश का सचारण – बोर्ड के आदेश का सचारण अपीलेन्ट, प्रेस रजिस्ट्रार और मजिस्ट्रेट को किया जावेगा।

10 कानूनी अधिवक्ताओं द्वारा प्रतिनिधित्व – अपीलेन्ट और अन्य कोई व्यक्ति जिन्हें खड 6 के उपखड 2 के तहत नोटिस दिए गए हैं बोर्ड के सम्मुख अपनी ओर से उपसजात होने, वकालत करने और उस पर कार्य करने हेतु एक कानूनी अधिवक्ता नियुक्त कर सकते हैं।

11 नोटिस की तामील – इस आदेश के तहत बोर्ड के चेयरमन द्वारा या वह ऐसा निर्देश दे तो बोर्ड के किसी अन्य सदस्य द्वारा संबंधित व्यक्ति को एक नोटिस जारी किया जा सकता है –

(क) उस व्यक्ति या उसकी तरफ से उपस्थित होने वाले कानूनी अधिवक्ता को डिलिवर या टेंडर करके या

(ख) रजिस्टर्ड डाक द्वारा

समाचारपत्रो का पजीकरण (केन्द्रीय) नियम 1956

(भारत के असाधारण गजट भाग II धारा 3 दिनाक 28 जून, 1956 मे प्रकाशित)

एस आर ओ 1519 दिनाक 22 जून 1956 – मुद्रणालय और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 (सन् 1867 का 25वा) की धारा 20(क) म प्रदत्त शक्तियो का प्रयोग करत हुए केन्द्र सरकार निम्न नियम बनाती है –

1 संक्षिप्त नाम और प्रारम्भ (1) इन नियमों का नाम समाचारपत्रो का रजिस्ट्रीकरण (केन्द्रीय) नियम 1956 है। (2) ये 1 जुलाई, 1956 स प्रवत्त होंगे।

2 परिभाषाए – जब तक कि सदभ से म यथा अपेक्षित न हो

(क) **अधिनियम** – से मुद्रणयत्र और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 अभिप्रेत है।

(ख) **प्रारूप** – से इन नियमो की अनुसूची म उल्लिखित प्रारूप अभिप्रेत है।

(ग) **प्रकाशक** – से समाचारपत्र का प्रकाशक अभिप्रेत है।

3 घोषणा का प्रारूप – अधिनियम की धारा 5 के तहत की गई प्रत्येक घोषणा प्रारूप – I मे होगी और घोषणा करने वाला यक्ति इसके अन्दर पूरा और सत्य विवरण देगा।

4 घोषणा की प्रतियो आदि को सबधित व्यक्ति और प्रस रजिस्ट्रार को भेजा जाना।

मजिस्ट्रट की पदीय मुद्रा स सत्यापित प्रत्येक घोषणा की एक प्रति और किसी घोषणा को प्रमाणीकरण के लिए प्रत्यक अस्वीकारी आदेश की एक प्रति घोषणा को करने और हस्ताक्षरित करने वाले यक्ति को और प्रेस रजिस्ट्रार को पजीकृत डाक से मजिस्ट्रेट द्वारा भेजी जावगी।

परन्तु यदि घोषणा करन और हस्ताक्षरित करने वाला व्यक्ति घोषणा को सत्यापित किये जाने के समय उपसजात है तो उस घोषणा की ऐसी प्रति या अस्वीकारी आदेश की ऐसी प्रति जसा भी मामला हो उसको व्यक्तिश दी जा सकती है।

5 प्रेस रजिस्ट्रार को समाचारपत्र की प्रतियाँ को प्रदाय करना –

(1) अपने समाचारपत्र के अक के प्रकाशन के 48 घण्टो के अन्दर समाचारपत्र का प्रत्येक प्रकाशक अक की एक प्रति डाक या सदेशवाहक के माध्यम से प्रस रजिस्ट्रार को भजेगा।

परन्तु जहाँ किसी समाचारपत्र का एक स अधिक सस्करण एक ही घोषणा के तहत प्रकाशित होता है और इन सस्करणो का फुटकर बिक्री मूल्य या पृष्ठो की सख्या एक-दूसरे से भिन्न है तो प्रत्येक सस्करण की एक एक प्रति इसी तरीके से प्रेस रजिस्ट्रार को भेजी जावेगी।

(2) उपधारा (1) के उद्देश्यों के लिए —

(क) हिन्दी, उर्दू या अंग्रेजी और दो भाषाओं जिनमें से एक भाषा हिन्दी, उर्दू या अंग्रेजी है, में प्रकाशित समाचारपत्रों के अंकों की प्रतियां प्रेस रजिस्ट्रार नई दिल्ली को भेजी जायेगी,

(ख) निम्न कालम नं० I की क्षेत्रीय भाषाओं में से किसी एक भाषा में प्रकाशित समाचारपत्रों के अंकों की प्रतियाँ सामने वाले कालम नं० II में दिये गये स्थान-पत्र सूचना ब्यूरो, सूचना व प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार के क्षेत्रीय कार्यालय के प्रभारी अधिकारी के यहां भेजी जायगी और वह अधिकारी ऐसे समाचारपत्र को प्रेस रजिस्ट्रार शिमला की ओर से प्राप्त करेगा।

I	II
पंजाबी	जालन्धर
बंगाली, उडिया, आसामी	कलकत्ता
तमिल	मद्रास
तेलगु	हैदराबाद
मलयालम	एरनाकुलम
मराठी, गुजराती	अहमदाबाद
कन्नड	बंगलौर
कोंकाडी	बम्बई
पुर्तगाली	बम्बई

(ग) किसी अन्य भाषा में प्रकाशित समाचार की प्रतियाँ प्रेस रजिस्ट्रार नई दिल्ली को भेजी जायेंगी।

6 वार्षिक विवरण — (1) हरेक प्रकाशक अपने समाचारपत्र या अपने समाचारपत्रों के प्रत्येक के संबंध में प्रेस रजिस्ट्रार को प्रत्येक कलेन्डर वर्ष से संबंधित एक वार्षिक विवरण प्रारूप II में निहित विवरणों को भर कर भेजेगा जो आगे वाले वर्ष के फरवरी माह के अन्तिम दिन तक या उसके पूर्व प्रेस रजिस्ट्रार के यहां पहुँच जाना चाहिये।

नोट — फरवरी 1957 के अंतिम दिन तक या इसके पूर्व पहुँचने वाले वार्षिक विवरण में 1 जुलाई 1956 से 31 दिसम्बर 1956 तक की अवधि ही संबंधित रहेगी।

(2) जब भी किसी विवरण में दिये गये समाचारपत्र के फुटकर विक्रय मूल्य में कोई परिवर्तन हो तो प्रकाशक 48 घण्टों के अन्दर ऐसे परिवर्तन की सूचना प्रेस रजिस्ट्रार को भेजेगा।

7 रजिस्टर का रख रखाव — (1) प्रस रजिस्ट्रार प्रारूप – III मे समाचारपत्रो का एक रजिस्टर रखेगा।

(2) रजिस्टर के पृष्ठो के नम्बर एक के बाद एक के क्रम से हागे ग्रौर किसी समाचारपत्र के सबध मे प्रविष्टियाँ नये पृष्ठ स प्रारम्भ हागी। जब एक समाचारपत्र के सबध म प्रारूप न० 1 मे वर्णित विवरण रजिस्टर म प्रविष्टि कर लिये गये हो तो प्रेस रजिस्ट्रार उस समाचारपत्र को पजीकरण सख्या ग्रावटित करेगा। रजिस्टर की प्रारम्भिक प्रविष्टियाँ ग्रौर बाद के परिवतन यदि कोई हो, प्रेस रजिस्टार के हस्ताक्षरा से ग्रधिकृत रूप स प्रमाणित की जायगी।

(3) प्रत्येक समाचार के सबध म प्रेम रजिस्ट्रार रजिस्टर म सारभूत प्रविष्टियाँ दज करायेगा ग्रौर ऐसी प्रविष्टियाँ दज करने के पूव वह समाचारपत्र द्वारा उसको भेजे गय विवरण का सत्यापन कर सकता है, जसा कि वह ग्रावश्यक समझे।

8 प्रत्येक समाचारपत्र मे विशिष्टियाँ प्रकाशित होना

(1) *प्रकाशक ग्रपने समाचारपत्र के प्रत्येक ग्रक म प्रत्यक प्रति का फुटकर विक्रय मूल्य या जब ऐसा फुटकर विक्रय मूल्य न हो तो 'यह नि शुल्क वितरण के लिये है, एक उपयुक्त स्थान पर प्रकाशित करेगा। प्रकाशक प्रारूप IV मे उल्लिखित विशिष्टियो को भी प्रत्येक वष के फरवरी माह के ग्रन्तिम दिन के बाद प्रकाश्य प्रथम ग्रक म प्रकाशित करेगा।*

(2) प्रत्येक समाचारपत्र की प्रत्यक प्रति म निम्न प्रारूप म साफ रूप से मुद्रक, प्रकाशक मालिक ग्रौर सम्पादक का नाम ग्रौर मुद्रण तथा प्रकाशन का स्थान मुद्रित हागा —

(मालिक का नाम) की तरफ से
(मुद्रक का नाम) " द्वारा (मुद्रणयत्र का नाम)
म मुद्रित ग्रौर (प्रकाशक का नाम)
द्वारा (प्रकाशन-स्थल का नाम) से प्रकाशित।
सम्पादक

नोट — यह प्रारूप प्रत्येक समाचारपत्र की परिस्थितियो के ग्रनुसार सशोधित किया जा सकता है, उदाहरणतया जहाँ मुद्रक, प्रकाशक ग्रौर मालिक एक ही हो तो इम्प्रिट लाइन द्वारा मुद्रित प्रकाशित ग्रौर *स्वामित्वाधीन छापी जा सकती है।*

फिर भी सम्पादक का नाम प्रत्येक मामले म ग्रलग से दिया जावेगा।

9 रजिस्टर के उद्धरणों की प्रतिया देना – प्रत्येक समाचारपत्र के सबध म रजिस्टर के उद्धरण प्राप्त करने विषयक आवेदन प्रेस रजिस्टार को किये जाने पर, वह पाँच रुपय के शुल्क के भुगतान पर आवेदक को उसके द्वारा विधिवत प्रमाणित उद्धरण रजिस्टर से भेजेगा।

10 रजिस्ट्रीकरण का प्रमाणपत्र – जहा प्रकाशक मजिस्ट्रेट के सम्मुख घोषणा करता है, प्रेस रजिस्ट्रार घोषणा की प्राप्ति प्राप्त करने के पश्चात् यथाशक्य प्रकाशक को प्रारूप V म रजिस्टीकरण का प्रमाणपत्र जारी करेगा।

(2) समाचारपत्र के प्रकाशक द्वारा भेजी गयी सूचना की प्राप्ति और नियम 7(2) के तहत उस समाचारपत्र को रजिस्ट्रेशन नम्बर का आवटन करने पर प्रेस रजिस्ट्रार प्रारूप V में प्रकाशक को रजिस्ट्रशन का प्रमाणपत्र जारी कर सकता है।

(3) जहां उपनियम (1) या उपनियम (2) के तहत रजिस्ट्रेशन के प्रमाणपत्र म वर्णित विशिष्टियो मे कोई परिवतन होता है तो प्रकाशक यथासभव प्रेस रजिस्ट्रार को एसे परिवतन की सूचना देगा और ऐसे प्रमाणपत्र को वापिस भी करेगा, ऐसी सूचना और प्रमाण पत्र की प्राप्ति पर प्रेस रजिस्ट्रार रजिस्टर मे सुसगत प्रविष्टियो को दज करवायेगा और परिवतना के साथ प्रमाणपत्र को पुन जारी करेगा।

(4) वह घोषणा जिसके तहत समाचारपत्र प्रकाशित किया जाता है शून्य हो जाती है या प्रेस रजिस्टार द्वारा रखे गये रजिस्टर मे से समाचारपत्र हटा दिया जाता है त्योंही रजिस्टेशन का प्रमाणपत्र प्रभावहीन हो जायेगा।

11 वार्षिक प्रतिवेदन – प्रेस रजिस्टरार प्रत्येक वष की 30 अप्रैल या इसके पूव भारत म प्रेस से सबधित सूचना और साख्यकी विशयकर समाचारपत्रो की विभिन्न श्रेणियो मे प्रसार की प्रवृत्ति और एक स अधिक समाचारपत्र के सामान्य स्वामित्व के निदेशन म प्रवत्ति स युक्त एक वार्षिक प्रतिवेदन केन्द्र सरकार को प्रस्तुत करेगा

परन्तु 30 अप्रल 1957 या इसके पूव पेश किया जाने वाला वार्षिक प्रतिवदन 1 जुलाई 1956 म 31 दिसम्बर 1956 तक की अवधि ही से सबधित रह सकता है।

शास्ति – इन नियमा के किसी प्रावधाना का उल्लघन अथ दड से दडनीय होगा जो कि एक सौ रुपया तक की सीमा तक हो सकता है।

7 रजिस्टर का रख रखाव – *(1) प्रेस रजिस्ट्रार प्रारूप – III मे समाचारपत्रो का एक रजिस्टर रखेगा।*

(2) *रजिस्टर के पृष्ठो के नम्बर एक के बाद एक के क्रम से होगे और* किसी समाचारपत्र के सबध मे प्रविष्टियाँ नये पृष्ठ से प्रारम्भ होगी। जब एक समाचारपत्र के सबध मे प्रारूप न० 1 मे वर्णित विवरण रजिस्टर मे प्रविष्टि कर लिये गये हो तो प्रेस रजिस्ट्रार उस समाचारपत्र को पजीकरण सख्या आवटित करेगा। रजिस्टर की प्रारम्भिक प्रविष्टियाँ और बाद के परिवतन यदि कोई हो प्रेस रजिस्ट्रार के हस्ताक्षरो से अधिकृत रूप से प्रमाणित की जायगी।

(3) प्रत्येक समाचार के सबध म प्रेस रजिस्टार रजिस्टर मे सारभूत *प्रविष्टियाँ दज करायेगा और ऐसी प्रविष्टियाँ दज करने के पूव वह समाचारपत्र द्वारा* उसको भेजे गय विवरण या सत्यापन कर सकता है जसा कि वह आवश्यक समझे।

8 प्रत्येक समाचारपत्र मे विशिष्टियाँ प्रकाशित होना

(1) प्रकाशक अपने समाचारपत्र के प्रत्येक अक म प्रत्येक प्रति का फुटकर विक्रय मूल्य या जब एसा फुटकर विक्रय मूल्य न हो तो 'यह नि शुल्क वितरण के लिये है', एक उपयुक्त स्थान पर प्रकाशित करेगा। प्रकाशक प्रारूप IV म उल्लिखित विशिष्टियो को भी प्रत्येक वष के फरवरी माह के अन्तिम दिन के बाद प्रकाश्य प्रथम अक म प्रकाशित करेगा।

(2) प्रत्येक समाचारपत्र की प्रत्येक प्रति म निम्न प्रारूप म साफ रूप से मुद्रक, प्रकाशक मालिक और सम्पादक का नाम और मुद्रण तथा प्रकाशन का स्थान मुद्रित होगा –

(मालिक का नाम)   की तरफ से
(मुद्रक का नाम)   "   द्वारा (मुद्रणयत्र का नाम)
                    मे मुद्रित और *(प्रकाशक का नाम)*
द्वारा (प्रकाशन-स्थल का नाम)   से प्रकाशित।
सम्पादक

नोट — यह प्रारूप प्रत्येक समाचारपत्र की परिस्थितियो के अनुसार सशोधित किया जा सकता है उदाहरणतया जहाँ मुद्रक, प्रकाशक और मालिक एक ही हो तो इम्प्रिट लाइन   द्वारा मुद्रित, प्रकाशित और स्वामित्वाधीन छापी जा सकती है।

9 रजिस्टर के उद्धरणों की प्रतियां देना — प्रत्येक समाचारपत्र के संबंध में रजिस्टर के उद्धरण प्राप्त करने विषयक आवेदन प्रेस रजिस्टार को किये जाने पर, वह पांच रुपये के शुल्क के भुगतान पर आवेदक का उसके द्वारा विधिवत प्रमाणित उद्धरण रजिस्टर से भेजेगा।

10 रजिस्ट्रीकरण का प्रमाणपत्र — जहाँ प्रकाशक मजिस्ट्रेट के सम्मुख घोषणा करता है, प्रेस रजिस्ट्रार घोषणा की प्राप्ति प्राप्त करने के पश्चात् यथाशक्य प्रकाशक को प्रारूप V में रजिस्ट्रीकरण का प्रमाणपत्र जारी करेगा।

(2) समाचारपत्र के प्रकाशक द्वारा भेजी गयी सूचना की प्राप्ति और नियम 7(2) के तहत उस समाचारपत्र को रजिस्ट्रेशन नम्बर का आवंटन करने पर, प्रेस रजिस्ट्रार प्रारूप V में प्रकाशक को रजिस्ट्रेशन का प्रमाणपत्र जारी कर सकता है।

(3) जहां उपनियम (1) या उपनियम (2) के तहत रजिस्ट्रेशन के प्रमाणपत्र में वर्णित विशिष्टियों में कोई परिवर्तन होता है तो प्रकाशक यथासंभव प्रेस रजिस्ट्रार को ऐसे परिवर्तन की सूचना देगा और ऐसे प्रमाणपत्र को वापिस भी करेगा, ऐसी सूचना और प्रमाण-पत्र की प्राप्ति पर प्रेस रजिस्ट्रार रजिस्टर में सुसंगत प्रविष्टियों को दर्ज करवायगा और परिवर्तनों के साथ प्रमाणपत्र को पुन जारी करेगा।

(4) वह घोषणा जिसके तहत समाचारपत्र प्रकाशित किया जाता है शून्य हो जाती है या प्रेस रजिस्टार द्वारा रखे गये रजिस्टर में से समाचारपत्र हटा लिया जाता है त्योंही रजिस्टेशन का प्रमाणपत्र प्रभावहीन हो जायेगा।

11 वार्षिक प्रतिवेदन — प्रेस रजिस्ट्रार प्रत्येक वर्ष की 30 अप्रल या इसके पूर्व भारत में प्रेस से संबंधित सूचना और साक्ष्यकी विशेषकर समाचारपत्रों की विभिन्न श्रेणियों में प्रसार की प्रवृत्ति और एक से अधिक समाचारपत्र के सामान्य स्वामित्व के निदेशन में प्रवृत्ति से युक्त एक वार्षिक प्रतिवेदन केन्द्र सरकार को प्रस्तुत करेगा

परन्तु 30 अप्रल 1957 या इसके पूर्व पेश किया जाने वाला वार्षिक प्रतिवेदन 1 जुलाई 1956 से 31 दिसम्बर 1956 तक की अवधि ही से संबंधित रह सकता है।

शास्ति — इन नियमों के किसी प्रावधानों का उल्लंघन अर्थ दंड से दंडनीय होगा जो कि एक सौ रुपया तक की सीमा तक हो सकता है।

अनुसूची

घोषणा का फार्म

फार्म I

(देखिए नियम 3)

मैं घोषणा करता हूँ कि मैं (समाचारपत्र का नाम) जो (स्थान) से मुद्रित* और (स्थान) से प्रकाशित या (स्थान) से मुद्रित* और प्रकाशित किया जाना है का मुद्रक* या प्रकाशक* या मुद्रक* और प्रकाशक हूँ और उपरोक्त वर्णित समाचारपत्र के सबध म यहाँ निम्न दिये गये ब्यौरे मेरी अधिकतम जानकारी व विश्वास के अनुसार सत्य है —

(1) समाचारपत्र का नाम

(2) भाषा (ए) जिसम समाचारपत्र प्रकाशित किया जाता/जाना है।

(3) प्रकाशन का नियतकाल

(क) दैनिक सप्ताह म तीन बार दो बार, साप्ताहिक पाक्षिक या अन्य प्रकार का

(ख) दैनिक पत्र के सबध म कृपया लिखें कि प्रभात सस्करण या साय सस्करण है

(ग) दैनिक पत्र से भिन्न अन्य पत्रो के सबध म कृपया इनके प्रकाशन के दिन/तारीख लिखें जिस पर इसे प्रकाशित किया जाता/जाना है

(4) प्रत्येक प्रति की फुटकर प्रति

(क) यदि समाचारपत्र मुफ्त वितरण के लिए हो तो कृपया लिखें कि यह मुफ्त वितरण के लिए है

(ख) यदि इसका केवल वार्षिक चन्दा हो और फुटकर विक्रय मूल्य न लिया जाता हो तो वार्षिक चन्दा लिखें

(5) प्रकाशक का नाम
राष्ट्रीयता
पता -

(6) प्रकाशन का स्थान
(कृपया डाक का पूरा पता दें)

(7) मुद्रक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

(8) मुद्रणालय/मुद्रणालयों का/के नाम जहाँ वास्तव मे मुद्रण का काम होता है और उस स्थान का सही विवरण जहाँ मुद्रणालय स्थित है

(9) सम्पादक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

(10) स्वामी का/के नाम

(क) कृपया उस/उन व्यक्तियों या फर्म, संयुक्त स्टाक कम्पनी, न्यास, सहकारी समिति या संस्था का ब्यौरा भी लिखें जो समाचारपत्र का स्वामित्व रखता/रखते हैं

(ख) कृपया लिखें क्या स्वामी अन्य कोई समाचारपत्र का स्वामित्व रखता है, यदि ऐसा हो तो, इसका नाम नियतकालीनता, भाषा और प्रकाशन का स्थान

(11) कृपया लिखें क्या घोषणा-पत्र निम्न से संबंधित हैं—

(क) एक नवीन समाचारपत्र या

(ख) एक मौजूदा समाचारपत्र

(ग) यदि घोषणा मद नं॰ (ख) में आती हो तो ताजा घोषणा प्रस्तुत करने का कारण ***

दिनांक

हस्ताक्षर
नाम (मोटे अक्षरों में)
पद*

नोट — मुद्रक और प्रकाशक द्वारा अलग-अलग घोषणा प्रस्तुत करनी चाहिए जब तक कि मुद्रक और प्रकाशक एक ही व्यक्ति न हो ।

*जो लागू न हो, उसे काट दें ।

फार्म II

(देखिए नियम 6(1))

नामक समाचारपत्र का 31 दिसम्बर, 19 तक की अवधि का वार्षिक विवरण

क्रम स	मद	ब्यौरो की तफसील	वर्ष के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों के ब्यौरे यदि कोई हो, और उन परिवर्तनों की तारीखें	अभ्युक्तिया
1	2	3	4	5
	'क' सामान्य			
1	किस घोषणा के अधीन समाचारपत्र प्रकाशित होता है ।			
2	समाचारपत्र की पंजीयन संख्या ।			
3	समाचारपत्र का नाम ।			
4	भाषा (एं) जिसमें/जिनमें समाचारपत्र प्रकाशित किया जाता है ।			
5	प्रकाशन का नियतकाल (क) दैनिक, सप्ताह में तीन बार दो बार साप्ताहिक पाक्षिक या अन्य प्रकार का । (ख) दैनिक पत्र के संबंध में कृपया लिखें कि प्रात संस्करण या सान्ध्य संस्करण है ।			

1	2	3	4	5
	(ग) दैनिक पत्र से भिन्न अन्य पत्रों के संबंध में कृपया उनके प्रकाशन के लिए तारीखें लिखें।			
6	प्रकाशक का (क) नाम (ख) (i) क्या भारत का नागरिक है? (ii) यदि विदेशी है तो मूल देश (ग) पता (भारत में)			
7	प्रकाशन का स्थान (कृपया डाक का पूरा पता दें)।			
8	मुद्रक का (क) नाम (ख) (i) क्या भारत का नागरिक है? (ii) यदि विदेशी है तो मूल देश (ग) पता (भारत में)			
9	मुद्रणालय/मुद्रणालयों का/के नाम जहाँ मुद्रण का काम होता है और उस स्थान का सही विवरण जहाँ मुद्रणालय स्थित है।			

1	2	3	4	5
10	सम्पादक का (क) नाम (ख) (i) क्या भारत का नागरिक है? (ii) यदि विदेशी है तो मूल देश (ग) पता (भारत में)			
11	(क) समाचारपत्र के पृष्ठों का आकार सेंटीमीटरों में और उनका विवरण जैसे डेमी क्राउन आदि। (ख) दैनिक, सप्ताह में दो बार, सप्ताह में तीन बार प्रकाशित होने वाले पत्र और साप्ताहिक पत्रों में पृष्ठों की प्रति सप्ताह औसत संख्या। (ग) अन्य समाचारपत्रों के पृष्ठों की प्रति अंक औसत संख्या।			
12	वर्ष में प्रकाशन दिनों की संख्या।			

जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर	जोड़

मैं, एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए हुए ब्यौरे मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।
(स्पष्ट अक्षरों में नाम)

तारीख

प्रकाशक के हस्ताक्षर

	'ग' भाग	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	*अर्धवार्षिक औसत	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर	*अर्धवार्षिक औसत
13	(क) मुद्रित प्रतियों की प्रति प्रकाशन दिवस औसत संख्या।														
	(ख) यदि समाचारपत्र प्रतिदिन प्रकाशित न होता हो तो कृपया लिखें कि महीने के कितने दिनों में समाचार पत्र प्रकाशित हुआ और हर प्रकाशन दिवस को कितनी प्रतियाँ छपीं।														
14	बिकी जाने वाली प्रतियों की प्रति प्रकाशन दिवस औसत संख्या।														
15	मुफ्त वितरित की जाने वाली प्रतियों की प्रति प्रकाशन दिवस औसत संख्या (इसमें माँग, वाउचर विनिमय, बोनस, नमूने और कार्यालय की प्रतियाँ शामिल हैं।														

16 प्रत्येक प्रति की फुटकर कीमत

(क) यदि समाचारपत्र मुफ्त वितरण के लिए हो तो कृपया लिखें कि यह "मुफ्त वितरण के लिए" है।

(ख) यदि इसका केवल वार्षिक चन्दा हो, और फुटकर मूल्य न लिया जाता हो तो वार्षिक चन्दा लिखें।

प्रकाशक की घोषणा

" " का प्रकाशक मैं एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि इस विवरण में दिये गये ब्यौरे मेरी अधिकतम सूचना जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य और सही हैं।

तारीख

प्रकाशक के हस्ताक्षर

†सनदी लेखापाल का प्रमाण पत्र।

हमने के तक की बहियों और हिसाब किताब की जांच कर ली है तथा अपेक्षित सभी जानकारी और स्पष्टीकरण प्राप्त कर लिये हैं। हमारी राय में ऊपर दिया हुआ, संलग्न विवरण हमारी अधिकतम जानकारी और विश्वास तथा हमें दिये गए स्पष्टीकरण और लेखा बहियों में दिखाये गये ब्यौरों के अनुसार, प्रकाशक की बिक्रियों का तक का सच्चा और सही विश्लेषण प्रकट करता है।

हस्ताक्षर
(बड़े अक्षरों में नाम)
सनदी लेखापाल
पंजीयन संख्या

तारीख

*अर्धवार्षिक औसत इस अवधि के दौरान प्रकाशन दिवसों की कुल संख्या के आधार पर लगाना चाहिए।

†समाचारपत्र के संबंध में जहाँ प्रति प्रकाशन दिवस मुद्रित प्रतियों की औसत संख्या 2 000 से अधिक न हो सनदी लेखपाल का ऊपर निर्धारित रूप में प्रमाण पत्र आवश्यक नहीं। शिक्षा संस्थाएँ दान व समितियाँ या संस्थाएं जो सामान्यतया बिक्री के लिए नहीं अपितु अपने सदस्यों के प्रयोग के लिए प्रतियाँ प्रकाशित करती हो उनके लिए भी इस प्रकार का प्रमाण-पत्र आवश्यक नहीं।

	'ग' स्वामित्व	नाम	पता	पूंजी के शेयर का मूल्य	क्या इसका अन्य शेयरधारियों से विवाह, रक्त संबंध, या अन्य किसी प्रकार से कोई रिश्ता है।
		1	2	3	4
17	(क) समाचारपत्र के स्वामियों के नाम और पते (उन्हीं व्यक्तियों के ब्यौरे देने की आवश्यकता है जो समाचारपत्र के मालिक हों और पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या शेयरधार हों।) (ख) इसमें यह भी लिखें – (i) कि यदि स्वामी कोई फर्म है तो वह पंजीकृत है या अपंजीकृत है? और उन साझेदारों के ब्यौरे जिनका पूंजी में एक प्रतिशत से अधिक का हिस्सा है। (ii) यदि स्वामी संयुक्त स्टॉक कम्पनी है तो क्या वह पब्लिक लि० कम्पनी है या प्राइवेट लि० कम्पनी। कम्पनी के चेयरमैन, निदेशक, बोर्ड के सदस्यों और उन शेयरधारियों के नाम और पते जिनका पूंजी में एक प्रतिशत से अधिक हिस्सा है।				

प्रकाशक की घोषणा

" ' का प्रकाशक मैं एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि इस विवरण मे दिये गये ब्यौरे मेरी अधिकतम सूचना जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य और सही हैं।

तारीख प्रकाशक के हस्ताक्षर

†सनदी लेखापाल का प्रमाण पत्र।

हमने के तक की बहियां और हिसाब किताब की जांच कर ली है तथा अपेक्षित सभी जानकारी और स्पष्टीकरण प्राप्त कर लिये हैं। हमारी राय मे ऊपर दिया हुआ/संलग्न विवरण, हमारी अधिकतम जानकारी और विश्वास तथा हमे दिये गए स्पष्टीकरण और लेखा बहियों मे दिखाये गये ब्यौरा के अनुसार, प्रकाशक की बिक्रियां का तक सच्चा और सही विश्लेषण प्रकट करता है।

हस्ताक्षर
(बड़े अक्षरों मे नाम)
सनदी लेखापाल
पंजीयन संख्या

तारीख

*अर्धवार्षिक औसत इस अवधि के दौरान प्रकाशन दिवसो की कुल संख्या के आधार पर लगाना चाहिए।

†समाचारपत्र के संबंध में जहां प्रति प्रकाशन दिवस मुद्रित प्रतियो की औसत संख्या 2 000 से अधिक न हो सनदी लेखपाल का ऊपर निर्धारित रूप मे प्रमाण पत्र आवश्यक नही। शिक्षा संस्थाएं दातव्य समितियां या संस्थाए जो सामान्यतया बिक्री के लिए नही अपितु अपने सदस्यो के प्रयोग के लिए प्रतियां प्रकाशित करती हो उनके लिए भी इस प्रकार का प्रमाण पत्र आवश्यक नही।

'ग' स्वामित्व	नाम	पता	पूंजी के शेयर का मूल्य	क्या इसका अन्य शेयरधारियों से विवाह, रक्त संबंध, या अन्य किसी प्रकार से कोई रिश्ता है।
	1	2	3	4
17 (क) समाचारपत्र के स्वामियों के नाम और पते (उन्हीं व्यक्तियों के ब्यौरे देने की आवश्यकता है जो समाचारपत्र के मालिक हों और पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या शेयरधारक हों।)				
(ख) कृपया यह भी लिखें – (i) कि यदि स्वामी कोई फर्म है तो वह पंजीकृत है या अपंजीकृत है ? और उन भागीदारों के ब्यौरे जिनका पूंजी में एक प्रतिशत से अधिक का हिस्सा है।				
(ii) यदि स्वामी संयुक्त स्टॉक कम्पनी है तो क्या वह पब्लिक लि० कम्पनी है या प्राइवेट लि० कम्पनी। कम्पनी के चेयरमैन निदेशक, बोर्ड के सदस्यों और उन शेयरधारियों के नाम और पते जिनका पूंजी में एक प्रतिशत से अधिक हिस्सा है।				

(iii) यदि स्वामी सयुक्त स्टाक कपनी है और उसका प्रबन्ध प्रबन्ध एजेन्ट करता है तो लिखें कि क्या प्रबन्ध एजेन्ट कोई व्यक्ति फम या सयुक्त स्टाक कम्पनी है और भाग (क) या भाग (ख) के मद (i) और (ii) म, जसी भी स्थिति हो उल्लिखित ब्यौरे दें।

(iv) यदि स्वामी कोई न्यास सहकारी समिति या सस्था है तो न्यास कायकारिणी के चेयरमैन और सदस्यो के नाम और पते।

(v) किसी अन्य प्रकार का स्वामित्व हो तो उसका नाम एव प्रत्येक स्वामी क शेयर का ब्यौरा।

नोट – (i) समाचारपत्र का प्रभावी स्वामित्व प्रकट करने के लिये सभी सगत सूचना देनी चाहिये।

(ii) जो मदें आवश्यक न हो, उन्हें काट दें।

18 नात बांडधारी ऋणपत्रधारी, बधक ग्रही और अन्य प्रतिभूतिधारी जो बांडों, बंधको और प्रतिभूतियो की कुल रकम या एक प्रतिशत से अधिक का स्वामी या साझेदार हो।

नोट — उस मामले मे जहाँ स्टॉकधारी या प्रतिभूतिधारी कम्पनी की बहियो मे न्यासी या किसी अन्य न्यासवत् हैसियत से काम करता है तो उस व्यक्ति या निगम का नाम लिखना चाहिए जिसकी ओर से वह न्यासी का काम कर रहा है।

मै एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गये ब्यौरे सत्य है।
(बड़े अक्षरों मे नाम)

प्रकाशक के हस्ताक्षर

तारीख

फाम III

[देखिए नियम 7 (1)]

समाचारपत्र का रजिस्टर

1 घोषणा नम्बर जिसके तहत समाचारपत्र प्रकाशित किया जाता है

2 समाचारपत्र का रजिस्ट्रशन नम्बर

3 समाचारपत्र का नाम

4 भाषा/एँ जिसमे/जिनमे समाचारपत्र प्रकाशित होता है

5 (क) समाचारपत्र के प्रकाशन की नियतकालिका
(ख) प्रकाशन के दिन (एं) तिथि (ऐं) (प्रकाशन रोजाना प्रकाशित न होने के मामले मे)

6 सम्पादक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

7 मुद्रक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

8 प्रकाशक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

9 (क) परिसर का ठीक-ठाक वणन जहाँ मुद्रण होता है
(ख) प्रकाशन का स्थान

10 (क) प्रति सप्ताह पृष्ठो की औसत सख्या, दनिक, द्विसाप्ताहिक त्रिसाप्ताहिक और साप्ताहिक समाचारपत्रो के मामले मे
(ख) अन्य समाचारपत्रो के सबध मे पृष्ठो की औसत सख्या

11 साल मे प्रकाशन दिवसो की कुल सख्या

12 (क) मुद्रित प्रतियो की औसत सख्या

I	II
जनवरी से जून	जुलाई से दिसम्बर

(ख) विक्रीत प्रतियो की औसत सख्या

(ग) नि शुल्क बाटी गयी प्रतियो की औसत सख्या

13 प्रत्येक प्रति का फुटकर विक्रय मूल्य

14 नाम व पता उन व्यक्तियो का जो समाचारपत्र का स्वामित्व रखते हैं और उनका जो कुल पूजी के एक प्र श से अधिक हिस्से के अशधारी या साझेदार है

फार्म IV
(देखिए नियम 8)

(समाचारपत्र का नाम) के सबध म स्वामित्व व विवरण और अ य विशिष्टिया जिनका प्रकाशन प्रत्येक वप फरवरी माह के अ तिम दिन के पश्चात् प्रकाश्य प्रथम अक मे प्रकाशित होना है ।

1 प्रकाशन का स्थान

2 प्रकाशन की नियतकालिका

3 मुद्रक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

4 प्रकाशक का नाम
राष्ट्रीयता --
पता

5 सम्पादक का नाम --
राष्ट्रीयता -- --
पता

5 नाम व पता उन व्यक्तिया का जो समाचारपत्र का स्वामित्व रखते हैं और उनका जो कुल पूजी के एक प्र श मे अधिक हिस्से के अशधारी या साझेदार हैं

मैं   एतद्द्वारा घोपणा करता हूं कि उपरोक्त दी गई विशिष्टिया मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास से सत्य है।

दिनाक

प्रकाशक के हस्ताक्षर

फाम V

(देखिए नियम 10)

रजिस्ट्रेशन का प्रमाणपत्र

कार्यालय -- भारत के समाचारपत्रो के पजीयक

यह प्रमाणित किया जाता है कि (समाचारपत्र का नाम) मुद्रणयत्र और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 के तहत रजिस्ट्रीकृत किया जा चुका है।

(1) समाचारपत्र का नाम

(2) समाचारपत्र का रजिस्ट्रेशन नम्बर

(3) भापा (ए) जिसमे/जिनमे यह प्रकाशित होता है

(4) प्रकाशन की नियतकालिका और दिन (ए) तिथिया जिन पर यह प्रकाशित किया जाता है

(5) समाचारपत्र का फुटकर विक्रय मूल्य

(6) प्रकाशक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

(7) मुद्रक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

(8) संपादक का नाम
राष्ट्रीयता
पता

(9) उस परिसर का ठीक-ठाक वर्णन जहां मुद्रण होता है

(10) प्रकाशन का स्थान

दिनांक भारत के समाचारपत्रों के पंजीयक

प्रपत्र ए आर० – 4

दैनिक समाचारपत्र के सम्बन्ध में विवरण

प्रकाशक द्वारा भरा जाना और हस्ताक्षर करके भारत के समाचार-पत्रों के पंजीयक पश्चिम खंड – 8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली 110066 को प्रतिवर्ष 28 फरवरी तक वापिस करना।

टिप्पणी

*कृपया सिर्फ समाचारपत्र में काम करने वाले व्यक्तियों की संख्या लिखें तथा अलग से उनकी संख्या लिखें जो दूसरे समाचारपत्रों के साथ सम्मिलित रूप से काम करते हैं।

जहां किसी दैनिक समाचारपत्र के एक से अधिक समाचारपत्र अलग-अलग भाषाओं में थे, उन प्रत्येक दैनिक के आंकड़े भाषावार आधार पर दें।

I (1) नाम (बड़े अक्षरों में)
(2) भाषा (एं)
(3) प्रातः समाचारपत्र है या सांध्य
(4) प्रकाशन का स्थान
(5) कीमत
(6) प्रकाशक का नाम

II (1) क्या समाचारपत्र का अपना मुद्रणालय है ?

(2) समाचारपत्र का मुद्रण करने के लिये कौन सी किस्म की मशीनरी का प्रयोग किया जाता है। (रोटरी/सिलेण्डर/ट्रेडिल/ऑफसेट/अन्य दूसरी किस्म)

(3) क्या समाचारपत्र की अपनी कम्पोजिंग व्यवस्था है या यह बाहर किया जाता है। अपनी खुद की व्यवस्था के सबध मे कृपया लिखें कि क्या यह मोनोटाइप/लाइनोटाइप/इटरटाइप/फलीग्राफी/हाथ द्वारा किया जाता है।

(4) ब्लाक सैट बनाने के लिए क्या पत्र का अपना ससाधन विभाग है ?

III समाचार सचयन

1 (क) क्या समाचारपत्र, समाचार एजेंसी/एजेंसियो का ग्राहक है ? यदि ऐसा, तो कृपया भारतीय और विदेशी समाचार एजेंसिया के नाम तथा पूरा डाक पता पता अलग अलग दे (अगर जगह कम पडती है तो कृपया अलग शीट का प्रयोग करें) — भारतीय / विदेशी

2 (क) क्या समाचारपत्र केवल अपने लिये नियमित रूप से अपने विशेष सवाददाता/सवाददाता गण रखता है। (कृपया नियुक्त किये गये व्यक्तिया का स्थान और सख्या का विवरण दें। — भारत मे / विदेश मे / कुल

3 (क) क्या समाचारपत्र कोई विशेष सवाददातागण या दूसरी श्रेणी के सवाददाता, जो पत्र मे अशत काम कर रहे है, रखता है ?

(ख) यदि ऐसा, तो भारत म कितने/विदेश मे कितने ? (कृपया स्थान लिखें) — भारत मे / विदेश मे / कुल

4 उपरोक्त के अतिरिक्त समाचार-
पत्र के कितने रिपोर्टर है ?

IV 1 *सपादन/समाचारपत्र तैयार करने तथा अन्य पठन सामग्री के लिये नियुक्त व्यक्तियो (जैसे समाचार सपादकगण/उप सपादकगण और अन्य) की क्या सख्या है ? (कृपया विस्तृत विश्लेपण दीजिये) — पुरुष — महिलाएँ

2 *टीका, सपादकीय तथा अन्य दूसरी विशिष्टताए लिखने के लिए नियुक्त किए गए व्यक्तियो की सख्या क्या है ? (कृपया विस्तृत विश्लेपण दीजिये) — पुरुष — महिलाएँ
टीका लेखक
सपादकीय लेखक
विशिष्ट लेखक

3 क्या समाचारपत्र किसी भारतीय/विदेशी विशिष्ट मच का ग्राहक है ? (यदि ऐसा, तो कृपया उनका पूर्ण डाक का पता लिखें) — भारतीय — विदेशी

4 उपरोक्त के अलावा समाचारपत्र ने कितने श्रेणियो के व्यक्ति नियुक्त किये हैं, जसे —

छाया चित्रकार — मानचित्रकार

व्यग चित्रकार — अन्य

4 (क) *सम्पादकीय विभाग का प्रभारी व्यक्ति क्या समाचारपत्र के प्रबध से भी सबद्ध है ?

(ख) क्या उसका समाचारपत्र मे कोई स्वामित्व लाभ है ? (कृपया विवरण दें)

V समाचारपत्र द्वारा नियुक्त पत्रकारो के अतिरिक्त अन्य कुल कितने कमचारी हैं ?

(I) सामान्य	(IV) मुद्रण
(II) प्रबन्ध	(V) प्रसार
(III) विज्ञापन	(VI) अन्य
कुल (I) से (VI)	प्रतिशत

			प्रतिशत	
		बिक्री	विज्ञापन	कुल
1	(क) बिक्री/विज्ञापन से प्राप्त समाचारपत्र की कुल आय का अनुपात			100
	(ख) सरकारी/गैर सरकारी से प्राप्त विज्ञापन आय का अनुपात।	सरकारी सावजनिक क्षेत्र उपक्रम शामिल कर	गर सरकारी	कुल
2	समाचारपत्र मे पठन सामग्री व विज्ञापन का औसत अनुपात क्या है ?	पठन सामग्री	विज्ञापन	कुल
3	समाचारपत्र म देशी समाचार व विदेशी समाचार का औसत अनुपात क्या है ? (कृपया बिना क्रम नमूना आधार पर प्राक्कलन कीजिये)	देशी समाचार	विदेशी	कुल
4	(क) प्रति अक पृष्ठो की औसत सख्या			
	(ख) पृष्ठ क्षेत्र (वग सेन्टी मी० मे)			

दैनिक साप्ताहिक यदा-कदा

5 (क) क्या समाचारपत्र मे इनके लिए स्थान दिया जाता है — (कृपया यह भी लिखें कि यह दैनिक साप्ताहिक या/यदा-कदा विशिष्ट हैं।
1 खेल कूद
2 वाणिज्य
3 चित्रपट
4 कला
5 महिलाए

(ख) समाचारपत्र के क्या अपने अलग पत्रकार है ? यदि ऐसा, तो कृपया विश्लेषण दीजिए —
1 खेल-कूद
2 वाणिज्य
3 चित्रपट
4 कला

प्रति सप्ताह औसत सख्या

VI (1) क्या समाचारपत्र इन्हे प्रकाशित करता है —
(1) फोटो
(2) व्यग चित्र
(3) नक्शे
(4) रेखाचित्र

VII वष के लिए।
(जनवरी जून) समाचारपत्र का प्रति अक औसत प्रसार क्या है ?

(क) प्रकाशन के नगर सीमा भीतर प्रसार सख्या

(ख) राज्य/क्षेत्र सीमा भीतर प्रसार सख्या (प्रकाशन के नगर को छोडकर)

(ग) राज्य/क्षेत्र के बाहर प्रसार सख्या किन्तु भारत के भीतर (कृपया मुख्य पडौसी राज्य/क्षेत्र प्रत्येक की प्रसार सख्या अलग अलग दें)। .. ...

VIII वर्षानुसार पिछले 5 वर्षों के दौरान देहाती क्षेत्रों में विकास प्रसार — प्रसार

क्रमांक	वर्ष	शहरी क्षेत्र में	देहाती क्षेत्र में	कुल
1				
2				
3				
4				
5				

IX (1) क्या वर्ष के दौरान आपके समाचारपत्र का कोई नया संस्करण (णों) निकाला गया ? (कृपया प्रकाशन के नगर के साथ साथ प्रकाशन चालू करने की यथार्थ तिथि और संस्करण लिखें) ।

(2) क्या स्वामी का कोई दूसरा समाचारपत्र/नियतकालिक पत्र है ? कृपया प्रत्येक का नाम, भाषा नियतकालिकता तथा प्रकाशन का नगर लिखें)

(3) क्या वर्ष के दौरान स्वामी ने कोई दूसरा समाचारपत्र/नियत-कालिक पत्र निकाला है ? यदि ऐसा, तो कृपया समाचारपत्र का नाम, नियतकालिकता, भाषा प्रकाशन का स्थान तथा समाचारपत्र के प्रसार के साथ-साथ समाचारपत्र का चालू करने की यथार्थ तिथियां भी लिखें ।

४ क्या वप के दौरान किसी भी अवधि
में समाचारपत्र का प्रकाशन निलम्बित
रहा ? यदि ऐसा, तो कृपया ऐसे
निलम्बन की यथार्थ तिथि तथा
कारण लिखें।

तारीख प्रकाशक के हस्ताक्षर

प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978

1978 का अधिनियम सख्या 37 7 सितम्बर, 1978 (प्राधिकार से प्रकाशित भारत का राजपत्र असाधारण भाग II खण्ड I नई दिल्ली, शुक्रवार, सितम्बर 8, 1978)

भारत म प्रेस की स्वतन्त्रता और समाचारपत्रों तथा समाचार एजेंसियो के स्तर को बनाए रखने और उनम सुधार करने के प्रयोजन के लिए एक प्रेस परिषद् की स्थापना के लिए अधिनियम।

भारत गणराज्य के उन्तीसवें वष मे ससद द्वारा निम्नलिखित रूप मे यह अधिनियमित हो —

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1 सक्षिप्त नाम और विस्तार

(1) इस अधिनियम का सक्षिप्त नाम प्रेस परिषद् अधिनियम 1978 है।
(2) इसका विस्तार सपूर्ण भारत पर है।

2 परिभाषाएँ

इस अधिनियम म जब तक कि सदभ स अन्यथा अपेक्षित न हो —
(क) 'अध्यक्ष' से परिषद् का अध्यक्ष अभिप्रेत है
(ख) परिषद् से धारा 4 के अधीन स्थापित भारतीय प्रेस परिषद् अभिप्रेत है,

(ग) 'सदस्य से परिपद् का सदस्य अभिप्रेत है और इसके अ तगत उसका अध्यक्ष भी है

(घ) "विहित से इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमा द्वारा विहित अभिप्रेत है

(ङ) 'सम्पादक' और समाचारपत्र पदा के वही अथ है जो प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 म है और 'श्रमजीवी पत्रकार पद का वही अथ है जो श्रमजीवी पत्रकार और अ य समाचारपत्र कमचारी (सेवा की शर्तें) और प्रकीण उपब ध अधिनियम 1955 मे है।

(1867 का 25, 1955 का 45)

3 उन अधिनियमितियो के सम्ब ध मे अर्थान्वयन का नियम जिनका विस्तार जम्मू कश्मीर और सिक्किम राज्यों पर नहीं है।

इस अधिनियम म किसी ऐसी विधि के प्रति निर्देश का, जो जम्मू-कश्मीर अथवा सिक्किम राज्या म प्रवृत्त नही है ऐसे राज्य के सबध म अर्थान्वयन उस राज्य मे प्रवृत विधि के प्रति तत्स्थानीय निर्देश से यदि कोई हो किया जाएगा।

अध्याय 2

प्रेस परिषद् की स्थापना

4 परिषद का निगमन

(1) उस तारीख से, जो के द्रीय सरकार, राजपत्र म अधिसूचना द्वारा नियत करे भारतीय प्रेस परिषद् के नाम से एक परिषद् की स्थापना की जाएगी।

(2) उक्त परिषद् शाश्वत उत्तराधिकार और सामा य मुद्रा वाली एक निगमित निकाय होगी और उक्त नाम से वह वाद लायेगी और उस पर वाद लाया जाएगा।

5 परिषद की सरचना

(1) परिषद् एक अध्यक्ष और अट्ठाईस अ य सदस्यो से मिलकर बनेगी।

(2) अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होगा जो समिति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाएगा और यह समिति राज्यसभा के सभापति लोकसभा के अध्यक्ष और उपधारा (6)

के अधीन परिषद के सदस्यो द्वारा निर्वाचित एक व्यक्ति से मिलकर बनेगी और इस प्रकार किया गया नामनिर्देशन उस तारीख से प्रभावी होगा जिसको केन्द्रीय सरकार द्वारा राजपत्र मे अधिसूचित किया जाता है ।

(3) अन्य सदस्यो में से —

(क) तेरह श्रमजीवी पत्रकार, ऐसी प्रक्रिया के अनुसरण में नाम निर्दिष्ट किए जायेंगे जो विहित की जाए, जिनमे से छह समाचारपत्रों के संपादक होंगे और शेष सात सम्पादकों से भिन्न श्रमजीवी पत्रकार होंगे, किन्तु भारतीय भाषाओं में प्रकाशित समाचारपत्रों के संबंध में ऐसे संपादकों की और संपादकों से भिन्न ऐसे श्रमजीवी पत्रकारों की संख्या क्रमशः तीन और चार से कम नहीं होगी,

(ख) छह उन व्यक्तियों में से, जो समाचारपत्रों के स्वामी हों या समाचार पत्रों के प्रबंध का कारोबार करते हों, ऐसी प्रक्रिया के अनुसरण में नामनिर्दिष्ट किये जाएंगे जो विहित की जाए किन्तु यह इस प्रकार किया जाएगा कि बड़े समाचार पत्रों मध्यम समाचारपत्रों और छोटे समाचारपत्रों के प्रत्येक वर्ग में से दो प्रतिनिधि होंगे,

(ग) एक उन व्यक्तियों में से जो समाचार एजेंसियों का प्रबंध करते हों, ऐसी प्रक्रिया के अनुसरण में नाम निर्दिष्ट किया जाएगा जो विहित की जाए

(घ) तीन ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें शिक्षा और विज्ञान, विधि और साहित्य तथा संस्कृति के बारे में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो और इनमे से क्रमशः एक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा एक भारत की विधिज्ञ परिषद् द्वारा और एक साहित्य अकादमी द्वारा नाम निर्दिष्ट किया जाएगा,

(ङ) पांच संसद सदस्य होंगे जिनमें से तीन लोक सभा के अध्यक्ष द्वारा लोक सभा के सदस्यों में से नाम निर्दिष्ट किए जाएंगे और दो राज्यसभा के सभापति द्वारा राज्य सभा के सदस्यों में से नाम निर्दिष्ट किए जाएंगे,

परन्तु कोई श्रमजीवी पत्रकार, जो किसी समाचारपत्र का स्वामी हो या उसके प्रबंध का कारोबार करता हो खंड (क) के अधीन नाम निर्देशन का पात्र न होगा ।

परन्तु यह और कि खण्ड (क) और (ख) के अधीन नाम निर्देशन इस प्रकार किये जाएंगे कि नाम निर्देशित व्यक्तियों में एक से अधिक ऐसे व्यक्ति न हों जो किसी समाचारपत्र में या एक ही नियंत्रण या प्रबंध के अधीन समाचारपत्रों में किसी समूह में हितबद्ध हों ।

स्पष्टीकरण—खण्ड (ख) के प्रयोजनों के लिए कोई समाचारपत्र'—

(i) "बड़ा समाचारपत्र" समझा जाएगा यदि उसके सभी संस्करणों का कुल परिचलन हर एक अंक की पचास हजार प्रतियों से अधिक का हो,

(ii) "मध्य समाचारपत्र" समझा जाएगा यदि उसके सभी संस्करणों का कुल परिचलन हर एक अंक की पन्द्रह हजार प्रतियों से अधिक का हो किन्तु पचास हजार प्रतियों से अधिक का न हो।

(iii) *"छोटा समाचारपत्र" समझा जाएगा यदि उसके सभी संस्करणों का* कुल परिचलन हर एक अंक की पन्द्रह हजार प्रतियों से अधिक का न हो।

(4) उपधारा (3) के खण्ड (क) खण्ड (ख) या खण्ड (ग) के अधीन कोई नाम निर्देशन करने के पूर्व, प्रथम परिषद की दशा में केन्द्रीय सरकार और किसी पश्चात्वर्ती परिषद की दशा में पूर्ववर्ती परिषद का निवृत्त होने वाला अध्यक्ष उक्त खण्ड (क) खण्ड (ख) या खण्ड (ग) में निर्दिष्ट प्रवर्गों के व्यक्तियों के ऐसे संगमों से, जो प्रथम परिषद की दशा में केन्द्रीय सरकार द्वारा और पश्चात्वर्ती परिषदों की दशा में स्वयं परिषद द्वारा इस निमित्त अधिसूचित किए जाएं नामनिर्दिष्ट किए जाने वाले सदस्यों की दुगुनी संख्या में नामों के पैनल विहित रीति से आमन्त्रित करेगा।

परन्तु जहाँ उक्त खण्ड (ग) में निर्दिष्ट प्रवर्ग के व्यक्तियों का कोई संगम नहीं है वहां ऐसी समाचार एजेंसियों से, जो उपयुक्त रूप में अधिसूचित की जाएं नामों के पैनल आमन्त्रित किये जायेंगे।

(5) केन्द्रीय सरकार उपधारा (3) के अधीन सदस्यों के रूप में नाम निर्दिष्ट व्यक्तियों के नाम राजपत्र में अधिसूचित करेगी और ऐसा प्रत्येक नामनिर्देशन उस तारीख से प्रभावी होगा जिसको वह अधिसूचित किया जाता है।

(6) उपधारा (5) के अधीन अधिसूचित परिषद के सदस्य उपधारा (2) में निर्दिष्ट समिति का सदस्य होने के लिए एक व्यक्ति को अपने में से ऐसी प्रक्रिया के अनुसरण में निर्वाचित करेंगे जो विहित की जाए और ऐसे निर्वाचन के प्रयोजन के लिए परिषद के सदस्यों के अधिवेशन का सभापतित्व वह व्यक्ति करेगा जो उनके द्वारा अपने में से चुना गया हो।

6 सदस्यों की पदावधि और निवृत्ति

(1) इस धारा में जैसा उपबन्धित है उसके सिवाय अध्यक्ष और अन्य सदस्य तीन वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेंगे।

परन्तु अध्यक्ष, ऐसा पद, धारा 5 के उपबंध के अनुसरण में परिषद के पुनर्गठित होने तक या छह मास की अवधि के लिए, इनमें से जो भी पूर्वतर हो धारण करते रहेंगे।

(2) यदि धारा 5 की उपधारा (3) के खण्ड (घ) खण्ड (ख) या खण्ड (ग) के अधीन सदस्य के रूप में नाम निर्दिष्ट व्यक्ति धारा 14 की उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन परिनिर्दिष्ट किया जाता है तो वह परिषद का सदस्य नहीं रहेगा।

(3) धारा 5 की उपधारा (3) के खण्ड (ङ) के अधीन नामनिर्दिष्ट सदस्य की पदावधि उसी समय समाप्त हो जाएगी जब वह उस सदन का सदस्य न रह जाए जिससे वह नामनिर्दिष्ट किया गया था।

(4) यदि कोई सदस्य किसी ऐसे प्रतिहेतु के बिना, जो परिषद की राय में पर्याप्त हो, परिषद के तीन क्रमवर्ती अधिवेशनों में अनुपस्थित रहता है तो यह समझा जाएगा कि उसने अपना स्थान रिक्त कर दिया है।

(5) अध्यक्ष केन्द्रीय सरकार को लिखित सूचना देकर अपना पद त्याग सकेगा और कोई भी अन्य सदस्य, अध्यक्ष को लिखित सूचना देकर अपना पद त्याग सकेगा और ऐसा त्यागपत्र यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या अध्यक्ष द्वारा स्वीकार कर लिए जाने पर यह समझा जाएगा, कि यथास्थिति, अध्यक्ष या सदस्य ने अपना पद त्याग दिया है।

(6) उपधारा (2), उपधारा (3) उपधारा (4) या उपधारा (5) के अधीन या अन्यथा होने वाली कोई रिक्ति यथाशक्य शीघ्र, उसी रीति से नाम निर्देशन द्वारा भरी जाएगी जिस रीति से पद रिक्त करने वाले सदस्य को नाम निर्दिष्ट किया गया था और इस प्रकार नामनिर्दिष्ट सदस्य उस शेष अवधि के लिए पद धारण करेगा जिसके लिए वह सदस्य जिसके स्थान पर वह नामनिर्दिष्ट किया गया है पद धारण करता।

(7) निवृत्त होने वाला सदस्य अधिक से अधिक एक पदावधि के लिए पुन नामनिर्देशित किये जाने का पात्र होगा।

सदस्यों की सेवा की शर्तें

7(1) अध्यक्ष पूर्णकालिक अधिकारी होगा और उसे ऐसा वेतन दिया जाएगा जो केन्द्रीय सरकार ठीक समझे और अन्य सदस्य परिषद के अधिवेशनों में हाजिर होने के लिए ऐसे भत्ते या फीस प्राप्त करेंगे जो विहित की जाए।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए सदस्यों की सेवा की शर्तें ऐसी होंगी जो विहित की जाए।

(3) इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि परिषद के सदस्य का पद उसके धारक को संसद के दोनों म से किसी भी सदन का सदस्य चुने जाने या रहने के लिए अनर्हित नहीं करेगा।

परिषद की समितियाँ

8(1) परिषद् इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के पालने के प्रयोजन के लिए अपने सदस्यों म से साधारण या विशेष प्रयोजन के लिए ऐसी समितियों का गठन कर सकेगी जैसी वह आवश्यक समझे और इस प्रकार गठित प्रत्येक समिति ऐसे कृत्यों का पालन करेगी जो परिषद उसे सौंपे।

(2) परिषद् को उतनी संख्या म, जितनी ठीक समझे ऐसे अन्य व्यक्तियों को, जो परिषद् के सदस्य नहीं हैं उपधारा (1) के अधीन गठित किसी समिति के सदस्यों के रूप में सहयोजित करने की शक्ति होगी।

(3) किसी भी ऐसे सदस्य को उस समिति के किसी भी अधिवेशन म जिसमें उसे इस प्रकार सहयोजित किया गया है, हाजिर होने का और वहाँ पर चर्चा में भाग लेने का अधिकार होगा किन्तु उसे मतदान का अधिकार नहीं होगा और वह किसी अन्य प्रयोजन के लिए सदस्य नहीं होगा।

परिषद और समितियों के अधिवेशन

(9) परिषद् या उसकी किसी समिति का अधिवेशन ऐसे समय और स्थान पर होगा और वह अपने अधिवेशनों में कारोबार के संव्यवहार के सम्बन्ध म प्रक्रिया के ऐसे नियमों का पालन करेगी जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों द्वारा उपबन्धित किए जाए।

परिषद के सदस्यों में रिक्तियाँ होने या उसके गठन म त्रुटि होने से परिषद् के कार्यों और कारवाहियों का अविधिमान्य न होगा।

(10) परिषद का कोई भी कार्य या उसकी कोई भी कार्यवाही परिषद म कोई रिक्ति या उसके गठन म कोई त्रुटि के कारण ही अविधिमान्य नहीं समझी जाएगी।

परिषद के कर्मचारीवृन्द

11 (1) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित बनाए जायें परिषद् का एक सचिव और ऐसे अन्य कर्मचारी नियुक्त कर सकेगी जिन्हें वह इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के दक्षतापूर्ण पालन के लिए आवश्यक समझे।

(2) कर्मचारियों की सेवा के निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विनियमों द्वारा अवधारित की जाए।

12 परिषद के आदेशों और अन्य लिखितों का अधिप्रमाणन

परिषद् के सभी आदेशों और विनिश्चयों का अधिप्रमाणन अध्यक्ष या परिषद् द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी भी अन्य सदस्य के हस्ताक्षर से होगा और परिषद् द्वारा निकाली गई अन्य लिखितों का अधिप्रमाणन सचिव या परिषद् के किसी ऐसे अन्य अधिकारी के हस्ताक्षर से होगा जो इस निमित्त उसी रीति से प्राधिकृत हो।

अध्याय 3

परिषद् की शक्तियां और कृत्य

परिषद के उद्देश्य और कृत्य

13 (1) परिषद् का उद्देश्य भारत में प्रेस की स्वतन्त्रता और समाचारपत्रों तथा समाचार एजेंसियों के स्तर बनाए रखना तथा उन्हें सुधार करना होगा।

(2) परिषद् अपने उद्देश्यों को अग्रसर करने के लिए निम्नलिखित कृत्यों का पालन कर सकेगी अर्थात —

(क) समाचारपत्रों तथा समाचार एजेंसियों द्वारा अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने में उनकी सहायता करना।

(ख) समाचारपत्रों, समाचार एजेंसियों और पत्रकारों के लिए उच्च वृत्तिक स्तर के अनुसार एक आचारसंहिता बनाना।

(ग) यह सुनिश्चित करना कि समाचारपत्रों, समाचार एजेन्सियों और पत्रकारों की ओर से लोक-रुचि के उच्च स्तर बनाए रखे जाए और नागरिक अधिकारों और उत्तरदायित्वों दोनों की सम्यक् भावना का पोषण करना।

(घ) उन सब व्यक्तियों में जो पत्रकारिता की वृत्ति में लगे हुए हैं उत्तरदायित्व और लोक-सेवा की भावना प्रोत्साहित करना।

(ङ) ऐसी किसी भी बात पर जिससे लोकहित और लोक महत्व के समाचार के प्रदाय और प्रसार का निर्बंधन सम्भाव्य हो, विचार करते रहना।

(च) भारत मे किसी समाचारपत्र या समाचार एजेंसिया द्वारा किसी विदेशी स्रोत से प्राप्त सहायता के मामलो का, जिनके अन्तगत वे मामले भी हैं जो केन्द्रीय सरकार द्वारा उसे निर्देशित किए जाए या किसी व्यक्ति, व्यक्तिया के सगम या अन्य सगठन द्वारा उसकी जानकारी मे लाए जाए, पुनर्विलोकन करते रहना।

परन्तु इस खण्ड की कोई बात भारत के किसी भी समाचारपत्र या समाचार एजेंसी द्वारा किसी विदेशी स्रोत से प्राप्त सहायता के किसी मामले मे किसी अन्य ऐसी रीति से जो केन्द्रीय सरकार ठीक समझ, कारवाई करने से केन्द्रीय सरकार को प्रवाहित न करेंगी।

(छ) विदेशी समाचारपत्रा के, जिनके अन्तगत किसी राजदूतावास द्वारा या भारत मे विदेशी राज्य के किसी प्रतिनिधि द्वारा निकाली गई पत्रिकाए भी है, अध्ययन का भार अपने ऊपर लेना, उनका परिचलन और प्रभाव।

स्पष्टीकरण—इस खड के प्रयाजन के लिए, 'विदेशी राज्य" पद का वही अथ होगा जा सिविल प्रक्रिया सहिता, 1908 की धारा 87 (क) म है। (1908 का 5)

(ज) समाचारपत्र निकालने या उनके प्रकाशन मे या समाचार एजेंसिया मे लगे हुए व्यक्तियो के सभी वर्गों मे उचित वृत्तिक सम्बन्ध की अभिवृद्धि करना।

परन्तु इस खण्ड की कोई बात परिषद पर उन विवादो की बाबत काइ कृत्य सौपने वाली नही समझी जाएगी जिन्हे औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 लागू है। (1947 का 14)

(झ) समाचारपत्रो और समाचार एजेंसियो के स्वामित्व के सकेन्द्रण या उनके अन्य पहलुओ से सम्बन्धित ऐसी घटना पर निगाह रखना जिनका प्रस की स्वतत्रता पर प्रभाव पड सकता हो।

(ञ) ऐसे अध्ययन काय हाथ म लेना जो परिषद को सौपे जाए और किसी ऐसे विषय के बारे मे अपनी राय प्रकट करना जो केन्द्रीय सरकार द्वारा उसे निर्दिष्ट किया जाए।

(ट) ऐसे अन्य काय करना जा उपयुक्त कृत्या के निवहन के आनुसगिक या साधक हो।

परिनिन्दा करने की शक्ति

14 (1) जहां परिषद् को, उससे किए गए परिवाद के प्राप्त होने पर या अन्यथा, यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी समाचारपत्र या समाचार एजेंसी ने पत्रकारिक सदाचार या लोक-रुचि के स्तर का अतिवर्तन किया है या किसी संपादक या श्रमजीवी पत्रकार ने कोई वृत्तिक अवचार किया है, वहां परिषद् सम्बद्ध समाचारपत्र या समाचार एजेंसी, संपादक या पत्रकार को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात उस रीति से जांच कर सकेगी जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों द्वारा उपबन्धित हो और यदि उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक है तो, वह ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, यथास्थित उस समाचारपत्र, समाचार एजेंसी, संपादक या पत्रकार को चेतावनी दे सकेगी, उसकी भर्त्सना कर सकेगी या उसकी परिनिन्दा कर सकेगी, या उस संपादक या पत्रकार के आचरण का अननुमोदन कर सकेगी।

परन्तु यदि अध्यक्ष की राय में जांच करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है तो परिषद् किसी परिवाद का संज्ञान नहीं कर सकेगी।

(2) यदि परिषद् की यह राय है कि लोकहित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, तो वह किसी समाचारपत्र से यह अपेक्षा कर सकेगी कि वह समाचारपत्र या समाचार एजेंसी, संपादक या उसमें कार्य करने वाले पत्रकार के विरुद्ध इस धारा के अधीन किसी जांच से सम्बन्धित किन्हीं विशिष्टियों को, जिनके अन्तर्गत उस समाचारपत्र समाचार एजेंसी, संपादक या पत्रकार का नाम भी है। उसमें ऐसी रीति से जसी परिषद् ठीक समझे, प्रकाशित करे।

(3) उपधारा (1) की किसी भी बात से यह नहीं समझा जाएगा कि वह परिषद् को किसी ऐसे मामले में जांच करने की शक्ति प्रदान करती है जिसके बारे में कोई कारवाई किसी न्यायालय में लम्बित हो।

(4) यथास्थिति, उपधारा (2) के अधीन परिषद् का विनिश्चय अन्तिम होगा और उस किसी भी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जायेगा।

परिषद की साधारण शक्तियां

15 इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के पालन या कोई जांच करने के प्रयोजन के लिए परिषद् को निम्नलिखित ।

मे सम्पूर्ण भारत मे वे हो शक्तिया होगी जो वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय मे सिविल प्रक्रिया सहिता, 1908 के अधीन निहित है, अर्थात –

(क) व्यक्तियो को समन करना और हाजिर कराना तथा उसकी समय पर परीक्षा करना ।

(ख) दस्तावेजो का प्रकटीकरण और उनका निरीक्षण ।

(ग) साक्ष्य का शपथ पर लिया जाना ।

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपिया की अध्यपेक्षा करना ।

(ङ) साक्षिया या दस्तावेजा की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ।

(च) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाए ।

(2) उपधारा (1) की कोई बात किसी समाचारपत्र, समाचार एजेंसी, सम्पादक या पत्रकार को, उस समाचारपत्र द्वारा प्रकाशित या उस समाचार एजेंसी सम्पादक या पत्रकार द्वारा प्राप्त या रिपाट किए गए किसी समाचार या सूचना का स्रात प्रकट करने के लिए विवश करने वाली नही समझी जायेगी ।

(3) परिषद द्वारा की गई प्रत्येक जाच भारतीय दण्ड सहिता की धारा 193 की धारा 228 के अथ मे न्यायिक कायवाही समझी जाएगी । (1860 का 45)

(4) यदि परिषद् अपने उद्देश्या को क्रियान्वित करने के प्रयोजन के लिए या अधिनियम के अधीन अपने कृत्या का पालन करने के लिए आवश्यकता समझती है तो वह अपने किसा विनिश्चय मे या रिपोट मे किसी प्राधिकरण के, जिसके अन्तगत सरकार भी है, आचरण के सम्बन्ध म ऐसा मत प्रकट कर सकेगी जो वह ठीक समझे ।

फीसो का उदग्रहण

16 (1) परिषद् इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यो का पालन करने के प्रयोजन के लिए फीस ऐसी दर पर और ऐसी रीति स, जो विहित की जाए, रजिस्ट्रीकृत समाचारपत्रो/समाचार एजेंसियो को उद्ग्रहीत कर सकेगी और विभिन्न समाचारपत्रो के लिए विभिन्न दरें, उनके प्रचार और अन्य बातो का ध्यान मे रखते हुए, विहित की जा सकेंगी ।

(2) परिषद् को उपधारा (1) के अधीन सदेय कोई फीस, भू-राजस्व के बकाया रूप मे वसूल की जा सकेगी।

4435

परिषद को सदाय

17 केन्द्रीय सरकार, ससद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सयक विनियोग के पश्चात, परिषद् को ऐसी धनराशियों का सदाय अनुदानो के रूप मे कर सकेगी जो केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के अधीन परिषद् के कृत्यो के पालन के लिए आवश्यक समझे।

परिषद् की निधि

18 (1) परिषद् की अपनी निधि होगी और परिषद द्वारा सगृहीत फीस, और ऐसी जमा राशिया, जो समय समय पर उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा सदत्त की जाए और सभी अनुदान तथा अग्रिम धन, जो किसी अन्य प्राधिकरण या व्यक्ति द्वारा दिए गए है, निधि जमा किए जाएगे, और परिषद् द्वारा सभी सदाय उस निधि मे से किए जाएग।

(2) परिषद् का सब धन ऐसे बको मे निक्षिप्त किया जाएगा या ऐसी रीति से विनिहित किया जाएगा जो केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन से परिषद विनिश्चय करे।

(3) परिषद् ऐसी राशिया व्यय कर सकेगी जो वह इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यो के पालन के लिए ठीक समझे और ऐसी राशिया परिषद् की निधि मे से सदव व्यय मानी जाएगी।

बजट

19 प्रत्येक वप मे परिषद् ऐसे प्रारूप मे और ऐसे समय पर, जो विहित किया जाए, आगामी वित्तीय वप के बारे मे एक बजट तैयार करेगी जिसमे प्राक्कलित आय और व्यय दर्शित होगे और उसकी प्रतियाँ केन्द्रीय सरकार को अग्रेपित की जाएगी।

वार्षिक रिपोट

20 परिषद् प्रत्येक वप एक बार ऐसे प्रारूप मे और ऐस समय पर, जो विहित किया जाय एक वार्षिक रिपोट तैयार करेगी, जिसमे पूव वप मे किए गए अपने कायकलापो का सक्षेप और समाचारपत्रो तथा समाचार एजेन्सियो के स्तर और उन पर प्रभाव डालने वाली बाता का लेखा होगा और उसकी प्रतिया धारा 22 के अधीन विहित अपरीक्षित

लेखा विवरण सहित केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित की जाएगी और वह सरकार उन्हे ससद के दोनो सदनो के समक्ष रखवाएगी।

अन्तरिम रिपोर्ट

21 धारा 20 के उपबन्धो पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना परिषद् एक वर्ष मे किसी भी समय, उस वर्ष के दौरान अपने ऐसे क्रियाकलापो का सक्षेप देते हुए रिपोर्ट तैयार कर सकेगी जिन्हें वह लोक महत्त्व का समझे और उसकी प्रतियाँ केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित की जायेंगी और सरकार उन्हे ससद् के दोनो सदनो के समक्ष रखवाएगी।

लेखा और सपरीक्षा

22 परिषद् के लेखे ऐसी रीति से रखे और सपरीक्षित किये जाएगे जो भारत के नियत्रक और महालेखापरीक्षक के परामर्श से विहित की जाए।

अध्याय 4

प्रकीर्ण

सद्भावपूर्वक की गई कारवाई के लिए सरक्षण

23 (1) कोई भी वाद या अन्य विधिक कार्यवाही किसी भी ऐसी बात के बारे म, जो इस अधिनियम के अधीन सद्भावपूर्वक की गई हो या की जाने के लिए आशयित हो, परिषद् या उसके किसी भी सदस्य या परिषद के निदेश के अधीन काय करने वाले किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध न होगी।

(2) कोई भी वाद या अन्य विधिक कायवाही किसी समाचार-पत्र मे परिषद के प्राधिकार से प्रकाशित किसी भी विषय के बारे मे उस समाचारपत्र के विरुद्ध नही होगी।

सदस्य आदि लोकसेवक होंगे

24 परिषद का प्रत्येक सदस्य और परिषद् द्वारा नियुक्त प्रत्येक अधिकारी या अन्य कर्मचारी भारतीय दण्ड सहिता की धारा 21 के अथ मे लोकसेवक समझा जाएगा। (1860 का 45)

नियम बनाने की शक्ति

25 (1) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बता सकेगी।

परन्तु जब परिषद् स्थापित कर दी गई हो तब ऐसे कोई भी नियम परिषद् से परामर्श किए बिना नहीं बनाये जायेंगे।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम निम्नलिखित सब विषयों के लिए या उनमें से किसी के लिए भी उपबन्ध कर सकेंगे अर्थात् –

(क) धारा 5 की उपधारा (3) के खण्ड (क) खण्ड (ख) और खण्ड (ग) के अधीन परिषद् के सदस्यों के नाम निदेशन की प्रक्रिया,

(ख) वह रीति जिससे धारा 5 की उपधारा (4) के अधीन नामों के पैनल आमन्त्रित किए जा सकेंगे,

(ग) धारा 5 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट समिति के सदस्य की उक्त धारा की उपधारा (6) के अधीन निर्वाचित करने की प्रक्रिया,

(घ) वे भत्ते और फीसें जो परिषद् सदस्यों को परिषद के अधिवेशनों में उपस्थित होने के लिए सदत्त की जायें और धारा 7 की उपधारा (1) और (2) के *अधीन ऐसे सदस्यों की सेवा की अन्य शर्तें*,

(ङ) धारा 11 के अधीन परिषद् के सचिव और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति,

(च) धारा 15 की उपधारा (1) के खण्ड में निर्दिष्ट विषय,

(छ) वे दरें जिन पर परिषद द्वारा धारा 16 के अधीन फीस उद्गृहीत की जा सकेगी और वह रीति जिससे ऐसी फीस उद्गहीत की जा सकेगी,

(ज) वह प्रारूप जिसमें और वह समय जिसके भीतर बजट और वार्षिक रिपोर्ट क्रमश धारा 19 और धारा 20 के अधीन परिषद् द्वारा तयार किए जाने हैं,

(झ) वह रीति जिससे परिषद् के लेखे रखे जायेंगे और धारा 22 के अधीन उनकी संपरीक्षा की जाएगी,

(2) इस धारा के अधीन बनाया या प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल 30 दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा। यह अवधि एक सत्र में

अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रो मे पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रो के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनो सदन उस नियम मे कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जायें तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप मे ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनो सदन सहमत हो जायें कि वह नियम नही बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात वह निष्प्रभाव हो जाएगा किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नही पडेगा ।

26 विनियम बनाने की शक्ति

परिषद् निम्नलिखित के लिए ऐसे विनियम बना सकेगी जो इस अधिनियम तथा इसके अधीन बनाए गए नियमो से असंगत न हो, अर्थात् —

(क) परिषद् या उसकी किसी समिति के अधिवेशनो और उनमे कामकाज की प्रक्रिया का धारा 9 के अधीन विनियम,

(ख) परिषद् द्वारा नियुक्त किए गए कर्मचारियो की सेवा के निबन्धनो और शर्तों का धारा 11 की उपधारा (2) के अधीन विनिर्देश,

(ग) इस अधिनियम के अधीन कोई भी जांच की रीति का विनियम,

(घ) ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जिन्हे वह अधिरोपित करना ठीक समझे, परिषद् के अध्यक्ष या सचिव को धारा 18 की उपधारा (3) के अधीन अपनी शक्तियो म स किसी का प्रत्यायोजन,

(ङ) कोई अन्य विषय जिनके लिए इस अधिनियम के अधीन विनियमो द्वारा उपलब्ध किया जा सकता है,

परन्तु खण्ड (ख) के अधीन बनाए गए विनियम केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से ही बनाए जाएँगे ।

(1867 के अधिनियम 25 का संशोधन)

27 प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 की धारा 8 ग की उपधारा (1) मे, "केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले अध्यक्ष तथा एक अन्य सदस्य से मिलकर बनेगा" शब्दो के स्थान पर "प्रेस परिषद् द्वारा अपने सदस्यो मे से नाम निर्दिष्ट किए जाने वाले अध्यक्ष तथा एक अन्य सदस्य से मिलकर बनेगा" शब्द और अक रखे जायेंगे ।

प्रेस परिषद् (संशोधन) नियम 1981

भारत सरकार

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

नई दिल्ली 15 जुलाई, 1981

अधिसूचना

स० का० नि० केन्द्रीय सरकार प्रेस परिषद् अधिनियम 1978 (1978 का 37) की धारा 25 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रेस परिषद् नियम 1979 में निम्नलिखित संशोधन करती है अर्थात् –

1 (क) इन नियमों का नाम प्रेस परिषद् (संशोधन) नियम 1981 होगा।

(ख) यह सरकारी राजपत्र में प्रकाशन की तिथि से प्रवृत्त होंगे।

2 प्रेस परिषद् नियम 1979 के नियम 10 (1) के खण्ड (क) से (च) तक तथा तदधीन स्पष्टीकरण में निम्नलिखित प्रतिस्थापित किये जायेंगे अर्थात् –

(क) 1,50,000 से अधिक परिसंचरण संख्या वाले पंजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकायें—

(i) प्रत्येक दैनिक से 5 000 रुपये प्रतिवर्ष।

(ii) प्रत्येक द्विसाप्ताहिक/साप्ताहिक से 3,000 रुपये प्रत्येक प्रतिवर्ष।

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक से 2 000 रुपये प्रतिवर्ष।

(iv) अन्य सभी श्रेणियों से 1,500 रुपये प्रतिवर्ष।

(ख) 1,00,000 से अधिक तथा 1,50,000 तक परिसंचरण संख्या वाले पंजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकायें—

(i) प्रत्येक दैनिक से 3,500 रुपये प्रतिवर्ष।

(ii) प्रत्येक द्विसाप्ताहिक/साप्ताहिक से 2,000 रुपये प्रतिवर्ष।

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक से 1,500 रुपये प्रतिवर्ष।

(iv) अन्य सभी श्रेणियों से 1 000 रुपये प्रतिवर्ष।

(ग) 50,000 से अधिक तथा 1,00,000 तक परिसचरण सख्या वाले पजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकायें—

(i) प्रत्येक दनिक मे 2 500 रुपये प्रतिवष ।

(ii) प्रत्येक द्विसाप्ताहिक/साप्ताहिक से 1,500 रुपये प्रतिवष ।

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक से 1 000 रुपये प्रतिवष ।

(iv) अन्य सभी श्रेणिया से 750 रुपये प्रतिवष ।

(घ) 15,000 से अधिक तथा 50 000 तक परिसचरण सख्या वाले पजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकायें—

(i) प्रत्येक दैनिक से 1,000 रुपये प्रतिवष ।

(ii) प्रत्येक द्विसाप्ताहिक/साप्ताहिक से 600 रुपये प्रतिवष ।

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक से 400 रुपये प्रतिवष ।

(iv) अन्य सभी श्रेणिया से 300 रुपय प्रतिवष ।

(ङ) 5,000 से अधिक तथा 15,000 तक परिसचरण सख्या वाले पजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकायें—

(i) प्रत्येक दनिक से 200 रुपये प्रतिवष ।

(ii) प्रत्येक द्विसाप्ताहिक/साप्ताहिक से 150 रुपये प्रतिवष ।

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक स 100 रुपये प्रतिवष ।

(iv) अन्य सभी श्रेणिया से 100 रुपये प्रतिवष ।

(च) प्रथम श्रणी मे प्रत्येक समाचार अभिकरण स 5,000 रुपये प्रतिवष ।

(छ) द्वितीय श्रेणी मे प्रत्येक समाचार अभिकरण से 3 500 रुपय प्रतिवष ।

(ज) अन्य सभी समाचार अभिकरणो से 2 500 रुपये प्रतिवष ।

स्पष्टीकरण—इस नियम के उद्देश्य स्वरूप पजीकृत समाचारपत्रो तथा पत्रिकाओ की वितरण सख्या भारतीय समाचारपत्रो के पजीयक द्वारा उपलब्ध नवीनतम वितरण सख्या तथा श्रमजीवी पत्रकारो के वेतन बोड की रिपोट म सकेतित समाचार अभिकरणों के वर्गीकरण के लक्षण क अनुसार निर्धारित होगी ।

(फाइल सख्या 4/24/79 प्रेस)

ह०/

(पी के जलाली)

भारत सरकार के उप सचिव

प्रेस परिषद् (जाँच प्रक्रिया) विनियम 1979
भारत के असाधारण राजपत्र
भाग 3 खण्ड 4 में प्रकाशित

नई दिल्ली, नवम्बर 14, 1979

फा० सं० 25/1/79-पी० सी० आइ० —भारतीय प्रेस परिषद् अधिनियम 1978 (1978 का 37) की धारा 26 के खण्ड (ग) तथा उसे समर्थ बनाने वाली अन्य शक्तियों का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित विनियम बनाती है, अर्थात्

1 संक्षिप्त नाम और प्रारम्भ—(1) इन विनियमों का नाम प्रेस परिषद् (जाँच प्रक्रिया) विनियम, 1979 होगा।

(2) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख से प्रवृत्त होंगे।

2 परिभाषाएँ–जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो—

(क) "अधिनियम' से प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978 (1978 का 37) अभिप्रेत है,

(ख) समिति से अधिनियम की धारा 13 (2) और 14 (1) के अधीन परिवादों की जाँच के प्रयोजन के लिए अधिनियम की धारा [redacted] (1) के अधीन परिषद् द्वारा गठित जाँच समिति अभिप्रेत है,

(ग) 'परिषद्' से अधिनियम के अधीन गठित भारतीय प्रेस परिषद् अभिप्रेत है,

(घ) "परिवादी" से अधिनियम की धारा 14 (1) के अधीन परिवादों के मामले में ऐसा कोई व्यक्ति या प्राधिकारी अभिप्रेत है जो किसी समाचारपत्र समाचार अभिकरण, सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार के सम्बन्ध में परिषद् को परिवाद प्रस्तुत करता है और अन्य विषयों के सम्बन्ध में परिवादों की बाबत *ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो ऐसे किसी विषय के सम्बन्ध में परिषद् को* परिवाद प्रस्तुत करता है जिसे ग्रहण करने की ओर जिसकी परीक्षा करने और जिस पर अपना मत व्यक्त करने की, परिषद् को अधिकारिता प्राप्त है और

(ङ) "विषय' से कोई लेख समाचार मद, समाचार रिपोर्ट या कोई अन्य ऐसा विषय अभिप्रेत है जो किसी भी रीति से किसी समाचारपत्र द्वारा प्रकाशित

किया गया है या किसी समाचार अभिकरण द्वारा पारेषित किया गया है और इसके अतर्गत कोई कार्टून चित्र, फोटोचित्र, सामग्री या कोई विज्ञापन शामिल है जो किसी समाचारपत्र म प्रकाशित हुआ है।

3 अधिनियम की धारा 14 (1) के अधीन किसी समाचारपत्र, समाचार अभिकरण, सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार के सबध मे परिवाद की अतवस्तु–

(1) यदि कोई व्यक्ति अधिनियम की धारा 14 (1) के अधीन किसी समाचारपत्र या समाचार अभिकरण म किसी विषय के प्रकाशन या अप्रकाशन के सम्बन्ध मे परिषद् को कोई परिवाद करता है तो,

(क) यह उस समाचारपत्र, समाचार अभिकरण सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार का नाम और पता देगा जिसके विरुद्ध परिवाद किया गया है और यदि परिवाद किसी समाचारपत्र में किसी विषय के प्रकाशन से सम्बन्धित है या किसी अभिकरण द्वारा पारेषण से सबधित है तो परिवाद के साथ उस विषय की मूल कटिंग भी प्रस्तुत करेगा जिसकी बाबत परिवाद किया गया है। साथ ही *ऐसी विशिष्टियाँ भी देगा जो परिवाद की विषयवस्तु स सुसगत हैं और यदि* परिवाद किसी विषय के अप्रकाशन से सम्बन्धित है तो उस विषय को मूल रूप मे या उसकी प्रति प्रस्तुत करेगा जिसके अप्रकाशन की बाबत परिवाद किया गया है।

(ख) इस बात का कथन करेगा कि किस रीति म परिवादित विषय का प्रकाशन या अप्रकाशन, अधिनियम की धारा 14 (1) के अथ मे आपत्तिजनक है

(ग) परिषद् के समक्ष परिवाद फाइल करने से पूव सबधित समाचारपत्र समाचार अभिकरण, सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार का ध्यान समाचारपत्र आदि म प्रकाशित विषय की ओर या ऐसे विषय के अप्रकाशन की ओर आकर्षित करेगा जो परिवादी की राय मे आपत्तिजनक है और वह यथास्थिति, समाचारपत्र समाचार अभिकरण सम्पादक या श्रमजीवी पत्रकार को एसी राय के आधार प्रस्तुत करेगा। परिवादी अपने परिवादके साथ ही उस पत्र की, जो उसने *समाचारपत्र समाचार अभिकरण, सपादक या अन्य श्रमजीवी* पत्रकार को लिखा है कोई प्रति और यदि उसका उसे कोई उत्तर प्राप्त हुआ है तो उसकी एक प्रति भी सलग्न करेगा परन्तु अध्यक्ष इस शत का स्वविवेकानुसार अभित्यजन कर सकेंगे।

(घ) यदि परिवाद यह है कि किसी सम्पादक ने या किसी श्रमजीवी पत्रकार ने किसी समाचारपत्र में किसी विषय के प्रकाशन या अप्रकाशन से भिन्न कोई वृत्तिक अवचार किया है तो, परिवादी उन तथ्यो के बार मे जो उसके

मतानुसार परिवार को न्यायोचित ठहराते हैं, स्पष्ट ब्यौरे उपवर्णित करेगा और एमे परिवाद को उक्त खण्ड (ग) के उपबंध भी लागू होंगे।

(ङ) प्रत्येक दशा मे, परिषद् के समक्ष सभी अन्य सुसगत तथ्य रखेगा, और

(च) (I) किसी समाचारपत्र या समाचार एजेंसी के सम्बन्ध मे किसी विषय के प्रकाशन या अप्रकाशन से सम्बन्धित किसी परिवाद के मामले मे, परिवाद सबंधित विषय के प्रकाशन या अप्रकाशन की तारीख से निम्नलिखित अवधियों के भीतर परिषद् को प्रस्तुत किया जायेगा अर्थात्—

(क) दैनिक समाचारपत्र, समाचार एजेंसियाँ और साप्ताहिक—दो मास के भीतर।

(ख) अन्य सभी मामलो म—चार मास के भीतर परन्तु किसी पूर्वतर तारीख के सुसगत प्रकाशन का परिवादो मे सदर्भ दिया जा सकेगा।

(II) उक्त खण्ड (घ) के अधीन किसी सपादक या श्रमजीवी पत्रकार के विरुद्ध किसी परिवाद के मामले म परिवादित अवचार के चार मास के भीतर प्रस्तुत किया जाएगा

परन्तु यदि परिषद का इस बाबत, समाधान हो जाता है कि परिवादी ने तत्काल कारवाई की है, किन्तु विनियम 3 (1) (च) के उपखण्ड (I) या उपखण्ड (II) के अधीन विहित अवधि के भीतर परिवाद निवेशित करने म विलम्ब उक्त उपखड (ग) म अधिकथित शत के अनुपालन मे लगे समय के कारण या किसी अन्य पर्याप्त हेतुक के कारण हुआ है तो वह विलब माफ कर देगी और परिवाद ग्रहण कर सकेगी। माफ करने की शक्ति का प्रयोग अध्यक्ष, परिषद् के अनुमोदन के अधीन रहते हुए करेंगे।

(2) परिवादी परिवाद प्रस्तुत करत समय उनम सबसे नीचे निम्नलिखित प्रभाव की उद्घोषणा करेगा

(I) यह कि उसके सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के अनुसार उसने परिषद् के समक्ष सभी सुसगत तथ्य प्रस्तुत कर दिए हैं और परिवाद मे अभिकथित किसी विषय के सबध म किसी न्यायालय म कोई कारवाई लम्बित नही है,

(II) यह कि यदि परिषद् के समक्ष जाँच लम्बित रहने के दौरान परिवाद मे अभिकथित कोई विषय किसी न्यायालय मे चल रही किसी कारवाई की विषयवस्तु हो जाता है ता वह उसकी सूचना परिषद् को तुरत दगा।

4 परिवाद वापिस करना —(1) यदि परिवादी विनियम (3) अध्य पैराओ का अनुपालन नही करता है ता अध्यक्ष परिवाद वापिस कर सकेगा और,

परिवादी से यह मांग कर सकेगा कि वह ऐसी अध्यपेक्षा का अनुपालन करे और परिवाद को ऐसे समय के भीतर जो वह इस बाबत नियत करे, पुन प्रस्तुत करे।

(2) परिवादी का परिवाद वापिस कर दिए जाने के कारण बताए जाएंगे।

5 नोटिस जारी करना —यथासाध्य शीघ्र और परिवाद की प्राप्ति की तारीख से 15 दिन के पश्चात् अध्यक्ष के निर्देश के अधीन परिवाद की एक प्रति उस समाचारपत्र समाचार एजेंसी, सम्पादक या श्रमजीवी पत्रकार को भेजी जाएगी जिसके विरुद्ध विनियम 3 के अधीन परिवाद किया गया है। ऐसी प्रति के साथ ही एक नोटिस देकर तथा स्थिति, समाचारपत्र, समाचार एजेंसी, सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार से इस बाबत कारण बताने की अध्यपेक्षा की जाएगी कि अधिनियम की धारा 14 के अधीन कारवाई क्यो न की जाए परन्तु समुचित मामलो म अध्यक्ष ऐसी सूचना के जारी किए जाने के लिए समय म वृद्धि, स्वविवेकानुसार कर सकेगा

परन्तु यह और कि यदि अध्यक्ष की यह राय है कि जाँच करने के लिए कोई पर्याप्त कारण नही है तो ऐसे समाचारपत्र, समाचार एजेंसी, सम्पादक या श्रमजीवी पत्रकार को कारण बताने का नोटिस जारी न करने का विनिश्चय कर सकता है। अध्यक्ष परिषद् के अगले अधिवेशन म "कारण बताओ नोटिस जारी न करने म विनिश्चय करने के कारण बताएगा और परिषद् ऐसे आदेश पारित कर सकेगी जसे वह ठीक समझे।

(2) उक्त उप विनियम (1) के अधीन जारी की गई सूचना सम्बन्धित समाचारपत्र, समाचार एजेंसी, सम्पादक या श्रमजीवी पत्रकार को रजिस्ट्रीकृत रसीदी डाक द्वारा, परिवाद म बताए गए पते पर, भेजी जाएगी।

6 लिखित कथन फाइल करना —(1) जिस समाचारपत्र, समाचार अभिकरण सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार के विरुद्ध परिवाद किया गया है वह विनियम 5 के अधीन परिवाद की प्रति या नोटिस तामील होने की तारीख से चौदह दिन के भीतर या एस अतिरिक्त समय के भीतर जो अध्यक्ष इस बाबत अनुज्ञात करें परिवाद के उत्तर में कोई लिखित कथन प्रस्तुत कर सकेगा।

(2) लिखित कथन प्राप्त होन पर उसकी एक प्रति परिवादी को, उसकी जानकारी के लिए अग्रेषित की जाएगी।

(3) परिवाद या लिखित कथन प्राप्त होने के पश्चात, अध्यक्ष यदि यह आवश्यक समझता है तो, एस किसी विषय के स्पष्टीकरण क लिए जो किसी परिवाद या लिखित कथन मे प्रकट हुआ है यथास्थिति, परिवादी से या प्रत्यर्थी समाचारपत्र, समाचार एजेंसी सम्पादक या श्रमजीवी पत्रकार से कोई अतिरिक्त

जानकारी माँग सकेगा और ऐसा करते समय वह ऐसे दस्तावेज या अन्य कथन भी माँग सकेगा जैसे वह आवश्यक समझे। उसके द्वारा माँगे गए सभी दस्तावेज और कथन अभिलेख के भाग रूप होंगे और वे जाँच के समय समिति के समक्ष रखे जायेंगे।

7 अतिरिक्त विशिष्टियाँ आदि मँगाने की शक्ति —समिति, परिवाद और लिखित कथन पर विचार करने के पश्चात मामले की विषयवस्तु से सुसंगत ऐसी अतिरिक्त विशिष्टियाँ या दस्तावेज, दोनों पक्षकारों से या किसी पत्रकार से माँग सकेगी जो वह आवश्यक समझे।

8 ऐसे परिवाद को नामंजूर करना जिसमें पहले जाँच की जा चुकी है —(1) यदि परिवाद म जाँच करने के दौरान किसी समय समिति को यह प्रतीत होता है कि परिवाद की विषयवस्तु सारत वही है या उसके अंतर्गत आ जाती है जो किसी एस पूर्ववर्ती परिवाद की थी जिस पर परिषद् ने इन विनियमों के अधीन विचार किया था, तो समिति परिवादी की यदि वह चाहता है तो सुनवाई करेगी और यदि समिति आवश्यक समझती है तो यथास्थिति, समाचारपत्र, समाचार एजेंसी सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार की भी सुनवाई करेगी और अपनी सिफारिश परिषद् से करेगी तथा परिषद् ऐसे आदेश कर सकेगी जसे वह आवश्यक समझे और वे पक्षकारों को सम्यक रूप से ससूचित किये जायेंगे।

9 समिति द्वारा जाच— (1) सुनवाई का समय, तारीख तथा स्थान की सूचना परिवादी तथा यथास्थिति समाचारपत्र, समाचार एजेंसी सम्पादक तथा श्रमजीवी पत्रकार को रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा दी जायेगी। समिति के समक्ष जाँच के दौरान पक्षकार अपने विषय के समर्थन मे, सुसगत साक्ष्य मौखिक या दस्तावेजी, प्रस्तुत कर सकेंगे तथा अपनी बात कह सकेंगे।

(2) जाँच की समाप्ति पर, समिति परिवाद म अन्तर्विष्ट अभिकथनों पर कारणों सहित अपने निष्कर्षों की रिपोर्ट देगी और मामले का अभिलेख परिषद् को भेजेगी।

10 परिषद् का विनिश्चय—(1) परिषद् मामले का अभिलेख देखने के बाद अपना विनिश्चय देते हुए आदेश पारित करेगी या समिति की ओर आगे ऐसी जाँच जसी परिषद् आवश्यक समझे, करने के लिए मामला वापस भेज सकेगी तथा उसकी रिपोर्ट प्राप्त होने पर मामला निपटा सकेगी।

(2) प्रत्येक मामला उपस्थित तथा परिषद् के मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से अवधारित किया जायेगा और मत बराबर होने पर अध्यक्ष का निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा।

परिवादी से यह मांग कर सकेगा कि वह ऐसी अध्यपेक्षाओं का अनुपालन करे और परिवाद को ऐसे समय के भीतर जो वह इस बाबत नियत करे, पुन: प्रस्तुत करे।

(2) परिवादी को परिवाद वापिस कर दिए जाने के कारण बताए जायेंगे।

5 नोटिस जारी करना —यथासाध्य शीघ्र और परिवाद की प्राप्ति की तारीख से 15 दिन के पश्चात् अध्यक्ष के निर्देश के अधीन परिवाद की एक प्रति उस समाचारपत्र समाचार एजेंसी, सम्पादक या श्रमजीवी पत्रकार को भेजी जाएगी जिसके विरुद्ध विनियम 3 के अधीन परिवाद किया गया है। ऐसी प्रति के साथ ही एक नोटिस देकर यथा स्थिति, समाचारपत्र, समाचार एजेंसी, सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार से इस बाबत कारण बताने की अध्यपेक्षा की जाएगी कि अधिनियम की धारा 14 के अधीन कारवाई क्यों न की जाए परन्तु समुचित मामलों में अध्यक्ष ऐसी सूचना के जारी किए जाने के लिए समय में वृद्धि, स्वविवेकानुसार कर सकेगा

परन्तु यह और कि यदि अध्यक्ष की यह राय है कि जाँच करने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं है तो ऐसे समाचारपत्र, समाचार एजेंसी, सम्पादक या श्रमजीवी पत्रकार को कारण बताने का नोटिस जारी न करने का विनिश्चय कर सकता है। अध्यक्ष परिषद् के अगले अधिवेशन में 'कारण बताओ नोटिस जारी न करने' में विनिश्चय करने के कारण बताएगा और परिषद् ऐसे आदेश पारित कर सकेगी जैसे वह ठीक समझे।

(2) उक्त उप विनियम (1) के अधीन जारी की गई सूचना सम्बन्धित समाचारपत्र, समाचार एजेंसी, सम्पादक या श्रमजीवी पत्रकार को रजिस्ट्रीकृत रसीदी डाक द्वारा, परिवाद में बताए गए पते पर भेजी जाएगी।

6 लिखित कथन फाइल करना —(1) जिस समाचारपत्र समाचार अभिकरण, सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार के विरुद्ध परिवाद किया गया है, वह विनियम 5 के अधीन परिवाद की प्रति या नोटिस तामील होने की तारीख से चौदह दिन के भीतर या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर जो अध्यक्ष इस बाबत अनुज्ञात करें परिवाद के उत्तर में कोई लिखित कथन प्रस्तुत कर सकेगा।

(2) लिखित कथन प्राप्त होने पर उसकी एक प्रति परिवादी को, उसकी जानकारी के लिए अग्रेषित की जाएगी।

(3) परिवाद या लिखित कथन प्राप्त होने के पश्चात, अध्यक्ष यदि वह आवश्यक समझता है तो ऐसे किसी विषय के स्पष्टीकरण के लिए जो किसी परिवाद या लिखित कथन से प्रकट हुआ है, यथास्थिति, परिवादी से या प्रत्यर्थी समाचारपत्र, समाचार एजेंसी सम्पादक या श्रमजीवी पत्रकार से कोई अतिरिक्त

जानकारी माँग सकेगा और ऐसा करते समय वह ऐसे दस्तावेज या अन्य कथन भी माँग सकेगा जैसे वह आवश्यक समझे। उसके द्वारा माँगे गए सभी दस्तावेज और कथन अभिलेख के भाग रूप होंगे और वे जाच के समय समिति के समक्ष रखे जायेंगे।

7 **अतिरिक्त विशिष्टिया आदि मँगाने की शक्ति** —समिति, परिवाद और लिखित कथन पर विचार करने के पश्चात मामले की विषयवस्तु से सुसगत ऐसी अतिरिक्त विशिष्टियां या दस्तावेज दोनो पक्षकारो से या किसी पत्रकार से माँग सकेगी जो वह आवश्यक समझे।

8 **ऐसे परिवाद को नामजूर करना जिसमे पहले जाच की जा चुकी है** —(1) यदि परिवाद मे जाँच करने के दौरान किसी समय समिति को यह प्रतीत होता है कि परिवाद की विषयवस्तु सारत वही है या उसके अतगत आ जाती है जो किसी ऐसे पूर्ववर्ती परिवाद की थी जिस पर परिषद् ने इन विनियमो के अधीन विचार किया था, तो समिति परिवादी की, यदि वह चाहता है तो सुनवाई करेगी और यदि समिति आवश्यक समझती है ता, यथास्थिति, समाचारपत्र समाचार एजेंसी सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार की भी सुनवाई करेगी और अपनी सिफारिश परिषद् से करेगी तथा परिषद् ऐसे आदेश कर सकेगी जैसे वह आवश्यक समझे और वे पक्षकारो को सम्यक रूप से ससूचित किये जायेग।

9 **समिति द्वारा जाँच**— (1) सुनवाई का समय, तारीख तथा स्थान की सूचना परिवादी तथा यथास्थिति समाचारपत्र, समाचार एजेंसी, सम्पादक तथा श्रमजीवी पत्रकार को रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा दी जायेगी। समिति के समक्ष जाच के दौरान पक्षकार अपने विषय के समर्थन मे सुसगत साक्ष्य मौखिक या दस्तावेजी, प्रस्तुत कर सकेंगे तथा अपनी बात कह सकेंगे।

(2) जाच की समाप्ति पर समिति परिवाद मे अन्तर्विष्ट अभिकथनो पर कारणो सहित अपने निष्कर्षों की रिपोर्ट देगी और मामले का अभिलेख परिषद् को भेजेगी।

10 **परिषद का विनिश्चय**—(1) परिषद् मामले का अभिलेख देखने के बाद अपना विनिश्चय देते हुए आदेश पारित करेगी या समिति को और आगे ऐसी जाँच जैसी परिषद् आवश्यक समझे, करने के लिए मामला वापस भेज सकेगी तथा उसकी रिपोर्ट प्राप्त होने पर मामला निपटा सकेगी।

(2) प्रत्येक मामला उपस्थित तथा परिषद् मे मत देने वाले सदस्यो के बहुमत से अवधारित किया जायेगा और मत बराबर होने पर, अध्यक्ष का निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा।

(3) मामले म परिषद् का आदेश पक्षकारो को लिखित रूप म सूचित किया जायेगा।

11 पक्षकारों की उपस्थिति—इन विनियमा के अधीन किसी जाँच म, *सपादक समाचार एजेंसी या अन्य श्रमजीवी पत्रकार या सरकार* सहित कोई प्राधिकारी या सपादक द्वारा समाचारपत्र, जिसके विरुद्ध परिवाद किया गया है, व्यक्तिगत रूप म या, यथास्थिति समिति अथवा परिषद् की अनुमति से काउसेल या सम्यक्त प्राधिकृत प्रतिनिधि द्वारा उपस्थित हो सकेगा।

12 सदस्यों की कुछ मामलों मे विचार विमश करने तथा मत देने सबधी शक्ति पर निबधन—समिति का कोई भी सदस्य तथा परिषद् का कोई भी सदस्य किसी ऐसे परिवाद पर, जो समिति या परिषद् के अधिवेशन मे विचाराथ पेश है हो रहे विचार विमश म उस दशा मे भाग नही ले सकेगा और न मत दे सकगा। जब वह ऐसे मामले म व्यक्तिगत रूप से सबधित है या जिसमे उसका या उसके भागीदार का प्रत्यक्ष हित है, या जिसम वह मुवक्किल की ओर से वृत्तिक रूप मे या यथास्थिति किसी समाचारपत्र समाचार एजेंसी सम्पादक या अन्य श्रमजीवी पत्रकार के अभिकर्ता या प्रतिनिधि के रूप मे हित रखता है।

13 स्वप्रेरणा से कारवाही करने की शक्ति—अध्यक्ष, किसी भी ऐसे मामले के सम्बन्ध म जो अधिनियम की धारा 14 (1) के अ तगत आता है या अधिनियम की धारा 13 (2) के अ तगत आने वाले किसी भी मामले से सबधित है या उसके बारे मे है, स्वप्रेरणा से यथास्थिति नोटिस जारी कर सकेगा या कारवाई कर सकेगा और तब नियम 4 के आगे इन नियमो मे विहित प्रक्रिया का अनुसरण उसी प्रकार किया जायेगा जिस प्रकार कि विनियम 3 के अधीन परिवाद मे किया जाता है।

14 धारा 13 के अधीन परिवादो के बारे मे प्रक्रिया—अधिनियम की धारा 14 (1) के अधीन परिवादों के बारे मे इन नियमो द्वारा विहित प्रक्रिया, जहाँ तक हो उन परिवादो तथा अभ्यावेदनो पर भी लागू होगी जो धारा 13 के उपबन्धो के अ तगत आने वाले किसी विषय के सबध म परिषद् प्राप्त करे।

15 इन विनियमो मे जिन मामलों को लक्षित नहीं किया गया है उनके बारे मे प्रक्रिया—परिषद् तथा समिति को किसी भी ऐसे मामले के जिसकी बावत इन विनियमा मे कोई उपबन्ध नही किया गया है या अपर्याप्त उपबन्ध किया गया है, के बारे मे अपने विनियम और प्रक्रिया बनाने की शक्ति है और उपयुक्त मामलो म जाँच बन्द कमरे म करने की भी शक्ति है।

प्रेस परिषद् के यहाँ शिकायत कैसे करें

कोई भी व्यक्ति किसी समाचारपत्र के विरुद्ध पत्रकारिता के औचित्य तथा रुचि मे मान्य नैतिक सिद्धान्त के व्यवधान के विरुद्ध प्रेस परिषद् मे शिकायत निवेशित कर सकता है। शिकायतकर्ता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे उस समाचार से परिवेदित अथवा सीधे सम्बद्ध हो। आरोपित व्यवधान समाचारपत्र मे किसी समाचार अथवा वक्तव्य के प्रकाशन अथवा अप्रकाशन अथवा अन्य सामग्री जैसे व्यंग्यचित्र चित्र आचित्र मनोरंजक सामग्री अथवा विज्ञापनो के रूप मे हो सकत हैं। जनता मे से कोई भी व्यक्ति पत्रकारो के व्यावसायिक दुराचरण के विरुद्ध भी शिकायत कर सकता है चाहे वह व्यक्ति समाचारपत्र कार्यालय का कोई पत्रकार हो अथवा स्वतन्त्र पत्रकार। किसी समाचार अभिकरण द्वारा प्रारेषित समाचार, जो किसी भी माध्यम से प्रसारित किया गया हो, के विरुद्ध भी शिकायत की जा सकती है।

असामान्य भारतीय राजपत्र मे दिनाक 14 नवम्बर, 1979 को प्रकाशित प्रेस परिषद् (जाच प्रक्रिया) विनियम 1979 की धारा 3 (1)(च) के अन्तर्गत परिषद् म शिकायत निवेशित करने हेतु कालबद्धता निर्धारित की गई है अभिधानत दैनिको तथा साप्ताहिको मे किसी भी सामग्री के प्रकाशन अथवा अप्रकाशन अथवा समाचार अभिकरणो द्वारा सामग्री के प्रेषण के दो महीने के भीतर तथा अन्य सभी के सम्बन्ध में चार महीन के भीतर यद्यपि शिकायत म सदर्भित सम्बद्ध पूव प्रकाशन लक्षित किये जा सकते हैं। किसी सम्पादक अथवा श्रमजीवी पत्रकार द्वारा व्यावसायिक अनाचरण के विरुद्ध शिकायत चार महीने की अवधि मे निवेशित कर दी जानी चाहिए।

प्रथमत सम्पादक को लिखना

जाँच विनियमो के अन्तगत यह आवश्यक है कि शिकायतकर्ता समाचारपत्र के सम्पादक को लिख कर उनका ध्यान प्रथमत पत्रकारिता नीति अथवा जनरुचि के विरुद्ध आक्षेपित व्यवधान से सम्बद्ध समाचार की ओर आकृष्ट करें। ऐसे पूव सदभ किसी विषय को प्रथम दृष्टांत म निवटने का अवसर देते हैं तथा इस प्रकार परिषद् को शिकायत निवेशित किये जाने से पूव प्रतिवादी को प्रतिकारी कार्यवाही हेतु उचित अवसर प्रदान करत हैं। यह नियम आवश्यक है क्योंकि यह सम्पादक को दोषारोपक के परिचय तथा शिकायत के विवरण से अवगत कराता

है। यह सकल्पनीय है कि कुछ मामलों में शिकायतकर्ताओं को असत्य सूचना प्राप्त हुई हो अथवा तथ्यों का अपनिरूपण किया गया हो। दूसरी ओर यह एक अनवधान त्रुटि का मामला हो सकता है जिसे सम्पादक स्वीकार और संशोधित करने हेतु तत्पर हो। यदि भावी शिकायतकर्ता सतुष्ट हो तो मामला वहीं समाप्त हो सकता है।

जहाँ समाचारपत्र के लक्षित किये जाने के पश्चात् कोई व्यक्ति शिकायत को आगे बढ़ाने की इच्छा रखता है, उसे सम्पादक के साथ हुए पत्र-व्यवहार की प्रतियाँ भी शिकायत के साथ सलग्न करनी चाहिए, यदि सम्पादक की ओर से कोई उत्तर प्राप्त न हो तो यह तथ्य शिकायत में उल्लिखित करना चाहिए।

शिकायतकर्ता को अपनी शिकायत में उस समाचारपत्र सम्पादक अथवा पत्रकार का नाम तथा पता लिखना चाहिए जिसके विरुद्ध शिकायत की गई हो। शिकायत के साथ प्रकाशित समाचार की मूल कतरन भी प्रेषित की जानी चाहिए। शिकायतकर्ता को लिखना चाहिए कि शिकायती समाचार अथवा अनुच्छेद किस प्रकार आपत्तिजनक है। उन्हें अन्य सम्बद्ध विवरण भी यदि कोई हो तो निवेशित करने चाहिए।

किसी सामग्री के अप्रकाशन की शिकायत के मामले में शिकायतकर्ता को लिखना चाहिए कि उसमें किस प्रकार पत्रकारिता नीति का विच्छेद हुआ है।

परिषद् किसी ऐसे मामले पर विचार नहीं करती जो न्यायालय में न्यायाधीन हो। शिकायतकर्ता को घोषणा करनी होगी कि अपनी सपूर्ण जानकारी तथा विश्वास के अनुसार उन्होंने परिषद् के समक्ष सम्पूर्ण सम्बद्ध तथ्य प्रस्तुत कर दिये हैं तथा शिकायत में कथित किसी विषय के सम्बन्ध में किसी न्यायालय में कोई मामला न्यायाधीन नहीं है। एक अन्य घोषणा करना भी आवश्यक है कि "परिषद् द्वारा जाँच की अवधि में शिकायत में कथित मामला न्यायालय की किसी कार्यवाही का विषय बन जाता है तो वे इसकी सूचना परिषद् को देंगे।"

(*शिकायतकर्ता को अपने स्वय के हित में सब प्रकरणों में पूर्ण शिकायत* निवेशित करनी चाहिए अर्थात उन्हें आक्षेपित समाचार की कतरनें सलग्न करनी चाहिए सम्पादक का ध्यान आकृष्ट करना तथा उपरोक्त उल्लिखित आवश्यक घोषणायें भी अग्रप्रेषित करनी चाहिए। आगे, उन्हें आरम्भ में ही मामले का सम्पूर्ण विवरण प्रेषित करना चाहिये जिससे मामले पर शीघ्र कार्यवाही की जा सके। यदि किसी विशेष स्तर पर वह अपनी शिकायत आगे नहीं बढ़ाना चाहते तो शिकायतकर्ता को सुझाव दिया जाता है कि वह परिषद को तत्काल अपनी इच्छा से अवगत करायें।)

प्रेस की स्वतन्त्रता को खतरा

समाचारपत्र, पत्रकार अथवा कोई भी सस्थान अथवा व्यक्ति, केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार अथवा किसी सगठन अथवा व्यक्ति के विरुद्ध प्रेस की स्वतन्त्र कार्यवाही म हस्तक्षेप अथवा प्रेस की स्वतन्त्रता पर अतिक्रमण के विरुद्ध शिकायत कर सकता है। ऐसी शिकायता मे कथित प्रतिलघन का सम्पूर्ण विवरण होना चाहिए जिस पर परिषद् पूर्वोल्लिखित जाँच प्रक्रिया के अनुसरण मे काय करेगी।

परिषद् द्वारा व्यक्त विचार दो महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं अभिधानत (1) प्रेस की स्वतन्त्रता का दुरुपयोग बिना किसी का ध्यान आकृष्ट किये अथवा तब तक सिद्ध नहीं होता जब तक कि कोई उस ओर ध्यान आकृष्ट न करे अथवा विरोध के बिना घटित नही हो सकता तथा (2) प्रेस को स्वय के हित म अश्लील अथवा अन्य आपत्तिजनक लेख प्रकाशित नही करने चाहिए अर्थात् ऐसे लेखन जो स्वय प्रेस सहित गठित परिषद् जसी किसी निष्पक्ष निर्णायक समिति द्वारा पत्रकारिता नीतियो व मान्यता प्राप्त मानकों से निम्न स्तर क माने गये हैं क्योंकि इससे प्रेस की अत्यधिक बहुमूल्य स्वतन्त्रता का ही क्षय होगा।

कुछ मामलो मे यह देखा गया है कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें विज्ञापन निकास, अखबारी कागज अथवा मान्यता सुविधायें पुन प्रदान करने हेतु प्रतिकारी कार्यवाही करती हैं। ऐसे मामलों मे, शिकायतकर्ता का यह कर्तव्य है कि वह परिषद को इस विषय मे तुरन्त सूचित करे तथा यह भी कि वह शिकायत को परिषद द्वारा आगे बढ़ाने के इच्छुक है अथवा नहीं। यदि शिकायतकर्ता यह चाहते हैं कि उनकी शिकायतें परिषद द्वारा उचित गम्भीय सहित परिचालित की जायें तो यह कार्यवाही आवश्यक है।(भा प्रे प की वा रि 1987 से साभार)

सुझावात्मक प्रपत्र – 10

किसी समाचारपत्र मे प्रकाशित किसी सामग्री अथवा किसी सपादक/श्रमजीवी पत्रकार से पीडित व्यक्ति/सगठन द्वारा प्रेस परिषद् मे परिवाद

अध्यक्षजी
भारतीय प्रेस परिषद्
फरीदकोट हाउस (भूतल)
कापरनिक्स माग, नई दिल्ली 110001

(परिवादी का नाम मय पूरी पहचान के) (व्यवसाय/पद)
(डाक का पूरा पता) "

– परिवादी

विरुद्ध
(समाचारपत्र/समाचार एजेंसी का नाम) द्वारा पद
अथवा
(सपादक/श्रमजीवी पत्रकार का नाम) पद
(समाचारपत्र/पत्रिका का नाम)
डाक का पूरा पता

– अपरिवादी

परिवाद अन्तर्गत धारा 14 (1) प्रे प अधि 1978
सपठित विनियम-3 प्रे प (जाँच प्रक्रिया) विनियम 1979

श्रीमान्जी

परिवादी अपरिवादी के विरुद्ध निम्न परिवाद प्रस्तुत करता है—

(1) यह है कि अपरिवादी (स्थान) से प्रकाशित (समाचारपत्र का नाम) " का सपादक है जो (दिनाक) के इस समाचारपत्र की इम्प्रिन्ट लाइन मे भी सपादक के रूप में दर्शाया गया है।

(2) यह है कि (समाचारपत्र का नाम) के (दिनाक) के अक मे पृष्ठ सख्या पर शीर्षक " "

के नाम से एक लेख/समाचार/मद/रपट/कार्टून/चित्र/विज्ञापन प्रकाशित हुआ है जिसमे पत्रकारिक सदाचार/लोकरुचि के स्तर का अतिल्लघन/वृत्तिक अवचार किया गया है।

(3) यह है कि उक्त सामग्री के प्रकाशन होने के बाद (दिनांक) को इसका एक खण्डन परिवादी ने अपरिवादी के पास प्रकाशनार्थ भेजा जिसे भी अपरिवादी ने प्रकाशित नहीं किया और तो और अपरिवादी की ओर से परिवादी को कोई उत्तर भी प्राप्त नहीं हुआ। खंडन का प्रकाशन न करना भी पत्रकारिक सदाचार का अतिल्लघन है।

(4) यह है कि सम्बन्धित सामग्री का प्रकाशन न तो लोकहित मे आवश्यक था और न समीचीन।

(5) यह है कि परिवादी ने सम्बन्धित सामग्री का प्रकाशन जानबूझकर परिवादी को बदनाम करने के लिए किया है जिससे परिवादी की मानहानि हुई है तथा परिवादी की उसके मित्रो रिश्तेदारों व अन्य परिचितो के बीच छवि गिरी है।

(6) यह है कि प्र प (जांच प्रक्रिया) विनियम 1979 के विनियम 3 (1) (च) के तहत यह परिवाद अन्दर अवधि है।

अथवा

यह है कि प्रे प (जांच प्रक्रिया) विनियम 1979 के नियम 3 (1) (च) के तहत निर्धारित अवधि के अन्दर यह परिवाद पेश नहीं किया जा सका क्योंकि (विलम्ब का पर्याप्त कारण बताएँ)

.. .. ..

विलम्ब माफ करने योग्य है।

(7) यह है कि प्रकाशित सामग्री की कटिंग तथा सपादक को भेजे गए खण्डन की एक प्रति व सपादक से हुए पत्र-व्यवहार की एक-एक प्रति के साथ साथ (निम्न दस्तावेजात) इस परिवाद के साथ सलग्न हैं।

अत यह परिवाद ग्रहण किया जाकर इसका संज्ञान लिया जावे तथा आवश्यक जाँचोपरान्त अपरिवादी के विरुद्ध कानून सम्मत निर्णय लेने की कृपा करें।

स्थान........ .. ..

दिनांक .. ..

(हस्ताक्षर परिवादी)

उद्घोषणा

(1) यह है कि मुझ परिवादी के सर्वोत्तम ज्ञान ग्रौर विश्वास के ग्रनुसार मैंने श्रीमान् के समक्ष सभी सुसगत तथ्य प्रस्तुत कर दिये हैं ग्रौर

(2) इस परिवाद म ग्रभिकथित किसी विषय के सबध म किसी न्यायालय मे कोई कारवाई लम्बित नही है ग्रौर

(3) यह है कि श्रीमान् के यहाँ जाँच लम्बित रहने के दौरान परिवाद म ग्रभिकथित कोई विषय किसी न्यायालय म चल रही किसी कारवाई की विषय वस्तु हो जाता है तो परिवादी उसकी सूचना श्रीमान् को तुरत देगा ।

स्थान

दिनांक   (हस्ताक्षर परिवादी)

विशेष –(i) परिवादी को चाहिए कि वह ग्रपनी समस्या के ग्रनुकूल इस परिवाद म परिवतन कर ले । यह परिवाद सिफ एक सुझावात्मक माडल है ।

(ii) ग्रच्छा हो परिवाद की विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण वर्गीकृत रूप मे ही हो तथा वह सुस्पष्ट व साफ-साफ ग्रक्षरो म लिखी या टकित की हुई हो ।

(iii) ग्रच्छा हो, जितने ग्रपरिवादी बनाए जाए, उनके लिए प्रतिवाद की एक-एक ग्रतिरिक्त प्रतियाँ ग्रौर साथ म सलग्न हो तथा एसी प्रतियो पर परिवादी द्वारा मूल परिवाद से हू-बहू होने का सत्यापन भी ग्रकित हो ।

(iv) ग्रच्छा हो हिन्दी म परिवाद भेजने के साथ साथ उसका ग्रग्रेजी भाषा म ग्रनुवाद भी सलग्न हो ।

सुझावात्मक प्रपत्र – II

किसी समाचारपत्र में प्रकाशित किसी सामग्री अथवा किसी संपादक/श्रमजीवी पत्रकार से पीड़ित व्यक्ति/संगठन द्वारा प्रेस परिषद में प्रस्तुत परिवाद के विरुद्ध 'लिखित-कथन' (जवाब)

अध्यक्षजी
भारतीय प्रेस परिषद
फरीदकोट हाउस (भूतल)
कापरनिकस मार्ग, नई दिल्ली 110001

(परिवादी का नाम) विरुद्ध
(अपरिवादी का नाम) परिवाद प्रकरण संख्या
(परिषद द्वारा भेजे गए नोटिस में जो केस नम्बर दिया गया है, उसका संदर्भ दें।)

लिखित कथन अन्तर्गत विनियम–6 प्रे प (जाँच प्रक्रिया) विनियम 1979

श्रीमान्‌जी

अपरिवादी संबंधित परिवाद के विरुद्ध निम्न 'लिखित-कथन' प्रस्तुत करता है–

(1) यह है कि परिवाद के मद न 1 में वर्णित दिनांक को (स्थान) से प्रकाशित समाचारपत्र का संपादक होना तथा इस दिनांक के अंक में (शीर्षक) " – " से प्रकाशित सामग्री का प्रकाशन स्वीकार है। शेष तथ्य स्वीकार नहीं है।

(2) यह है कि परिवाद के मद न 3 में वर्णित खंडन अपरिवादी को प्राप्त ही नहीं हुआ अत उसके संबंध में परिवादी को कोई जवाब देने व उसे प्रकाशित किये जाने का सवाल ही नहीं उठता।

(3) यह है कि संबंधित सामग्री का प्रकाशन लोकहित में किया गया था। अत इसके प्रकाशन में पत्रकारिता सदाचार/लोकरुचि के स्तर का अतिलंघन/ दूषित व्यवहार किए जाने का सवाल ही नहीं उठता।

(4) यह है कि परिवादी एक लोकसेवक है जिसके विरुद्ध इसके विभाग ने आम जनता की कई शिकायतों के प्राप्त होने पर एक जाँच समिति बठाई थी। उस जाँच समिति की रपट का सारत भाग प्रकाशित किया गया है जिसका प्रकाशन

समीचीन होने क साथ-साथ लोकहित म भी था। इस सामग्री के प्रकाशन म अपरिवादी की कोई दुर्भावना नहीं थी क्योकि अपरिवादी की ओर से कुछ भी नमक मिच नहीं लगाया गया है।

(5) यह है कि परिवाद की जाँच करान हेतु जो आधार दिए गए हैं, व पर्याप्त नहीं है।

(6) यह है कि परिवाद के मद म 6 म परिवाद प्रस्तुत करन म जो विलम्ब के कारण दिए गए हैं वे बनावटी हैं। सारे कारण साक्ष्य को मोहताज हैं। परिवाद अवधि बाहर होन के कारण नामजूर करने योग्य है।

(7) यह है कि यह लिखित-कथन अन्दर अवधि प्रस्तुत है।

(8) यह है कि अप उपरात बरवक्त बहस निवेदन किए जायेंगे।

अत जवाब पश कर निवेदन है कि परिवाद का सज्ञान नहीं लिया जाव। अपरिवादी के हक म प्राकृतिक याय की दृष्टि से यदि कोई अन्य अनुतोष देय हो तो वह भी अपरिवादी को दिलाया जाव।

स्थान (हस्ताक्षर अपरिवादी)

दिनाक डाक का पूरा पता

विशष – परिवाद के सुझावात्मक मॉडल के फुटनोटस म जिन चार बातो की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है उनका तदानुसार ध्यान 'लिखित कथन प्रस्तुत करते समय भी रखना वांछनीय है।

सुझावात्मक प्रपत्र–12

प्रेस की स्वतन्त्रता के हनन/उत्पीडन आदि को लेकर किसी समाचारपत्र द्वारा किसी व्यक्ति/संगठन के विरुद्ध शिकायत

अध्यक्षजी
भारतीय प्रेस परिषद्
फरीदकोट हाउस (भूतल)
कापरनिक्स मार्ग, नई दिल्ली 110001

(परिवादी का नाम) (पद)
(समाचारपत्र का नाम) (प्रकाशन स्थल)
डाक का पता

–परिवादी

विरुद्ध

(नाम) (पद) (संस्थान का नाम) (डाक का पता)

–अपरिवादी

परिवाद अन्तर्गत धारा 13 (2) प्रे प अधि 1978 सपठित विनियम संख्या 14 व 3 प्रे प (जांच प्रक्रिया) विनियम 1979

श्रीमान्जी

परिवादी, अपरिवादी के विरुद्ध निम्न परिवाद प्रस्तुत करता है—

(1) यह है कि परिवादी के समाचारपत्र में दिनांक को (शीर्षक) के नाम से एक समाचार पृष्ठ संख्या पर प्रकाशित हुआ है।

(2) यह है कि उक्त समाचार से कुपित होकर अपरिवादी ने दिनांक को कई व्यक्तियों के सम्मुख यह धमकी दी कि परिवादी को झूठे केस में ऐसा फसाऊँगा कि दानी-नानी सब याद आ जाएगी। परिवादी से कहा गया कि इस समाचार का खंडन इस आशय का वह स्वयं निकाले कि यह समाचार झूठा था। परिवादी ने अपरिवादी से कहा कि वह अपने ही समाचार का स्वयं कैसे खण्डन कर सकता है जबकि उसने तो सारी जांच-पड़ताल के बाद इसे छापा है। यदि

अपरिवादी अपनी ओर से खण्डन देना चाहे तो उसे प्रकाशित किया जा सकता है। इस पर अपरिवादी ने परिवादी को फौस गालियां दीं।

(3) यह है कि अपरिवादी जिले मे एक प्रभावशाली अफसर है और वह जिलाधीश पर दबाव डाल रहा है कि परिवादी के समाचारपत्र का घोषणा-पत्र निरस्त कर दे। इसके अलावा वह अपने कई लोगो से परिवादी को आए दिन धमका रहा है जिसके कारण परिवादी के काम म व्यवधान आ पड़ा है।

(4) यह है कि अपरिवादी के विरुद्ध परिवादी के अखबार में जो कुछ छपा है वह स्वच्छ पत्रकारिता के सिद्धान्तो के अनुसार छपा है।

(5) यह है कि अपरिवादी का कृत्य प्रेस की स्वतंत्रता का हनन करने वाला है। दिनाक की घटना के बाद परिवादी अपने समाचार पत्र के प्रकाशन मे मानसिक रूप से उत्पीडन महसूस कर रहा है।

अत यह परिवाद ग्रहण करे तथा आवश्यक जाँच करने के बाद अपरिवादी के विरुद्ध कानून सम्मत निर्णय लेने की कृपा करे।

स्थान

दिनाक (हस्ताक्षर परिवादी)

उद्घोषणा

(1) यह है कि मुझ परिवादी के सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के अनुसार मैंने श्रीमान् के समक्ष सभी सुसगत तथ्य प्रस्तुत कर दिए हैं और

(2) इस परिवाद म अभिकथित किसी विषय के सबध मे किसी न्यायालय म कोई कारवाई लम्बित नहीं है और

(3) यह है कि श्रीमान् के यहाँ जाँच लम्बित रहने के दौरान परिवाद म अभिकथित कोई विषय किसी न्यायालय म चल रही किसी कारवाई की विषय वस्तु हो जाता है तो परिवादी उसकी सूचना श्रीमान को तुरत देगा।

स्थान

दिनाक (हस्ताक्षर परिवादी)

विशेष —(1) चूंकि इस प्रकार की शिकायत के लिए कोई अवधि सीमा निर्धारित नहीं की गई है फिर भी ऐसी शिकायत एक युक्तियुक्त समय में ही प्रस्तुत की जानी चाहिए।

(11) परिवाद के पूववर्ती मॉडल में फुटनोटस में जिन चार बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है उनका तदानुसार ध्यान इस प्रकार की शिकायत करते समय भी रखना चाहिए।

सुझावात्मक प्रपत्र – 13

प्रेस की स्वतन्त्रता के हनन/उत्पीडन आदि को लेकर किसी समाचारपत्र द्वारा किसी व्यक्ति/संगठन के विरुद्ध प्रेस परिषद् मे की गई शिकायत के विरुद्ध 'लिखित कथन' (जबाव)

अध्यक्षजी
भारतीय प्रेस परिषद्
फरीदकोट हाउस (भूतल)
कापरनिकस मार्ग, नई दिल्ली – 110001

(परिवादी का नाम) विरुद्ध
(अपरिवादी का नाम) परिवाद प्रकरण संख्या
(परिषद् द्वारा भेजे गए नोटिस मे जो केस नम्बर दिया गया है उसका संदर्भ दें।)

लिखित कथन अन्तर्गत विनियम – 14, 3 व 6 प्रे प (जांच प्रक्रिया) विनियम 1979

श्रीमान्जी

अपरिवादी संबंधित परिवाद के विरुद्ध निम्न लिखित कथन प्रस्तुत करता है –

(1) यह है कि परिवाद के मद न 1 मे वर्णित दिनांक को (शीर्षक) के नाम से परिवादी के समाचारपत्र में एक समाचार का पृष्ठ संख्या पर प्रकाशित होना स्वीकार है परिवाद के शेष मद स्वीकार नहीं है।

(2) यह है कि संबंधित समाचार के प्रकाशन के बाद परिवाद के मद न 2 म वर्णित दिनांक को अपरिवादी ने परिवादी से मात्र यह कहा था कि परिवादी ने सारा समाचार मेरे विभाग में मेरे विरुद्ध कार्यरत लोगों के इशारे पर छापा है जो सरासर बेबुनियाद व गलत है। यह समाचार मुझे बदनाम करने की नियत से छापा गया है। अपरिवादी ने परिवादी को न तो कभी कोई धमकी दी और न कभी कोई फोन पर गालियां दीं और न कभी जिलाधीश से परिवादी के समाचारपत्र के घोषणा-पत्र को निरस्त करने के लिए दबाव डाला और न अपरिवादी द्वारा ऐसा वर्तमान में किया जा रहा है। अपरिवादी प्रेस की स्वतन्त्रता म पूरा-पूरा विश्वास करता है।

(3) यह है कि परिवादी ने परिवाद के मद न 2 म वर्णित दिनाक के छह माह बाद परिवाद पेश किया है जिसके कारण परिवादी एक युक्तियुक्त समय मे श्रीमान् से अनुतोष प्राप्त करने का हकदार नही रहा।

(4) यह है कि सबधित समाचार के प्रकाशन के बाद दिनाक को अपरिवादी न अपने वकील से मा द स की धारा 500 के तहत मानहानि करने के कारण परिवादी को एक रजिस्टड नोटिस भिजवाया जिसका जवाब परिवादी ने तोड मरोड कर दिया।

(5) यह है कि परिवादी चाहता था कि अपरिवादी परिवादी म विरुद्ध न्यायालय म कोई कारवाई नहीं कर, इसी उद्देश्य को लकर परिवादी न अपरिवादी को धमकान की गरज से श्रीमान् के यहाँ यह परिवाद प्रस्तुत किया है।

(6) यह है कि परिवाद म अभिकथित विषय न्यायालय म लबित हो चुका है। न्यायालय म अपरिवादी ने परिवादी के विरुद्ध भा द स की धारा 500 के तहत एव इस्तगासा पश किया हुआ है जिसकी सुनवाई की अगली दिनाक है।

(7) यह है कि परिवाद म वर्णित उद्घोषणा के मद न 3 मे वर्णित कथन को परिवादी न पालना नही की जबकि यह तथ्य परिवादी की जानकारी म था।

(8) यह है कि परिवाद म जाँच कराने हेतु जो आधार दिए गय हैं वे पर्याप्त नही हैं।

(9) यह है कि शेष आपत्तियाँ वरक्त बहस निवेदन की जाएँगी।

अत जवाब पेश कर निवेदन है कि परिवाद को नामजूर किया जावे। अपरिवादी के हक म प्राकृतिक न्याय की दृष्टि स यदि कोई अन्य अनुतोष उत्पन्न होता हो तो वह भी अपरिवादी को दिलाई जावे।

न्यायालय की कारवाई दिनाकित की एक सत्य प्रतिलिपि साथ म सलग्न है।

स्थान (हस्ताक्षर अपरिवादी)

दिनाक डाक का पूरा पता

विशेष — परिवाद के सुझावात्मक मॉडल के फुटनोटस म जिन चार बातो की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है उनका तदानुसार ध्यान 'लिखित-कथन प्रस्तुत करत समय भी रखना वाछनीय है।

भारतीय प्रेस परिषद् द्वारा निर्मित प्रकरण धारा 13 के अन्तर्गत शिकायतें

- ☐ सरकार द्वारा विज्ञापनों का दबाव के रूप में प्रयोग प्रेस की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप का प्रयत्न है। (भा प्रे प, वा रि 1984, पृ स 40, नि दि 12 मार्च, 84)
- ☐ असदाय न्यायसंगत – विज्ञापन देर से प्रकाशित होने से उसका महत्व ही समाप्त हो गया। अत विज्ञापन बिल अस्वीकृत करना न्यायसंगत था। (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 63)
- ☐ मानहानिजनक लेख के आधार पर विज्ञापनों पर रोक अमान्य – गुजरात सरकार द्वारा इस तथ्य के आधार पर विज्ञापन निकासन रोक दिए गए कि शिकायतकर्ता का समाचारपत्र मानहानिजनक प्रकृति के कुछ लेखों के प्रकाशन में संलग्न था। गुजरात सरकार के इस कदम को प्रेस परिषद् ने उचित नहीं माना तथा इसे प्रशासन द्वारा उत्पीडन का स्पष्ट मामला माना। *(भा प्रे प, वा रि 1985, पृ स 22)*
- ☐ पीतपत्रकारिता प्रेस परिषद उचित न्यायपीठ – यदि कोई समाचारपत्र अनैतिक कार्यवाही में संलग्न था तो राज्य सरकार को प्रेस परिषद अधिनियम 1978 की धारा 14 के अन्तर्गत भारतीय प्रेस परिषद् से शिकायत करनी चाहिए थी। (भा प्रे प, वा रि 1985, पृ स 22)
- ☐ हथकड़ी लगाना न्यायोचित नहीं था – यह पुलिस की प्रतिशोधात्मक कार्यवाही के संबंध में पत्रकार के उत्पीडन का मामला था। (भा प्रे प वा रि 1986, पृ स 21) शिकायतकर्ता को हथकड़ी लगाना अत्यधिक अनुचित था और गम्भीर रूप से निंदात्मक था। (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 31) हथकड़ी लगाना स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण था, जिससे प्रतिशोध उत्पन्न हुआ अत स्पष्ट प्रवृत्ति *शिकायतकर्ता को उत्पीडन करने की थी।* (भा प्रे प वा रि 1986 पृ स 39) किसी पत्रकारिता सम्बन्धी अतिविधि के लिए साधारणत पत्रकारों को हथकड़ी नहीं लगानी चाहिए। (भा प्रे प वा रि 1986, पृ स 90)
- ☐ साम्प्रदायिक लेखन के कारण प बंगाल सरकार द्वारा विज्ञापनों को रोका जाना भा प्रे परिषद् ने न्यायोचित माना। सरकारी अधिवक्ता के इस निवेदन को संतोषजनक रूप से रिकार्ड रखा गया कि जब राज्य **सरकार**

सतुष्ट हो जाय कि समाचारपत्र ने अपना रवैया वास्तव मे बदल दिया है तथा समाचारपत्र ने साम्प्रदायिक लेख प्रकाशित करना रोक लिया है तब समाचारपत्र को विज्ञापन पुन जारी करने के प्रश्न पर विचार किया जा सकेगा। (भा प्रे प वा रि 1986 पृ स 68)

☐ शिकायतकर्त्ता के समाचारपत्र को विज्ञापन विवासन की सूची से निकालने के आदेश शिकायतकर्त्ता को सुनवाई का उचित अवसर दिये बिना ही पारित कर दिए गए। परिषद् ने मत व्यक्त किया कि आक्षेपित आदेश बिहार सरकार द्वारा वापिस लिये जाने चाहिए तथा विज्ञापन पुन जारी किए जाने चाहिए। राज्य सरकार के लिए शिकायतकर्त्ता को सुनवाई का उचित अवसर देने के पश्चात् शिकायतकर्त्ता के विरुद्ध ऐसी कार्यवाही आवश्यक हो सकती है। (भा प्र प, वा रि 1956 पृ स 72)

☐ डीएवीपी के विरुद्ध सर्वाधित विवाद परिसचरण और विज्ञापन [redacted] के प्रश्न स मबद्ध था। डीएवीपी ने विज्ञापन निलम्बित कर दिये थे क्योंकि डीएवीपी का विचार था कि परिसचरण सख्या गलत थी तथा उन्होंने अपनी नीति के अनुसार कार्यवाही की थी जो कि पक्षपातपूर्ण नही थी। इसे परिषद् ने वाणिज्यिक प्रकृति का विवाद माना और इसस प्रेस की स्वतत्रता पर कोई प्रभाव पडना नही माना। (भा प्रे प वा रि 1987, पृ स 74)

☐ सपादक को जनसवकों अथवा सस्थाओं के विरुद्ध आरोप लगाने से पूव उनकी तथ्यात्मक यथार्थता का उचित सत्यापन करना चाहिए। (भा प्रे प वा रि 1984, पृ स 66, नि दि 7 जून, 1984)

☐ शिकायत म कहा गया कि पश्चिम बगाल के गृह विभाग ने मई, 1982 म एक गुप्त परिपत्र निष्कासित किया जिसमें पुलिस अधीक्षक से निम्न स्तर के पुलिस अधिकारियों को प्रेस में कोई भी समाचार न देने के निर्देश दिये गये थ और ऐसा अघोषित सेंसरशिप के अन्तगत किया गया था।

परिषद् ने मत प्रकट किया कि आक्षेपित गोपनीय परिपत्र का उद्देश्य यदि परोक्ष नहीं तो अपरोक्ष था जो प्रेस की स्वतत्रता पर नियत्रण था। यदि सरकार की सद्भावना स्वीकार की जाय तो वह आक्षेपित परिपत्र द्वारा प्रेस की स्वतत्रता और इस प्रकार सूचना का प्रवाह रोकने के विचार से अत्यधिक प्रतिकूल है। इन परिस्थितियों में परिषद् अनुभव करती है कि आक्षेपित परिपत्र तुरन्त वापस ले लिया जाना चाहिए जिससे जिले में समाचारपत्र आसानी से सूचना अभिगम प्राप्त कर सके, अत शिकायत के अनुमोदन का निर्णय किया गया। (भा प्र प, वा रि 1984, पृ स 79, नि दि 6 10 84)

☐ पहले से प्रकाशित सामग्री का पुन प्रकाशन – भारतीय प्रेस परिषद् का विचार था कि किसी समाचारपत्र में प्रकाशित टिप्पणियाँ और संपादकीय लेख किसी अन्य समाचारपत्र में उचित अभिस्वीकृत अथवा आज्ञा प्राप्त किए जाने पर प्रकाशित किये जा सकते हैं। (भा प्रे प वा रि 1984, पृ स 45, 49)

☐ नियन्त्रण का आग्रह – संवेदनात्मक मामलों के संबंध में किसी लेख के लेखन और प्रकाशन के विषय में यह प्रमुखता से एच्छिक है कि उचित नियन्त्रण का प्रयोग किया जाना चाहिए तथा कोई लेख अथवा संपादकीय प्रकाशित नहीं होना चाहिए जिससे तनाव उत्पन्न हो अथवा स्थिति में अपवृद्धि हो। समाचारपत्रों और पत्रिकाओं पर विशेष उत्तरदायित्व है तथा उन्हें सब प्रकार की साम्प्रदायिकता, अनुचित और धार्मिक भावनाओं को शांत करने तथा सब वर्गों के बीच स्वस्थ्य, प्रसन्न और शांतिपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने चाहिए। (भा प्रे प, वा रि 1986 पृ स 53)

☐ जेल मैनुअल के आक्षेपित सांविधिक प्रावधानों की वैधता पर प्रे प कोई विचार व्यक्त नहीं कर सकती क्योंकि ऐसा विचार करना परिषद के कार्य क्षेत्र से बाहर है (भा प्रे प, वा रि 1986 पृ स 86 87)

धारा 14 के तहत शिकायतें

☐ बनावटी विज्ञापन – विज्ञापनदाता द्वारा बिना स्वीकृति के विज्ञापन प्रकाशित करना स्वीकृत पत्रकारिता नीति के नियमों का उल्लंघन है। (भा प्रे प वा रि 1984, पृ स 87, नि दि 6 10 84)

☐ समाचारपत्र की कुछ प्रतियों में विज्ञापन प्रकाशित करना और कुछ में नहीं – अनुचित पत्रकारिता है (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 102)

☐ शिकायत के अनुसार आक्षेपित विज्ञापन अरुचिकर भाषा में लिखा गया था तथा उसमें अत्यधिक आपत्तिजनक परोक्ष संकेत शामिल थे। परिषद् ने एस विज्ञापन पर असंतोष व्यक्त किया। (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 102, नि दि 24 3 87)

☐ साहित्यिक चोरी पर परिषद् द्वारा संबंधित समाचारपत्र को खेद प्रकाशन का निर्देश। (भा प्र प वा रि 1987, पृ स 115)

☐ योजनाबद्ध आन्दोलन – परिषद् ने संबंधित समाचारपत्र में प्रकाशित समाचारों को शिकायतकर्ता के विरुद्ध एक योजनाबद्ध आन्दोलन के रूप में प्रतीत होना तथा इस आंदोलन को उद्देश्यपरक माना। किसी व्यक्ति अथवा संस्थान के विरुद्ध योजनाबद्ध उद्देश्यपरक आन्दोलन साधारणत अभिप्रेत और अनिष्ट निवारक नहीं है। (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 291)

- ☐ सामान्यतया पत्रकारिता नीतियो के अनुरूप, सम्पादक को खडन प्रकाशित करना चाहिए हालाकि सम्पादक, यदि चाहे तो वह अपनी टिप्पणियाँ प्रकाशित कर सकते हैं। (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 214, नि दि 25 3 87)

- ☐ यदि सम्पादक प्रत्युत्तर को आपत्तिजनक समझते थे तो उन्हें शिकायतकर्ता से पुन प्रेषित करने के लिए कहना चाहिए था अथवा उसमे सम्पादन करके उसे स्वय प्रकाशित कर देना चाहिए था। (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 225 नि दि 8 7 87)

- ☐ उत्तर का अधिकार स्थापित – अपने विरुद्ध प्रकाशित किसी समाचार का खडन पीडित व्यक्ति को बचाने का अधिकार है बशर्ते वह उचित और सौम्य हो यानि अरुचिपूर्ण नही हो। (भा प्रे प, वा रि 1984, पृ स 89, नि दि 6 10 84)

- ☐ सम्पादक द्वारा दिया स्पष्टीकरण कि लेख के सम्बद्ध समय म वह सम्पादक *नही थे, अत उन पर कोई उत्तरदायित्व नहीं था, वास्तव मे कोई स्पष्टीकरण* नही था क्योकि शिकायत व्यक्तिगत रूप से उनके विरुद्ध नही थी वरन् समाचारपत्र के विरुद्ध थी (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 211)

- ☐ परिषद् सतुष्ट थी कि शिकायतकर्त्ता ने वतमान मामले में कोई खडन न भेजकर पूर्णरूप से न्याय किया था, ऐसे खडन से असत्य शरारतपूर्ण और निन्दात्मक आरोपो का और प्रचार होगा। (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 215, नि दि 29 10 1986)

- ☐ परिषद् की जाँच समिति के समक्ष एक पक्ष द्वारा सुनवाई को आगे के लिए स्थगित करने की प्रार्थना की गयी। दूसरे पक्ष ने मुआवजे की माग की। समिति ने मामले के तथ्यो और परिस्थितियो पर विचारोपरान्त अनुभव *किया कि मुआवजे के आवेदन पर किसी आदेश की आवश्यकता नहीं है।* (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 223 224, नि दि 29 12 86)

- ☐ मानहानिजन्य प्रकाशन – जहाँ तक पत्रकारिता नीतियो का सबध है, यह सवमान्य है कि एक पत्रकार को मानहानि के विषय में प्रकाशित समाचार के परिणामों के लिए कोई विशेषाधिकार प्राप्त नही है तथा वह इनके लिये उतना ही उत्तरदायी होता है जितना कि एक साधारण नागरिक। (भा प्र प वा रि 1984, पृ स 136 नि दि 12 3 84)

- ☐ प्रेस को राजनीतिक विषयों पर अभिव्यक्ति के अधिकार का उपयोग ऐसा नही होना चाहिये जो सम्पूर्ण देश के हित को गभीर रूप से क्षति पहुँचाये।

संवेदनात्मक राजनीतिक समस्याओं पर यह ऐच्छित है कि अवरोध और सावधानी का अनुपालन किया जाना चाहिए। (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 126)

☐ किसी अपराधी के उल्लेख में जाति का उल्लेख ऐच्छित नहीं है (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 138) पहचान के उद्देश्य के अतिरिक्त जब पहचान का प्रश्न सबद्ध होता है तो समाचार में अपराधियों की जाति, धर्म अथवा समुदाय का उल्लेख उचित और ऐच्छित नहीं है। (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 140)

☐ यद्यपि किसी समुदाय विशेष की विधिसंगत परिवेदनाओं को भड़काने के लिए कठोर भाषा का प्रयोग करना क्षम्य हो सकता था लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे साम्प्रदायिक मनोभाव अथवा घृणा भड़के। (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 145)

☐ संपादक से घटना की सत्यता के आश्वासन की आशा नहीं की जा सकती यद्यपि उन्हें जनहित में प्रकाशित समाचार की आधारभूत सामग्री के सम्बन्ध में पूर्ण आश्वस्त होना चाहिए, कि वह जनहित में प्रकाशित किया गया था। (भा प्र प, 1986, पृ स 156)

☐ शीर्षक में परिवर्तन—सम्पादक द्वारा लेखों में शीर्षक में परिवर्तन और स्वीकृति अथवा पुष्टि में सम्पूर्ण स्वनिर्णय का प्रयोग करना चाहिये। इस स्वनिर्णय का स्वच्छ और उचित प्रयोग आवश्यक है। लेख के लेखक के गंभीर पूर्वाग्रह के कारण स्वनिर्णय का प्रयोग नहीं किया जा सकता। संपादक, लेख के लेखक द्वारा दिये गये शीर्षक के स्थान पर ऐसा कोई शीर्षक नहीं दे सकते जो लेख के सार की पुष्टि नहीं करता हो अथवा जो लेख के उद्देश्य अथवा लक्ष्य को नष्ट कर दे। (भा प्रे प, वा रि 1985 पृ स 34 35)

☐ पत्रिका के हित अथवा पत्रकारिता के नियमों में आवश्यक होने पर संपादक किसी लेख के किसी भाग अथवा अंश को निकालने का स्वनिर्णय कर सकता है। लेकिन ऐसा उच्छेदन जानबूझकर अथवा हास्यास्पद रूप से नहीं होना चाहिये। (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 98)

☐ समाचारों का मर्यादित शीर्षक ऐच्छित (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 100)

☐ चित्रों की सम्बद्धता—ऐसे चित्र का प्रकाशन रोका जाना चाहिए जब तक कि उसका प्रकाशन जनहित में न हो और वह [illegible] कहानी,

समाचार अथवा उसकी व्याप्ति से सम्बद्ध न हो। (भा प्रे प, वा रि 1986 पृ स 115, नि दि 28 29, अक्टू 1986)

☐ सवेदनात्मक शीर्षक – आक्षेपित समाचार का शीर्षक मूल रिपोर्ट से नही लिया गया था तथा उसकी प्रकृति सवेदनात्मक थी। (भा प्रे प, वा रि 1987 पृ स 243, नि दि 8-7 1987)

☐ शिकायत करने के अधिकार को चुनौती – अब यह उचित रूप से स्थापित किया जा चुका है कि किसी जन कार्यालय के विरुद्ध किसी क्षति अथवा गलत बात जिसम जनता की विशेष रुचि हो सकती है के विषय म जनता के किसी व्यक्ति द्वारा उठाया जा सकता है। (भा प्रे प, वा रि 1986, पृ स 107)

☐ क्या किसी शिकायत के विषय के न्यायाधीन हो जाने के बावजूद भी उस शिकायत के नैतिक अश/पत्रकारिता नीति के ऐसे नियम जिनमे न्यायालय को कुछ नही करना होता है, पर परिषद् विचार कर सकती है ?

परिषद् ने निर्णय लिया कि प्रे प अधि की धारा 14(3) ऐसे मामले मे, परिषद् को धारा 14(1) के तहत किसी जाँच को आगे बढाने की आज्ञा नही देती। (भा प्रे प वा रि *1986* पृ स *136* नि दि *8 मई 86*)

☐ व्यक्तिगत रूप स शिकायतकर्त्ता का समाचार मे कोई सदर्भ नही था। परिषद् का मत था कि समाचार मे शामिल आरोप सामान्य प्रकृति के थे तथा अस्पताल के प्रबध की सामान्य आलोचना के प्रकार के थे। परिसर ने शिकायत खारिज कर दी। (भा प्रे प वा रि 1986, पृ स 165)

☐ समाचार म शिकायतकर्त्ता की पत्नी का सदर्भ पूर्णत अनुचित तथा अरुचिकर माना गया (भा प्रे प वा रि 1986, पृ स 185, तथा वा रि 1987, पृ स 213, नि दि 25 3 1987)

☐ उचित सामग्री के बिना प्रकाशन – किसी भी व्यक्ति के सम्मान को ठेस पहुँचाने वाले प्रकाशन की अनुज्ञा प्रदान नही की जा सकती जब तक कि प्रकाशन पत्रकारिता नीति के अनुरूप न हो। (भा प्रे प वा रि 1986, पृ स 197 तथा वा रि 1987 पृ स 118)

☐ आक्षेपित लेख राजनीतिक टीका टिप्पणी की प्रकृति का था और शिकायतकर्त्ता की आलोचना सामान्य राजनीतिक प्रकृति की थी तथा अत्यधिक महत्वपूर्ण नही थी। (भा प्रे प, वा रि पृ स 203)

☐ प्रश्नगत समाचार के प्रकाशन के पूर्व सम्पादक को शिकायतकर्त्ता से तथ्यो की जाच कर लेनी चाहिए थी। प्रमुख रूप से यह अभिप्रेत था कि कोई समाचार जिसका किसी पर प्रभाव पड सकता हो। (भा प्र प, वा रि 1987, पृ स 121)

- कानून के उल्लघन सबधी कोई विषय यदि जनहित से सबध न हो अथवा जन शरारतो से सबध हो तो टिप्पणी तथा आलोचना उचित तथा उचित सामग्री पर आधारित होनी चाहिए। (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 123)
- सपादकीय लिखने को दो मान्यता प्राप्त सीमायें हैं – (i) कानून को भग नहीं किया जा सकता (ii) पत्रकारिता नीति और नियमो का उल्लघन नही किया जा सकता। (भा प्रे प वा रि 1987 पृ स 134) सपादकीय मे सम्प्रदायो के नाम का उल्लेख अवाछित था। (वा रि 1987, पृ स 146 नि दि 8 7 87)
- मूल तत्ववाद प्रतिपादित करने वाला लेख – जो साम्प्रदायिक गडबडी का कारण हो सकता था। सम्प्रदाय के नाम का उल्लेख पत्रकारिता नीति के नियमो के विरुद्ध था (भा प्रे प वा रि 1987, पृ स 148 नि दि 8 7 87)
- एक समाचारपत्र से दूसरे समाचारपत्र में किसी लेख के पुनरुत्पादन पर दूसरे समाचारपत्र का सम्पादक सुरक्षित नही हो जाता कि सरकार ने पहले समाचारपत्र के सम्पादक को मूल लेख लिखने के विरुद्ध नही लिखा। हालाकि परिसद ने अनुभव किया कि कर्नाटक सरकार को मूल लेख के लेखक के सम्पादक के विरुद्ध कार्यवाही करनी चाहिए, एसा न करके कर्नाटक सरकार ने दोनो समाचारपत्रों के बीच विभेद किया है (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 150 नि दि 8 7 1987)
- यद्यपि सम्पादक अपने विचारो पर बल देने के सबध में कितना ही न्यायोचित हो उसे भाषा के प्रयोग के सबध में सतर्क और रोधात्मक होना चाहिए जिससे साम्प्रदायिक भावनायें और साम्प्रदायिक मनोभाव न भडकें। (भा प्रे प वा रि 1987 पृ स 152, नि दि 8 7 1987)
- साम्प्रदायिक प्रकृति की भेंटवार्ता की रिपोर्ट का प्रकाशन तो पत्रकारिता नीतियों के विपरीत ही होगा (भा प्रे प वा रि 1987, पृ स 170, नि दि 5-6 अक्टू 1987)
- उचित मामलो मे प्रेस अवश्य ही खुलकर सरकारी तत्र के दुरुपयोग अथवा अनुचित तथा सरकारी दूरभाष अथवा गाडी इत्यादि पर धन व्यय करने की आलोचना कर सकती है (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 203, नि दि 24 3 87)
- उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित व्यक्तियो के विरुद्ध झूठे और आधारहीन आरोपों से उनकी नैतिकता और दक्ष कार्यविधि पर प्रभाव पडता है तथा

इसे अत्यधिक अनुचित और स्पष्टरूप से पत्रकारिता नीतियों का उल्लंघन समझा जाना चाहिए। (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 211, नि दि 25 3 87) यदि टिप्पणियां और आलोचनाएँ न्यायोचित हो, तो शायद उनके आचरण पर टिप्पणी करना और आलोचना करना समाचारपत्र का कर्त्तव्य बन जाये। (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 217) जब तक वध और न्यायोचित कारण न हो तब तक सम्पादक खडन प्रकाशित करने से इन्कार नही कर सकते। (पृ स 218, नि दि 25 3 87)

- बिना किसी न्यायोचित आधार के कोई अनुत्तरदायित्वपूर्ण वक्तव्य जिसमे भ्रष्टाचार का आरोप हो पत्रकारिता नीति और नियमो के उल्लंघन स्वरूप तथा मानहानिजनक होगा (भा प्रे प, वा रि 1987, पृ स 273, नि दि 5 6 अक्टू 87)
- होली उत्सव मनोरजन और विनोद का उत्सव है। उचित पत्रकारिता के नियमो के तहत हास्यास्पद लेख प्रकाशित किये जा सकते हैं। हालांकि होली उत्सव, अश्लीलता और चरित्र हनन का अवसर नही है। तथ्य यह है कि चाहे अनेक पत्र इसमे सलग्न हो परन्तु वह पत्रकारिता नीति के नियमों को परिवर्तित नही कर सकते। (भा प्र प, वा रि 1987, पृ स 279, नि दि 5 6 अक्टू 87)

साठे प्रकरण मे उजागर सिद्धान्त

तत्कालीन सूचना तथा प्रसारण मत्री श्री वसत साठे के एक वक्तव्य के प्रकाशन मे हिन्दुस्तान टाइम्स के सवाददाता द्वारा उचित सावधानी का प्रयोग नही करना माना गया जिसमे परिषद् द्वारा निम्न महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये गए (भा प्रे प, वा रि 1981, पृ स 90-105)

समाचार का दायित्व सम्पादक पर

सामान्यत समाचारपत्र मे जो भी समाचार प्रकाशित किया जाता है उसका दायित्व सम्पादक पर ही होता है तथा मत्री महोदय ने भाषण को विकृत रूप मे निवेशित कराने वाले सवाददाता और सम्पादक के बीच कोई प्रभेद करना सभव नही है। यदि यह शिकायत सवाददाता के विरुद्ध ही समझी जाय तब भी वस्तुत यह सम्पादक के विरुद्ध भी समझी जायेगी क्योंकि सवाददाता सम्पादक के सम्पूर्ण उत्तरदायित्व के अधीन ही काय करता है।

हूबहू वक्तव्य पर ही उद्धरण चिह्न

वक्ता द्वारा कथित शब्दो को वस्तुत उसी रूप मे उद्धृत करने हेतु ही शब्दों को उद्धरण चिह्नों में रखा जाता है। यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत

मामले मे उद्धरण चिन्हो का प्रयोग पूर्ण रूप से अनुचित था तथा मंत्री महोदय के शुद्ध भाषण के अनेकानेक पठन भी इसका समर्थन नहीं करते।

उद्धरण चिन्हो मे समाहित अंश की प्रकाशन के पूर्व जांच हो

प्रेस परिषद के विभिन्न निर्णयो द्वारा यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका है कि समाचारपत्रो में प्रकाशित होने वाली रिपोर्ट सत्य होनी चाहिए तथा तथ्यो को तोड़ मरोड़ कर अथवा विकृत रूप में प्रकाशित नही करना चाहिए। प्रश्नाधीन भाषण की रिपोर्ट भेजने से पहले रिपोर्ट निवेशित करने वाले संवाददाता को भाषण के तथ्यो की जाच कर पाने मे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए थी, विशेषत उस अंश की जाच जो उद्धरण चिन्हो मे रखा गया था।

इसमें कोई सन्देह नही कि किसी ऐसे व्यक्ति, जो केन्द्र सरकार के मंत्रीमंडल के एक मंत्री के पद पर हो, के भाषण को अशुद्ध ढंग से अथवा विकृत रूप में प्रस्तुत करने से स्थिति बिगड सकती है।

नियमित संवाददाताओं द्वारा प्रेषक समाचार

पिछली प्रेस परिषद् ने कुछ ऐसे मामलों पर विचार किया था, जिनमे यह प्रश्न उठा था कि जब किसी मान्यता प्राप्त संवाददाता के किसी गम्भीर मामले पर रिपोर्ट प्राप्त होती है तो उस समय सम्पादक का क्या उत्तरदायित्व अथवा कर्तव्य है। यह विचार व्यक्त किया गया था कि यदि सम्पादक के पास ऐसा कोई कारण नहीं था कि जिससे कि उसे थोडी भी आशंका हो कि उसके नियमित संवाददाता द्वारा भेजा गया समाचार अशुद्ध था तो वह उसे बिना अग्रिम जाच अथवा प्रमाणिकता के ही प्रकाशित कर सकते हैं तथा ऐसे में उनकी यह कारवाई अनुचित नही होगी। यह और भी अधिक लागू होगा यदि कोई समाचार किसी घटना के तुरन्त बाद प्रकाशित किया गया हो। (नेशनल हेराल्ड का मामला—भा प्रे प तृतीय वा रि पृ स 15)

जनहित बनाम तत्परता

क्या किसी गम्भीर विषय पर तत्परता से बिना तथ्यो की शुद्धि का पता लगाए किसी अन्य समाचारपत्र मे प्रकाशित रिपोर्ट के आधार पर टिप्पणी करना उचित होगा के प्रश्न के उत्तर में परिषद् ने विचार व्यक्त किया कि जनहित के समाचार का शीघ्रता के साथ प्रसार करना औचित्यपूर्ण हो सकता है फिर भी यदि किसी जनहित के विषय पर जो एक ख्याति प्राप्त व्यक्ति के संबंध में हो बिना उसके तथ्यो की शुद्धि के बारे में आश्वस्त हुए तत्परता से तथा शीघ्रता के साथ विचारों की अभिव्यक्ति करना जनहित का पूरक नही होगा। (भा प्रे प, वा रि. 1981, पृ स 90 113)

खडन का विलम्बित प्रकाशन भर्त्सना योग्य

फ्री प्रेस बुलेटिन ने अपने पत्र मे अपराध विभाग, सी आई डी पुलिस बम्बई के सम्बन्ध मे प्रकाशित समाचार का खडन साढे पाच माह की दरी से छापा जिसके सबध म परिषद ने विचार व्यक्त किया कि उपल ध सामग्री पर विचारो परान्त समिति का स्पष्ट रूप से यह विचार था कि इस विषय म प्रतिवादी सम्पादक दोषी थ तथा साढे पाच महीने पश्चात् खडन प्रकाशित करने के कारण वह भर्त्सना योग्य है। (भा प्रे प, वा रि 1981, पृ स 135 136)

देरी को क्षमा करना

एक मामले मे शिकायत जो प्रेस परिषद (जाच प्रक्रिया) विनियम 1979 के विनियम 3 (1) (ख) के परिवादों के अनुसार प्रकाशन के दो महीनो के भीतर निवेशित कराई जानी चाहिए थी, छह महीनो की च्युति पर अप्रल 1981 म निवेशित किये जाने के कारण समयरुद्ध पाई गई। तथापि शिकायतकर्त्ता ने शिकायत निवेशित करने म देरी अग्रदूत के सपादक के द्वारा अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा पर आरोपित की और अनुरोध किया कि इस देरी को क्षमा कर दिया जाए। अध्यक्ष महोदय ने इस देर को क्षमा कर दिया। (भा प्रे प, वा रि 1981 पृ स 147 148)

अनिष्ट के सुधार हेतु पूर्ण प्रयत्न सख्त कारवाई लायक नहीं

प्रेस परिषद के निर्णयों द्वारा यह स्थापित होता है कि सामान्यत जब कोई समाचारपत्र अपने मान्यता प्राप्त सवाददाता से कोई समाचार प्राप्त करके उसे प्रकाशित कर देता है, किन्तु यह ज्ञात होते ही कि यह समाचार अशुद्ध है यह स्पष्ट रूप से उसका खडन प्रकाशित कर देता है। तो उस पत्र के विरुद्ध सख्त कारवाई नही की जानी चाहिए, क्योंकि पत्र ने अनिष्ट के सुधार हेतु पूर्ण प्रयत्न कर लिये थ। (भा प्रे प वा रि 1981, पृ स 150 153)

- परिषद की अवमानना – परिषद का समाचारपत्र मे प्रकाशित निर्णय सम्पादक के पास प्रकाशन के लिए भेजे गए निर्णय के प्रकरण से भिन्न पाया गया। अन्त म सम्पादक का अवज्ञाकारी कथन प्रकाशित था जिससे पाठको के मन मे अधिक्षेपित समाचारपत्र के नाम के सबध मे भ्रान्ति उत्पन्न हो सकती थी। समाचारपत्र के इसी अक मे प्रेस परिषद् बन्द करो" शीर्षक स सम्पादकीय लेख प्रकाशित किया गया।

परिषद् के विचार मे सम्पादक का व्यवहार निन्दनीय था क्योंकि उन्होंने न केवल परिषद् के निर्देशो की अवमानना की थी, वरन ससद के अधिनियमों

के अन्तर्गत प्रेस की स्वतन्त्रता की रक्षा करने और भारत में समाचारपत्रों और समाचार अभिकरणों का स्तर सुधारने के उद्देश्य से स्थापित भारतीय प्रेस परिषद् जैसी स्वतन्त्र संस्था के प्रति अत्यन्त आपत्तिजनक अपवर्षी सम्पादकीय लेख प्रकाशित किया था तदनुसार परिषद् ने "दी हितवाद" समाचारपत्र के सम्पादक को अधिक्षेपित किया तथा उन्हें अपने समाचारपत्र में प्रेस परिषद् का निर्णय प्रकाशित करने का निर्देश दिया। (भा प्रे प, वा रि 1981, पृ स 87 89)



चुने हुए प्रश्न

जो प्रे पु अधि और भा प्र प अधि मे निहित विधि प्रावधानो की जानकारी लेना चाहते हैं, निम्न प्रश्नावली से ज्ञात होगा कि उन्हे इन कानूनो का कितना ढेर सारा ज्ञान प्राप्त करना है।

प्र पु अधि के तहत प्रश्न

प्रश्न – 1 प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधि 1867 (यथा सशोधित) की उत्पत्ति और विकास व इतिहास पर सक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिये ?

प्रश्न – 2 प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 किन लक्ष्या व उद्देश्यो के लिये बनाया गया है, समझाइये ?

प्रश्न – 3 "सारत विधि ' और ' प्रक्रियात्मक विधि ' से आप क्या समझते हैं। प्रे पु अधि सारत विधि' है अथवा ' प्रक्रियात्मक विधि '।

प्रश्न – 4 'वैयक्तिक विधि' और स्थानीय विधि से आप क्या समझते हैं। प्र पु अधि इनमे से एक की परिधि मे आता है या दोनों की परिधि मे आता है ?

प्रश्न – 5 प्र पु अधि पर कौनसी प्रक्रियात्मक विधि ' लागू होती है ?

भाग 1

प्रश्न – 6 विभिन्न विधि प्रकरणा के तहत निम्न में क्या शामिल और क्या आशयित है ?

(i) पुस्तक (ii) मुद्रण (iii) पत्र (iv) मजिस्ट्रेट

प्रश्न – 7 प्रे पु अधि के लिए किस प्रकार के मजिस्ट्रेटस आशयित हैं ?

प्रश्न – 8 मेट्रोपोलिटान एरिया" और "नोन मेट्रोपोलिटान एरिया ' से आप क्या समझते हैं कौन स क्षेत्र मेट्रोपोलिटान एरिया घोषित किये गये हैं ?

प्रश्न – 9 ' समवर्ती शक्तियां ' और समवर्ती क्षेत्राधिकार" स क्या तात्पय है। क्या एक नोन मेट्रोपोलिटान एरिया मे जिला मजिस्ट्रेट और उपखण्ड मजिस्ट्रेट प्रे पु अधि के तहत अपने अधिकारों का समवर्ती रूप स प्रयोग कर सकते हैं ?

प्रश्न – 10 प्रे पु अधि मे "वैधानिक सम्पादक" की क्या विशेषताएं होती हैं ?

प्रश्न – 11 क्या कोई कम्पनी अथवा संघ अथवा व्यक्तियों का समूह (निगमित या अनिगमित) एक समाचारपत्र का सम्पादक हो सकता है ?

भाग 2

प्रश्न – 12 प्रे पु अधि की धारा 3 व 4 के गठन के पीछे इसके गठनकर्त्ताओं का क्या आशय रहा है ?

प्रश्न – 13 क्या धारा 3 समाचारपत्रों को भी शामिल करती है। यदि विधि प्रकरण हो तो उल्लेख कीजिये ?

प्रश्न – 14 "मुद्रक" और "प्रकाशक" मे क्या अन्तर है ?

प्रश्न – 15 एक मुद्रण यन्त्रपाल को मजिस्ट्रेट के सम्मुख किस रीति से घोषणा पेश व हस्ताक्षरित करनी होती है ?

प्रश्न – 16 प्रे पु अधि की धारा 3 व 4 के तहत कौन परिवाद कर सकता है। कोई विधि प्रकरण हो तो उल्लेख कीजिये ?

प्रश्न – 17 'इम्प्रिन्ट लाइन' से आप क्या समझते हैं। क्या स्वयं प्रे पु अधि और इसके तहत बने नियमों मे इस प्रकार की इम्प्रिन्ट लाइन का कोई प्रारूप निर्धारित किया हुआ है ?

प्रश्न – 18 प्रे पु अधि की धारा 4 के उपखण्ड 1 म प्रयोग किये गये शब्द 'घोषणा' और धारा 4 के उपखण्ड 2 के "परन्तु" मे प्रयोग किये गये शब्द "विवरण' म क्या कोई अन्तर है ?

प्रश्न – 19 एक समाचार के सम्बन्ध मे मजिस्ट्रेट को किस रीति स घोषणा को प्रमाणित करना होता है ?

प्रश्न – 20 क्या मजिस्ट्रेट घोषणा के प्रमाणीकरण के समय समाचारपत्र के स्वामित्व के सम्बन्ध मे प्रश्न उठा सकता है। यदि कोई विधि प्रकरण हो तो उसका उल्लेख कीजिये।

प्रश्न – 21 समाचारपत्र के प्रकाशन के सम्बन्ध में बने नियमों को वर्गीकृत तरीके से लिखिये।

प्रश्न – 22 किन दशाओं में एक नई घोषणा आवश्यक होती है ?

प्रश्न – 23 प्रे पु अधि की धारा 5 (8) में 'घोषणाकर्त्ता की वयस्कता और साधारणत निवास नामक शब्दावली का जो कुछ मामूली स अन्तर

के साथ प्रयोग हुआ है उससे आपका क्या तात्पर्य है। विस्तार से समझाइये ?

प्रश्न – 24 "शोषक निष्कासन' अथवा "शोषक पुष्टि" से आप क्या समझते हैं। प्रे पु अधि के तहत एक समाचारपत्र के प्रकाशन से पूर्व घोषणा के प्रमाणीकरण के पूर्व मजिस्ट्रेट को किस प्रकार की सन्तुष्टि चाहिए ?

प्रश्न – 25 "प्रस्तुत करना और हस्ताक्षर करना' तथा 'प्रमाणीकरण' से आप क्या समझते हैं। क्या इन दोनों के बीच कोई अन्तर है। प्रे पु अधि की किस धारा अथवा किन धाराओं पर प्रमाणीकरण के प्रावधान लागू होते हैं ?

प्रश्न – 26 प्रे पु अधि की धारा 6 के तहत 'प्रमाणित प्रति और "अप्रमाणित प्रति' में क्या अन्तर है ?

प्रश्न – 27 जब एक मजिस्ट्रेट प्र पु अधि की धारा 6 के तहत काय करता है क्या वह एक न्यायिक आफिसर की तरह काय करता है ? विधि प्रकरण के साथ समझाइये ?

प्रश्न – 28 क्या एक समाचारपत्र का प्रस्तावित सम्पादक उस समाचारपत्र का सम्पादक बनने से पहले प्रे पु अधि की धारा 6 और उस पर बने नियमों के तहत संवैधानिक रूप से प्रमाणित कराने के लिए घोषणा प्रस्तुत करने और हस्ताक्षरित करने के लिए बाध्य है।

प्रश्न – 29 आप प्रथम दृष्टया साक्ष्य से क्या समझते हैं। एक समाचारपत्र के मामले में उसके मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक के विरुद्ध एक कानूनी कार्यवाही में क्या प्रस्तुत करने पर प्रथम दृष्टया धारणा उत्पन्न होती है। क्या एक समाचारपत्र के मालिक के विरुद्ध भी ऐसी प्रथम दृष्टया धारणा उत्पन्न हो सकती है। पुस्तकों और पम्फलेटों के मामले में क्या स्थिति बनेगी।

प्रश्न – 30 किन परिस्थितियों में प्रे पु अधि के तहत प्रथम दृष्टया धारणा का खण्डन किया जा सकता है ?

प्रश्न – 31 जब एक समाचारपत्र का मुद्रक अथवा प्रकाशक उसका मुद्रक अथवा प्रकाशक न रहे तो, उसे कानूनी दण्ड से बचने के लिए क्या करना चाहिए ? क्या इस उद्देश्य के लिए कोई अवधि भी निर्धारित की गई है ?

प्रश्न – 32 *जब एक व्यक्ति का एक समाचारपत्र में सम्पादक के रूप में अयुक्त नाम प्रकाशित कर दिया गया हो तो उसे क्या करना चाहिए ? क्या इस उद्देश्य के लिए अवधि निश्चित की हुई है ?*

प्रश्न – 33 एक समाचारपत्र के सम्बन्ध में किन आधारों पर घोषणा को निरस्त किया जा सकता है। विधि प्रकरणों के साथ वर्गीकृत रूप से समझाइये ?

प्रश्न – 34 एक समाचारपत्र के सम्बन्ध में किस की प्रार्थना पर घोषणा को निरस्त करने के लिए कौन सक्षम है ? ऐसी घोषणा को निरस्त करने के पूर्व क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए।

प्रश्न – 35 क्या प्रे पु अधि की धारा 8 ग के तहत गठित अपीलेंट बोर्ड अपने सम्मुख विचाराधीन एक अपील में यथास्थिति को कायम करने के लिए अन्तरिम आदेश पारित कर सकता है। विधि प्रकरणों के साथ समझाइये ?

प्रश्न – 36 क्या प्रे पु अधि की धारा 8 ग के तहत गुणावगुण के आधार पर पूर्व में विनिश्चित आदेश के विरुद्ध रिव्यू याचिका प्रस्तुत की जा सकती है।

प्रश्न – 37 क्या प्रे पु अधि की धारा 8 ख के तहत विनिश्चत आदेश के विरुद्ध निगरानी प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया जा सकता है ?

प्रश्न – 38 प्रे पु अधि की धारा 8 ग के तहत प्रस्तुत की जाने वाली अपील के लिए किस प्रकार का आदेश चाहिए जिसके विरुद्ध अपील प्रस्तुत की जानी है ?

प्रश्न – 39 क्या प्रे पु अधि की धारा 8 ग के तहत प्रस्तुत की जाने वाली अपील के लिए कोई समयावधि निश्चित है। यदि ऐसा हो तो किन परिस्थितियों में उस समयावधि के समाप्त होने के बाद भी एक अपील को दर्ज किया जा सकता है ?

प्रश्न – 40 *क्या एक पीडित व्यक्ति प्रे पु अधि की धारा 8 ग तहत पहले अपील में न जाकर सीधे ही सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय में याचिका* प्रस्तुत कर सकता है ? विधि प्रकरणों के साथ समझाइये ?

प्रश्न – 41 प्रे पु अधि की धारा 8 ख के तहत पारित आदेश के विरुद्ध इसी अधिनियम की धारा 8 ग की कानूनी अपेक्षाओं को पूरा करते हुए एक काल्पनिक पुनरावेदन ज्ञापन (मेमोरेण्डम ऑफ अपील) तयार कीजिए ?

भाग 3

प्रश्न – 42 एक समाचारपत्र के मुद्रक/प्रकाशक अथवा एक पुस्तक के मुद्रक को प्रे पु अधि और उस पर बने नियमो के तहत तथा पु स प (सा पु) नियमो के तहत किन स्थानों अथवा किन आफिसरो को अपने समाचार पत्र अथवा पुस्तक की प्रतियाँ भेजनी होती हैं ?

भाग 4

प्रश्न – 43 निम्न दृष्टान्त-वादो में क्या नियम प्रतिपादित किये गये हैं ?

(1) अब्दुल हमीद बनाम स्टेट (ए आई आर 1960, इलाहाबाद 450)

(2) पब्लिक प्रोसीक्यूटर बनाम टी अमृत (ए आई आर 1960 आन्ध्र प्रदेश 176)

प्रश्न – 44 क्या प्र पु अधि की धारायें 8ख, 11क और 16क के मध्य कोई सम्बन्ध कायम है ?

प्रश्न – 45 प्रे पु अधि के तहत दण्डो की प्रकृति पर प्रकाश डालिये। क्या प्रे पु अधि के तहत सश्रम कारावास भी दिया जा सकता है ?

प्रश्न – 46 प्रे पु अधि के तहत अपराधों की अन्वीक्षा पर एक निबन्ध लिखिए ?

प्रश्न – 47 क्या प्रे पु अधि के तहत अपराध अपीलयोग्य है ? जब प्रे पु अधि के तहत अथवा प्रे पु अधि पर लागू किसी अन्य प्रक्रियात्मक विधि के तहत कोई दण्ड दे दिया गया हो तो पीड़ित व्यक्ति के लिए क्या उपचार है ?

प्रश्न – 48 क्या प्रे पु अधि अथवा इस पर लागू किसी प्रक्रियात्मक विधि के तहत अपराधो के संज्ञान के लिए कोई समयावधि निश्चित है।

प्रश्न – 49 क्या प्रे पु अधि के तहत जुर्माना की ना अदायगी के लिये दण्ड विषयक कोई प्रावधान है। विस्तार से समझाइये ?

प्रश्न – 50 प्रे पु अधि की धारा 10 के तहत राज्यसात राशि की वसूली किस प्रकार की जा सकती है। विधि प्रकरणो के साथ विस्तार से समझाइये ?

भाग 5

प्रश्न – 51 प्रे पु अधि के तहत एक पुस्तक को किस प्रकार पंजीकृत किया जाता है। प्रे पु अधि की धारा 18 के तहत वर्णित पुस्तकों की सूची में क्या विशिष्टियाँ शामिल करनी होती हैं। किस रीति से इस सूची का प्रकाशन होना होता है ?

भाग 5 (क)

प्रश्न – 52 प्रे पु अधि की धारा 19 ख के तहत आर एन आई द्वारा समाचारपत्रों के रजिस्टर मे क्या विशिष्टियाँ शामिल करनी होती हैं ?

प्रश्न – 53 क्या एक समाचारपत्र उसके प्रकाशक द्वारा भारत के समाचारों के पंजीयक से बिना पंजीयन प्रमाणपत्र प्राप्त किये चलाया जा सकता है।

प्रश्न – 54 भारत के समाचारपत्रों के पंजीयक की स्थापना और इसके कर्तव्यों और दायित्वो पर एक निबन्ध लिखिये ?

प्रश्न – 55 प्रे पु अधि और इस पर बने नियमो के तहत भारत के समाचारपत्रों के पंजीयक के प्रति एक प्रकाशक के क्या वधानिक कर्तव्य हैं, समझाइये ?

प्रश्न – 56 प्रे पु अधि के तहत भारत के समाचारपत्रो के पंजीयक को प्रस्तुत की जाने वाली अपेक्षित सूचनाओ को प्राप्त करने के क्रम मे आर एन आई से प्राधिकृत एक ऑफिसर क्या एक ऐसे परिसर में घुस सकता है और निरीक्षण कर सकता है अथवा सुसंगत अभिलेखो अथवा दस्तावेजों की प्रतियाँ ले सकता है अथवा कोई आवश्यक प्रश्न पूछ सकता है जहाँ के लिए वह विश्वास करता है कि यहाँ ऐसे अभिलेख एवं दस्तावेज रखे हुए हैं ?

भाग 6

प्रश्न – 57 किन विषयों पर केन्द्र सरकार व राज्य सरकारें प्रे पु अधि के तहत नियम बना सकती हैं ?

प्रश्न – 58 क्या राज्य सरकारें प्रे पु अधि से किसी समाचारपत्रो के वग को अपवर्जित कर सकती हैं ?

प्रश्न – 59 क्या प्रे पु अधि सिक्किम और जम्मू कश्मीर पर भी लागू होता है। यदि एसा है तो किन तिथियो से लागू होता है। सिक्किम और जम्मू कश्मीर के मामले म प्र पु अधि पर कौनसी प्रक्रियात्मक विधि लागू होगी ?

भा प्र प अधि के तहत प्रश्न

प्रश्न – 60 प्रेस परिषद् अधिनियम किन लक्ष्यो व उद्देश्यों के लिए बनाया गया है ?

प्रश्न – 61 प्रे प अधि 1978 क तहत भारतीय प्रेस परिषद् की स्थापना पर एक लेख लिखिये ?

प्रश्न – 62 प्र प अधि 1978 के तहत भारतीय प्रेस परिषद् के कार्यों और शक्तियों पर एक निबन्ध लिखिये ?

प्रश्न – 63 प्रे प अधि 1978 क तहत 'परिनिन्दा करने की शक्ति' से आप क्या समझते है। विधि प्रकरणों के साथ समझाइये ?

प्रश्न – 64 क्या भारतीय प्रेस परिषद् समाचारपत्रो और समाचार अभिकरणों पर किसी प्रकार की फीस की लेवी लगा सकती है। यदि ऐसा है तो, किस रीति व किस दर से ?

प्रश्न – 65 किन विषयो पर भारतीय प्रेस परिषद् नियम और विनियम बना सकती है ? समझाइये ?

प्रश्न – 66 प्रेस रजिस्ट्रेशन अपीलेंट बोड का चेयरमैन और दूसरा सदस्य किसक द्वारा मनोनीत किये जाते है।

प्रश्न – 67 निम्न से आप क्या समझते हैं –

(i) बडा समाचारपत्र (ii) मध्यम समाचारपत्र (iii) लघु समाचारपत्र

प्रश्न – 68 प्रेस एण्ड रजिस्ट्रशन अपीलेंट बोड के 'व्यवहार एवम् प्रक्रिया' पर एक निबन्ध लिखिए ?

प्रश्न – 69 भारतीय प्रस परिषद् द्वारा गठित "जाँच समिति' के क्या काय होते हैं ?

प्रश्न – 70 प्रे प अधि और इस पर बने नियम और विनियम के तहत आप परिवारो स क्या समझते हैं ?

प्रश्न – 71 प्रे प अधि की धारा 14(1) के तहत समाचारपत्र, समाचार अभिकरण, सम्पादक अथवा अन्य श्रमजीवी पत्रकार के सम्बन्ध मे परिवाद की विषय-वस्तु पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न – 72 भारतीय प्रेस परिषद् के यहाँ किस रीति से एक परिवाद दर्ज कराया जाता है ?

प्रश्न – 73 किन मामलो मे भारतीय प्रेस परिषद् द्वारा एक परिवाद उसके परिवादी को वापिस लौटाया जा सकता है ?

प्रश्न – 74 एक परिवाद म भारतीय प्रेस परिषद् का विनिश्चय किस प्रकार की कानूनी मान्यता रखता है ? क्या इस प्रकार का विनिश्चय भारत की अदालतों पर बाध्यकारी है ?

प्रश्न – 75 प्रे प अधि की धारा 13 के तहत एक परिवाद के सम्बन्ध मे क्या प्रक्रिया अपनाई जायेगी ?

प्रश्न – 76 'क्या प्रेस परिषद् निम्न प्रकरणों मे हस्तक्षेप कर सकती है —

(i) जहाँ केन्द्र सरकार किसी समाचारपत्र/समाचार अभिकरण द्वारा किसी विदेशी स्रोत से सहायता प्राप्त करने के प्रकरण की जाँच कर रही है।

(ii) ऐसा विवाद जिस पर औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 (1947 का 14) लागू होता है।

(iii) एक ऐसा मामला जिसके सम्बन्ध मे अदालत म कोई कार्यवाही चल रही है।

प्रश्न – 77 क्या धारा 13 और 14 के तहत पारित विनिश्चयो को किसी अदालत मे प्रश्नगत किया जा सकता है।

प्रश्न – 78 किन मामलों में प्रेस परिषद् को सिविल प्रक्रिया सहिता 1908 (1908 का 5) के अन्तर्गत गठित सिविल न्यायालय की समान शक्तियाँ प्राप्त है ?

प्रश्न – 79 भारतीय प्रेस परिषद् द्वारा की गई जाँच न्यायिक जाँच है अथवा निष्पादक जाँच है ?

प्रश्न – 80 आप लोकसेवक से क्या समझते हैं। क्या प्रे पु अधि के तहत नियुक्त प्रेस रजिस्ट्रार और ऑफिसस तथा प्रेस परिषद् द्वारा नियुक्त भारतीय प्रेस परिषद् के सदस्य और ऑफिसस तथा अन्य कर्मचारी लोकसेवक हैं ?

समस्याएँ

1 'क' टक्एा का बाजारी नाम करने के लिए जयभारत टाइपिंग हाउस के नाम से एक दुकान खोलता है। उसके पास अपनी दुकान पर चालू हालत में एक साइक्लोस्टाइल मशीन भी है। वह साइक्लोस्टाइलिंग बाजारू काम के लिए उसको काम में लेने का आशय भी रखता है ? 'क' को एसी सलाह दीजिये की भविष्य म उसे किसी प्रकार की कानूनी परेशानी नहीं उठानी पड़े।

2 मुद्रण यन्त्र में मुद्रित पेम्फलेटस का एक बडल जिसकी सामग्री सूचनापरक है 'क' द्वारा अपने शहर के स्थानीय लोगो को बाँटी जाती है। इन पेम्फलेटस पर मुद्रक और प्रकाशक का नाम नहीं है। क्या 'क' ने कोई अपराध किया है। यदि ये पेम्फलेटस फोटोस्टेट प्रक्रिया द्वारा तयार होते तो क्या स्थिति बदल सकती थी। समझाइये ?

3 17 वर्ष और 11 माह की आयु में एक हिन्दी दैनिक का 'क' सम्पादक नियुक्त किया गया था। उस समय समाचारपत्र भारत के समाचारपत्रो के पजीयक के यहाँ भी पजीकृत था। उसने अपनी नियुक्ति के 7 दिनो के अन्दर अपना काय प्रारम्भ कर दिया। समझाये क्या 'क' के इस प्रकार सम्पादक बनने मे किसी प्रकार की रुकावट है ?

4 आर. एन आई से प्राधिकृत एक अफसर एक हिन्दी दनिक के दफ्तर से सूचनाएँ एकत्रित करता है। वह इन सूचनाओ को आर एन आई को प्रस्तुत करने से पूव इन सूचनाओ को प्रेस म प्रकाशनाथ भी भेज देता है। उसने कौनसा अपराध किया है। समझाइये ?

5 एक हिन्दी दनिक का एक प्रकाशक — "क" उसके क्षेत्र के जिला मजिस्ट्रेट द्वारा भेजा गया नोटिस प्राप्त करता है। जिसमे कहा गया है कि उसका सम्पादक 'ख" अपने सम्पादन सम्बन्धी घोषणा को प्रस्तुत किये बिना ही समाचारपत्र का सम्पादन कर रहा है अत क्यों नहीं 15 8 81 को पूव म प्रमाणित घोषणा को निरस्त कर दिया जावे। 'क' को सलाह दीजिए।

6 एक हिन्दी दैनिक का मुद्रक/प्रकाशक और सम्पादक – "क" अपने पत्र में एक समाचार प्रकाशित करता है जो कि स्थानीय सिविल और पुलिस प्रशासन की निगाह में "सफेद झूठ का पुलिन्दा है। इस समाचार से स्थानीय सरकारी अधिकारी बहुत परेशान होते हैं। स्थानीय क्षेत्र के उपखण्ड मजिस्ट्रेट इस समाचार के आधार पर 'क" का इस प्रकार का नोटिस भेजता है कि क्यों नही उसके समाचारपत्र की घोषणा निरस्त कर दी जानी चाहिए। 'क' को सलाह दीजिए।

7 एक समाचारपत्र का प्रकाशक स्थानीय क्षेत्र के उपखण्ड मजिस्ट्रेट द्वारा भेजे गये एक नोटिस को प्राप्त करता है जिसमें कहा गया है कि वह अपने समाचारपत्र के प्रत्येक अंक पर आर एन आई द्वारा प्रदत्त रजिस्ट्रेशन नम्बर को उद्धरित किये बिना अपना समाचारपत्र प्रकाशित कर रहा है क्यों नहीं उसके समाचारपत्र की घोषणा निरस्त कर दी जावे। 'क' को सलाह दीजिये।



सशोधन अधिनियम और अनुकूलन आदेशो की सूची

(प्रे पु अधि के सबध मे)

1 निरसन अधिनियम 1870 (1870 का 14)

2 प्रस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधि 1867 सशोधन अधिनियम 1890 (1890 का 10) देखिए धाराएँ 1 से 6

3 सशोधन अधि 1891 (1891 का 12) देखिए धारा 2 और अनुसूची II भाग 1

4 साधारण–परिभाषा अधिनियम 1897 (1897 का 10) देखिए धारा 3 (5)

5 भारतीय सक्षिप्त नाम अधिनियम 1897 (1897 का 14)

6 भारतीय प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम 1914 (1914 का 3) देखिए धारा 15 और अनुसूची II

7 निरसन और सशोधन अधि 1914 (1914 का 10) देखिए धारा 3 और अनुसूची II

8 निरसन और सशोधन अधि 1915 (1915 का 11) देखिए धारा 5 2 और अनुसूची I

9 प्रत्यमण अधिनियम 1920 (1920 का 38)

10 मुद्रण विधि निरसन व सशोधन अधि 1922 (1922 का 14) देखिए धाराएँ 3 व अनुसूची I 4 व अनुसूची I

11 *निरसन व सशोधन अधि 1923 (1923 का 11) देखिए धारा 2 व* अनुसूची I

12 भारत सरकार (भारतीय विधियो का अनुकूलन) आदेश 1937

13 भारतीय स्वतत्रता (केन्द्रीय अधिनियमो व अध्यादेशो का अनुकूलन) आदेश 1948

14 विधि आदेशो का अनुकूलन, 1950

15 निरसन व संशोधन अधिनियम 1950 (1950 का 35) धारा 3 व अनुसूची II

16 पार्ट बी स्टेट्स (विधि) अधि 1951 (1951 का 3) देखिए धारा 3 व अनुसूची I

17 प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) अधि 1951 (1951 का 56) 1 फरवरी, 1952 से प्रभावशील देखिए धारा 36

18 प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण (संशोधन) अधि 1955 (1955 का 55) 1-7-1956 से प्रभावशील। देखिए धाराएँ 2 से 9

19 प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण (संशोधन अधिनियम) 1960 (1960 का 26) 1 10 1960 से प्रभावशील। देखिए धाराएँ 2 से 10

20 1965 का 16वा अधि (1-11 1965 से प्रभावशील) देखिए धाराएँ 2 से 4

21 1968 का 30वा अधि देखिए धारा 2

22 दण्ड प्रक्रिया संहिता 1898 (1898 का 5) अब (1974 का 2)

23 प्रेस परिषद अधि 1978 (1978 का 37) देखिए धारा 27

केन्द्रीय नियमो को संशोधित करने वाले जी एस आर

1 जी एस आर 0016 दिनांक 4 फरवरी 1959

2 जी एस आर 0304 दिनांक 26 फरवरी 1959

3 जी एस आर 1059 दिनांक 29 ... 1959

4 जी एस आर 1222 दिनांक 5 व 6 ... 1960

5 जी एस आर 1809 दिनांक 11 ... 1963

6 जी एस आर 0723 दिनांक 17 ... 1963

7 जी एस आर 1687 दिनांक 17 ..., 1963

प्रे पु अधि पर वर्ष क्रम से तथा धारा क्रम से विधि प्रकरणो का देशना

(इन्डेक्स)

क स	वर्ष क्रम से प्रोद्धरण	चर्चित धारा (एँ)	धारा [redacted] से प्राद्धरण इस कॉलम मे धारा के नीचे लिखे प्रक कालम न 1 के क्रमों से तत्स्थानी हैं।
1	2	3	4
1	(1866) 9 मद्रास 387 (391) खण्ड पीठ	7	प्रस्तावना
2	(1887) इलाहाबाद वि नो 95 (जी)	3 12	55 56 57
3	(1889) पजाब री (क्री) न 9 पृष्ठ 49 (50)	3,4 5 1.	79 80
4	(1893) 16 मद्रास 443 (445 447)	3	धारा-1
5	(1896) 23 कलकत्ता 414 (415) ख पी	3	44,45
6	(1905) 2 क्री ला ज 31 (33)	7	60,61
7	(1905) पजाब री (क्री) न 1	7	67,68
8	(1908) क्री ला ज 10 (18) ख पी	7	100 101
9	(1908) क्री ला ज 438 (444) कलकत्ता	7	112,113
10	(1909) क्री ला जे 506 (513) ख पी मद्रास	7	114,115
11	(1909) 10 क्री ला ज 195 (198) लाहौर	3 12	116
12	1909 पुणे री (क्री) न 5	3 12	धारा-3
			2 3,4 5,11,12,13 15
			18 19,30 31,32 33 38,39

1	2	3	4
13	इस वेग 978 इ	3,4,5,12	42 43 46,47,52,56,57
14	(1911) 12 ग्रो ला ज 354 (354) स पी कलकत्ता	7	42,43,46,47,52,56 57
15	(1912) 13 ग्रो ला ज 139 (139) सं पी (बम्बई)	3	58 59 67,68,69,70 71 72,73,84,85,100 101 102,106,114,115,116
			धारा-4
16	मा 1918 लाहौर 302 (302)	6	
17	19 ग्रो ला ज 621 (न पी)	6	3,13,20 21 22,23
18	1920 1 पे बी 650	3,12	30,31 34,35 50,51
19	मा 1920 प्रि का 56	3,12	62,63,71,72,74 75
20	ए 1923 बम्बई 255 (258, 260)	4 7	77,78 79,80 83,102,106
21	25 ग्रो एल जे 150 (स पी)	4	92 103 110,111,112, 113 114
			धारा–5
22	ए 123 लाहौर 440 (440)	4,14	3 13,65,79,80,81,82,83, 84,85,92,103,110,111 112 113,114
23	24 नी एल ज 657	4,14	115 116
			धारा–6
24	ए 1927 इलाहाबाद 237 (237)	16	16,17,79,80,81,82,83
25	28 ग्रो एल ज 232	16	
26	ए 1929 कलकत्ता 635 (636)	12	

1	2	3	4
27	31 क्री एल ज 672	12	धारा-7
28	1931 लाहौर 182 (183)	07	
29	32 क्री एल जे 681	07	1,6,7 8,9,10,14 20,28, 29 40
30	ए 1931 पटना 351 (352)	3,4,12	41,48,49 53,54,64 66, 71,72
31	32 क्री एल जे 1063 (ल पी)	3,4 12	76,86 87,88,89 90,91, 95,96 97 98,99,112, 113,117 से 119
32	ए 1931 नागपुर 177 (178) (ससोधन के पूव का प्रकरण)	03	धारा-8 क
33	32 की एल जे 1266 (समोधन के पूव का प्रकरण)	03	112 113
34	ए 1931 प्रवध 81 (82)	04	
35	32 क्री एल जे 545	04	धारा-8(ख)
36	ए 1931 कलकत्ता 641 (642)	12	81,82 103 107 108, 109 110,111
37	33 क्री एल जे 91	12	धारा-8(ग)
38	ए 1933 रगून 4 (4)	3,12	
39	34 क्री एल जे 262	3 12	110 111
40	ए 1935 नागपुर 90 (104)	07	धारा-11(क)
41	36 क्री एल जे 744	07	

1	2	3	4
42	■ 1937 बम्बई 28 (30)	3,12	109
			धारा–12
43	38, क्री एल जे 145 (एं पी)	3,12	
44	ए 1940 पटना 613 (614)	19,16	
45	42 नी एल जे 78	1,9,16	■ 3,11,12,13,18,19,26, 27,30
46	ए 1943 लाहौर	3,12	31,36,37,38,39,42, 43,46
47	43 क्री एल जे 897	3,12	47,52,56,57,58,59,69,70
48	ए 1949 लाहौर 266 (270)	07	77,84,85,93,94,104,105
49	51 क्री एल ज 35 (पूरा पीठ)	07	106
			धारा–13
50	ए 1951 मद्रास 714 (714)	04	
51	52 क्री एल जे 713	04	106
			धारा–14
52	ए 1952 एल सी 369	3,12	22,23,107,108
			धारा–16
53	ए 1953 मद्रास 418 (419)	07	24,25 44,45,60,61,67, 68
54	1953 नी एल जे 763	07	
			धारा–16(क)
55	1955 मध्य भारत वी एल जे (एच सी आर) 392 (398, 399) एं पी	प्रस्तावना	
56	ए 1955 इलाहाबाद 524 (525)	प्रस्तावना 3,12	109

1	2	3	4
57	1955 क्री एल जे 1308 (ख पी)	प्रस्तावना 3 12	धारा–17
58	ए 1957 मद्रास 427 (429) 430	3 12	84,85
59	1957 1, मद्रास एल जे 136	3,12	
60	ए 1958 राजस्थान 350 (351)	1 9 16	धारा–19 घ
61	1958 क्री एल जे 1547	1,9 16	95 96,107 108
62	ए 1959 आन्ध्र 530 (532)	04	
63	1959 क्री एल जे 1141	04	धारा–21
64	ए 1959 राज 280 (286) ख पी	07	67 68,100,101
65	ए 1959 मद्रास 519 (521)	05	
66	ए 1959 केरल 120 (124) ख पी	07	
67	ए 1960 आन्ध्र 176 (177)	1 3 9,16 21	
68	1960 क्री एल जे 452	1 3,9 16 21	
69	ए 1960 इलाहाबाद 450 (452) (453)	3 12	
70	1960 क्री एल जे 1037	3 12	
71	ए 1960 उड़ीसा 126 (127, 128)	3 4 7	
72	1960 क्री एल जे 1116	3 4,7	
73	1962 (1) क्री एल जे 824 (826) मनीपुर	03	
74	ए 1962 एस सी 586 (588)	04	
75	1962 (1) क्री एल जे 518	04	

1	2	3	4
76	1962 (2) श्री एल जे 142 (केरल)	07	
77	ए 1964 गुजरात 278 (ग पी)	4,12	
78	(1964) 5 गुजरात एल आर 825 (ग पी)	04	
79	ए 1964 गुजरात 278 (280, 281)	प्रस्तावना 4,5 6	
80	(1965) 5 गुजरात एल आर 825	प्रस्तावना 4,5 6	
81	ए 1965 म प्र 128 (130)	5,6,8 ख	
82	1965 म प्र एल जे 227 (ग पी)	5 6,8 [illegible]	
83	(1966) मैसूर एल जे 592 598	4 5 6	
84	ए 1966 पंजाब 93 (95) 342 (343)	3,5,12,17	
85	1966 गो एल जे 292, 342	3 5 12,17	
86	ए 1968 एस सी 110 (111)	07	
87	1968 श्री एल ज 95	07	
88	ए 1968 कलकत्ता 296 (298)	07	
89	1968 श्री एल जे 759	07	
90	73 कलकत्ता " नू एन 1	07	
91	आई एन आर (1968) 18, राज 318	07	
92	(1969) 3 एस सी सी 595	05	
93	ए 1970 आसाम 128 (129)	12	
94	1970 श्री एल ज 1596 (पूर्णपीठ)	012	
95	ए 1971 एस सी 856 (859, 860)	7,19 घ	
96	(1971) 2 एस सी ज 465	7,19 घ	
97	1972 राज एल डब्ल 337	07	

1	2	3	4
98	1972 डब्लू एल एन 780 (ख पी)	07	
99	(1972) 49 आई एल आर 160 (167) उडीसा	07	
100	1973 इलाहाबाद क्री एल आर 475 (480, 481)	1 3 21	
101	1973 इलाहाबाद डब्लू आर (एस सी) 681, 685	1 3 21	
102	(1973) 2 मैसूर एल जे 553 (556)	3 4 12 13	
103	ए 1973 एस सी 213 (215)	5,8 ख	
104	1973 इलाहाबाद डब्लू आई (एच सी) 681	012	
105	1973 इलाहाबाद क्री आर 475 (479, 480, 481)	012	
106	आई एल आर (1974) केट 114	3 4 12 13	
107	(1974) 1 केन्ट एल ज 328	8ख 14 19घ	
108	1975 क्री एल जे 90 (93 95)	8ख,14,19घ	
109	1975 डब्लू एल एन (यू सी) 528 (530) राज	8ख,11क 16क	
110	1977 डब्लू एल एन 538, 540	5 8ख,8ग	
111	1978 राज एल डब्लू 17 (19)	5 8ख 8ग	
112	1978 केरल एल टी 38 (निरसित)	1,5 7 8क	
113	ए 1979 एस सी 154 (158 160, 162, 163)	1 5,7 8क	
114	ए 1983 बम्बई 190 (192) 201 (210 211)	1 3 5	
115	1983 टेक्स एल आर 2871 (पूण पी)	1 3 5	
116	1983 लाहौर आई सी 789 (ख पी)	1,3,5	
117	1983 क्री एल जे 777 (781)	07	
118	1983 राजधानी एल आर 581 (देहली)	07	
119	ए 1987 पजाब व हरियाणा 5	07	

प्रेस परिषद् (संशोधन) नियम 1988

भारत सरकार

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय

नई दिल्ली, मार्च 14, 1988

अधिसूचना

केन्द्रीय सरकार ने प्रेस परिषद् अधिनियम 1978 (1978 का 37) की धारा 25 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रेस परिषद् नियम (संशोधन) 1981 में निम्नलिखित संशोधन करती है अर्थात्

1 (i) इन नियमों का नाम प्रेस परिषद् (संशोधन) नियम 1988 होगा।

(ii) यह सरकारी राजपत्र में प्रकाशन की तिथि से प्रवृत्त होंगे।

2 प्रेस परिषद् नियम 1979 के नियम 10 (i) के खण्ड (क) से (घ) तक तथा तदधीन स्पष्टीकरण के निम्नलिखित प्रतिस्थापित किए जायेंगे अर्थात्

(क) 1,50 000 से अधिक परिसंचरण संख्या वाले पंजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकाएं

(i) प्रत्येक दैनिक से 7 500 रु प्रतिवर्ष

(ii) प्रत्येक द्वि-साप्ताहिक/साप्ताहिक से 4,500 रु प्रतिवर्ष

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक से 3 500 रु प्रतिवर्ष

(iv) अन्य सभी श्रेणियों से 2 250 रु प्रति वर्ष

(ख) 1,00,000 से अधिक तथा 1,50,000 तक परिसंचरण संख्या वाले पंजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकाएं

(i) प्रत्येक दैनिक से 5 250 रु प्रतिवर्ष

(ii) प्रत्येक द्वि-साप्ताहिक/साप्ताहिक से 3 000 रु प्रतिवर्ष

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक से 2 250 रु प्रतिवर्ष

(iv) अन्य सभी श्रेणियों से 1,500 रु प्रतिवर्ष

(ग) 50,000 से अधिक तथा 1,00,000 तक परिसचरण सख्या वाले पजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकाएँ

(i) प्रत्येक दनिक से 3,750 रु प्रतिवष

(ii) प्रत्येक द्वि-साप्ताहिक/साप्ताहिक से 2,250 रु प्रतिवष

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक से 1,500 रु प्रतिवष

(iv) अन्य सभी श्रेणियो स 1 125 रु प्रतिवष

(घ) 15,000 से अधिक तथा 50,000 तक परिसचरण सख्या वाले पजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकाएँ

(i) प्रत्येक दनिक से 1 500 रु प्रतिवष

(ii) प्रत्येक द्वि-साप्ताहिक/साप्ताहिक से 900 रु प्रतिवष

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक से 600 रु प्रतिवष

(iv) अन्य सभी श्रेणियो से 450 रु प्रतिवष

(ङ) 5,000 से अधिक तथा 15,000 तक परिसचरण सख्या वाले पजीकृत समाचारपत्र तथा पत्रिकाएँ

(i) प्रत्येक दनिक से 200 रु प्रतिवष

(ii) प्रत्येक द्वि साप्ताहिक/साप्ताहिक से 150 रु प्रतिवष

(iii) प्रत्येक पाक्षिक/मासिक स 100 रु प्रतिवष

(iv) अन्य सभी श्रेणियो स 100 रु प्रतिवष

(च) प्रथम श्रेणी मे प्रत्यक समाचार अभिकरण से 7,500 रु प्रतिवष

(छ) द्वितीय श्रेणी के प्रत्येक समाचार अभिकरण स 5,250 रु प्रतिवष

(ज) अन्य सभी समाचार अभिकरणो स 3,750 रु प्रतिवष

स्पष्टीकरण – इस नियम के उद्देश्य स्वरूप पजीकृत समाचारपत्रो तथा पत्रिकाओ की वितरण सख्या भारतीय समाचारपत्रों के पजीयक द्वारा उपलब्ध नवीनतम वितरण सख्या तथा श्रमजीवी पत्रकारो व वेतनबोड की रिपोट मे साकेतित समाचार अभिकरणो के वर्गीकरण के लक्षण के अनुसार निर्धारित होगी ।

ह

फाइल न 4 1 87 – प्रेस　　　　के एस वड्दवान

भारत सरकार के सयुक्त सचिव

लोकसभा में प्रस्तुत प्रेस एण्ड रेगुलेशन ऑफ बुक्स (संशोधन विधेयक) 1988

गत 24 नवम्बर 1988 को भारत सरकार के सूचना व प्रसारण मन्त्रालय ने प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867 में संशोधन हेतु प्रेस एण्ड रेगुलेशन ऑफ बुक्स नाम का एक संशोधन बिल लोकसभा में प्रस्तुत किया जिसे अभी तक (जुलाई 1989) तो लोकसभा की विचारार्थ कार्यसूची में लिया भी नहीं गया है इस बिल का प्रेस जगत में यह कहकर भारी विरोध हो रहा है कि यह प्रेस की स्वतन्त्रता पर आघात है। लगता है सरकार को अन्ततोगत्वा इस बिल को वापिस लेना होगा अथवा विवादास्पद अंशों को इस बिल से निकालना होगा।

इस संशोधन बिल के उद्देश्यों व कारणों में बताया गया है कि दूसरे प्रेस आयोग ने 1982 में अपनी रपट में इस अधिनियम को संशोधित करने के लिए कई सिफारिशें की थी तथा कार्मिक व जन अभियोग विभाग ने भी भारत के समाचारपत्रों के पंजीयन द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया पर गहन अध्ययन किया तथा कई सिफारिशें विशेषकर समाचारपत्रों के संबंध में की। सन् 1985 में राज्यों के सूचना मंत्रियों के सम्मेलन में भी इस अधिनियम में संशोधन हेतु कुछ सुझाव दिये गये थे।

नये संशोधन बिल को लाने के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी बताया गया है कि समाचारपत्र व पत्रिकाओं के करीब एक लाख अस्सी हजार शीर्षक रुके पड़े हैं जिनको मुक्त करना आवश्यक है ताकि न केवल प्रकाशकों को शीर्षक निष्कासन के मामले में विस्तृत क्षेत्र मिले बल्कि प्रेस रजिस्ट्रार भी शीर्षक निष्कासन हेतु प्राप्त आवेदनों को शीघ्रता से निबटा सके। अतः इस विषय पर प्राप्त सुझावों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने इस अधिनियम के विस्तृत पुनरीक्षण विशेषकर समाचारपत्रों के प्रकाशन के संबंध में करने का काम हाथ में लिया।

वतमान अधिनियम व लोकसभा मे प्रस्तुत सशोधन विधेयक मे अन्तर

वतमान अधिनियम	प्रस्तावित सशोधन बिल
शीषक निष्कासन	
1 शीषक निष्कासन क सबध म कोई नियम नहीं दिए गए हैं। केवल धारा 6 जो समाचारपत्र को शुरू करने की घोषणा के प्रमाणीकरण क सबध म है म कहा गया है कि धारा 5 (समाचार पत्रो के प्रकाशन सबधी नियम) के तहत प्रस्तुत व हस्ताक्षरित घोषणा पत्र का क्षेत्राधिकार प्राप्त मजिस्ट्रेट जब तक प्रमाणित नही करेगा जब तक कि वह प्रेस रजिस्ट्रार से जाच करने पर सतुष्ट न हो जाए कि प्रस्तावित समाचार पत्र का नाम या तो वही या वसा ही नही है जो कि या तो उसी भाषा मे या उसी राज्य म प्रकाशित किसी अन्य समाचार पत्र का है (नय सस्करण के मामले म जब स्वामी एक ही हो को छोडकर)	दनिक समाचार-पत्र/नियतकालिक पत्रिका को मुद्रित/प्रकाशित कराने का इच्छुक व्यक्ति प्रेस रजिस्ट्रार के यहां निर्धारित प्रपत्र मे एक आवेदन पत्र भेजेगा जिसम वह प्रस्तावित दनिक समाचारपत्र/नियतकालिक पत्रिका के तीन शीषक वरीयता क्रम म वकल्पिकता दर्शाते हुए वर्णित करेगा और प्रेस रजिस्ट्रार से यह प्रमाण पत्र मागेगा कि आवेदन-पत्र मे वर्णित शीषको म से अमुक शीषक या तो वही या वसा ही नहीं है जो कि या तो उसी भाषा मे या उसी राज्य मे प्रकाशित अन्य दनिक समाचार पत्र/नियतकालिक पत्रिका का है।
प्राय यह एक कानूनी परम्परा बन गयी है कि मजिस्ट्रट के जरिए शीषक निष्कासन के सबध में प्रेस रजिस्ट्रार को आवेदन किया जाता है व प्रेस रजिस्ट्रार क यहां स कोई शीषक आबटित हो जाने के बाद समाचारपत्र को शुरू करने का घोषणा पत्र प्रस्तुत कर दिया जाता है।	शीषक निष्कासन के सबध म निर्धारित आवेदन पत्र प्राप्त होने पर प्रस रजिस्ट्रार अपने यहां रखे रिकाड से सतुष्ट होने के बाद आवेदक द्वारा माग गए उक्त प्रमाण-पत्र को दो परतो म जारी करेगा व आवेदन पत्र मे वर्णित वरीयताक्रम मे लिखे गए शीषको मे से एक को आवटित करेगा। ऐसा सतुष्ट न होने पर प्रेस रजिस्ट्रार ऐसा प्रमाण पत्र जारी करने से मना कर देगा व उक्त तथ्यो से आवेदक को अवगत करायगा।

2 अप्रकाशन के जो शीर्षक वश घोषणा बने रहने से रुक गये हैं वे रुके ही पड़े हैं जिनको दूसरे आवेदकों को नहीं दिया जा सकता।

2 ऐसे शीर्षक दूसरे आवेदकों को उनके चाहने पर मिल सकेंगे। शीर्षक का पूर्व मालिक उस अवधि के लिए जिसके दौरान वह शीर्षक पर अपना दायित्व रखता था यदि कोई कानूनी दायित्व पड़ा हुआ तो वही उसके लिए उत्तरदायी होगा।

समाचारपत्र/पत्रिका शुरू करने के पूर्व की घोषणा

1 किसी भी प्रस्तावित समाचार पत्र/नियतकालिक पत्रिका का घोषणा पत्र प्रेस रजिस्ट्रार से शीर्षक निष्कासन के प्रमाण-पत्र के बिना भी पेश किया जा सकता है लेकिन इसमें यही खतरा है कि मजिस्ट्रेट द्वारा प्रेस रजिस्ट्रार से जांच करने के बाद यह संभव है कि वहां से यह लिखा आवे कि प्रस्तुत घोषणा-पत्र में दिया गया शीर्षक या तो वही या वैसा ही है जो कि या तो उसी भाषा में या उसी राज्य में प्रकाशित किसी अन्य समाचारपत्र का है।

1 प्रस्तावित दैनिक समाचारपत्र/नियतकालिक पत्रिका को शुरू करने के आशयित घोषणा-पत्र को संबंधित मुद्रक/प्रकाशक जिला/उपखंड/मेट्रोपालिटन मजिस्ट्रेट के यहां अपनी ओर से इस आशय की एक लिखित घोषणा के साथ पेश करेगा कि प्रस्तावित शीर्षक प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा सत्यापित किया जा चुका है। वह साथ में प्रेस रजिस्ट्रार द्वारा जारी मूल प्रमाण-पत्र भी नत्थी करेगा।

2 इस तरह का दायित्व मुद्रक/प्रकाशक पर नहीं है बल्कि मजिस्ट्रेट पर है जिसमें भी कोई समयावधि नहीं है।

2 दैनिक समाचारपत्र/नियतकालिक पत्रिका को शुरू करने के आशयित घोषणापत्र के प्रस्तुत करने तथा हस्ताक्षरित करने तथा भेजे जाने के 10 दिन के भीतर भीतर मुद्रक/प्रकाशक ऐसी घोषणा की तथा संबंधित दस्तावेजों की प्रत्येक प्रति प्रेस रजिस्ट्रार को भेजेगा।

3 चूंकि घोषणा-पत्र के पूर्व प्रेस रजिस्ट्रार से शीर्षक निष्कासन का प्रमाण-पत्र जरूरी नहीं है अतः वर्णित स्थिति में इसके प्रभावहीन होने का सवाल ही नहीं उठता।

3 शीर्षक निष्कासन के प्रमाण पत्र जारी होने के तीन महीनों के अन्दर अन्दर मुद्रक/प्रकाशक प्रस्तावित दैनिक समाचारपत्र/नियतकालिक पत्रिका का घोषणा-पत्र प्रस्तुत नहीं करे तो ऐसा प्रमाण-पत्र प्रभावहीन हो जायेगा।

4 किसी भी समाचारपत्र/नियत कालिक पत्रिका के मुद्रण/प्रकाशन को शुरू करने के पूर्व मुद्रक/प्रकाशक द्वारा मजिस्ट्रेट के यहाँ शुरूआती घोषणा-पत्र प्रस्तुत करना व हस्ताक्षरित करना तथा उसे मजिस्ट्रेट से प्रमाणित करवाना पूर्व शर्त है।

4 प्रेस रजिस्ट्रार से शीर्षक निष्कासन का प्रमाण-पत्र मिल जाने के तत्काल बाद से ही प्रकाशक/मुद्रक प्रस्तावित दैनिक समाचार-पत्र/नियत कालिक पत्रिका का मुद्रण/प्रकाशन प्रारम्भ कर सकता है बशर्ते वह इनके प्रारम्भ हो जाने के एक माह के अन्दर अन्दर क्षेत्राधिकार प्राप्त मजिस्ट्रेट के यहाँ शुरूआती घोषणा-पत्र प्रस्तुत करे तथा हस्ताक्षरित करे या भेजे।

घोषणा पत्र का निरस्तीकरण

किसी समाचारपत्र/नियतकालिक पत्रिका के प्रकाशित अंकों की संख्या को आधार बनाकर उसके घोषणा पत्र को निरस्त करने के संबंध में सीधा कोई आधार धारा 8(ख) में नहीं है। यद्यपि प्रकाशित अंकों की संख्या के आधार पर घोषणा पत्र निरस्त किया जा सकता है लेकिन वह धारा 8(ग)(।) में वर्णित यह प्रावधान कि जिस समाचार पत्र के संबंध में घोषणा की गई है वह समाचार पत्र इस अधि के प्रावधानों या इसके तहत बने नियमों के उल्लंघन में तो प्रकाशित नहीं हो रहा है की व्याख्या के तहत।

क्षेत्राधिकार प्राप्त मजिस्ट्रेट किसी दैनिक समाचारपत्र के घोषणा पत्र को इस आधार पर निरस्त कर सकता है कि उसके कलेण्डर वर्ष की किसी तिमाही में कम से कम 78 अंक भी प्रकाशित नहीं हुए। किसी नियत कालिक पत्रिका के घोषणा पत्र को इस आधार पर निरस्त किया जा सकता है कि उसका अगला अंक पिछले अंक के बाद तीन माह के अन्दर अन्दर प्रकाशित नहीं किया गया।

धारा 5(6) में कोई दैनिक/त्रिसाप्ताहिक/द्विसाप्ताहिक/साप्ताहिक/पाक्षिक कलेण्डर वर्ष की किसी तिमाही में अपने प्रकाश्य अंकों से आधे से भी कम में प्रकाशित हुआ हो और इनके अलावा दूसरे समाचारपत्र का प्रकाशन बारह महीने की अवधि से अधिक अवधि तक रुका पड़ा हो तो इनका तत्संबंधी घोषणा पत्र अवैध हो जाता है। यदि इस संबंध में दूसरा घोषणा-पत्र प्रमाणित नहीं कराया गया है तो इनका पूर्व का घोषणा पत्र निरस्त किया जा सकता है।

मुद्रक/प्रकाशक की उक्त प्रकार की चूक यदि हड़ताल, तालाबन्दी धीमा चलो विद्युत किल्लत या अन्य कारण जो उसके नियन्त्रण से बाहर रहे हो जन्य हों तो ऐसी दशा में घोषणा-पत्र निरस्त नहीं किया जा सकता।

परिभाषाएँ

1 'समाचारपत्र की परिभाषा में बताया गया है कि कोई भी मुद्रित नियत कालिक रचना जिसमे सावजनिक समाचार अथवा सावजनिक समाचारों पर टिप्पणियाँ शामिल हो, समाचारपत्र है।	1 'समाचारपत्र' की वतमान परिभाषा को लोप करके एक नई परिभाषा यो दी गई है— दनिक समाचारपत्र' से तात्पय कोई भी दैनिक अवधि की मुद्रित रचना जो एक सप्ताह मे कम से कम 6 दिन प्रकाशित होती है जिसमे सावजनिक समाचार या सावजनिक टिप्पणी हो, ऐसे समाचारपत्र मे कोई भी पूरक या विशेष सस्करण भी शामिल है।
2 'नियतकालिक पत्रिका' की अलग से कोई परिभाषा नही दी गई है।	2 'नियतकालिक पत्रिका' की परिभाषा या दी गई है— नियतकालिक पत्रिका' से तात्पय एक दनिक समाचारपत्र को छोडकर किसी भी अवधि की किसी भी मुद्रित रचना से है जिसमे सावजनिक समाचार या सावजनिक समाचारो पर टिप्पणी हो भी सकती है या नही भी। ऐसी नियतकालिक पत्रिका मे कोई भी पूरक या विशेष सस्करण भी शामिल है।
3	3 प्रेस रजिस्ट्रार' की परिभाषा मे रजिस्ट्रार आफ न्यूजपेपस फार इण्डिया शब्दा के स्थान पर प्रस रजिस्ट्रार शब्द शामिल होग।

रजिस्टर

प्रेस रजिस्ट्रार के यहाँ एक ही रजिस्टर रखने का प्रावधान है जिसमे दैनिक समाचारपत्रो व नियतकालिक पत्रिकाओ का विवरण दज होता है।	इस आशय हेतु अब दनिक समाचारपत्रो व नियतकालिक पत्रिकाओ के अलग अलग दो रजिस्टर रखने होंगे।

शक्तियां

1

1 धारा 20(क) के तहत केन्द्र सरकार को निम्न विषयों पर भी नियम बनाने की शक्तियां दी गई हैं –

(i) शीर्षक निष्कासन के आवेदन प्रपत्र का प्रारूप कैसा हो।

(ii) दैनिक समाचारपत्र/नियत कालिक पत्रिकाओं के संबंध में उन तकनीकी व आर्थिक विवरणों का निर्धारण करना जिन्हें अपने पास रखे रजिस्टर में प्रेस रजिस्ट्रार को दर्ज करके रखना होता है।

(iii) शीर्षक निष्कासन के संबंध में प्रेस रजिस्ट्रार को भेजे जाने वाला आवेदन-पत्र कैसा हो व यह किस तरह भेजा जाएगा।

2 दोषी समाचारपत्रों पर जुर्माना लगाने की शक्तियां क्षेत्राधिकार प्राप्त जिला/उपखंड/मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट को है।

2 अब ये शक्तियां प्रेस रजिस्ट्रार को हस्तांतरित की जा रही हैं।

3 समाचारपत्रों के प्रसार को जांचने की शक्तियां भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक को है।

3 अब ये शक्तियां जिला मजिस्ट्रेट को दी जा रही हैं।

4 इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने का प्रावधान नहीं है।

4 भारत के समाचारपत्रों के पंजीयक समाचारपत्रों के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की शक्तियां होंगी जिनमें शामिल होंगी – रोजगार में लगे व्यक्तियों के बारे में आंकड़े, उपयोग में आ रही मशीनों में लगी पूंजी व अन्य तकनीकी आंकड़े।

मुद्रक/प्रकाशक नहीं रहने पर

वे व्यक्ति जो घोषणा प्रस्तुत व हस्ताक्षरित करने के बाद मुद्रक/प्रकाशक नहीं रहे उनको इस आशय की घोषणा पेश करने के लिए क्षेत्राधिकार प्राप्त जिला/उपखंड/मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट के सामने स्वयं उपस्थित होना पड़ता है।

ऐसे व्यक्ति स्वयं उपस्थित न रहकर अपने किसी एजेन्ट को प्राधिकृत करके भी नयी घोषणा प्रस्तुत करवा सकते हैं।

भारत में प्रेस से संबंधित कानून कैसा हो

इस समय प्रेस से संबंधित भारतीय कानूनो मे प्रथम महत्व का अधिनियम—"प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1867" ही है। 1867 के बाद इस अधिनियम मे इतने संशोधन हो चुके हैं कि यह अधि 1867 के मूल अधि से बिलकुल बदल गया है। इसके बावजूद भी इस अधि मे कुछ संशोधन अपेक्षित हैं।

जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि भारत म प्रेस से संबंधित कानून कैसा हो तो विषय विस्तार कि दृष्टि स हमारे सामने तीन तरह के प्रस्ताव उभर कर आते हैं—

(i) प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधि 1867 मे ही आवश्यक संशोधन करना अथवा

(ii) सम्पूर्ण प्रिंटमीडिया (मुद्रण माध्यम) पर एक नीति निर्माण करके प्रिंट-मीडिया के संबंध में एक नया अधिनियम या संहिता बनाना अथवा

(iii) सम्पूर्ण प्रेस जिसमे दूरदर्शन व आकाशवाणी का मीडिया भी शामिल हो, पर एक वृहद नीति बनाई जाकर नए सिरे से भारतीय प्रेस संहिता नाम का एक नया अधिनियम बनाना

तीनों प्रस्तावों में स तीसरा प्रस्ताव ही निष्पक्षता की दृष्टि स एक श्रेष्ठ प्रस्ताव कहा जा सकता है। तीनो प्रस्तावो पर अलग अलग प्रकाश डाला जा रहा है।

प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधि

(i) इस अधि मे 'मुद्रण' की परिभाषा मुद्रण की मौजूदा उन्नत तकनीको को अपने आप म शामिल नहीं करती है जैसे—मुद्रण की मौजूदा परिभाषा मे सिर्फ साइक्लोस्टाइलिंग और लीथोग्राफी को ही शामिल किया गया है। आज मुद्रण की उन्नत तकनीकें—फोटोस्टेट प्रिंटिंग व लेजर प्रिंटिंग (डेस्कटाप पब्लिशिंग) आदि कई तकनीकें विकसित हो गई हैं। अत मुद्रण की ऐसी परिभाषा दी जानी चाहिए जिनमे ये सब शामिल तो हो ही भविष्य म अन्य प्रकार की आने वाली उन्नत तकनीकें भी इसकी परि

हो सकें। मुद्रण की नई परिभाषा मे अन्य शब्दों के साथ-साथ निम्न शब्दो के प्रयोग से इस आशय की पूर्ति हो सकती है —

किसी भी यांत्रिक उपकरण से एक ही समान प्रक्रिया के माध्यम से जिसके उत्पाद की प्रत्येक प्रति एक दूसरी प्रति से शब्दो/अंकों/चित्रो आदि की दृष्टि से हू बहू मिलती हो, मुद्रण है।

(ii) *'संपादक' की परिभाषा मे 'व्यक्ति' शब्द के आ जाने से इसके आशय को* स्पष्ट करने के लिए भा द स मे 'व्यक्ति' की दी गई परिभाषा का सहारा लेना पडता है जिसके कारण कोई भी कम्पनी, संघ या व्यक्तियों का कोई मण्डल चाहे निगमित हो या नही संपादक हो सकता है। अतः इसको नई परिभाषा के जरिए स्पष्ट करना चाहिए। मौजूदा परिभाषा के रहते दावो की बहुतायत बढती है तथा जिम्मेदारी तय करने मे अनिश्चितता पैदा होती है।

(iii) अब तक हुए न्यायिक निर्णयों के अनुसार 'डीलर के लिए आमन्त्रण पत्र' और 'विजिटिंग कार्ड' को भी पत्र माना गया है। धारा 3 के अनुसार इन पर प्रेस लाइन छापना आवश्यक है अन्यथा दण्डनीय है। यद्यपि राज्य सरकारों *को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी विशेष प्रकार की पुस्तकों या* पत्रों को इस अधि के सम्पूर्ण भाग या इसके किसी भाग या भागो के प्रवर्तनो से अपवर्जित कर सकती है। यहाँ देखने की बात यह है कि जिन राज्यो मे ऐसा अपवर्जन नही किया गया है, क्या वहाँ की जनता के लिए यह असुविधाजनक नही है।

जिन असुविधाओ को अ भा स्तर पर ही महसूस किया जा सकता है उनके संबंध में राज्य सरकारों पर छोडने से क्या लाभ।

(iv) लोकसभा मे प्रस्तुत संशोधन बिल मे दैनिक समाचारपत्र और 'नियतकालिक पत्रिका' की जो अलग अलग परिभाषाएं दी गई हैं, वे स्तुत्य हैं।

(v) समाचारपत्रो की विषयवस्तु की गुणात्मक बढोतरी के लिए सम्पादक की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता व न्यूनतम आयु (जो कम से कम 25 वर्ष हो) के प्रावधान पर विचार किया जा सकता है।

(vi) लोकसभा मे प्रस्तुत संशोधन बिल मे शीर्षक निष्कासन के संबंध मे जो प्रावधान रखे गये हैं वे स्तुत्य हैं।

(vii) *लोकसभा मे प्रस्तुत संशोधन बिल में जो यह प्रावधान रखा गया है कि प्रेस* रजिस्ट्रार से शीर्षक निष्कासन का प्रमाण-पत्र मिल जाने के तत्काल बाद

से ही प्रकाशक/मुद्रक प्रस्तावित दैनिक समाचारपत्र/नियतकालिक पत्रिका का मुद्रण/प्रकाशन कर सकता है बशर्ते ऐसा होने के बाद एक महीने के अन्दर वह मजिस्ट्रेट के यहाँ शुरूआती घोषणा पत्र प्रस्तुत कर दे।

इस प्रकार के प्रावधान से जुम्मेवारी कायम करने मे कानूनी अड़चनें आएगी। इससे तो 'घोषणा के प्रमाणीकरण' के पीछे जो आशय छिपा है वही फौत हो जायेगा। यह प्रावधान तो 'बन्दूक रखने के लाइसेन्स' के देने के पूर्व ही बन्दूक रखने के लाइसेन्स के आवेदन-पत्र देते ही बन्दूक चलाने की छूट देना जैसा है।

(VIII) लोकसभा मे प्रस्तुत संशोधन बिल म प्रेस रजिस्ट्रार को समाचारपत्रो के संबध मे रोजगार में लगे व्यक्तियो के बारे मे आकडे, उपयोग मे आ रही मशीनो मे लगी पूजी व अन्य तकनीकी आकडो के बारे म विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की शक्तियां देना अनुचित है। तत्कालीन मध्य भारत उच्च न्यायालय की सपी ने प्रेस और पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधि को मुद्रणयत्रों व समाचारपत्रो के नियमन के लिए बताया है न कि इनके नियत्रण के लिए (1955 मध्य भारत बी एल जे (एल सी) (392) उक्त प्रावधान माननीय उच्च न्यायालय के निर्णय की भावनाओ के विपरीत जाता है।

(IX) समाचारपत्रों के प्रसार की जाँच की शक्तियां प्रेस रजिस्ट्रार से जिला मजिस्ट्रेट को देना इसलिए उचित प्रतीत नही होती क्योंकि ऐसा होने से समाचारपत्र जिला प्रशासन के दबाव म रहेंगे जिसका परिणाम यह होगा कि समाचारपत्र जिला प्रशासन की खामियो को खुलकर उजागर नही कर सकेंगे।

(X) इस अधि के तहत प्रस्तुत किये जाने वाले अभियोजन व कार्यवाहियो की समय सीमा के संबध मे भी प्रावधान रखे जाने चाहिए।

(XI) लोकसभा मे प्रस्तुत संशोधन बिल म दोषी समाचारपत्रो पर जुर्माना लगाने की शक्तियाँ प्रेस रजिस्ट्रार को हस्तान्तरित करने से जहाँ कई कानूनी अड़चनें पैदा होंगी वहाँ शासन का अप्रत्यक्ष रूप से समाचारपत्रो पर अंकुश बढेगा। जुर्माना व सजा देने के अधिकार तो न्यायालयो को ही रहने चाहिए। मौजूदा अधि म ये अधिकार जिला/मैट्रोपोलिटन/उपखण्ड मजिस्ट्रेट को मिले हुए हैं जो जिला सत्र न्यायाधीश को मिलने चाहिए। जिला/मैट्रोपालिटन/उपखण्ड मजिस्ट्रेट तो केवल घोषणा-पत्रों को प्रमाणित

प्रिन्टमीडिया पर ग्रधि या सहिता

प्रेस ग्रौर पुस्तक रजिस्ट्रीकरण ग्रधि 1867 के साथ-साथ कई ग्रधिनियमों म प्रेस विशयकर प्रिन्टमीडिया म सबधित कई प्रावधान देखने को मिलते हैं, जसे न्यायालय ग्रवमान ग्रधि 1971 कापीराइट एक्ट 1957 भारतीय दड सहिता 1860, दण्ड प्रक्रिया सहिता 1973 पुस्तक व समाचारपत्र परिदान (सावजनिक पुस्तकालय ग्रधि 1954 ग्रौषधि व चमत्कारी उपचार (ग्राक्षेपणीय विज्ञापन) ग्रधि 1954, भारतीय डाकघर ग्रधि 1898 भारतीय तार ग्रधि 1885, शासकीय गुप्त बात ग्रधि 1923 ससदीय कायवाही (प्रकाशन सरक्षण) ग्रधि 1977 पुरस्कार प्रतियोगिता ग्रधि 1955, ग्रल्पवय व्यक्ति (ग्रपहानिकर प्रकाशन) ग्रधि 1956 व प्रेस परिषद् ग्रधि 1978 ग्रादि ग्रादि।

कितना ग्रच्छा हो, ऐसे सभी ग्रधिनियमो के प्रेस सबधी प्रावधानो को एक जगह सहितावद्ध कर दिया जाय। प्रिन्टमीडिया ग्रधि या सहिता बनाते समय निम्न बातो का ध्यान रखा जाय —

(i) उच्चतम न्यायालय व विभिन्न उच्च न्यायालयो द्वारा ग्रब तक किये गये निर्णयों को ध्यान मे रखकर ग्रावश्यक ससोधन किये जायें।

(ii) इस सहिता म प्रक्रियात्मक विधि का भी विस्तार से उल्लेख हो ताकि नियम व उपनियम बनाने की कम स कम ग्रावश्यकता पडे।

(iii) चूकि प्रेस को विश्वस्तर पर लोकतत्र का 'चतुथ स्तम्भ' स्वीकार कर लिया गया है ग्रत विशेषरूप से यह ध्यान रखा जाय कि कोई भी इस कानून का दुरुपयोग न कर सके।

(iv) इस नयी सहिता के उद्देश्यो के पालनाथ तीन तरह के सगठन ग्रपेक्षित होगे।

(क) प्रेस रजिस्ट्रार ग्रथवा प्रिन्टमीडिया रजिस्ट्रार जसा सगठन जो समाचारपत्रो के पजीयन के साथ साथ इनकी नियमितता पर भी चौकसी रख।

(ख) प्रेस परिषद् ग्रथवा प्रिन्टमीडिया परिषद् जसा सगठन जो समाचार पत्रो के मानदण्डो को बनाये रख।

(ग) न्यायालय व ग्रद्ध यायालय जसा सगठन जो इस सहिता के प्रावधानो का उल्लघन करने वालो को दण्डित करे।

प्रेस परिषद् जैसे मौजूदा सगठन को ग्रौर ग्रधिक प्रभावी न्यायिक शक्तियाँ दकर ख ग्रौर 'ग मे वर्णित उद्देश्यो की पूर्ति की जा सकती है।

यदि इस तरह की व्यापक प्रिंटमीडिया संहिता नहीं बनाई जाय तो कम से कम प्रेस व पुस्तक रजिस्ट्रीकरण अधि 1867 व प्रेस परिषद् अधि 1978 को मिलाकर एक नया अधि बनाया जाय जिसमें प्रेस रजिस्ट्रार को समाचारपत्रों के पंजीयन व नियमितता देखते रहने का काम तथा प्रेस परिषद् को समाचारपत्रों के मानदण्डों को बनाये रखने का काम यथावत रखा जाय। यह इसलिए भी जरूरी है कि जहाँ प्रे पु अधि संख्यात्मक बढ़ोतरी को प्रोत्साहित करता है वहाँ प्रे प अधि गुणात्मक बढ़ोतरी को प्रोत्साहित करता है। इन दोनों के एक किये जाने से उच्छृंखल पत्रकारिता पर अंकुश लगाने में और अधिक प्रभावी सहायता मिल सकेगी। यों भी समाचारपत्रों/पत्रिकाओं की स्थापना से संबंधित कानूनी जानकारी देने वाले अधि में ही इनसे अपेक्षा किये जाने वाले आचार विचार से संबंधित कानूनी जानकारी वाले प्रावधान भी उसी अधि में होने चाहिए, अलग क्यों ?

(v) द प्र सं में इस आशय का संशोधन किया जावे कि समाचारपत्रों/पत्रिकाओं में प्रकाशित किसी मानहानियुक्त सामग्री से पीड़ित व्यक्ति प्रेस परिषद् अथवा प्रिंटमीडिया परिषद् में परिवाद दर्ज कराये तो परिवाद दर्ज की तिथि से परिषद् के निर्णय की तिथि तक के समय को देरी-दा नहीं माना जाय। इससे यह लाभ होगा कि अदालतों की लम्बी व खर्चीली प्रक्रिया से पीड़ित व्यक्ति पहले प्रेस परिषद् में पुकारेगा। बहुधा देखा गया है कि मानहानियुक्त सामग्री से पीड़ित व्यक्तियों में अधिकांश का यही रुख रहता है कि परिवादी की शिकायत को सही मान कर मुलजिम की निन्दा कर दी जाय। उसे मुलजिम को सजा या जुर्माना कराने में अधिक रुचि नहीं रहती क्योंकि वह यह भी जानता है कि मुलजिम को सजा या जुर्माना कराने से आगे अपीलों पर अपीलें होंगी जिसमें वर्षों लग जायेंगे। ऐसा व्यक्ति अपने अहम् की तुष्टि के लिए सिर्फ यही चाहता है कि मुलजिम की निन्दा कर दी जाय और यह काय प्रेस परिषद् या प्रिंटमीडिया परिषद् बखूबी कर सकती है। इस प्रावधान का विस्तार प्रिंटमीडिया अधि / संहिता बनने पर समाचारपत्र/पत्रिकाओं के साथ-साथ प्रिंटमीडिया के अन्य रूपों, जैसे — पुस्तकों, हैण्ड बिल्स आदि में प्रकाशित सामग्री तक भी किया जा सकता है।

सम्पूर्ण प्रेस पर संहिता

भारत में प्रेस की स्वतंत्रता को पूर्णता व स्थायित्व देने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। सबसे पहला काम अमेरिकन संविधान की तरह भारतीय संविधान में भी 'प्रेस की स्वतंत्रता' विषयक अलग से एक अध्याय रखा

यह सविधान प्रदत्त व्यवस्था इस रूप मे होनी चाहिए कि कोई भी सरकार इसमें सशोधन करके प्रेस की आजादी पर अकुश लगाने म अपने आपको असमथ पाये।

सूचना प्राप्त करने के अधिकार के बिना प्रेस की स्वतत्रता पूण नही मानी जा सकती। चूकि इस प्रकार का अधिकार भारत में नही है, इसलिए भारत म प्रेस को जो आजादी मिली हुई है उसे पूण नही माना जा सकता।

जन सचार के माध्यम के रूप म प्रिंटमीडिया से भी अधिक सशक्त आज रेडियो और दूरदशन है। जब तक इन्हें स्वायत्तता नही दी जाती तब तक भी भारत मे प्रेस की स्वतत्रता अधूरी ही कही जायेगी।

यह सोचना कि भारत में कभी ऐसा दिन आ ही नहीं सकता कि यहां प्रस को पूण आजादी मिल सके, घोर निराशावादी दृष्टिकोण होगा। प्रेस की पूण आजादी की पक्षधर कोई भी सरकार जिस दिन ऐसा करने का दृढ सकल्प ले लेगी उसको ऐसा करने मे कोई बाधा आयेगी ही नही लेकिन यह सब कुछ उसी दिन होगा जब दलगत व निजी हितो को ताक मे रखा जाकर व्यापक दृष्टि से विचार किया जायेगा।

सदर्भ सामग्री

(1) आल इण्डिया रिपोट स व मैन्युअल्स (2) आर एल डब्लू (3) डब्लू एल एन (4) क्रीमिनल ला जनल्स (5) लॉ नोटस (6) लॉ रिपोट स (7) बी एच सी (8) भारतीय प्रेस परिषद द्वारा प्रकाशित त्रिमासिक व वार्षिक रिपोट स (9) भारत सरकार व राज्यों के विभिन्न राजपत्र (10) सामण्य का विधि शास्त्र (11) आई एल एन ए द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका (12) विधि, न्याय और कम्पनी काय मत्रालय द्वारा प्रकाशित विधि शब्दावली (13) कोलिन्स स्टेण्डड डिक्शनरी (14) डॉ० रघुवीर कृत कम्प्रीहेंसिव इगलिश हिन्दी डिक्शनरी।

नामक स्वतन्त्र छन्द की परिभाषा न है जिसका कुछ भाषाएं डॉ० हरिवल्लभ भायाणी ने सन्देश रासक की भूमिका में दूहा, छड डगिया, पद्धड़िया, घत्ता चौपाइ, रड्डा अडिल्ला, अडिल्ल आदि अनेक छन्दों को बहुतायत में प्रयोग करने वाली रचनाओं को रासक नाम दिया है। इस प्रकार सभी परिभाषाओं में प्रयुक्त तथ्यों को यथोचित मान कर चलने में जब हम प्राप्ति-स्थान दिए जैन साहित्य की रास रचनाओं में 'रास' छन्द को ढूंढते हैं तो हम रास छन्द इन लक्षणों से भिन्न हो छन्द लगता है और इस स्वतन्त्र छन्द का दोहा, ढाला, अडिल्ल आदि छन्दों में स्वतन्त्र रूप सिद्ध होता है तथा परस्पर कोई साम्य भी नहीं दिखाई पड़ता। अतः यहाँ कहा जा सकता है कि इन विभिन्न छन्दों की कृतियों को रासक नाम दे दिया जाता होगा। रासक और रास छन्द के लिए अद्यावधि प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इसमें अधिक कुछ कहना बहुत संगत नहीं लगता, पर यह स्पष्ट है कि रासक और रास संज्ञक अनेक कृतियों में "रास" एक छन्द विशेष के रूप में खूब मिलता है।

प्रसङ्गान्तर काल में रासों के विषयों में विस्तार हुआ। अनेक विषयों पर रास रचना हुई जिनमें से कुछ प्रमुख विषय अधोलिखित हैं –

१–उपदेशमूलक (यथा उपदेश रसायन रास)।

२–चरित प्रधान (यथा-सप्तक्षेत्र रास)।

३–प्रवज्या या दीक्षामूलक (यथा जम्बू स्वामी गौतम स्वामी और स्थूलिभद्र रास)।

४–उत्सव व वैभव-वीरता-मूलक (यथा भरतेश्वर-बाहुबली रास)।

५–छन्द प्रधान रास (यथा भरतेश्वर-बाहुबली रास)।

६–कथा प्रधान–रामायण महाभारत पर (पंच पाण्डव चरित रासु)।

७–तीर्थों पर व तीर्थ यात्राओं पर–यथा रेवतगिरि रास तथा आबू रास, सप्तक्षेत्रीय रास।

८–मन्त्र वर्णन (यथा-समरा रास)।

९–सङ्कीर्तन-जय तथा सैद्धान्तिक (यथा-मानद-वारण रास)।

१०–ऐतिहासिक रास (यथा-समरा रास)।

इस प्रकार चरित्रों के गुणों का वर्णन करने उनके त्याग का हृदयान यात्रा वर्णन करने कथा निर्माण करने मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने दीक्षा उत्सव हेतु जय घोष आदि के लिए ही इन रास ग्रन्थों की रचना की जाती थी। इसके अतिरिक्त वे भौगोलिक सामाजिक राजनैतिक तथा चरित मूलक होते थे। जैन रासो साहित्य जितना ही चरित मूलक होता था उतना ही ऐतिहासिक भी होता था।

इस प्रकार रास ग्रथा के विषय मे व्यापकता आ गई और विषया की सीमा का कोई बन्धन नहीं रहा। अत इन जैन साधका न लोक साहित्यपरक अर्थात् जन भाषा मे और शास्त्रीय भाषा दोनो म रास रचनाए की।

विषय की दृष्टि से—

रास परम्परा म वैष्णव व जैन इन दोना धर्मों ने बडा योग दिया है। वैष्णव धर्म मे कृष्ण भक्ति शाखा के गोप मण्डल व कृष्ण गोपिया ने रास को चरम पर पहुँचाया और व्रज के रास तो शताब्दिया मे प्रसिद्ध हैं। इनम शृ गार-परक, भक्ति-परक और कोमल सभी प्रकार के रास मिलते हैं।

जैन धर्म न भी विशाल सख्या म समातिवार के रासो को सुरक्षित रखा है। अनेक वीतरागी जैन मुनिया तथा राजपुत्रा के दीक्षा ग्रहण करने के अवसर पर भी रासा की क्रीडाए होती थी। स्त्री और पुरुष इन रासो का बडी श्रद्धा से खेलते थे और अपनी प्रकृति प्रदत्त अनुभूति का अभिनय व सगीत मे डुबा कर साकार व सार्थक करते थे। मुनिवर सयाम ग्रहण ही नहीं करते थे, उनका सयम-श्री के साथ विधिवत् विवाह होता था और इन जैन रासा म से अनेक रासा का उद्देश्य आचाय-श्री का सजमसिरि स वरण कराना होता था यथा—जिनदवर सूरि दीक्षा विवाह-वर्णन रास। इस शुभ अवसर पर अथवा पर्व पर उनके अनुयायी श्रावक भला कब मानत? वे उत्फुल्ल होकर नृत्य, लय, ताल, गीत आदि द्वारा आचार्य-श्री का श्रद्धाजलि देते थे अत रास का आयोजन होना स्वाभाविक था।

साहित्यिक रूप और शिल्प योजना

साहित्यिक दृष्टि स मूल्यांकन करने पर रास या रासक सगीत, नृत्य लय, ताल, छन्द, क्रीडा अभिनय, उक्त सभी अगा के समन्वय का समूह है। वस्तुत रासक का सम्बन्ध उक्त अ गा स ऊपर दिखाया जा चुका है। रासक या रास का स्वरूप उद्धत-गेय-उपरूपक के रूप म उल्लास प्रधान होता है। अत साहित्यिक दृष्टि से इसके शिल्प जन्य तत्वा का विवचन इस प्रकार किया जा सकता है —

१–रासक गेय उपरूपक है, जिसकी कथा गद्य म कम व पद्य मे अधिक अर्थात् अधिकाश पद्य मे ही होती है।
२–उसमे अनक नर्तकियाँ हो।
३–विभिन्न रागा का समावेश हो।
४–अनेक छन्द हो।
५–लय ताल का सुन्दर समन्वय हो।

६–अनेक प्रकार के अभिनय हों।
७–वह मण्डली में विभक्त हो।
८–अनेक युगल हों, जो साथ आस्वादन करें।
९–पुरुष अलग, स्त्रियां अलग अथवा समवेत नृत्य।
१०–वस्तु में रस का सम्मिश्रण अनिवार्य रूप से हो।
११–विभिन्न प्रकार के नृत्यों का समावेश हो।
१२–रास या रासक एक निश्चित स्थान या मंच पर हो।

निश्चित स्थान से तात्पर्य रंगमंच से लिया जा सकता है। यद्यपि रंगमंच की सूचना कहीं भी स्पष्ट रूप से रास और रासक साहित्य का उल्लेख करने वाली प्राचीन संस्कृत व अपभ्रंश कृतियों में नहीं मिलती, परन्तु रास के निरूपण में स्थान-विशेष नृत्य-विशेष मुद्रा, हाव भाव, तथा स्थिति-विशेष आदि तत्वों को स्वरूप यह कहा जा सकता है कि रंगमंच का स्पष्ट उल्लेख नहीं होने पर भी रास में मंच विशेष की स्थिति अवश्य थी।

वर्तमान काल में रास की स्थिति—

"रास" जैसे गेय उपरूपक आज भी अपनी आनंद विधाओं को लेकर विविध रूपों में हमारे सामने सुरक्षित हैं। हमारे देश का लोक संस्कृति प्रमुख है। रास जैसे सांस्कृतिक मेल रूप रूपक की आयोजना देश के हर प्रदेश में विभिन्न शैलियों में देखी जा सकती है। जहाँ तक राजस्थान का प्रश्न है राजस्थान में रास खेलने की प्रथा प्राचीन है। मण्डलाकार बनाकर विशेष अवसरों पर स्थान विशेष को सजाकर उसी पर ढोल आदि वाद्य पर रास खेलते हैं। विभिन्न मण्डलियों में भी रास खेलने की प्रथा है। 'रासधारी' एक मंडल एतदर्थ प्रसिद्ध है। रास गाया भी जाता है परन्तु पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में इसका प्रचार अधिक है। स्त्रियों के समाज में रास की स्थिति विचित्र प्रकार की है। रास का यह वर्तमान रूप अत्यन्त प्रसिद्ध है। या रास के शिल्प का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करने वाला यहाँ कोई नृत्य विशेष नहीं है, परन्तु उसके थोड़े-थोड़े तत्व विभिन्न प्रान्तों के नृत्य विधाओं में बँट गये हैं। राजस्थानी लोक नृत्यों में जो मीणा और भीलों के नृत्य बणजारों के नृत्य, नटों का गेर गानडियों और गरासियों के नृत्य कालबेलियों के इन्डोणी नवरिया, और पणिहारी का भावात्मक अभिनयात्मक और नृत्य प्रधान समतामक-नृत्य, भवई-नृत्य रासधारियों का नाच तुर्राकिलंगी के अभिनय प्रधान नाच, बीकानेर के अग्नि नर्तक, जालौर के ढोल नर्तक, टीडराणा और पावरण का तेरातारी (ताल रास) मारवाड़ की कच्छी घोड़ियों का नृत्य, गान, अभिनय,

शारीरिक अवयवों की कला, नृत्य तथा वाद्य से समन्वित मारवाड़ का कठपुतली नृत्य, पाबूजी की पड़, शाह गूजरी के नृत्य विशेष तथा कुचामणी ख्याल, अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। साथ ही रास के अभिनय की उसी आदिम स्थिति में पहुँचाने का प्रयास करने वाले और भी कई जंगली नृत्य हैं जिनमें डफ के नृत्य, सासियों के नृत्य, कंजरा नायका, चमारों व मेहतरों के नाच प्रसिद्ध हैं। शेखावाटी प्रदेश के चौक चानणी और मंदिरों के कीर्तन और नृत्य भी अपना महत्व रखते हैं। आंशिक रूप से रास के तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले नृत्यों में राजस्थान की स्त्रियों का 'घूमर या झूमर नृत्य' नहीं भुलाया जा सकता। घूमर नृत्य में स्त्रियाँ 'गवर' या पार्वती की प्रतिमा के सामने सैंकड़ों की संख्या में चक्राकार मण्डलों में विभक्त हो, घण्टों नृत्य में डूब जाती हैं जिसमें वाद्य की मधुरता गीत का प्रवाह, स्वर व संगीत की रमाल अभिनय की उत्कृष्टता तथा भावाभिव्यक्ति दर्शनीय है। पर इसमें, युगलों में पुरुष भाग नहीं ले सकते। यह विशेषकर होली गणगौर और दीपावली जैसे त्यौहारों के अवसरों पर मध्यमवर्गीय स्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। घूमर का उदयपुरी स्वरूप संगीतमय है। जोधपुर का घूमर कलात्मक है पर उसमें अङ्ग संचालन का अभाव है और कोटा बूंदी के घूमर में अपूर्व जीवट और प्रभाव होता है। इन नृत्यों में 'ताल्या रास' 'दण्ड रासु' आदि सब रूप देखने को मिल जाते हैं। अतः घूमर राजस्थान का एक राष्ट्रीय नृत्य है।

गुजरात और मालवा में रास की वर्तमान स्थिति, वहाँ के 'गरबा गरबो या गरबी नृत्य प्रस्तुत करते हैं। 'गरबा' उन ऐसे घड़े को कहते हैं जिसमें सकड़ों छेद होते हैं। स्त्रियाँ उसमें दीपक जलाकर ताल अभिनय संगीत आदि के आधार पर उसका सम्पन्न करती हैं। यह नृत्य रास का सही रूप आज भी प्रस्तुत करता है।

रास के वर्तमान स्वरूप की सुरक्षा करने वाले रासों में ब्रज के रासों का भी बड़ा महत्व है। मथुरा वृन्दावन आदि स्थानों पर राधा कृष्ण और गोपियों के रूप में विविध लीलाओं तथा कृष्ण द्वारा किए रासों की आयोजना होती है। यहाँ तक कि अनेक मंडलियों ने तो इसे अपना पेशा ही बना लिया है। रास ब्रज की प्रमुख वस्तु है और कृष्ण उसके जन्मदाता। ब्रज में रास का वर्तमान रूप कब प्रचलित हुआ ? उसके प्रारम्भकर्ता कौन थे ? इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता साथ ही अनेक मतभेद भी है।[1]

१–(क) देखिये –ब्रज भारती–वर्ष ४, अंक २ पृ० ६ ११ १२ प्रभुदयाल मीतल का नारायण भट्ट पर लेख

*

नारायण भट्ट, वल्लभाचार्य हरिराम तथा घमंडदेव को इसके प्रवर्तकों में उल्लेख मिलता है।

ब्रज के इन रासों के दो प्रमुख प्रकार हैं —

१—शास्त्रीय वन्दन युक्त तथा

२—शास्त्रीय बन्धनमुक्त रास नृत्य जिसमें नन्दलाल और बरसाना की गूजरियां विविध मुद्राओं में नृत्य करती हुई हास्य का वास्तविक रूप प्रस्तुत करती हैं जिसमें बाद्य नहीं होता। यह गायन वाद्य ही कल्याणकर होता है। यह नृत्य समय-समय के प्रभाव से समाप्त हो गया था। इधर लेकर महता बार नृत्य प्रकार आज भी बन्द हो गए हैं।

ब्रज का शास्त्रीय नृत्य दो प्रकार का है —

१—रास और २—मण्डल रास। 'रास' रासमण्डलियां करती हैं तथा महारास कृष्ण ने जो गोपियां में एक कृष्ण या दो कृष्ण के बीच एक गोपी के रूप में किया था। जब ब्रज की मण्डलियां रास करती हैं तो भरत के नाट्य शास्त्र में वर्णित नाना रासकों का मिश्रण रूप देखने को मिल जाता है।[1] आज जो ब्रज में रास प्रचलित है वह ५००–६०० वर्षों से अधिक पुरानी प्रतीत नहीं होती। इसमें मंगलाचरण के बाद सारंगी, पखावज, सितार, झांझ और मंजीरों के आधार पर मंगल गान गाया जाता है और सब नृत्य करते हैं।

अवधी भाषा में 'रास' का स्वरूप 'रसिया' के रूप में मिलता है। जिला में एक वर्ष होने वाले सांस्कृतिक लोक-नृत्यों में 'इप्टा' के अवधी के रसिया नृत्य का महत्व सामान्य अधिक है जिसमें अभिनय, नृत्य, वाद्य, गान, वेश परिवर्तन, मंच और अभिनय मंच का सम्मिश्रण मिलता है। अवधी और ब्रज के स्वांग भी रास के एक अंग की पूर्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त ब्रज के लोक

(ख) श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी का ब्रज लोक संस्कृति सं० २००५ पृ० १३८-४३ पर रास लेख।

(ग) रामनारायण अग्रवाल का 'रासलीला के आश्रय दाता' नव ब्रज-भारती वर्ष ४ अंक ४।

(घ) पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ८१३-१७ में नारविन हाइन का "रासलीला के विस्तार दर्शन" लेख।

१—द्रष्टव्य-ब्रज का इतिहास भाग २, श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी पृ० ११५ पर माई प्रभुदयाल राय का लेख।

नृत्यों में रास के सन्तनायों, ब्रज की चरकुला, ललामनिया चाचर, भूला नृत्य, नरसिंह नृत्य डांडा डांडा नृत्य आदि लोक-कलात्मक नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध है जो रास परम्परा को भी सुरक्षित करते हैं। जयदेव का गीत गोविन्द और चैतन्य का कृष्ण भक्ति प्रेमलीला वर्णन किसी रास से कम नहीं है।

बंगाल मे भी भगवान कृष्ण के रास का रूप प्रचलित है, जिसमें उनका वेश ब्रज से भिन्न होता है, पर इसमें अभिनय मकता बड़ा उत्कृष्ट होती है।

आसाम मणिपुर के इलाके में वेश भूषा, अभिनय और भावुकता तीनों तत्वों की रास में प्रधानता है। वहां भी वसन्त रास, नृत्त रास और महा रास ये तीन प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार दक्षिण में तमिल, तेलगू, कन्नड़ मलयालम आदि प्रदेशों के लोक-साहित्य रास का प्रतिनिधित्व करते हैं। वस्तुत रास की परम्परा आज भी विभिन्न लोक कलात्मक अनेक नृत्यों के रूप में सुरक्षित है। वस्तुत तत्कालीन अपभ्रंश श्वेताम्बर कालीन जैन रासों का वर्तमान स्वरूप जैन समाज में आज भी प्रचलित है परन्तु उसका आंशिक रूप ही दृष्टिगोचर होता है। दीक्षा के समय जैन मुनि का संयम-श्री के विवाह के रूपक के रूप में सब क्रियाएं पूरी की जाती हैं पर रास नृत्य और उल्लास के साथ नृत्य अभिनय अब रुक गया है। सिर्फ अपनी उल्लास प्रधान अभिव्यक्ति को वे संगीत प्रथा के माध्यम से प्रकट कर देते हैं। हां तीर्थों आदि में स्त्रियों का नृत्य उल्लेखनीय है। वस्तुत रास नृत्य आदि के प्राचीन मानदण्ड आज बदलते जा रहे हैं, पर जैन मुनियों में रास बनाने और उनको गाकर उनका उपदेश देना आज भी प्रचलित है। सौराष्ट्र और गुजरात के जैन मुनि तो आज भी 'रास' बनाकर गाते हैं। ऐसा लग रहा है कि आधुनिक जन-रास पुन अपनी प्राचीन गेय व उपदेशात्मक स्थिति को, जो हेमचन्द्र से पूर्व थी, प्राप्त करते चले जा रहे हैं। राजस्थानी भाषा में जो परवर्ती रास मिले हैं उसमें 'रासो' शब्द का ही अर्थ पर्याय होगया है और वे युद्ध वर्णनात्मक काव्य के भी सूचक हैं। इसी कारण राजस्थानी में रासो शब्द का प्रयोग लड़ाई झगड़े या गड़बड़ घोटाले के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा। १७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तथा १८वीं शताब्दी में कुछ विनोदात्मक रचनाएं जैसे उन्दर रासो, माकड रासो आदि रासो की रचना हुई है।[1] डॉ० हजारीप्रसादजी का कथन है कि 'रासक' वस्तुत एक विशेष प्रकार का मनोरंजन है। रास में वही भाव है।[2] आज के रास, विषयों की

१–देखिये नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०११ अंक ४ पृ० ४२० पर श्री अगरचन्द नाहटा का 'प्राचीन भाषा काव्यों की विविध संज्ञाएं' लेख।

२–देखिये हिन्दी साहित्य का आदिकाल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. १००,

भाषा के बन्धन में नहीं है जनता अपने सुख-दुख को प्रेम, धर्मोपदेश, शृंगार कथा आदि सभी रासो में प्रस्तुत कर स्वयं व्यस्त जीवन में सुख अनुभव करती है।

जैसा कि उक्त विवेचन में रास की परम्परा, उद्देश्य, परिभाषा, शिल्प आदि के तत्वों का पूरा-पूरा मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयास लेखक ने किया है। अब प्रसंगानुसार बाद अथवा प्राचीन हिन्दी में जो आदिकाल की विभिन्न शताब्दियों में विभिन्न ग्रन्थों में रास रचनाएं प्राप्त होती हैं उनके काव्य का अध्ययन करना ठीक होगा। उक्त विवेचन में आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य में प्रत्येक शताब्दी में मिलने वाले हिन्दी जैन रासों की मुख्य प्रवृत्तियाँ शिल्पगत तथा अन्य काव्य रूपों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आदिकालीन हिन्दी रासों को समझने में इससे पर्याप्त सहायता मिल सकेगी ऐसा लेखक का अनुमान है।

भरतेश्वर बाहुबली रास

रास परम्परा म सर्व प्रथम और सबसे विस्तृत पाठवाली रचना भरतेश्वर बाहुबली रास है। आदि कालीन हिन्दी जन साहित्य मे यही कृति ऐसी है जो पर्याप्त प्राचीन तथा जो अपभ्रंश की परवर्ती अवस्था और पुरानी हिन्दी (प्राचीन राजस्थानी और जूनी गुजराती) के बीच की कडी है। परिशीलन करने पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी जैन साहित्य की राम परम्परा का भरतेश्वर बाहुबली राम सर्व प्रथम राम है।[1] अद्यावधि मुनि जिनविजय जी तथा गुजराती विद्वान इसी रचना को सर्व प्रथम रचना मानते है। पर श्री अगरचन्द नाहटा द्वारा शोध पत्रिका मे एक प्राचीन रास श्री वज्रसेन सूरि रचित 'भरतेश्वर बाहुबली घोर' प्रकाशित किया गया है जो इनमे भी प्राचीनतम है, पर रचना अकेली तथा संक्षिप्त होने से वह रास जन्य प्रवृत्तियो की प्रमुखता का प्रतिनिधित्व नही कर सकती। ऐसी स्थिति म भरतेश्वर बाहुबली रास को ही हिन्दी साहित्य का सर्व प्रथम रास माना जा सकता है।

प्रस्तुत कृति का सम्पादन मुनि जिनविजय जी ने किया। रचनाकार श्री शालिभद्रसूरि हैं और रचना काल स० १२४१। प्रति बडोदरा के एक विद्वान् कान्तिविजय जी की है तथा कागज की है। अनुमानत ४०० या ५०० वर्ष पुरानी होगी। मुनिजी का यह पाठ पूर्ण प्रामाणिक प्रतीत होता है। इसी पाठ को राहुल सांकृत्यायन ने भी उद्धृत किया है।[2]

दूसरी कृति का सम्पादन श्री लालचन्द भगवान गाधी के द्वारा सम्पादित है।[3] श्री गाधी ने प्राच्य विद्या मन्दिर का तथा आगरा सग्रह की श्री विजय धर्म सूरि के आधार पर कृति सम्पादित की है। श्री गाधी का पाठ मुनिजी की सम्पादित कृति से स्थान स्थान पर थोडा भिन्न भी मिलता है। तथा छन्द क्रम म भी अन्तर है, पर दोनो अपने अपने रूप मे प्रामाणिक है।

१–भारतीय विद्या भाग २ अक १, स० १९९७, पृ० १–१८ स० मुनि जिनविजय।

२–हिन्दी काव्य धारा, श्री राहुल सांकृत्यायन पृ० ३९८ ४०८।

३–भरतेश्वर बाहुबली रास, स० श्री लालचन्द भगवान गाधी, प्रकाशक प्राच्य विद्या मन्दिर बडोदरा, वि० स० १९९७।

प्रस्तुत कृति का मूल्यांकन करने से पूर्व दो और महत्त्वपूर्ण बातों का स्पष्टीकरण आवश्यक है। एक तो यह कि यह कृति प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी की है तथा दूसरी बात क्या भाषा और जन भाषा के आधार पर यह कृति पुरानी हिन्दी की है। गुजराती विद्वान् इसे पुरानी गुजराती की मानते हैं जब कि १५०० वि० के पूर्व गुजराती का स्वतन्त्र अस्तित्व कुछ नहीं था तथा दोनों एक ही भाषाएं था और यह रास वि० सं० १२४१ का है अतः प्राचीन राजस्थानी और गुजराती की पृथकता का प्रश्न विवाद का विषय ही नहीं है।

भरतेश्वर बाहुबली रास के कर्ता विद्वान् जैनाचार्य शालिभद्र हैं जो अपने समय के विख्यात कवि थे। भरतेश्वर और बाहुबली दोनों अत्यन्त प्रसिद्ध चरित नायक राजपुत्र रहे हैं। इन दोनों से सम्बन्धित अनेक वर्णन परिचय-तथा आदि बहुत से पुराने ग्रन्थों में उपलब्ध हो जाते हैं। अतः यह परम्परा अब तक मिलती है।

भरतेश्वर-बाहुबली पर रचित साहित्य

इस साहित्य की परम्परा ८वीं शताब्दी तक मिलती है। तथा कथा भी एक-सी है वर्णन तथा घटनाओं में परस्पर अभिन्न भी मिलता है। कहीं भरत का वर्णन अधिक मिलता है और कहीं बाहुबली का। कुछ स्थल इस प्रकार है —

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति नामक जैन उपांग ग्रन्थ में भरत चक्र के साथ चक्रवर्ती भरत के ६ खण्डों की विजय का वर्णन है। भरत और बाहुबली का अधिकार वर्णन विमल सूरि कृत पउम चरित में ४था शताब्दी में श्री संघदास गणि रचित वासुदेव हिण्डी १ नामक प्राकृत की कथा में संयम के साथ दोनों का वर्णन है। ७वीं शताब्दी की जिनदास गणि की प्राकृत भाषा की चूर्णि नामक व्याख्या में दोनों का चरित वर्णन है। दोनों के परस्पर युद्ध, के वर्णनों का जिन ग्रन्थों में उल्लेख है वे हैं—रविषेणाचार्य का पद्मपुराण धनेश्वरसूरि तथा १०वीं शताब्दी में जयसूरि कृत धर्मोपदेश माला के साथ-साथ जिनसेन के आदि पुराण २ पुष्पदन्त के त्रिषष्ठि महापुरुष गुणालंकार तथा हेमचन्द्र के त्रिषष्ठि शलाका चरित (प्रथम पर्व) तथा सं० १२४१ के सोमप्रभाचार्य के कुमारपाल

१—हिण्डी—आत्मानन्द जैन ग्रन्थ माला ग्र० सं० ८० सं० मुनि चतुरविजय सं० १९८६ भावनगर जैन आत्मानन्द सभा द्वारा प्रकाशित।

२—माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला समिति द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ खण्ड १ पर्व ४ पृ० ९१—९२।

प्रतिबोध [1] और विनयचन्द्रसूरि कृत आदिनाथ चरित में मिलता है। परवर्ती साहित्य में १४वीं शताब्दी में जिनेन्द्र रचित पद्मानन्द महाकाव्य [2] सर्ग (१६ १७) सं० १४०१ में मेरुतुङ्ग रचित रत्नभनद्र प्रबन्ध में, १४३६ में जय शेखर सूरि कृत उपदेश चिंतामणि की टीका में तथा सं० १५३० में गुणरत्न सूरि के भरतेश्वर बाहुबली पवाडा में तथा सं० १७१५ में गि ट्ट गणि के गुजराती "शत्रुञ्जय रास" में भरत बाहुबली का चरित्र वर्णित है।

वस्तुत इन दोनों चरित नायकों के वृत्त बड़े ख्यात हैं और यह कथा परम्परा १८वीं शताब्दी तक मिलती हैं। इन बहिरंग प्रमाणों में इनकी कथा कड़ियों का निरन्तरता में अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। उक्त प्रमाणों से भरतेश्वर बाहुबली की कथाएं संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश पुरानी हिन्दी (राजस्थानी-गुजराती) आदि सभी भाषाओं में विस्तार से मिल जाता है। ग्रन्थों में ही नहीं, भारत के विभिन्न मंदिरों तीर्थों स्तूपों चित्रों तथा अनेक स्मारकों के लिए भी बाहुबली आकर्षण के विषय रहे हैं। उदाहरणार्थ मैसूर के श्रवण बेलगोल में ५६ फुट के लगभग अद्भुत शिल्प कलामय बाहुबली की ध्यानस्थ खड़ी हुई प्रतिमा है। तथा आबू की सं० १०८८ की विमलवसही की शिल्प कला में भरत और बाहुबली युद्ध के दृश्य शिल्प चित्रों में दिखाए गये हैं। [3]

भरतेश्वर बाहुबली रास वीर-रस-पूर्ण प्रबन्ध है। या शान्ति और अहिंसा प्रेमी जैनाचार्यों का वीर और शृंगार रस से कोई सम्बन्ध नहीं मिलता परन्तु परम्परा के कारण उन्हें ऐसे काव्यों की रचना करनी पड़ी। रास में उत्साह, दर्प, स्वाभिमानपूर्ण उक्तियां तथा वीर रस का स्रोत उमड़ता है। इस रास की मौलिकता यह भी है कि यह प्रबन्ध युद्ध प्रधान व वीर रस पूर्ण होते हुए भी निर्वेदांत है। जैन रचनाकारों ने विरोधी रसों का समन्वय बड़े कौशल से किया है। यहां तक कि यह बहुत ही आश्चर्यजनक तथ्य है कि रास या फागु जैसी शृंगार प्रधान रचनाएं भी निर्वेदांत हैं।

प्रस्तुत रास में रचना स्थान कवि ने कहीं नहीं दिया है पर एतदर्थ गुजरात या राजस्थान के किसी भी युद्धवीर या युद्ध प्रेमी नगर की कल्पना की जा सकती है। राजस्थान तो यों भी युद्ध वीरों का जन्मदाता और युद्ध प्रधान प्रदेश रहा है।

१-गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थ माला नं० १४ में प्रकाशित।

२-वही नं० ५८ में प्रकाशित (गायकवाड प्राच्य ग्रन्थ माला)

३-भरतेश्वर बाहुबली रास, श्री गांधी, प्रस्तावना पृ० ५३-५६।

कथा भाग

रास की कथा वस्तु संक्षेप में निम्नलिखित है —

जम्बूद्वीप के अयोध्यानगर में ऋषभ जिनेश्वर के सुनन्दा और सुमंगला से दो पुत्र क्रमशः बाहुबली और भरत यशस्वी और पराक्रमी उत्पन्न हुए। भरत बड़े थे। ऋषभेश्वर भरत को अयोध्या का तथा बाहुबली को तक्षशिला का राज्य सौंपकर विरक्त हो गए। उन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो गया। जिस दिन उन्हें कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ भरत की आयुधशाला में 'दिव्य चक्ररत्न' उत्पन्न हुआ। भरत ने अपने पिता की वन्दना करके दिग्विजय प्रारंभ की। आगे आगे चक्ररत्न चलाए चलता। अनेक राजाओं की विजय करके जब वे पुनः लौटे तो चक्र अयोध्यापुरी के बाहर रुक गया। भरत के मंत्री ने इसका कारण उनके भाइयों का उनकी अधीनता स्वीकार न करना बताया। सब की दृष्टि बाहुबली की ओर उठ गई। भरत ने क्रुद्ध होकर बाहुबली को दूत के साथ अपनी अधीनता स्वीकार कर पैरों में प्रणाम करने को कहा। सौगात व उपहार मांगे। बाहुबली भी क्रुद्ध हो गये और कहा — ऋषभेश्वर ने जब सबको समान रूप से राज्य दिया है तब एक अग्रमहत्त्व हो और दूसरा भाई उसके आधीन यह सम्भव नहीं है। दूत को उसने फटकार कर वापस लौटा दिया। दोनों ओर से युद्ध की तैयारियां हुईं।

१३ दिन के भयंकर युद्ध में रक्त की नदी बह गई। तब भरतेश्वर की सेना में चन्द्रचूड़ और चन्द्रचूड़ विद्याधरों ने विनय की। इन्द्र ने आकर युद्ध बंद कराया और कहा कि भाई भाई की पारस्परिक लड़ाई में सेना का संहार व्यर्थ हो रहा है। अतः अच्छा तो यह हो कि द्वन्द्व युद्ध होकर विजय का निर्णय हो जाय। वचन युद्ध दृष्टियुद्ध (नेत्र युद्ध) और दण्ड युद्ध निश्चित हुए और तीनों में जब बाहुबली विजयी हुए तो भरत ने क्रुद्ध होकर उन पर मर्यादा तोड़ कर चक्ररत्न चला दिया। यद्यपि इससे उनकी कुछ भी हानि नहीं हुई पर वे चक्रवर्ती के इस व्यवहार से बहुत क्षुब्ध हुए और उन्हें विरक्ति हो गई। उन्होंने दीक्षा ग्रहण करली। युद्ध बात का निर्णय हो गया। राज्य-श्री उन्हें तुच्छ जान पड़ी। चक्रवर्ती भरत ने उनके चरणों में मस्तक रखकर अमर्यादित कृत्य द्वारा सम्पन्न भूल को स्वीकार किया तथा क्षमा याचना की। पर बाहुबली को तो निर्वेद ने अपना लिया था। अनेक वर्षों तप करके वे कैवल्य ज्ञानी हो गये। भरत ने भी धूमधाम से नगर में प्रवेश किया। उत्सव हुए नगर तोरण सजाये गये। आयुधशाला में आकर चक्ररत्न भी शान्त हुआ और चतुर्दिक भरतेश्वर का यश छा गया।

" राम की कथा यही है। रचना अनेक कथा म लिखी गई है और कुल मिला कर २०५ छन्दों म समाप्त हुई है। प्रबंध परम्परा का यह एक महत्व पूर्ण खण्ड काव्य है। स० १२४१ का यह राम ग्रंथ उपलब्ध अनेक हिंदी रासा में सब से बड़ा है। इसके बाद इतनी बड़ी राम रचनाएं १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध म ही मिलती हैं। यह प्राप्त कृतियों से स्पष्ट होता है। अस्तु २५० वर्षों के स० १२४१ से १५०० तक के इतने बड़े काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों, तथा भाषा आदि का प्रतिनिधित्व यह अकेला राम करता है। प्रस्तुत प्रबन्ध खण्ड की रचना भास-सग या पव आदि मे विभाजित नहीं है। यो प्रबंध काव्य की परम्परा मे ही कुछ भागों म विभक्त कर दिया जाता है। महाकाव्य सर्गबद्ध होते हैं [1]। प्राकृत म प्रबन्ध काव्यों के सर्गों का नाम आश्वास' [2] है। अपभ्रंश काव्यों म संधि [3] का प्रयोग हुआ है। संधि के प्रारम्भ म ध्रुवक और उसके आगे कुछ कडवक तथा प्रत्येक कडवक के बाद घत्ता रखा जाता था। कहीं कहीं प्रक्रम [4] नाम भी मिलता है। हिंदी-जैन-साहित्य के परवर्ती ग्रंथ रासों मे भी ये नाम विभिन्न प्रकार से मिलते हैं। उदाहरणार्थ कच्छूली रास मे वस्तु या 'वस्त, [5] जम्बू स्वामी चरित मे कडवक, [6] एव ठवणी (स्थापनी) समराराम में भाम, [7] तथा पथड रास म ठाण्ए, [8] नाम दिए गये हैं। इसके अतिरिक्त सर्गों के नाम काड [9] व पर्व [10] भी मिलते हैं।

१—साहित्य दर्पण विश्वनाथ—"सर्ग बधो महाकाव्यो तत्रैको नायक सुर" ( )पृ० ३०२—३।

२—सर्गा आश्वास सज्ञका—साहित्य दर्पण, पृ० ३०४—५।

३—साहित्य दर्पणकार ने इसे "कडवक" कहा है। पर वास्तव म यह संधि है। यह संधि कडवक समूहात्मक होती थी। कडवक समूहात्मक संधि' देखिए ना० प्र० प० वर्ष ५६, अङ्क १, स० २०११।

४—देखिए सदश रासक अब्दुल रहमान कृत भूमिका भाग।

५—प्राचीन गुर्जर काव्य, सं० मुनि जिन विजय, पृ० ५६।

६—जम्बू-स्वामी-चरित तथा प्रा० गु० का० स०, पृ० ४१।

७—समरारासु मुनि जिन विजय कृत-जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य सचय पृ ११७

८—प्राचीन गुर्जर कवियो—मोहनलाल देसाई कृत तथा प्रा० गु० का० परिशिष्ट, भाग २४।

९—तुलसी कृत रामचरित मानस म बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, सुन्दरकाण्ड लकाकाण्ड आदि।

१०—देखिये—महाभारत म शांति पर्व, युद्ध पर्व आदि नाम।

भरतेश्वर बाहुबली रास भी इसीतरह वस्तु, ठवणी, वाणि, [1] आदि में विभक्त होता चलता है। यद्यपि कथा में कहीं भी कविकृत सर्ग यति या समाप्ति नहीं है, फिर भी कथा का विभाजन, भरतकी दिग्विजय, भरत व बाहुबली का युद्ध, बाहुबली का दीक्षा ग्रहण आदि इन तीनों शीर्षकों में सरलता से किया जा सकता है।

प्रस्तुत रास के कर्त्ता श्री शालिभद्र ने रास का प्रारम्भ मंगलाचरण से ही किया है। कवि ने ऋषभ जिनेश्वर के चरणों में प्रणाम करके, सरस्वती का मन में स्मरण करके, गुरु पद वंदना के पश्चात ही काव्य का प्रारम्भ किया है।

रिसह जिणेसर पय पणमेवी
सरसति सामणि मन समरेवी। नमवि निरंतर गुरु चरण

नाटकीय संलाप

रास में कई स्थलों में कवि की नाटकीय संवाद-योजना स्पष्ट होती है। संवाद बड़े प्रभावशाली और सरस हैं। यथा—मतिसागर भरतेश्वर-संवाद दूत-बाहुबली संवाद आदि संवादों में एक नाटकीय योजना है। पर्याप्त गेयता रूप तथा उमाह है। कवि ने इनके द्वारा काव्य में अभिनय भंगिमा का समावेश किया है। दोनों संवादों के उदाहरण देखिए—

मतिसागर तिणि काज चक्र न पुरि प्रवेसु करइ
तु नि अम्हारह राजि पुरि धरीय भारि धुरह [2] —(प्रश्न)
बोलइ मंत्रि मयंकु सम्मलि सामीय ! चक्रधर [3]

नवि मानइ तूय आण बाहुबलि बिह बाहुबलें

तिणि कारणि नर दव ! चक्र न आवइ निय नियरे [4] —(उत्तर)

इसी प्रकार दूत बाहुबली का संलाप उल्लेखनीय है—
दूत—दूत पभणइ दूत पभणइ बाहुबलि राउ
भरहेसर चक्र घर वहि न चक्रणि हुक्कणि कीजइ

1—देखिए—भरतेश्वर-बाहुबली रास, श्री गांधी पृ० १६ ७७ आदि।
2—भरतेश्वर-बाहुबली रास श्री गांधी पृ० १८, पद ४५।
3—वही पद ४७।
4—वही, पद ५०।

वेगि सुवेगि बोलिह सभलि बाहुबलि । [१] —(प्रश्न)

विण बधव सवि सपइ ऊणी, जिम विण लवण रसोइ अलूणी ।

तुम बसणि उत्कठित राउ, नितुनितु बाट जोह भाउ [२]

और दूत के यह कहने पर कि चला भरतेश्वर की अधीनता स्वीकार करो, नहीं तो वह तुम्हारा वध करेगा—बाहुबली तत्काल उत्तर देते हैं —

राउ जपइ राउ जपइ सुणिन सुणि दूत —(उत्तर)

जविहि लिहोउ भालयलि तजि लोह इहलाइ पामइ

अरि रि ! देव न दानव महि मडलि मडलव मानव

काइ न सधइ लहीयालीह, सामइ अधिक न मोहा दीह [३]

विविध वर्णनो में नगर-वर्णन, सेना-वर्णन, दिग्विजय-वर्णन, शकुन वर्णन हाथी, घोडो, सवारो आदि के वर्णन मिलते हैं। इनमें कई वर्णन ऊहात्मक और अतिशयोक्ति प्रधान है। शेष वर्णन साधारण हैं परन्तु उनकी भाषा में पर्याप्त सरसता है। वीर रस प्रधान वर्णनो में 'णित्व' और 'टकार" प्रधान भाषा बनती है। इन वर्णनो में एक जोवट, ओज और जीवन्तपन है। शब्दों में प्रवाह, सरसता, और उत्साहभरा है। शब्द चयन अनुप्रासात्मक है। कुछ वर्णन देखिए —

हाथियो का वर्णन—

(क) चलिय गयवर चलिय गयवर गहिर गजजत

(ख) गजउ फिरि फिरि गिरि सिहरि भजइ तरवर डालि तु

अकुश वस आवइ नहीय, करइ अपार जि आलि तु

घोडो व सवारो का वर्णन—

(क) हूकइ हसमस हणु हणइ तरवरत ह्यथट्ट चल्लिय

(ख) फिरइ फेकारइ फोरणइ ए फुड फेणाउलि फार तु

तरणि-तुरगम सम तुलइ, तेजिय ताल तुखार तु

(ग) हीसइ हसमिसि हणु हणइ ए, तरवर तारतोखार तु

खूदई खुरलइ खडकीय, नइ मानइ असवार तु [४]

सेना वर्णन—चटव न कवणि हि भरह तणउ भाजइ भेडि भिडन्त तु

रेलइ रयणायरह जिमि राणो राणि न उतत तु

१—वही, पद ७८।

२—वही, पद ८३, पृ० २८।

३—वही, पृ० ८, वस्तु १६।

४—भरतेश्वर बाहुबली रास, श्री गाधी, पृ० १०।

"शकुन" वर्णन भी लोक साहित्य की परम्परा को विकसित करता है। दूत का बादशाही के पास जाना और रास्ते में तीतरी, सियार, मृग, आदि का विकल-वर्णन बड़ा ही प्रभावशाली है। शब्दों की अनुप्रासात्मकता उल्लेखनीय है —

क जो रथ आसाय जाय सुणि प्राग मिले तरवरह
फिर फिरि साम्हउ थाइ वाम सुगाय वाहिणी तणउ (पद ५६)
ख वायस-वाम विडाल आविय आडिद डावह ग
जिमणउ जम विकराल लर लर लर-रव उच्चरय- (५७)
ग सूकाय बाम्न डावि, रवि वयण सुरररइ ग
सनीय भारम भार धूर धुकारहि साहिणि ग- (५८)
घ जिमणाइ समइ विपाणि फिरिय फिरिय फिर फरररइ ग
टाला य उत्तर साणि भैरव भैरव रव करइ ग-

इसी तरह बिल्ली गधा गाय बाद का मिलना, सूखी डाली पर बैठ [पक्षी विशेष] का बोलना, लोमड़ी धूम [उल्लू का बोलना] और लोमड़ी [गिद्ध] का बार बार सामने फिर फिर कर अपशकुन करना आदि चित्रण यथार्थ है।

अनूठी उक्तियाँ

वीर रस की दर्प और उत्साह प्रधान उक्तियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं जिनमें जीवन के लिए पर्याप्त ओज का समावेश है। स्वावलम्बन और स्वाभिमान पूर्ण कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

क परह आस किणि कारणि कायर मान्य सदवर सिद्धि ररावह
होउ मनह साह ह आयार तिम जि वार हणउ परिवार [1]

[दूसरे की आशा क्या की जाय? साहस से स्वयं ही सिद्धि को वरण करना चाहिए। पास में दृढ़ हृदय और हाथ में हथियार हों तो वीरों का परिवार होता है] कितना स्वावलम्बन और पुरुषार्थ पूर्ण उक्ति है।

ख सिर सरजस न पलस न रमाउव लाइ लाज्जा पणइ न समाज्ह [2]
ग काइ न नाइक निन्दिया साइ।
घ मामाय विगमउ करम-विराउ —
ङ थिक थिक ए एय समार।

१—भारतीय विद्या, वर्ष ?, अङ्क ?, पृ० ८, टवणि ८, पद १०६।
२—मरुभारत-बादशाही राम, पृ० ६६ पद १४७।
३—वही ग्रन्थ, पृ० १०३, पद ८२।

प्रस्तुत रास मे गेयता है। वस्तु प्रवाह के साथ गेयता का मिश्रण रास का सौन्दर्य और बढा देता है। भरतेश्वर बाहुबली रास विविध रागो मे बधा है अत यह अनेक प्रकार से गाया जा सकता है। अधिक विस्तार से होने से समयाधिकता सम्भव है, परन्तु इसके प्रवाह को देख कर किसी भी वीर के भुजदण्ड फडक उठेंगे।

भरतेश्वर बाहुबली रास भाषा, रस व्यजना, अलकार-योजना और छंद-योजना आदि की दृष्टि से भी पर्याप्त महत्व का कृति है।

भाषा विचार —भरतेश्वर बाहुबली रास की भाषा देसिल बयना सब-जन मिट्ठा' उक्ति की सार्थकता सिद्ध करती है। भाषा का शब्द चयन ध्वन्यात्मक और अनुप्रासात्मक है। अत काव्य की नादात्मकता स्पष्ट है। शब्द जैसे एक ही साचे म ढले है। पुरानी गुजराती और पुरानी राजस्थानी दोनो ही विभाषाए इसे अपना काव्य कहती है। परन्तु अधिकाश शब्द राजस्थानी के ही है। साथ ही अपभ्रश के परवर्ती रूपो का भी प्रभाव है। भाषा का कुछ परिचय इस प्रकार है —

उत्तर अपभ्रश —रिसय, जिणेसर, नयर, भरह, पयड, वक्क, रयण, गयवर, आदि। क्रियाए —विज्जीय, मिल्लीय, चल्लीय, उल्लीय के साथ धूजीय, चालीय आनीय, चलिय आदि रूप सरल राजस्थानी के हैं।

राजस्थानी व जूनी गुजराती —वात, परवस, धारो, कुमर, आणाद धूजीय, गाजत, गणह, भणह, दडवडत, अडवडह, धडधडत, आगलि, निहाण, गयण, भाण, दलहि, भिड त, सिउ, तणों, गमो, ढामो, जिसणइ, मिलाउ, मुजभाण, लमु, पठवियइ आदि सज्ञा एव क्रियाओ के रूप।

पुराने शब्द —पणमवी, समरेवि, नमिवि, नरिन्द, बधवह, भणिपु, रासह, छण्हि रयणिहि, रासय, रामु, नितु, काड, भडार, नर आदि शब्द हेमच द्र के अपभ्र श रूपो म शुद्ध प्रत्यय वाले शब्द है, पर साथ ही भाषा म नये शब्दो का भी समावेश अपभ्र श के सस्कार से हुआ है।

नये शब्द —पय, बार, वरिस, हिव भासिहिं, साभलउ, गच्छ सिण गार, पाटभर, तीणि तणउ, फागुण, छण्हिं आदि मे नूतनता का आग्रह स्पष्ट है।[1]

तत्सम शब्द —प्रस्तुत कृति म पुराने रूप धीरे धीरे कम, होत गये है

---

[1]—देखिये—भरतेश्वर-बाहुबली रास—श्री गाधी।

और उनके स्थान में प्रयुक्त तत्सम शब्दों की आयोजना[1] द्रष्टव्य है यथा-चरित्र, मुनि, निरंतर, गुरु-चरण, अमर पुरी, पुण्य गण भंडार आदि।

प्रस्तुत रास की भाषा परिवर्तन के इन नियमों का तथा ध्वनियों आदि के परिवर्तन पर स्वतन्त्र रूप से भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण की अपेक्षा है। उक्त उदाहरणों द्वारा यह तो जाना ही जा सकता है कि भाषा सरल पुरानी हिन्दी है तथा प्राचीन राजस्थानी शब्दों की भरमार है। साथ ही अपभ्रंश अपना स्थान रिक्त करती हुई एवं तत्सम शब्द ग्रहण करती प्रतीत होती है। ११वीं शताब्दी की कृति गत्यपुराय महावीर उत्साह की तुलना में इस रचना की भाषा में पर्याप्त सरलता प्रतीत होती है। भाषा की सरलता के कुछ उदाहरण लीजिए —

क हा पुत्र भरह हा पुत्र वीर हा समरंगणि साहस धीर (१४४)
ख सामाय ! विसमउ करम विपाउ (१५७)
ग कहि कुण उपरि का अइ रागु। जि नीजइ नेवइ भागु (१५६)

रस-व्यंजना

भरतेश्वर बाहुबली रास में प्रधान रस वीर है परन्तु एक आश्चर्य यह है कि कवि ने वीरता की पीठ में शांत रस का समाहार किया है। यों भी कहें कि वीरता का उपशमन शम ने किया है। रास के निर्वेदपूर्ण अन्त में संसार, राज्य, शरीर और श्री की नश्वरता पर प्रकाश डाला है। रास में भरत बाहुबली आश्रय आलंबन, युद्ध की तैयारियाँ एवं उत्तेजक वचन उद्दीपन तथा परस्पर दोनों पक्षों में उदित उत्साह स्थायी भाव है। सेना वर्णन, रण वर्णन, युद्ध तथा योद्धाओं के शारीरिक स्वरूप अनुभावों और संचारियों के प्रतीक हैं। वीर रस, बीभत्स रस तथा शांत रस के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

वीर रस — क हींसइ हसमस हणहणइ तरवरंत हय थट्ट अपार
पायक पयभरि टलटलीय मइ भाग मम मणि मउड कुमार
ख सउ कडिय कमकलिउ कार कवाय कायानप
कवाड्डी विसरायाया करिवाल महाबल
ग जुडइ मिहर भडहडई लगि लडभडइ तहा लहि

1-A definite tendency to replace Apbhramsa form of words by its sanskrit equivalent comes in to existence-Gujrati and its literature by Sri K M Munshi-page 86

घ थथिय विन्नर कोडि पडीय हरगण हडहडिया
मारइ पुरडीय मू छ गाहि मम मच्छर भरिया [1]

घोर भयकर युद्ध हुग्रा, रक्त की नदी बह गई तथा वीभत्स का परिपाक हमारे सामने हा जाता है।

वीभत्स रस —क उड्डीय खेड न सूझइ सूरतवि जाणीय सवार असूरवडई
गुडह घड धावइ धसो, सणइ हणा हणि हाकइ इमो
* ख वहइ रुहिर नइ सिखर तरइ, टी टी टी रणि रापसु
करई। [2]

(रुधिर की नदी मे तैरने वाले सिरा को देखकर राक्षसा की भयानक आवाजें कर प्रसन्न हाना वीभत्स प्रस्तुत करता है)

शान्त रस —युद्ध के पश्चात् जब दोना भाइया म परस्पर "नेत्र युद्ध, जल युद्ध ग्रौर मल्ल युद्ध होता है, तो भरत हार जाते हैं ग्रौर क्रुद्ध हो बाहुबली पर चक्ररत्न से प्रहार कर बठते हैं। इस राज्य व दिग्विजय के लिए ग्रमर्यादित कार्य को देखकर बाहुबली का निर्वेद हो जाता है ग्रौर रास के वीर रस प्रधान सारे ग्रालम्बन शान्ति म बदल जाते हैं। इस एकाएक हुए परिवर्तन को विद्वान कवि ने बडे सभार से सजाया है जिसम कहीं भी रस बाध नहा हा पाता। उदाहरण द्रष्टव्य है —

धिक धिक ए एय ससार धिक–धिक राणिम राज रिद्धि
एवडु ए जीव सहार, की घड कुग्ग विरोध वसि [3]

अपनी पराजय जीव-हानि ग्रादि बाता ने भाई का अपने ही सहोदर पर धर्म युद्ध के स्थान पर चक्र का प्रहार एकाएक ग्रधर्म युद्ध था। इसी ग्रमर्यादित कृत्य ने ही बाहुबली के हृदय मे शम की सृष्टि करदी। वे दीक्षा ले लेते हैं। भरतेश्वर की ग्राखें ग्रासुग्रा से भर जाती हैं ग्रौर वह उनके कदमा पर लेट जाता है—

सिरि वरि ए लाच करेउ कासगि रहीउ बाहुबले
ग्रसुइ ग्राखि भरेउ, तस पणमए भरह भडो। [4]

उक्त उद्धरणा की भाषा सरल, पदावली सरस व छन्द गेयता प्रधान

१–भरतेश्वर बाहुबली रास, श्री गाधी पृ० ३८।
२–भरतेश्वर बाहुबली रास श्री गाधी पृ० १८१।
३–वही, पृ० ८२, ठवणि १४ पद १८३।
४–वही पृ० ८२ पद १८५।

है। इस ओज और माधुर्य का समन्वय हो आता है। काव्य में का श्रृंगार एवं वीरस प्रधानता ने वस्तु स्थिति को और भी सरस बना दिया है।

अलंकार

महाकवि चन्दबरदाई रासो का अलंकार योजना अनूठी है। यो पृथ्वी-राज प्रमुख युद्ध पर हो। सं० १२४९ में आरम्भ हुआ था। अनुप्रास यमक श्लेष आदि रस प्रधान युद्ध काव्य है ऐसा महत्वपूर्ण रासो ग्रन्थ की गाथा ने लिख दिया है। यह अनुप्रास प्रधान ही है।

अनुप्रास यमक श्लेष अलंकार में यमक श्लेष रूपक आदि का योजना सुन्दर है। अनुप्रास तो रासो का प्रत्येक पंक्ति में दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त दृष्टांत उदाहरण अतिशयोक्ति अत्युक्ति आदि कई अलंकारों का प्रयोग हुआ है। यह वर्णन में कवि का कौशल कहा जा सकता है।

अनुप्रास १ छेकानुप्रास—म स्य गमत स्वरर सुभाय स्याम जिमि गिरि ध ग नु

म हागड़ हमिमिगि हगड़गड़

म मरलमार मतार नु।

२ वृत्य — म मनाम स्परर मनाम स्परर मुरि र गर्जन

३ श्रुत्य

४ अन्त्य } — म मरम जिगमर मम जिगमर माम मगुमति

५ लाटानुप्रास— म गिरिगिरि गारत गंगरद म

म मना मंगिम मंगमण।

६ श्रुत्यानुप्रास— म मणीय मणि मग मण मणि वर गिरि धरिय

म वगि मुगि मु वानहि गंमनि वाचनि।

यमक — प्रमग — म वगि मुगि मु वार म गर गर गर रत उत्तरय

गमग — म मंगिय भारम भानि म भेरत भरत रत वरद

श्लेष — म वाम मुराय वानिमा लगुड

म पिरिय गिरिय िर पवनइन।

सन्देह — म वानर वार विरान।

म वानर मनि मदु।

उपमा एवं उत्प्रेक्षा — म जिमि ग्याधर मूर्ति जिमि गिरि मौर्गि मणि मनाद।

म मन कर कुन्द दानि रजि गति मणाय गिरि मवर

म चम्पीड माणिर धम मानि वरउ वाचने।

कवित जिसौं य रस चवर हारि चारन चवर।

अतिशयोक्ति —(क) कंपिय पय भरि गेप रहिउ विण साहि उन आइ तु
एवं अत्युक्ति मिर डोनाइइ धरणि हि ए टन टनीय ■ क गिरि श्र ग तु।

दृष्टान्त तथा-(क) महिय मणिमय दड मेघाड बर सिरि धरिय
उदाहरण जस पयड भुय दड जयवन्ती जय सिरि धमइए
(ख) विण बंधव सवि संपइ उणी जिमि विण लवण रसोइ भलूणी

इसी प्रकार व्यतिरेक, अपह्नुति, विभावना आदि के उदाहरण भी मिल जाते हैं—

छद-योजना

प्राचीन राम की छद-योजना बड़ी विस्तृत है, पर प्रमुख छद 'रास' है। 'रास नया छद' नही है। सस्कृत प्राकृत और अपभ्रश की छद-योजना पुरानी हिन्दी मे पूर्णतया सुरक्षित है। विशेष तौर से हिन्दी ने तो अपभ्रश के कई छन्दो को अपनाया है। अपनाया ही नहीं, उन्हें दुलार कर अपनी सम्पत्ति ही बना लिया है। रास छद में अब्दुल रहमान ने पूरा सदेश रासक लिखा। श्री शालिभद्र सूरि ने प्रारम्भ म ही अपना छद-गत मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है।

प्रारम्भ—कु हिव पभणिसु रासह छदिहिं
तं जण मण हर मन आणदहिं- भाविहिं भवीयण साभलमो
और साथ ही रचना की समाप्ति पर भी —

अत— गुण गणह ए तणउ भडार सालिभद्र सूरि जाणीइ ए
कीधउ ए तीणि चरित्र भरह नरेसर रासु छदिहिं

अन्य कवि का मन्तव्य तो राम छद के लिये स्पष्ट है, पर विद्वान् इस मत से सहमत नही। प्रारम्भ के अवतरणा म १६+१६+१३ और १६+१६+१३ मात्राओ की त्रिपदी मिलती है। इस प्रकार का मिश्र बध पूर्व कहा भी देखने में नहीं आया। नीचे की कड़िया सोरठा की हैं तथा 'उ' और 'ए' वर्णों के प्रयोग से ही रास छद की पहिचान की जा सकती है।[1] डॉ० हु० च० भायाणी रास में अनेक छद मानते हैं जिनका उल्लेख रास परम्परा विवेचन मे पहिले किया जा चुका है। श्री अगरचन्द नाहटा 'रास' छद को अनेक छदो का मिश्रण स्वरूप नहीं मान कर एक स्वतत्र छद मानते हैं। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

१—आपणा कवियो, श्री के० का० शास्त्री, पृ० १६०।

रासक को २१ मात्राओं का छंद माना है। प्रमाण में वे संदेश रासक का यह छंद उद्धृत करते हैं—

'तू जि पहिय पिक्खविणु पिय उक्कंठिरिय
मंथर गय सरला दवि उत्तावली चलिय
तुहमणहर चल्लतिय चंचल रमण भरि
छुडवि खिसिय रसणावलि किंकिण रव पसरि—'[1]

पर संदेश रासक के इस छंद को प्रस्तुत रास छंद से मिलाने पर अन्तर दिखाई पड़ता है—

उत्तू ए चतन नाणु राउ विहरइ रिसहेस सिउ ए
माथिउग मरह नरिंद मिउ परणहिं अपमाणुरिए

दोनों की मात्राओं में पर्याप्त अन्तर है। अतः स्पष्ट है कि इस रास छंद का निम्न लक्षण रासक के छंद से सर्वथा भिन्न है और सम्भवतः इसी भिन्नता के कारण श्री के० का० शास्त्री ने 'इस प्रकार का मिश्र बंध पूर्व देखने में नहीं आता' लिख दिया है।

डॉ० द्विवेदी लिखते हैं कि—'विरहांक ने अपने वृत्त जाति समुच्चय में दो प्रकार के रास काव्यों का उल्लेख किया है। एक में विस्तारित या द्विपदी और विचारी वृत्त होते थे और दूसरी में अडिल्ल, दोहा, ढक्का और ढोसा छंद हुआ करते थे।'[1] अतः बहुत सम्भव है कि प्रस्तुत रास छंद इन्हीं दो प्रकारों में से एक हो, यद्यपि द्विपदी इसमें भी मिलती है।

परन्तु इस रास छंद की निम्न अय स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं प्रतीत होती सम्भावित स्थिति के आधार पर कवि की ही उक्ति का मूलाधार माना जा सकता है और तब इस छंद को 'रास' कहने में कोई आपत्ति नहीं लगती।

आलोच्य रास के छंदों का परिचय इस प्रकार है—

सोरठा—मतिसागर ! निसि राज चक्र न पुरि प्रवेसु करइ
जि भरहरइ राजि धुरि धरीह धोरि धुरई

षटपद—चौपाई अडिल्ल का ही दूसरा रूप है—

चंद्रचूड विज्जाहर राउ निसि यातइ मनि वहइ विसाउ
हा कुल मंडन ! हा कुलवीर ! हा समरंगणि साहस धीर[3]

१–हिन्दी साहित्य का आदिकाल, श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १००।
२–भरतेश्वर-बाहुबली रास श्री गांधी पृ० ६६।
३–वही, पृ० ३८, पद ६३।

वस्तु——एक प्रसिद्ध छंद वस्तु का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है।

५ चरणों के इस छंद में नीचे के दो चरणों की मात्राएं तो दोहे की ही भांति २४ होती हैं। नीचे के दो चरण, लगता है कि, दोहे की ही भांति है –

राउ जपइ राउ जपइ सुणि न सुणि दूत
भरह खंड भूमि सरह भरह राउ अम्ह सहोदर
मंत्रि महाधर मंडलिय, अंतेउर परिवार
सामंतह सीमाउ सह वहिन मुकुदान विचार

अन्तिम दो चरण बिल्कुल दोहा के ही है। इसके प्रथम चरण में (ऽ।) और १५ मात्राएं, द्वितीय चरण तथा तृतीय चरणों में १३+१५=२८ मात्राएं होती है। मात्राओं की कुल संख्या ११६ हैं। प्रथम चरण की सात मात्राओं की प्राय आवृत्ति कर दी जाती है। उस अवस्था मे प्रथम चरण म २२ मात्राए हो जाती हैं। [1] वस्तु छंद पर विचार करते हुए एक दूसरे विद्वान् ने इसका संस्कृत नाम वस्तुक या वस्तु तथा अपभ्रंश नाम वत्थुअ या वत्थु किया है। इसका दूसरा नाम रड्डा भी है। छंद शास्त्र मे इसके अनेक भेद किए गये है। प्राचीन राजस्थानी साहित्य में विशेषत जैन साहित्य म इसका खूब प्रयोग हुआ है। [2]

इन छंदों के अतिरिक्त गौण रूप म निम्नांकित छन्दों का प्रयोग भी हुआ है —

नाटक या त्रुटक——इस छंद के चरण भी ६ ही होते हैं—

वर वरई सर्यवर वीर, आरेणि साहस धीर
मडलीय मिलिया जान, हय हास मगल गान

हय हास मगल गानि गाजिय, गयण गिरि गुह गुम गुमद
धम धमीय धरयल ससीय न सक्कइ, ससे कुल गिरि कम कमई
धस धसीय धायइ धार धावलि, धार वीर विहडए
सामंत समहरि समु न लहइ, मडलीक न मडए [3] (१४५)
प्रस्तुत रास म यह छंद कई बार आया है।

सरस्वती धवल ——इस छंद को धवल भी कहते है। इसमे चार चरण होते हैं—
'राहोउ राउत जाइ पातालि, विज्जाहर विज्जा बलिहि

१–देखिये–राजस्थान भारती, भाग ४, अङ्क १, परिशिष्ट २, पृ० ८८।
२–भरतेश्वर-बाहुबली रास, श्री गाधी, पृ० ३८, पद ६३।
३–भारतीय विद्या, सम्पादक श्री मुनि जिनविजय, वर्ष २, अङ्क १, पृ० १४, पद १४५।

घत्त पहूचरा पूठि तिणि तालि, वानए वनवाय सहस नरवा
रे र रहि रहि सुग्रीउ राउ, जित्थु जाइसि तित्थु मारिसु ए
तिहुयणए काइन मचइ मयाय जय जापिम जीणइ जीवइए[1]

ठवणि—प्रस्तुत रास में ठवणि प्रयोग कई जगह आया है। जो संस्कृत स्थापनी शब्द का अपभ्रंश है। यह कोई छन्द विशेष नहीं है। मात्र नये छन्द की स्थापना करने या छन्द बदलने के लिये प्रयुक्त हुआ है।

निष्कर्षत: भरतेश्वर बाहुबली रास में इतने ही छन्द प्रयुक्त हुए हैं। आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की रास परम्परा अन्य सब काव्य रूपों या काव्य परम्पराओं से भिन्न है। १३वीं, १४वीं और १५वीं शताब्दी के अनेक प्रकाशित, अप्रकाशित तथा अप्रसिद्ध रासों का अध्ययन आगे के पृष्ठों में प्रस्तुत किया जायगा। अनेक जैन भण्डारों में अद्यावधि उपलब्ध सैकड़ों जैन रासों में सबसे प्राचीन यही भरतेश्वर-बाहुबली रास है। इस सम्बन्ध में लेखक का एक शोध निबन्ध प्रकाशित भी हो चुका है।[2] रास का सरल और सुसम्पादित पाठ यहां दिया जा रहा है जिससे उसके काव्य-सौष्ठव का अध्ययन किया जा सकता है।

१—भरतेश्वर-बाहुबली रास, श्री गांधी, पद्य १५०।

२—हिन्दी अनुशीलन वर्ष अङ्क सप्तक का भरतेश्वर-बाहुबली रास एक अध्ययन, शोधक लेख।

तिणि दिणि आउधसालह् चक्को, आवीय अरोपण पडीय धसक्को
भरह् विमासइ गह्गहीउ ॥ १३ ॥
धनु धनु हू घर मडलि राउ, आज पढम जिणवर मुझ ताउ
केवल लच्छि अलकीयउ ॥ १४ ॥
पहिलु ताय पाय पणमेसो, राज रिद्धि राणिमा फल लेसो
चक्करयण तव अणमरउ ॥ १५ ॥

❀

वस्तु—चलीय गयवर चलीय गयवर, गडीय गज्जत
हू पत्तउ रासभरि, हिण हिणत हय थटट हल्लीय
रह् भय भरि टल टलीय मेरु, मेमुमणि मउड खिल्लीय
सिउ मरुदेविहिं सचरीय, कुंजरी चडिउ नरिंद।
समोसरणि सुसरि सहिय, वदिय पढम जिणंद॥
पढम जिणवर पढम जिणवर, पाय पणमेवि
माणंदिहि उच्छव करीय, चक्करयण बलि बलिय पुज्जइ
गडयड त गजकेसरीय, गरुय नहि गजमेह गज्जइ
वहिरीय अम्बर तूर रवि बलिउ नीसाणे थाउ
रोमचिय रिउ रायवरि, सिरि भरहेसर राउ ॥ १७ ॥

ठवणि १

अहि उगमि पूरवदिसिहिं, पहिलउ चालीय चक्क तु
धूजीय धरयन धरहर ए, चलीय कुलाचल चक्क तु ॥ १८ ॥
पूठि पीयाणु तउ दियए भयवलि भरह नरिंद तु
पिंडि पवाणल परदलह्, इलियलि अवर सुरिंद तु ॥ १९ ॥
कज्जीय समहरि संचरीय, सनापति सामत तु
मिलीय महाधर मडलीय, गाढिम गुण गज्जत तु ॥ २० ॥
गडयडतु गयवर गुडीय, जगम जिम गिरिश्रग तु
सुंड दंड चिर चालवइ, वलइ अंगिहिं अङ्ग, तु ॥ २१ ॥
गजई फिरि फिरि गिरि सिहरि, भजइ तरुवर डालि तु
[illegible]क्स नसि आवइ नही य, करइ अपार अणालि तु ॥ २२ ॥
हीसइ हसमिसि हणहणइ ए तरवर तार तोषार तु
खूदई खुरलइ खडवाय, मन मानइ असुवार तु ॥ २३ ॥

भरतेश्वर-बाहुबली रास

(शालिभद्र सूरि, सं० १२४१)

रिसह जिणेसर पय पणमेवी सरसति सामिणि मनि समरेवि
नमवि निरंतर गुरु-चरणा ॥ १ ॥

भरह नरिंदह तणु चरित्तो, जं जुगि वसहा-वलय वदीतो
बार वरिस बिहुं बंधवहं ॥ २ ॥

हूं हिव पभणिसु रासह छंदिहिं तं जन मनहर मन आणंदिहिं
भाविहिं भवियण सांभलेउ ॥ ३ ॥

जंबूदीवि उवझाउरि नयरो, धणि कणि कंचणि रयणिहिं पवरो
अवर अवर किरि अमरपुरो ॥ ४ ॥

भरह राउ तहिं रिसह जिणेसर, पावतिमिर भय-हरण दिणेसर
तजि तरणि कर तहिं तपइये ॥ ५ ॥

नाभि सुनंद सुमंगल देवि, राय रिसहेसर राणी बवि
रूवरेहि रति प्रीति जिन ॥ ६ ॥

बिन्नि बेटी जनमी सुनन्द, तह जि तिहूयण मन आनन्द
भरह सुमंगल रवि तणु ॥ ७ ॥

दवि सुनन्द नंदन बाहूबलि, भजइ भिडइ महाभड भूयबलि
अवर कुमर वर वीर धर ॥ ८ ॥

पूरव लाख तणि तयामो, राजतणा परि पुहवि पयामी
जुग जुग मारग नासाउ ए ॥ ९ ॥

उवझाउरि भरहेसर थाराय, तक्षशिला बाहूबलि आराय
अवर अठाणु वर नयर ॥ १० ॥

दान दियइ जिणवर संवत्सर विसय विरत्त वहइ संजमभर
सुर असुरा नरि सवीइग ॥ ११ ॥

परमताल पुरि केवल नाणु तस ऊपन्नू प्रगट प्रमाणु
जाण हवु भरहेसरहं ॥ १२ ॥

पाखर पखि कि पखरय, ऊडाउडहिं जाइ तु
हुंफइ तलपई ससई धसइ, जडई जकारीय धाइ तु ॥ २४ ॥
फिरई फेकारई फोरणई, फुड फेणाउलि फार तु
तरणि तुरंगम सम तुलई, तेजीय तरल ततार तु ॥ २५ ॥
धडहडत धर द्रम द्रमीय, मह रूभइ रहवाट तु
रव भरि गणई न गिरि गहण, थिर थोभइ रहवाट तु ॥ २६ ॥
चमर चिंध धज लहलहइ ए, मिल्हइ मयगल माग तु
वेगि वहंता तीह तणइं ए, पायल न लहइ लाग तु ॥ २७ ॥
वडवडत दह दिसि दुसह ए सरिय पायक चक्क तु
अ गो अ गिइ अ गमइ अरीयणि असरिण अणंत तु ॥ २८ ॥
तावइं तलपई तालि मिलिंहि, हणि हणि हणि पभणंत तु
आगलि कोइ न अछइ भलु ए, जे साहमु झूझंत तु ॥ २९ ॥
दिसि दिसि दारक संचरीय, वेसर वहइ अपार तु
संख न लाभइ सेंन तणी, कोइ न लहई सुधि सार तु ॥ ३० ॥
बंधव बंधवि नवि मिलइ ए, न बेटा मिलइ बाप तु
सामि न सेवक सारवइ, आपहिं आप विआप तु ॥ ३१ ॥
गयवडि चडीउ, चक्कधरो पिडि पयड भूयदंड तु
चालीय चिहुदिसि चलचलीय दिंदं देसाहिव दंड तु ॥ ३२ ॥
बज्जीय समहरि द्रम द्रमीय, धण निनाद निसाण तु
सकीय सुसरि सग्ग सवे, श्रवरह कमण प्रमाण तु ॥ ३३ ॥
ढाकडूक ढवक्क भणइ ए, गाजीय गयण निहाण तु
घड धडहड घडहडिवइ, चालतु चमकीय भाण तु ॥ ३४ ॥
भेरीय रव भर तिहुँ भूयणि, साहित किमइ न माइ तु
कंपिय पय भरि शेष रहिउ, विण साहीउ न जाइ तु ॥ ३५ ॥
सिर डोलावइ धरणि हिं ए टूक टोल गिरि तुंग तु
सायर सयल वि झलझलीय, गहलीय गग तुरंग तु ॥ ३६ ॥
धर रवि छूदीय मेहरवि महिपति मेहधार तु
उजू आनइ आउध तणई थानई राय-क्वार तु ॥ ३७ ॥
मंडिय मंडलवइ न मुहे ससि न क्वइ सामंत तु
राउत राउतवर रहीय, मनि मू झई मतिवंत तु ॥ ३८ ॥

मटक न मनगिर्हि मर तगु, मानइ भेम्नि मिद्दन तु
रैनइ रयणायर जमन, राणोराणि नमत तु ॥ ३९ ॥

माठि महस मवच्छरई भरन्म मरइ ध मण्ड तु
ममरगणि माथइ मधर, वरनइ माग्ग अगण्ड तु ॥ ४० ॥

बार वरिस नमि जिनमि, मह मिदीव तालाराय माग तु
मावार्मी तहि गग तगइ पामद नवह निहाग्ग तु ॥ ४१ ॥

छत्रीम महम मउग्घ मिठ, चउग्न रयग्ग मम्मत तु
माविउ मगा भोगजोय, ग्न सम्म धरगाउ तु ॥ ४२ ॥

ठवगि २

तउ तिहि माग्ग मान मारइ माग्धराग्न नवि
तिगि गिगि मगि सूयान मग्न भयग्न नावावद्दमो ॥ ४३ ॥

मारिरि वन्य मगानि मन्नू माराय मग्निगि वरइ ग
मनि उनरात मवानि, मागर ग्न वरि नायहू ग ॥ ४४ ॥

मति मागर पिगि वानि मवर त (न) पुरि पऽवम वरइ
तइ जि मम्पाइ इ राजि धाराय धर धरीउ धरग्न ॥ ४५ ॥

ग्व हि ममाठ ग्य मवगि हि गनव मानर्गिहि
ग्उ मम्नि न मुम भड मयराय वार न नाम्हि ग ॥ ४६ ॥

मानइ मन्नि मयक ममनि मामीव मग्न धरी
मवर नग्न वाइ मधू वनरयग्ग ग्न्ना तगुउ ॥ ४७ ॥

मंवाय मुरवर मामि मरग्मर नूय नूय मवगे
नाम्म नि मुग्गाय नामि दानर मानर वहि मवगि ॥ ४८ ॥

नमि मानइ नूम माग वाग्गनि गिहू वाहुवे
धीरग्न वयर विनाग्ग * विममा वग्न्न वीर वरा ॥ ४९ ॥

तीगि वारगि नरग्न, चक्र न मानइ नीय नयरे
विग्ग वधव नृय मर महू वाग्न मामीय माचवइ ग ॥ ५० ॥

॥ ति मुगीय नागग्न नानि वगाउ राग्न मराम भर
ममइ चग्नाव्राय मानि पभगुग्न माग्नि मूढि मूग्न ॥ ५१ ॥

जुन मानग्न मम माग्ग मवग्ग मु धन्नीइ वाहुमन
नानइ नमु ग राग्ग मनग्न मुत्र मारिहि मिमिय ॥ ५२ ॥

॥ मंति-सागर मंति, वलि वसुहाहिव वीन वइ
नवि मनि कीजइ खंति, बाधव सिउ किहि कवण बला ॥ ५३ ॥
दूत पठावीयइ देव, पहिलउ वात जणावीइ ए
जु नवि आवइ देव, तु नरवर करवई करउ ॥ ५४ ॥
तं मनि मानीय राउ, वेगि सु वेगह, आप-सइए
जईय सुनंदा-जाउ, आणु मनावे आपणीय ॥ ५५ ॥
जां रथ जोगीय जाइ, सुजि आऐसिहिं नरवरह
फिरि फिरि साहमु थाइ, वाम तुरीय वाहणि तणउ ॥ ५६ ॥
आजल-काल विराल, आवीय आडिहिं उतरइ ए
जिमणउ जम विकराल, खरू सु रव उछलीय ॥ ५७ ॥
सूकीय बाउल डालि, देवि बइठीय सुर करइ ए
झपीय झाल झमालि, धूक पोकारइ दाहिण मो ॥ ५८ ॥
डावीय डगलइ सादि, भयरव भैरव सु करइ ए
जिमणइ इगमइ विषादि, फिरीय फिरीय शिव फकरइ ए ॥ ५९ ॥
वइ जखनइ कालीयार, एकउ वेडु उतरइ ए
नीजलीउ अंगार ~ सवरता साहमु हुइ ए ॥ ६० ॥
काल भुयंगम वान, दतीय दमण दाखवइ ए
माज अखूटउ वाल, फूटउ रहि रहि इम भणइ ए ॥ ६१ ॥
जाइ जाणी दूत, जीवह जोखि, आगमइ ए
जेम अमतउ भूत, गिणइ न गिरि गुह वण गहण ॥ ६२ ॥
सईह नेसमि वेस न गिणइ नइ दह नीझरण
लघीय देस अनेस गाम नयर पुर पाटणह ॥ ६३ ॥
बाहरि बहुय आराम सुरवर नइ ता नाभरण
मणि तोरण अभिराम रेहइ धवलाय धवलहरो ॥ ६४ ॥
पोयण पुर दीसति दूत सुवेग गहरा हीउ
व्यवहारीया वसति, धणि कणि कचणि मणि पवरो ॥ ६५ ॥
घरणि तरणि ताडंक, जेम तु ग तिगडु लहइ ए
एह कि अभिनव लक सिरि कोसीसा कणयमय ॥ ६६ ॥
पोढा पालि पगार, पाणी पार न पामीई ए
संख न सोहइ यार, दीसई देउल दह दिसिइ ॥ ६७ ॥

पेसवि पुरह प्रवसु, दूत पहूतउ रायहरे
सिउ प्रतिहार प्रवसु पामीय नरवर पय नमइ ए ॥ ६८ ॥
चउरीय माणिव थम माहि बइट्ठउ बाहुबले
हरिहिं जिसीय रम, चमर-हारि चालइं चमर ॥ ६९ ॥
मठीय मणिमइ दड, मेघाडम्बर सिरि धरिय
जस पयडे भूयुदडि, जयावती जयसिरि वसइ ए ॥ ७० ॥
जिम उग्याचलि सूर, तिम सिरि सोहइ मणिमुकुटो
मगतुरीय कुसुम कपूर, कुचूवरि महमहइ ए ॥ ७१ ॥
झलकइ ए कुडल कानि, रवि ससि मडीय किरि मगर
गगाजल गजग्गनि, गाजिम गुण गज गुडमडइ ए ॥ ७२ ॥
उरयरि मोतीय हार वीरवयल करि झलहलइ ए
तवन म गि सिणगार सलक ए टोडरवामा ॥ ७३ ॥
पहिरणि जाम्र चीर वखानइ वरिमाल भर
गुरुउ गुणि गमीर, दीठउ अवर वि चक्कधर ॥ ७४ ॥
रजिउ चिति सु दूत दमीय रणिम तसु तणीय
धन रिसहरपूत जयवतु जुगि बाहुबले ॥ ७५ ॥
बाहुवलि पूछइ भुवण, काजि तुहि आवीया ए
दूत भणइ निज काजि भरहेसरि अम्हि पाठव्या ए ॥ ७६ ॥
वस्तु—राउ जपए, राउ जपइ मुणि न मुणि दूत
भरहभड भूमीसरह, भरह राउ अम्ह सहोयर
सवावाहि कुमरिहि सहाय, सुरकुमर तहि अवर नरवर
मंति महाधर मंडलिय भ ततरि परिवारि
सामतहसीमाड सह वहि न कुसल सविचार ॥ ७७ ॥
दूत पभणए, दूत पभणइ, बाहुबलि राउ
भरहसर चक्कधर, वहि न कवणि दूहवणह किज्जइ
जिहु तहु बधव तूय सरिसगडयड त गज मोम गज्जइ
अइ अ धारइ रवि किरण, भड भजइ वर वीर
तु भरहेसर धमर भरि जिप्पइ साहसी धीर ॥ ७८ ॥

ठवणि ३

वगि सुवेगि सु बुल्लइ, सम्भलि बाहुबलि

राउत कोइ तुह तुल्लइ, ईणिइ अछइ रवितलि ॥ ७९ ॥

जा तव बंधव भरह नरिंदो, जसु मुइ रूप सम्मि सुरिंदो
जोलइ जोता भरह छ खंड, म्लेच्छ मनाव्या आण अखंड ॥ ८० ॥

भडि भडत न भुयबलि भाजइ, गडयडतु गढि गाढिम गाजइ
सहस बतीस मउडाधा राय, तू य बंधव सवि सेवइ पाय ॥ ८१ ॥

चऊद रयण घरि नवइ निहाण, सख न गयघड़ु जसु केकाण
हूय हवडा पाटह अभिषेका, तू य नवि आवीय नवण विवेका ॥ ८२ ॥

विण बंधव सवि सपय ऊणा जिम विण लवण रसोइ अलूणी
तुम देखण उतकंठिउ राउ, नितु नितु वाट जोइ तुह भाउ ॥ ८३ ॥

वडउ सहोयर भनइ वड वीर, देवज प्रणमइ साहस धीर
एक सीह मनइ पाखरीउ, भरहेसर नइ नह परवरीउ ॥ ८४ ॥

ठवणि ४

तु बाहूबलि जपइ कहिं वयण म कातु
भरहेसर भय कपइ, ज जगतु सातु
समरंगणि तिणि सिउ कुण नाछइ, जहि बंधव मइ सरिसउ पाछइ
जावत जंबूदीवि तसु आण, ता अम्ह कहीइ कवण ए राण ॥ ८६ ॥

जिम जिम सुजि गढ गाढिम गाढउ, हय गय रह वरि करीय सनाढु
तस अरधासण आपइ इंदो, तिम तिम अम्ह मनि परमाणंदो ॥ ८७ ॥

पुन आव्या अभिषेकह वार, तु तिणि अम्ह नवि कीधा सार
वडउ राउ अम्ह वडउ जि भाई, जहिं भावइ तिहां मिलिसिउ जाइ ॥ ८८ ॥

अम्ह ओलगनी वाट न जोई, भड भरहेसर किंकर न होइ
मझ बंधव नवि फीटइ कीमइ लोभीया लाज भणइ लख ईम्हई ॥ ८९ ॥

ठवणि ५

मालिम लाडसि वार बंधव भेटीजइ
चूकि म चीति विचार मूय वयण सुणीजइ ॥ ९० ॥

वयण अम्हारू तुय मनि मानि, भरह नरेसर गणि ठाजदानि
संतूठउ दिइ कवण भार, गयघड तेजीय तुरल तुखार ॥ ९१ ॥

गाम नयर पुर पाटण आपइ, देसाहिव थिर थोभीय थापइ
देय प्रदेय न दतु विमासइ, सगपणि कह नवि किंपि विणसइ ॥ ९२ ॥

जाण राउ मानमिउ जागइ, माणगहार विराधिइ मारइ
मतिरमव प्रगट प्रति पाजइ आरधिउ नयि भद्री विमरावइ ॥ ९३ ॥

तिणि सिउ दव न वाजइ ताढउ, मुजि मनाविइ माडम माडउ
ई हितकारणि कहुं मुजाण [redacted] कहूं [redacted] भरहेसर माण ॥ ९४ ॥

वस्तु

राउ भणइ, राउ अंतर गुणि न मुणि दूत
सविहिं महोड मानहनि त जि साप भवि भविहिं पामइ
ईमइ नीसत नर ति (नि) पुण, उत्तमाग जण जणह नामइ
मम पुरन्दर सुर मसुर तिह न मयइ कोइ
नमइ मधिन न उग पणि भरहसर बुण हाइ ॥ ९५ ॥

ठवणि ६

नेगि निरसित नगि परि मंन्दिर जनि परि जंगलि गिरि द्रुम कन्दरि
निगि निगि देसि देसि दीपतरि महाउ नामइ बुगि सयरइ परि ॥ ९६ ॥

परिरि दूत गुणि देवन दानय, महिमडणि मंडल वेमानय
कोइ न लयइ लहीपा लीह, नामइ मधिव न उद्धा दीह ॥ ९७ ॥

धण मण कंचण नवइ निहाण, गयवड तेजीय तरल केकाण
सिर सरवस मरतंग गमीजइ, ताइ निमत्त पणइ न नमीजइ ॥ ९८ ॥

ठवणि ७

दूव भणइ पहुमाई पुभिहि पामीजइ
पइ गामीजइ भाई मम्ह कहाउ कीजइ ॥ ९९ ॥

मवर मठाणू धु जई पहिरू मिगसिइ नु तुम मिलिउ न सयलु
यहि विनव पुण कारणि काजइ भाम न निगमि यार बनाजइ ॥१००॥

बार वरसह वरसण कीजइ ईणि कारणि जई बहिरा मिनाइ
जाइ मन सिउ वात विमासो, भागइ वाम्भ वात विणामा ॥१०१॥

मिलिउ न विहा मम्ह मेलावइ तउ भरहेसर तइ तेनाइइ
माण रखे कोइ मूक करे सिर सहू काइ भरह जि हियडइ परेसिइ ॥१०२॥

गाजंता गाढिम गज भीम, त सवि देमह लीधा सीम
मरह मछइ भाइ मोनावउ, तउ तिणि सिउ न करीजइ दाजउ ॥१०३॥

वस्तु

तव सु जपइ तव सु जपइ, बाहुबलि राउ
मप्पह बाह भजा न बल,• परह् आम कहइ कवण कीजइ
सु जि मूरख भजाए पुण अवर दखि वरवयइ ति गज्जइ
हु एवल्लउ समर भरि, भड भरहेसर धाइ
भजउ भुजबलि रे भिडिय, भाह् न भडि न धाय ॥१०४॥

ठवणि ■

जइ रिसहेसर केरा पूत, अवर जि अम्ह सहायर दूत
ते मनि मान न मेल्हइ कीमइ, मानईयाएणम भखिपि ईम्हइ ॥१०५॥
परह् भाम किणि कारणि कीजड, साहस सउ वर सिद्धि वरीजइ
हीउ मनइ हाय हत्थीयार, एह जि वीर तणउ परिवार ॥१०६॥
जइ कीरि सीह सियालिइ खाजइ, तु बाहुबलि भूयबलि भाजइ
तु गाइ वाघिणि पाई जइ, मर दूत सु भरह जि जोपइ ॥१०७॥

ठवणि ६

जु नवि मण्णसि आण, बरबह बाहूबलि
लसिइ तु तू प्राण, भरहसर भूयबलि ॥१०८॥
जस छनवइ कोडि छइ पायक, कोडि बहुतरि फरकइ फारक
नर नरवर कुण पामइ पारा सहा न सकीइ सेना भारो ॥१०९॥
जीवता विहि सहू सपाडइ, जु तुडि चडिसि तु चडिउ पवाडइ
गिरि कंदरि मरि छापिउ न छूटइ तू बाहुबलि मरि म अखूटइ ॥११०॥
गय गद्दह हय हड जिम अन्तर सीह सीयाल जिमिउ पन्तर
भरहेसर अनइ तूम विहरउ, छूटिसि किम्हइ करत न निहरु ॥१११॥
ससमु सु पि मनाजि न भाई कहि कुणि कूडी कूमति खिलाइ
मु झि म मूरख मरि न गमार पय पणमीय करि करि न समार ॥११२॥
गढ गजिउ भड भजिउ प्राणि, तइ हिव सारइ प्राण विनाणि
अरे दूत बोली नवि जाण, तु ह आव्या जमह प्राण ॥११३॥
कहि रे भरहेसर कुप कहीय, मइ सिउ रणि सुरि असुरि न रहीइ
जे चक्किइ चक्रवृति विचार, अम्ह नगरि कू भार अपार ॥११४॥
मारणि गगा तीरि रमता घसमस धू धनि पडीय घमता

नइ उतारीय गयणि पट तउ, कग्गा कराय यना मालतउ ॥११५॥
त परि काइ गमार कोमार, तु तुहि चदिमा तु जाणिमि सार
जउ मतपुण मउड उतारउ, महिक रिन्नि जुन रयणय तारउ ॥११६॥
जउ न मारउ भरहेसर राउ, तउ भाजइ त्रिभुवण ताउ
मट भरहेसर अ॰ जगार इय मय गइ वर बगि पनार ॥११७॥

वस्तु

दूत जाए दूत जाए मुणि न मुणि राउ
गह निवम परि म न गिणुमि गन-मीरि मिल्लन जिणि निणि
पल्लंतइ न भारि जमु, मम माम मउगनइ पमि मणि
ईमई याण म मानि रगि, भरहेसर घड दूरि
भारापू वेडिउ मणु काजि उगतन मूरि ॥११८॥
दूत चल्लिउ दूत चल्लिउ कन्नाय नम जाम
मनिगरि पितविउ, मु पमाउ दूतह निवारए
भवर धरणु नुमर वर, वाइ माए पन्नु पधारए
तह न मनिउ मानिउ धनि भरहेसरि पामि
ममई म मानिय मंधिवन बपवगिउ म विमानि ॥११९॥

ठवणि १०

तउ कारिहि कनवराउ कान क म काना नउ
कनारइ कानवायउ करमान महाबल
कानए कनयनि कनगउत मउडाया मिनीया
कनह तगुइ कारणि परान कारिहि पज्जनाया ॥१२०॥
हुअ कानान्न गहगहाटि गयणगणि गज्जिय
संचरिया मामत भुण्ड मामहणाय मज्जीय
गहयह त गय गन्धाय गैनि गिरिवर मिर हारइ
गुणनीया गुनगार चनत करिय उतारइ ॥१२१॥
जुडइ भिडए मल्लउर मणि महमहइ सहामडि
घाणाय घुणाय घामवइ ननुमनि नान [नडा] डि
गुरतनि लागि मगति मणि तजाय तम्बरिया
समइ धमइ धमममइ माणि पयगइ पाखरिया ॥१२२॥
संधगन मेंगाणु कवा परडइ कडीयानी

रणरणइ रवि रण वजर मरवर घण घाघरीयानी
सीघाणा वरि झरइ फिरइ मरइ फाफारइ
उडइ माटइ भ मि गमि असवार विचारइ ॥१२६॥
थमि थामइ थहहडइ धरणि रथि सारथि गाढा
जडीय जाप जडजाड जरम्म मथाहि सनाडह
पसरिय पायल पूर पि पुण रलीया रयणार
साहू लहर वर वीर वयर थह्वटिह अवायर ॥१२७॥
रमणीय रवि रण तूर तार नवप वह नहीया
ढाक हूक ढम ढमीय ढाक राउत्र रहरहीया
नेच नीसाण निनादि नीभरण निरभीय
रण भेरी भुंकारि भारि भूयवर्निहि वियभीय ॥१२८॥
चल चमाल करिमान धुच रउतत्र वाग्ड
झलवइ सावल सवर सेल हूर मसम पयंड
मागिणि गुण टकार महित वाणावलि तणइ
परशु उलालइ धरि धरइ भारा उलालइ
तीरीय तोमर भिडमाल डबतार वमबध
भागि सक्ति सरमारि छुरीय मनु नागसिवध
हय खर रवि उछलीय खह छाईय रविमडल
धर धूजइ धमकलीय कोल कापिउ काहंगल
टलटलीयम गिरिटेक टोन खेचर खरभलीया
कडडाय कूरम कधमंधि सायर भनहलीया
चलीय ममहरि सेस मिसु सलसलीय न सक्कइ
कवण गिरि कधार भरि कमकमीय कमक्कइ ॥१२९॥
कपीय किनर काढि पढाय हरगण हडहडीया
सक्किय सुरवर सभि सयन दाणव दडवडाया
अति अलव लहकइ अनव बल विध चिहु दिसि
सचरिया सामत सीस सीकिरिहि वसाकसि
वाईय भरह नरिंद कटक मूछह बल घल्लइ
कुण वाहूवलि जे उ वरव भइ मिउ बल बुल्लइ
जइ गिरि कदरि विचरि वीर पइसतु न छूटइ
जइ घनो जगलि जाइ किम्हइ तु मरइ मसूटइ ॥१३०॥
गज साहूणि सचरीय महुणर वगाय पायणपुर

वांनीय वूव न वन्नायन्न बाहुबलि नरवर
तसु मतिमति नरह गढ मंभानीठ मानु
ए पतिमानित किड वाड भानति तइ भानु ॥१२१॥

वयव मिठ नरवार वाइ स्म अतर गावइ
नइ वधव नीय जाव जम बहि वाइ न समइ
तन मनि चितइ राय विमिड ए काम परांटीट
मानरी दवनि वार राउ रगाउ भ्रवागीठ ॥१२२॥

गय मानाया गत-गनउ गाजइ हय साम
हुइ हममम मरम्रान मरा आवाम
एकि निरंतर बहट नार एकि ईयणु आगुई
एक भानमिइ परतणु पाणु माणिड तृणु नागुई ॥१२३॥

एकि उत्तारा करावे मुरीय तनमार वावन
इकि भरहइ कवाणु माणु इकि भार रावइ
इकि नामीय नन नारि तौरि मनीय वानावइ
एकि वारू ममवार मार मागणु वनावइ ॥१२४॥

एकि मानुनाया तारि तरन तहि कनीय भनावइ
एकि गूढर मागणु मुख घडरा म्विरावइ
मारीव मामि न मामि मानिजिणु पूज पगामन
इमनुराय कुकुम कपूरि मगनि वनवामन ॥१२५॥

पूत वराड चकरयणु राउ, वम्न नू जाई
वानीय मम क्रमम गड आन्या मवि धाई
मडनवन मडप्य मु (मु ?) इह नामर मामवन
मन हूमि म्पिइ नवान वगुय वंकणु कलकमट् ॥१२६॥

वस्तु

दूत धनाउ दूत चनीड, बाहुबलि पामि
नगइ भूर नरवर नि मुणि, भरह राय पयमव बाजइ
नारिहिं नाम न कवीणु रीणु, एम निवंत भूत नारि मज्जइ
जर नवि मूरप एह तणी, मिरवरि आणु वहेमि
मिउ परिकरिइ ममर नरि, मटर मयरि महेमि ॥१२७॥

राउ बुल्लर, राउ बुल्लर सुणि न सुणि दूत
नार पाय पणुमतय मुख वयव अनि मरन नज्जइ

तु भरहेसर तसतणीय, महि न कीम अम्हि सुर विज्जइ
भारिइ भूयबलि जुन भिडउ, भुज भुज मडिवाउ
तउ लज्जइ तिहूयण धणी, सिरि रिसहेसर ताउ ॥१३८॥

ठवणि ११

चलीय दूत भरहेसरह तेय वात जणावइ
कोपानलि परजलीय वीर साहण पलणावइ
लागी य लागि निनादि वादि भारति असवार
बाहूबलि रणि रहिउ रोसि माडिउ तिणिवार ॥१३९॥

ऊड कडारण रणत सर बेसर फूटइ
अतरालि भावइ ई याण तीह म त अखूटइ
राउत राउति याध-याधि पायक पायक्किहिं
रहुवर रहुवरि वीर वीरि नायक नायक्किहि ॥१४०॥

वेढिक विढइ विरामि सामि नामिहि नरनराया
मारइ मुरडीय मूछ मेच्छ मनि मच्छर भरीया
ससइ मसइ धसमसइ, वीर घड वड नरि नावइ
रापस रीरा रव करति रुहिरे सवि रावइ ॥१४१

धापीय धुरइ नरकराडि भुयबलि भय भिरडइ
विण हथीयार कि वार एक दातिहिं दल करडइ
चालइ चालि चम्माल चाल करमाल ति ताकइ
पडइ चिंध झूझइ कबंध सिरि समहरि हाकइ ॥१४२॥

रुहिर रलितहिं तरइ तुरग गय गुडीय अमूझइ
राउत रण रसि रहित बुद्धि समरंगणि सूझइ
पहिनइ दिणि इम झूझ हवु सेनह मुख मडण
सध्या समइ ति वारणु ए करइ भट बिहु रण ॥१४३॥

ठवणि १२—हिव सरस्वती धउल

तउ तहिं बीजए दिणि सुविहाणि, उठीउ एक जी अनलवेगा
सइवड समहरे वरम ए बाणि, छयल सुत छलियए छावडु ए
अरीयण म गमइ अ गाम गि राउ तो रामति रणि रमइ ए
लडसड लाडउ चडीय चउरगि आरयणि सयवर वरइ ए ॥१४४॥

त्रूटक

वरवरइ सयवर वीर आरेणि साहस धार

मंडलीय मिलिया जान, हय हींस मगन गान
हय हांस मगन गानि गानाय गयण गिरि गुरु गुमगुमइ
घमघमीय घरयन सनाय न मरइ सन कुनगिरि कमकमइ
धस धसाय धायइ धारया वनि धार वार विन्हाए
सामत समहरि समु न नट्ट मडगाज न मडए ॥१४५॥

घटन

मडए माजए महियनि रा जाडिन रन घड टावइ ए
पिडिसर परदत भाव भड घन नरनए नाचवइ ए
हाम ककार ए वरि वरमार मानग झूमिहि मनहनइ ए
भाजए भड घ निन नन गान पचानण गिरि गडयड ए ॥१४६॥

मटव

गडयनन ननगनि माहु आरणि अरन अवीह
घमममाय हयगन धाव नटनडड भय भडिवाइ
मड-हडइ भय नदनार तुनवनि भराय हुन निम भीमरी
तहिं चड भूनह पुन परनंनि भपिड नरवइ नर नरगरी
घममनीय नग्गु वीर वीनमू नन मर निलान ए
रट्टु रट्टु र हयि हनि मगतु भनड पायक पाम्न ॥१४७॥

घटन

पाडीय मुक्कम सणावए दत पुट्ठिहि निहनाय रणरणाय
सूर कुमारह राट पत्रत निम्मए नृपन्ड वन
नयगिहि निरमीय हुनीमट रान चक्करदण वड मभरइ ए
मेल्हइए तह प्रति प्रति मरमाउ भनवना तहि चितवइ ए ॥१४८॥

नूरक

भितवन्पि मुन्नह रान जा भन उपुनऊ माउ
हिव मरण एन नि नाम रजइम चक्कृति जाम
रजनन्द चक्कृति नान इम भणि चतु हुट्टिहि पडरना
सचरिउ सूरन सूर महनि चतु पुन्चर तनि वना
पडपडाय नन्ग चड चून्नु, चन्दहदन मार ए
भरनीय भानि नमानि तुट्टिहि, चक्क तहि तहि राह ए ॥१४९॥

घटन

राठौड रान जाइ पानानि विन्नाटर विज्जा वनिहि

चक्र पहूचए पूठि तीणि तालि बोलए बलवीय सहम जसो
रे रे रहि रहि कुपीउ राउ, जित्यु जाइसि जित्यु मारिवु ए
तिहूयणि गाइ न मछइ उपाय जय जोपिम जीणइ जीवीइ ए ॥१५०॥

त्रूटक

जीविया छडीय मोह, मनि मरणि मेल्हीय मोह
समरीय तु तीणि ठामि, इकु प्रादि जिणवर सामि
[इकु प्रादि जिणवर सामि] समरीय, वज्जपजर मणसरइ
नरतरीउ पायलि फिरीउ सस मिल, चक्र लेइ सचरइ
पयमल मुज्जइ भरह भूपति, बाहूबलि बल खलभलइ
धम्रपाणि चमरीय कीति कनयलि, कसह वारिणि किलगिलइ ॥१५१॥

धउल

कल गिलइ चक्रधर नेन सग्रामि बोलए कवण सु बाहूबले
तउ पायण पुर नेरउ सामि, बरवहु न्मिए दस गुण ए
कवण सो चक्र रे कवण सो जाल कवणसु कहीइए भरह राउ
सेन सहारीय सोपउ साप, भ्राज मल्हावउ रिमहु यसो

ठवणि १३ हिव चउपइ

चन्द्र चूड विज्जाहर राउ, तिणि वातइ मनि विहीय विसाउ
हा कुल मडण हा कुलवीर हा समरगणि साहस धीर
कहिइ कहि नइ विसिउ घणु कुल न लजाविउ तइ आपाणउ
तइ पुण भरह भलाविउ ग्राम भलु भणाविउ तिहूयणि बापु
मुजि बोलइ बाहूबलि पासि देव म दाहिवु ईं होइ विमासि
कहि विण उपरि कीजइ रोमु, एहिजि देवह दीजइ दोसु
सामीय विमसु करम विपाउ काइ न छूटइ रक न राउ
काइ न भाजइ लिहिया लीह पामइ अधिक न ग्रोछा दीह
भजउ भूयबलि भरह र्नारन्द सिउ रणि न रहइ सुरिंद
इम भणि बर वीय बावन वीर सेनइ समहरि साहस धीर
धसमस धीर धसइ धडहडइ, गाजइ गजन्लि गिरि गडयडइ
जमु भुइ भड हड हडइ भडक्क दल दड वडइ जि चड चडक्क
मारइ दारइ खल दा खणइ, हेड हयोहणि हयन्न हणइ
ग्रनल वेग कुण कुखइ ग्रछइ इम पचारीय पाडइ पछइ
नरु निरुवइ नरनरइ निनामि वीर विणासइ वादि विवादि

तिन्नि माम एक्लउ मिडन्, तउ पुण पुरउ पडह पडद
पऊन्‌ वाडि विद्याधर साभि, तउ भूरह रतनारी गामि
दल दग्गेलिउ दडढ परीम, तउ घरिाइ तसु छन्नीय सास
रतन चूड विद्याधर घमइ, गंजइ मयघट हिपटइ हणइ
पत्तन जय भड भरह नरिन्, मु जि मेहारीम हणइ सुरिन्
बाहुलीक भरहेसर तणु, भड भाजगीय भीडीउ घणु
सुरमारी बाहूबलि आउ, भडिउ तग तहि फ्टीय टाउ
प्रमित वेत विद्याधर मार, जग पामीय न पीग्ग पार
घम्मिउ वज्रपर माजइ म गि सूरिउ पविहि पन्नि पउरंगि
समर ५प मनइ वीरह बध मिनीउ समहरि थिहुं गिउ बंध
सात माग खीया रणि बउ गई गहगहाया मपच्छरा सेउ
मिर ताना दुर ताना नामि, मिडइ महाभड बउ संग्रामि
प्राम्या बवबई घायाघायि परमवि पुन्ना सरगत गायि
महेन्द्र चूड रथचूड नरिन् सूभर हलन्द हणइ सुरिन्
हाक्इ तरइ तुनपइ तुलरइ माटि मागि जन् जिमपुरि मिनइ
दंड मई घमीउ सुरन्गिन् भरतपुत नरनरइ निनामि
गंजीउ बनि बाहुबलि तणउ, मस मन्हानिउ ताणि भापणु
सिहरथ उठीउ झारत प्रमित गगि भंगिउ मारंत
तिनिमाय घड धूजिउ जाग भरह राउ मनि बगिउ रागु
प्रमित तेज प्रतपइ तहि तजि गिउ गारगिन् मिलिउ हुजि
पाइ धीर हणइ वे बाणि एक माग निवडया नायागि
धु दरीव भरहेसर जाउ लग मडत र पाडइ पाउ
इटन्नीय दलि बाहूबलि राय, तउ पय पवन् प्रणमीय ताउ
सूरिजमोम गमर हाकत, मिनिया तानि नामर गाजंत
पाव वरिम भर मोनीय माइ नीय नीय नामि निवारिमा रान् ॥१७२॥
इमि सुरइ इमि घंटइ पाय गमि डारन् गमि मारइ धाइ
मत्त मगल भूमइ गयग धनु धनु गिरन्गरनु धंग
रतमारी भरहेसर आउ रग रमि रोमइ पहिरउ पाउ
गिरुइ न मांटइ गजन्न हणइ घगरगि धीर घणुारन् घणुइ
बीस कोडि विद्याधर मिमी उठिउ सुगति नाम विनिगिमी
गिव नम्ना गिउ मिमाउ सालि बागडि न्याम बिहुं जमगालि
कोपि चडिउ वी गउ चक्रगागि मारउ यदवी बाणु विनाणि
मंडी रहिउ बाहूबलि राउ भजउ मगुइ भरह मडिवाउ ॥१७३॥

बिहुं दलि वाजि रणि माहनी, सनदल सोणि से सन भनी ॥१७७॥

उठीय सेह न सूझइ सूर नवि जाणि मसार असूर
पडइ सुहड धड पायइ यसो, हणइ हणोहणि हारइ हमी ॥१७८॥

गडयड गयघड ढोमा ढलइ, सूना समा तुरग मग तुलइ
वाजइ यणूटी तणा धारार, भाजइ भिडत न भेडियार ॥१७९॥

वहइ रुहिर नइ मिसर तरइ, री री या रुट रापस करइ
हयन्न हाकइ भरह नरिंद, सु माहणु लहइ भगि सुरिंद ॥१८०॥

भरह जाउ सरसु सग्रामि, गाजइ गजन्न मागवि मामि
तर न्विस मड पडिउ धाइ घूणि साम बाहूबलि राइ ॥१८१॥

तीहं प्रति अपइ सुरवर सार न्खि एवडु मड सहार
काइ मरावउ तम्हि इम जोव पडतिउ नरवि करता रीव ॥१८२॥

गज ऊनारीय बधव बेउ, मानिउ वयण सुरिन्ह तेउ
पइमइ मालान्गाडइ धीर, गिरिवर पाहिइ सबल नरीर
वधन भूमि भइ भरहु न जिणइ, दृष्टि भूमि हारिउ कुण भणइ
दढि भूमि मड भपीय पडइ, बाहुपासि पडिउ तडफडइ ॥१८४॥

गूडा समु धरणि मभारि, गिउ बाहूबलि मुष्टि प्रहारि
भरह सवन तइ तीणइ धाइ मैठ मगाणउ भूमिहिं जाइ ॥१८५॥

कुपीउ भरह स सण्डह धणी चक्र पठावइ भाइ मणी
पावलि फिरी सु वलीउ जाम, वरि बाहूबलि धरिउ ताम ॥१८६॥

बोलइ बाहूबलि बलवंत लोह खडि तउ गरवीउ हत
चक्र सरीमउ चूनउ करउ, सयलह गोत्रह कुन सहरउ ॥१८७॥

तु भरहेसर चिंतइ चीति मइ पुण लोपीय माईय भीत्ति
जाणउ चक्र न गोत्री हणइ माम महारी हिव कुण गिणइ ॥१८८॥

तु बोलइ बाहूबलि राय (उ) भाईय मनि म म धरसि विसाउ
तइ जीतउ मइ हारिउ भाइ अम्ह शरण रिसहेसर पाय ॥१८९॥

ठवणि १४

तउ तिहिं च चितइ राउ, चडिउ सवेगइ बाहूवले
दूहविउ ए मइ वडु भाय अविमासिइ अविवेक वति ॥१९०॥
धिग धिग ए एय ससार धिग धिग राणिम राजसिद्धि
एवडु ए जीव सहार कीधउ कुण विरोधवसि

बोलइ ए वहि कुण काजि, जउ पुण बंधव आवरइ ए
काज न ए ईणइ राजि धरि पुरि नयरि न मन्दिरिहि ॥१६२॥
सिरवर ए नाम करेग पामसि रहीउ बाहुबले
म गूउ ए मनि भरेउ, तम पय पणमए भरह भडा ॥१६३॥
बंधव ए वांद न वार ए मविमांमिउ मद विउ ए
मरिहम ए भाई सिगार ईगि भवि हुं हिव एहमु ए ॥१६४॥
बीजई ए भाज पगाउ छटि न छलि न छपन छला
भियइइ ए म परि विमाउ भाई य धम्ह विराणीया ए ॥१६५॥
मार्दई ए नवि मुनिराउ मौन न मन्नइ मनवीय
मुखरन ए नट् नीय माण, वरम न्विम निरमग रहीय ॥१६६॥
•मिउ ए मुदरि वउ भावीय बपर बूभवइ ए
उतरा ए माण—गयंद तु धवनिगिरि भगुमरइ ए ॥१६७॥
उपनू ए पवननाण तु विन्दर्न रिमन्ग मिउ
मारीन ए मरन नरिन मिन परगनि मवमपुरी ए ॥१६८॥
हरियीया ए हान मूरिन मारसा पन उच्छ्रव करइ ए
पाजर्ै ए उान पंसान पहह पवान्न गमगमर ए
भावर्ै ए भायुध मान घका रयण तउ रग भरे
मंत्र न ए जम कराण गयनह रुत्वर रागिमइ ॥१००॥
नम निमि ए वरभन भाग भह मरउमर गन्गम्ह ए
रयग ए गन्दु गिरुणगार बयरसेण मूरि पाम्धरो ॥२०१॥
गुणगणह ए तमु भन्डार शानिभद्र मूरि जाणीइ ए
कीधउ ए मीगि चरितु, भरत नरमर राउ छलि ए ॥२०२॥
जा दहइ ए धमन वग्नीन सा नरा नितु नव निहि नदन ए
मवन ए वार (१२) एकतालि (४१) फागुण पंचमिहं एन कीउ ए ॥२०३॥

चन्दन बाला रास [1]

सामाजिक कथा वस्तु को प्रस्तुत करने वाले रासों में १३वीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण रास "चन्दन बाला रास" है। जन भाषा में कवि आसगु ने इस कृति की रचना की है। चन्दन बाला जैन श्राविकाओं में एक आदर्श एवं चरित्रवान महिला भक्त रही हैं जिसने अपने ब्रह्मचर्य सतीत्व संयम और पवित्रता के लिए स्वयं का उत्कर्ष कर दिया। कवि आसगु राजस्थानी हैं और राजस्थान के ही नगर जालोर में इस रास की रचना हुई है। यह रचना जैसलमेर के बड़े भंडार में सुरक्षित है तथा इसकी प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में है। यो यह रास अब प्रकाशित भी हो गया है।

कवि आसगु का एक रास "जीवदया रास" है। [2] यह कृति भी सं० १२५७ के आस-पास की ही है। परन्तु बहुत अधिक महत्व की न होने और अधिकांशतः धर्मोपदेश से सम्बन्धित होने से इसका साहित्यिक महत्व नहीं है। चन्दनबाला रास की एक विशेषता यह है कि इसमें कृति का लेखक लेखन काल तथा लेखन स्थान सभी को कवि ने स्पष्ट कर दिया है। कृति की एक ही प्रति उपलब्ध होने से पाठ कहीं कहीं त्रुटित रह गया मिलता है। यह पाठ सं० १४३७ [3] की स्वाध्याय पुस्तिका से मिला है। [4]

चन्दनबाला रास एक कथात्मक कृति है जिसमें घटनाओं के कुतूहल बड़े विचित्र हैं। रास की मुख्य संवेदना चारित्रिक पवित्रता, स्त्री समाज में नारी

१–देखिये –राजस्थान भारती भाग ३, अङ्क ३–४, पृ० १०४–१११ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'कवि आसगु रचित चन्दन बाला रास।'

२–भारतीय विद्या श्री मुनि जिनविजय, भाग तृतीय, अङ्क १, पृ० २०६।

३–देखिये –पुष्पिका लेख 'सं० १४३७ वर्षाव सुदी २ सुगुरु श्री जिनराज सूरि सदुपदेशेन व्य० देया पुत्र्या देव गुविश्रा चिन्तामणि भूषित मस्तक या माहू श्राविकया आत्म पुण्यार्थं श्री स्वाध्याय पुस्तिका लेखिता' (जैसलमेर बड़े भण्डार की प्रति, पत्राङ्क ३७१ से ३७४)।

४–जैसलमेर बड़े भण्डार की प्रति पत्राङ्क ३७१ से ३७४।

के सम्मान की प्रतिष्ठा, अत्याचार का दमन तथा ज्ञान से मानव की सर्वांगीण प्रगति आदि का प्रचार करना है।

रास का आरम्भ ही कवि मंगलाचरण के साथ करता है —

"जिण अभिणव मरमइ भणए
पुन्निहि भरह-खित्ति ज वीत
वार जिणन्ह पारणए
निसुणउ चन्दन-बाल चरित १

चन्दन बाला चम्पानगरी के राजा दधिवाहन और रानी धारिणी की लड़की थी। चम्पानगरी पर कौशाम्बी के राजा शतानीक ने चढ़ाई कर दी। भयंकर युद्ध के बाद शतानीक का एक सेनापति धारिणी और चन्दन बाला को हरण कर ले गया। धारिणी ने अपने सम्मान की रक्षा में देह अवसान कर लिया। सेनापति ने चन्दन बाला को सेठ के हाथ बेच दिया। सेठ की स्त्री ने उसे कारागार की सी असह्य वेदना दी। चन्दन बाला अपने सतीत्व संयम व चरित्र पर अटल रही तथा महावीर को अपने हाथों भोजन कराया और अन्त में उन्हीं से दीक्षा ग्रहण करके कैवल्य ज्ञान को प्राप्त हुई।

इतनी सी इस संक्षिप्त कथा में कवि ने कारुण्य धारा बहाई है। ३५ छन्दों की इस छोटी-सी रचना में उसने प्रबन्धात्मकता का सफल निर्वाह किया है। उसका कथा तत्व अनेक घटनाओं से युक्त एवं मरम में पूर्ण है।

धारिणी व चन्दन बाला के रूप चित्रण के उदाहरण देखिए—

(क) दधिवाहण गेहिणी सु धारिणी रूपवंतसा धारिणी राणी
तु से पयोहर सारमर, कुटिल केस भ्रूय नयण सुचंगा
हंस गमणि सा मृग नयणि नव जोवण नव नेह सुरंगा

और बालिका चन्दन बाला का चंचल यौवन और भावावेग कवि की वर्णन शैली की सरसता व सरलता का प्रमाण है —

सु भर भोला सा सुकुमाला
नाद नन्द्ध वस चन्दण बाला (२१)

पाय धाघरिया रमझमाट नेउर रणकट मादि हार
कन्न वाट से सरनिया बमु सिरि रखड़ केस कलाप
पगवइ पाय सु कम्पणउ, लागिय रहइ पगामइ पाउ (२२)

१—चन्दन बाला रास राजस्थान भारती, वर्ष ३, अङ्क ३-४, पृ० १०७-१२।

सेठ ने चन्दन बाला को दासी के रूप में क्रय किया था, पर उसके सद्‌भाव विनम्रता और चारित्रिक उत्कृष्टता से उसे पुत्री की भांति दुलार करने लगा। वह भी उसे पिता की भांति पूजने लगी। एक दिन अपने पैर धोते समय सेठ ने उसके बालों को अपनी गोदी में रख लिया। सेठ की स्त्री यह देख कर आग बबूला होगई। उसने सेठ की अनुपस्थिति में उसका सिर मुंडवा कर हथकड़ी, बेड़ी पहिना कर तहखाने में डाल दिया। तीन दिन तक उसने स्वयं को "जिन" की तपस्या में लीन रखा। अन्न का कण उसे नहीं मिला। कवि ने रुदन करती सर्वांगित बाला का चित्रण किया है —

'माइ ताय मति बुद्धि ण लाधी
घर घर मडण दुक्खे दाधी
आयो छडा तप किया विच आमइ बहु सुक्ख निहाणु
फूटि रे हियडा । वज्जमये मनुह जम्पि नदिवन्नाणु (२६)

इधर था महावीर स्वामी ने भी सिर मुंडे हुए, कैद में हथकड़ी बेड़ी, तीन दिन का भूखी 'अष्टम तप' करने वाली रोती हुई स्त्री के हाथ से ही पारणा करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी, अतः चन्दन बाला ने उसे पूरा किया।

महावीर को भोजन कराने पर इन्द्र ने १२॥ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा की और इन्हीं मुद्राओं का दान कर चन्दन बाला ने कैवल्य प्राप्त किया।

वस्तुतः कवि ने राम में वीर करुण और शान्त रस का परिपाक किया है। युद्ध के समय तथा लूटपाट का कवि ने अच्छा चित्र खींचा है —

वज्जिय ढक्क बुक्क नीसाण, वेगावी खत्तिय तुरिम केकाण
वलिया भडतिव मउडधार मलकु तु घण वरिसइ मेहू —
झूझ करइ संग्राम भरि, अ गा अ गी भिडीया वेउ

और इस द्वन्द्व युद्ध के बाद विजयी ने नगर का खूब लूटा। जिस जिस ने जो जो चाहा लूट में लूटा। वर्णन की सजीवता द्रष्टव्य है —

हत्थि कु भ थ लि खिवियउ पाउ, मयपडियउ दहि वाहण राउ
घोडइ चढि नासिउ गयउ साहि चितउ दूणइ कोडइ
तुरय थट्ठ गय घड लइय तउ जीवउ स्त्रयाणिय राई (१४)
वेणवि लद्धा रयण भडार वेगवि वचरा तणर कुठार
वणवि पविट घनु धण लूसउ चोर चरउदद्दडिया
पाहकु अ कु फिर तु दवि थोर, महिल धारिणि पिउपडिया (१५)

वस्तुत कवि ने इन वर्णनों में घटनाओं की प्रधानता व कुतूहल को

मुख्यता प्रदान की है। पूरी कथात्मक कृति में घटनाओं के धार बड़े मोड़ हैं। कृति निर्देशन है। भाषा सरल और गद्य कथन में गेयता है।

कथात्मकता जन रासा में बहुधा मुखरित मिलती है। यह रास कथा प्रधान चरित काव्य है। छन्द और अलंकारों की दृष्टि से कृति का विशेष महत्व नहीं लगता। परन्तु भाषा तथा सरल भाव पूर्ण शब्दावली के कारण रास का महत्व बढ़ जाता है। भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें गुजराती और राजस्थानी का मिश्रण है। राजस्थानी और प्राचीन गुजराती के शब्दों की भरमार है। इसी भाषा की सरलता से पुरानी हिन्दी कहा जा सकता है।

कवि ने रास का मुख्य सम्बन्ध का रूप धर्म काम और मोक्ष में से अन्त में मोक्ष की प्राप्ति से साधक किया है जो काव्य का प्रयोजन है।

मक्खिणि जिण जिनेन्द्र नाणु और जिणवह सवन नाणु
सम्मणु परम पवत्तिणिय परमप्परह निव्वाणह जति
सर्वोत्तम मय विणुतर्णि सवनिन्द्र सुद्ध सिद्धिहि मागंति— (३४)

अन्त में कवि ने असत् पर सत् की विजय दिखाकर रचना के मन्तव्य और रास के उद्देश्य को भी स्पष्ट किया है—

एहु रासु पुण वृद्धिहि जति भाविहि भगतिहि जिण हरिसन्ति
पन्दह पढावह जे सुणाइ तह मवि दुक्खइ सहयह जति
जावइर नर्गरि भमणु भणुइ जम्मि जम्मि सउ भरमति (३५)

अत रास सबन गान पठन पाठन तथा सुनने के लिए लिखा गया है। रचना की शैली वर्णनात्मक सरल व स्पृहणीय है। भाषा की सरलता व शब्दावली का प्रवाह स्पष्ट है। जब भाषा काव्य की दृष्टि से कृति का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। १२वीं शताब्दी की कथात्मक तथा घटना प्रधान कृतियों में भाषा व शैली की दृष्टि से चन्दन बाला रास का महत्व प्रकट हो प्रकार का एवं प्रशंसनीय है।

वस्तुतः शैली का रास में मानवता चरित्र-निर्माण स्त्री सम्मान तथा जीवन की सर्वमुखी प्रगति का सन्देश दिया है।

स्थूलिभद्र रास [1]

१३वीं शताब्दी में चन्दन बाला रास की हा भांति एक श्रृंगार कथा प्रधान रास स्थूलिभद्र रास मिलता है। स्थूलिभद्र का जीवन जैन साहित्य में नेमिनाथ और जम्बू स्वामी की भाँति श्रृंगार से सम्बद्ध रहा है। स्थूलिभद्र और कोशा वेश्या के प्रति अनेक श्रृंगारिक तथा उपदेश प्रधान कथाओं की रचना की गई है।

प्रस्तुत रचना की दो प्रतियां उपलब्ध हैं। जिनमे पहली अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर मे तथा दूसरी स० १४३७ मे लिखी हुई है और जैसलमेर भंडार मे सुरक्षित है। पहली प्रति भी १५वीं शताब्दी की ही है।

स्थूलिभद्र रास के नायक स्थूलिभद्र पर काव्य लिखने की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। स्थूलिभद्र का जीवन आचार्य हेमचन्द्र के ग्रन्थ के परिशिष्ट पर्व म मिल जाता है। [2] संस्कृत मे भी इनके जीवन पर अनेक ग्रंथ तथा सूर्य चन्द्र पर रचित गुणमाला महाकाव्य आदि रचे गये हैं। कालान्तर म तो गुजराती, राजस्थानी या पुरानी हिंदी म स्थूलिभद्र पर सैकड़ो की संख्या मे रचे रास फाग और गीत मिलते है। सं० ९८९ मे शकडार का जीवन चरित्र हरिषेण के बृहत् कथा कोष के अन्त म 'शकटाल मुनिकथानकम्' नाम से प्रकाशित है। अत इस रास की कथा वस्तु के लिए बृहत् कथाकोष व परिशिष्ट पर्व आदि ग्रन्थो म पर्याप्त सहायता ली जा सकती है।

रास के कर्ता ने अपना नाम स्पष्ट नही किया है पर अत मे एक शब्द 'जिणधम" आता है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि लेखक का नाम सम्भवत जिनधम सूरि था। स्वर्गीय श्री मोहनलाल देसाई न प्रस्तुत रासकर्ता का नाम धर्म दिया है। [1] साथ ही उन्होंने इसका रचना काल भी स० १२६६ के आस पास बताया है।

१–हिन्दी अनुशीलन वर्ष ७, अङ्क ३, पृ० ४० पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख– स्थूलिभद्र रास'

२–वही, पृ० २६।

स्थूलिभद्र रास घटना प्रधान है जिसमें कवि ने अनेक कौतूहलों का समावेश किया है। रास कथा प्रधान है। यद्यपि यह स्थूलिभद्र के जीवन तथा उनकी साधना पर भी प्रकाश डालता परन्तु कवि ने अपने कौशल द्वारा कुछ अवान्तर घटनाओं का सृजन कर स्थूलिभद्र को लाइबे के रूप में सयम का गाढ़ अवतार ही सिद्ध कर दिया है।

कवि ने रास का प्रारम्भ शासन देवी और वागीश्वरी का स्मरण कर किया है तथा प्रारम्भ में ही शकटार और वररुचि पण्डित का संघर्ष दिखाया है। संघर्ष का कारण यह था कि वररुचि की गाथाएं राजाओं को बड़ी प्रिय थी और मन्त्री शकटार (मंत्री) को राजा द्वारा वररुचि का किया आदर ठीक नहीं लगा। उसने अपनी लड़कियों द्वारा उसकी गाथाओं को याद करवा लिया तब एक को एक बार दूसरी को दो बार और तीसरी को तीन बार। इस क्रम से शकटार की लड़कियों ने वररुचि की नित नवीन कही जाने वाली गाथा को याद करके पुरानी सिद्ध कर दिया। पण्डित वररुचि ने भी शकटार के विरुद्ध राजा को भड़काया कि यह मन्त्री राजा को मरवा कर उसके स्थान पर अपने लड़के को राजा बनाना चाहता है। राजा यह सुनकर क्रुद्ध हो गया। शकटार ने अपने लड़के को सिखाकर स्वयं की [illegible] मरवाने में ही परिवार का कल्याण समझा। मन्त्री शकटार को कुद्ध [illegible] ने मार कर परिवार के सामने (उसके लड़के के सामने [illegible] पिता के कहने के अनुसार उनको मरवा कर स्वयं को राज भक्त सिद्ध किया था) मन्त्रित्व का प्रश्न रखा। स्थूलिभद्र के पास भी यह प्रश्न पहुँचा। [illegible] गणिका के यहाँ भोगविलास रत रहते थे। [illegible] राज्य [illegible] उन्होंने सदा [illegible] का मृगमरीचिका कहकर अपना [illegible] होने तथा विरक्त होकर [illegible] करना। कवि ने कथा में [illegible] निष्पन्न करने के लिए ही [illegible]

इक सयिवि सयिय वाल्वा ज त्रि सथिय जपइ
वर रुचि रुडउ राउमणु रासिहि वपइ—

वररुचि पण्डित ने नवटार की मृत्यु के लिए द्रव्य देकर अपने शिष्यों की सहायता से अनेक षडयन्त्र किये उसी का वर्णन देखिये —

तावह पडितु वाहिरि थाइउ, द्रम्म थवइ नितु गगह जाइउ
पसरह लायह ग्राम निशानइ, नरवइ वह ग्रम्ह नवि पालइ
मे त्यतरि महतए नउ द्रम उसरिय,
पडित उच्छउ याउतलि दोरउ सारिय
तउ पडित कायानस चडियउ, घाठउ हीयउ सूनउ थीयऊ
तउ वेनु कोपिराया पोसइ नडु हणिउ सिरियउ राउ होसइ
नयर दुवारे सके नखइ मभालियउ
महता रुठउ राउ मछतउ नितु टलियउ
जाव महतउ अवसरि आवइ ताव पुठि न्यिइ पुणुनरवइ
मुहतइ जाणिउ मूल विणासइ, बभणु नयणु नरवइ रूमिउ
सिरियउ भणइ न पन्नउ धाउ जोविउ लाघि लियइ जउ राउ
महतइ धरइ कुडुवहु स्वामिउ असिउ हलाहलु रयसिरु नामिउ
सिरियउ कहइ नरिन्ह जाइउ मन्न थूनमदु जेठउ भाइउ
ससु तणि म इ ग्रम्ह नवि छाजइ भामिणि विरहु क्रिमइ जइ भाजइ
तउ निसुणेविणु नरवइ जाणिउ मुद्र कहइ लइ थूलिभद्र प्राणिउ
रायह म न्दिरि थूलिभद्र पहुतउ, "मानुप्रलाविउ" भाग विरतउ (२ २१)

उक्त उद्धरण मे कवि ने राजकीय षडयन्त्रों और कर्मचारियों की पारस्परिक ईर्ष्या तथा राजा की 'क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा' वाली प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है। भोगलिप्त स्थूलिभद्र के जीवन मे एक विपरीत अध्याय का प्रारम्भ यहीं से हो जाता है। दीक्षा लेने पर उसके अन्य गुरु भाई भी चतुर्मास के स्थान कोई साप के बिल पर कोई सिंह की गुफा पर कोई कुए के पास मागता है पर स्थूलिभद्र उसी कोशा वश्या के यहाँ जाते हैं। स्थूलिभद्र और कोशा के वर्णनो मे इस रास मे कवि का मन बिलकुल नहीं रमा है। न उसने कोशा के नखशिख व सौन्दर्य का ही वर्णन किया है। आगे कवि एक अन्य कथा मे रम जाता है, जो स्थूलिभद्र के ही एक गुरु भाई से सम्बद्ध है। स्थूलिभद्र ने मन्मथ का पूर्ण दलन किया वे पच व्रत का पालन कर पक्के सयमी हो गये। यही नहीं, उन्होंने कोशा वेश्या को आमूलचूल परिवर्तन किया। जब चतुर्मास करके सब मुनि पुन आये तो गुरुजी ने स्थूलिभद्र को ही सबसे श्रेष्ठ बताया। इस पर एक मुनि

क्रुद्ध हो गये और उन्होंने भी दूसरा चातुर्मास उसी कोशा के यहाँ जाकर किया। पर वे कामासक्त हो गये। कोशा ने उन्हें रत्न कम्बल लाने नेपाल भेजा। काम विमोहित मुनि ने यह सब किया, पर अन्त में कोशा से ही उन्हें हार माननी पड़ी। *कोशा का मुनि को उपदेश, मुनि की काम विमोहित अवस्था,* रत्न कम्बल के लिए अनेक कष्ट पाने पर मुनि की उससे कामतृप्ति की याचना, कोशा द्वारा उनकी भर्त्सना, संयम श्री का महत्व और स्थूलिभद्र की जितेन्द्रिय स्थिति का स्पष्टीकरण करना आदि अनेक चित्र कवि ने बड़ी ही मार्मिकता से सजाये हैं जिनकी भाषा प्रवाहमय भाव प्रवण सरल तथा चित्रात्मक है। श्रावण-दिन में कामासक्ति मन की चंचल स्थिति और मुनि की विचलित अवस्था तथा कोशा के सौन्दर्य के प्रति हुए व्यामोह का वर्णन देखिए —

वस ससि वयणि मिग नयणि नव जोवणी
सुविधि परिविविह परि सिंगरिट मुणि सायणी
भावइ मुणि कहइ सुणि दस तुम्ह दुल्लही,
परिणइ तुम्हि मुज्मइ अम्हधरि नविर परिजइ तुम्हि सुज्मइ
मज्झु नयणउ गुरु वयणव परतु जइ भारय,
वस धरि पाउस भरि व ठिसु आविय
मायण मनिन मुणि मान संठानिय,
सयन दुम फ सुणिचित्तु उम्मूलिय
माइवउइ घणु गुरुरउ जलहरा गाजमे,
वरिस पुरु पाचरणमयण अहभजमे
ईरा परिवम धरि मुणिहि मणु गजिय,
रमइ नर मनिहि परि पिरसी विवंजिय
भार चापियउ किरि बालइ मुणि छम्मिउ,
अय त्रिणु वम पुणु निठुर वह हम्मिउ'

कोशा ने मुनि से प्रेम माँगे और कहा कि बिना अर्थ के यहाँ रहना सम्भव नहीं है। और काम विमोहित मुनि उन्मत्त हो गये। उन्होंने कोशा की भर्त्सना सही। उनकी इसी प्रकार की विक्षिप्त शारीरिक अवस्था का वर्णन कवि ने उन्हें रत्न कम्बल लाने के लिए नेपाल तक भेजा कर लिया है। मुनि कम्बल लाये तो कोशा ने उसे पैरों से पोंछकर फेंक दिया —

वसा पयसे निसु नमणा नविणु जाइ राय मग्गिह रयणु
तुह अन्य विहुणउ हिन्द नाणन, मज्झु धरि कम्बु करेसिजइ
'ताम मुनि मधु नगु गणइ न चल्लिन वलिहिन जलहिन नइहि न पिल्लिइ

काम धाणु मत्त तणु भमइ पुट्ठि लग्गइ, नेपाल देसि गउ रयण क्वलह मग्गइ
वैग करि, पय भरि चलिउ मुणि आविउ, वेस लइ नमइ जइ कहवि लवाविउ
माणि मुणि कवल रयणु खोलि माल्हिउ वहइ,
पाउ में लाइ मणि लक्खु द्रम्मह नहइ
लाखु लाघव मुणि दिट्ठु कउडो गमइ, वस गुणवत जसु जम्मि चितु रमइ"

यहाँ तक ही नही, वेश्या कोशा अत मे इसे गुरु बनकर सहायता करती है और स्थूलिभद्र का वैशिष्ट्य स्पष्ट करती है। मुनि की रत्न कम्बल लाने पर ी वेश्या ने इच्छा पूरी नही की, तो वह निश्वास लेने लगा। वेश्या उसे शील की महिमा बतलाती है। काम विमोहित मुनि के हृदय मे भरे मोहान्धकार मे कोशा स्थूलिभद्र की विजितेद्रियता से प्रभावित होकर प्रकाश किरण प्रदान करती है और इस प्रकार मुनि को वह चरित्र रत्न को हृदय मे धारण करने की शिक्षा देती है। कवि ने इन्ही मनोवैज्ञानिक चित्रो का बडी सफलता से स्पष्ट किया है। कवि का प्रत्येक मनोभाव इन कथाओ मे उसके काव्य कौशल और काव्यगत सरलता का द्योतक है —

निपतणि जउ मुणि दीणउ थाग्रे, वणा भवविगु मिरिय कुखाग्रे
इह गई लघु करीरिहि भाजइ थूलिभद्द जा गति कहविन छाजइ
वह नेपालउ दस भणीजइ बडइ कठिन तहि पुणु जाइजइ
तइ मूरख नवि जाणिउ भेउ लक्ख रयण मुणि कबल मेहु (४०–४१)

और वेश्या ने उस कबल से पैर पोछकर कीचड मे फेंक दिया और कहा कि अपने चरित्र रत्न को तो सभाला वह इससे भी गदी जगह मे जा रहा है। उसने रूपक द्वारा यह स्पष्ट किया कि नेपाल दश कितना दूर था वहाँ जाना कितना कठिन है यदि हे मुनि तुम। रत्न कबल लने नेपाल चले गये तो क्या अपने चरित्र रत्न और सयम रत्न की प्राप्ति उस अपूर्व आनद निर्वाण की प्राप्ति हेतु नही कर सकते ? उक्त पक्तियो मे इसी प्रकार की ध्वनि है।

'दिट्ठ रयल ज कद्दम भरियउ, हियडउ मुग्रह सहु बीसरियउ
तउ मुणिवरू मेल्हहि नीसासा मज्झु तणी नवि पूरी आसा
ज जिण धम्मह किज्जइ मूलु त तरणत्तणि पालिउ मौलु
इमउ वयण सुहियडउ धरइ भयण माह चितह उत्तरइ
चिन्तइ मुणिवरु हियइ तिरग, सजमतरु मह रुपइ भग
धनु धनु थूलिभद्र सा सामिउ, पाउ पणामइ लइ यइ नामिउ (४०–४४)

और मुनि ■ तद्रूद्ध, आत्म ग्लानि और पश्चाताप से भर जाता है।

उसका मान हरि कोशा के गुरु वचनों से भुल जाता है और वह वेश्या कोशा के कहने से चारित्र्य रत्न को हृदय में धारण करता है तथा गुरु के पास जाकर पुन दीक्षित होता है और वहाँ मुनि स्थूलिभद्र की कृपा से देव लोक प्राप्त करता है —

तसु उपरि मइ मच्छर कायउ, तिणि कारणि मइ फलु पामीयउ
तुहु गुरु गुरु कोसा मइ माया हउ पडिवाहिउ माणि, उठाया
मइ जाणिउ तउ वियउ अवम्मु, धालि वहिउ गउ माणुम जम्मु
वसा गाशा बोलइ मोह धणिउ मुणिवर मन करि लेउ
चारित्त रयणु हियडु धरहि गुरु ह पासि आनायण लेहि
बहुत काल संजम पालवि चन्द्र पूरव न्यिइ परीवि
थूलिभद्द जिण धम्म वहूथि दवलोकि पहुतउ जाएवि—(४५-४७)

वस्तुत इसी प्रकार कवि ने स्थूलिभद्र के संयमित जीवन की दिव्य सुषमा पर प्रकाश डाला है। काम से कहीं भी उसके (निल्य पद) गाये जाने या क्रीडा करने के रूप पर प्रकाश नहीं डाला गया है। सिर्फ स्थूलिभद्र के उत्कृष्ट चरित्र पर मुनि की कथा के द्वारा प्रकारान्तर से प्रकाश डालना ही कवि का मन्तव्य है। कोशा का वर्णन उत्तम के रूप में सामने आता है। ४७ छन्दों की इस छोटी सी रचना में कवि ने बहुत सार भरा है। भाषा में अपभ्रंश के शब्दों के प्रभाव के साथ साथ अधिकांश शब्द राजस्थानी के हैं।

कवि के काव्य सरस व सुन्दर बन्धन प्रभाव प्रवण है। कवि ने काम क्रोध से उत्पन्न आत्मग्लानि तथा पश्चात्ताप की स्थिति पर सम्यक प्रकाश डाला है। एक भी छन्द का दोष रहित पूर्ण राम चौपाई छन्द में लिखा गया है।

अभी तक कथा रूढि और मान्यता का प्रश्न है प्रस्तुत रास बड़ा महत्वपूर्ण है। १६वीं शताब्दी में मिलने वाले स्थूलिभद्र रास या स्थूलिभद्र फागु[1] की भांति कवि ने कहीं भी स्थूलिभद्र व कोशा का शृंगारिक वर्णन नहीं किया है। इन काव्य में शृंगार आदि रूप में ही आया है। अत में वृत्ति निर्वेदगत होती है। कवि ने वररुचि की कथा, मुनि का वेश्या के यहाँ जाकर काम विनाहित स्थिति में रत्न कंबल लाना आदि घटनाएँ प्रकारान्तर रखी हैं जिनसे कथा पूर्ण सुन्दर हुआ है।

१—स्थूलिभद्र पर विस्तार के लिए देखिए मरुवाणी मई १९५८ में लेखक का आदिकाल का एक शृंगारिक खण्ड काव्य था स्थूलिभद्र फागु शीर्षक लेख।

छोटी–छोटी सूक्तियाँ यथा–भामिणि विरहु न्निमइ जइ भाजइ, बल्लिउ घणकण रयण चयं विणु असिउ हनाहलु रयसिरू नामिउ, सयल दुम वद खणि चित उम्मूलिय सावण सनिल मणि सील स वोलिय, चण भरवेविणु भिरिय कुरवाम्र, अक्करनइउ सजय भाष्दुप्पानउ, इह खम्रु करीरिहि भाजइ, तया चारित्त रयणु हियडइ धरेहि, गुरूहुपासि आलायण लेहि आदि अनक सूक्तिया हैं। रास की मुख्य सवेदना उपदेशात्मकता तथा धर्म प्रचार है। शैली वर्णनात्मक है। काव्यात्मकता म सरस स्थल थाडे हैं, परन्तु घटना वचित्र्य और कथात्मकता ने कृति की सफलता में सहायता की है।

रेवन्तगिरि रास [1]

रेवन्तगिरि रास १३वीं शताब्दी का प्रसिद्ध ऐतिहासिक रास है। रास के रचयिता श्री विजय सेन सूरि हैं। रचना का विषय धार्मिक है तथा कवि ने रेवन्तगिरि जैन तीर्थ का महत्वपूर्ण विवेचन किया है। इस रास काव्य के प्रति प्रकार श्रद्धा रखने वाले आदरों का उल्लास पूर्ण ढंग तथा सुन्दर अभिव्यक्ति है जिसे कवि ने काव्यात्मक सुषमा से संवारा है। प्राचीन काल से ही इस ऐतिहासिक स्थल का महत्व रहा है। रचना का रचनाकाल तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अर्थात् सं० १२८८ है। प्रस्तुत काव्य का नवीनतम संस्करण व प्रकाशन डॉ० हरिवल्लभ भायाणी ने किया है।

रेवन्तगिरि रासा नाम से यह ग्रन्थ और भी जाना गया है। इसकी प्रति पाटण के संघवी पाडा के भण्डार में है। जिसकी भाषा को श्री नाथूराम प्रेमी प्राचीन हिन्दी बतलाते हैं। [2] इसकी रचना अनुसार—वस्तुपाल के गुरु विजय सेन सूरि ने सं० १२८८ में रचना की थी। इसमें गिरनार की ओर वन के उन मन्दिरों के जीर्णोद्धार का वर्णन है। रेवन्तगिरि का ऐतिहासिक महत्व गुजराती के विद्वानों ने भी अपने ग्रन्थ में दिया है। [3]

कथा वस्तु शिल्प नाट्य तथा भाव व्यंजना का अध्ययन करते समय रास का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्व जान पाता है। रेवन्तगिरि रास प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यह तक कि इसकी प्राचीनता के उल्लेख शिलालेखों में भी मिलते हैं। इसमें जिस चरित नायक की प्रतिमा व अन्य वस्तु सौन्दर्य का वर्णन किया गया है वह जैनियों के २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ हैं।

१—प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, श्री सी० डी० दलाल पृ० १—७।

२—हि० जै० सा० का इतिहास श्री नाथूराम प्रेमी पृ० २६ वि० सं० १९७३ का संस्करण।

३—कवि—प्रकरण कवियो श्री क० का० शास्त्री व जैन गुर्जर कवियो, श्री मोहनलाल देसाई।

नेमिनाथ का वृत्त स्थान है, जिस पर अपभ्रंश में मिलने वाली कृति हरिभद्रकृत "नेमिनाथ चारिउ" है।[1]

प्रस्तुत रास में यात्रा वर्णन, संघवर्णन तथा मूर्ति स्थापना वर्णन है। रास की कथा वस्तु धार्मिक है। रास गेय है तथा इसमें तीर्थ एवं यात्रा के महात्म्य का सुन्दर दार्शनिक वर्णन है। इस काल में जैन रासों की विषय वस्तु में पर्याप्त परिवर्तन हो गया था। मन्दिर, शिल्पकला, तथा उनकी प्रतिष्ठा कराने वाले धनपति श्रावक का यश गान वर्णन करना भी 'रास" में प्रारम्भ हो गया था। रेवतगिरि रास की ही भांति १३वीं शताब्दी में हम कवि राम द्वारा सं॰ १२८६ में लिखा हुआ एक आबू रास[2] मिलता है जिसमें आबू के प्रसिद्ध तीर्थ व संघयात्रा आदि के वर्णन हैं। रेवतगिरि रास में भी सोरठ देश के प्राचीन मन्दिरों तथा प्रसिद्ध पोरवाड़कुल या प्राग्वाट कुल का वर्णन है।[3] वस्तुपाल और तेजपाल इसी कुल के दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष हैं जिन पर १५वीं शताब्दी तक रचनाएं उपलब्ध होती हैं। अतः रास की ऐतिहासिकता के अनेक अन्तरंग तथा बहिरंग प्रमाण मिलते हैं। राव खंगार जयसिंह देव एवं गुजरात के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल का भी प्रस्तुत रास में उल्लेख है जो इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व हैं।[4] यक्ष और यक्षिणियों के अनेक चित्र जैनियों के प्राचीन तीर्थकरों की मूर्तियों के साथ आज भी वन मिलते हैं। यक्ष वर्णन रेवतगिरि रास में भी मिलता है।[5] इसके अतिरिक्त अनेक बहिरंग प्रमाण रास की ऐतिहासिकता सिद्ध करते हैं उनमें से कुछ टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं —

(१) तेजपाल गिरिनार तले तेजलपुर निय नामि[6]

तेजपाल ने वहां अपनी मां के नाम पर आसाराय विहार त्रिभुवनालय उग्रसेनगढ़ में बनवाया।

(२) सुवर्ण रेखा नदी के किनारे पंचम हरिदामोदर का वैष्णव मन्दिर भी उस समय था यह उल्लेख कवि ने प्रस्तुत रास में किया है। इसके अतिरिक्त कुमारपाल श्रीमाली कुल सम्भव ने अम्ब को सौराष्ट्र का दण्ड नायक बनाकर सं॰ १२२० में गिरनार के सोपान बनवाये थे —

१—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, श्री नामवरसिंह पृ॰ २१८।

२—देखिए —राजस्थानी वर्ष ३ अङ्क १ श्री अगरचंद नाहटा का लेख "आबूरास"

३—देखिए —प्राग्वाट इतिहास (भूमिका भाग) लेखक अगरचंद नाहटा।

४—रेवतगिरि रास, डा॰ हरिवल्लभ भायाणी, पृ॰ २, पद ६।

५—वही पृ॰ ८ पद ८।

६—आपणा कवियो श्री के॰ का॰ शास्त्री पृ॰ ११८।

"कुमारपाल भूपाल जिण सासण मंडणु

... वंसा सिरि सिरिमाल कुल मंडणु, पाल मुक्किमाल तिणि नठिय
अंतर धवल पुणु पर व सराविय[1]

जयसिंह देव ने सौराष्ट्र पर खंगार का वधकर अधिकार करने के बाद सज्जन मंत्री को वहाँ का दण्डनायक नियुक्त कर सं० ११८५ में गिरनार ऊपर नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया —

'सिरि जयसिंह देव पवर पुहवीसरु हणुवि तिणि राउ खंगारउ
महियलु नेमिजिणिंद तिणि भवणु कराविउ।

इनके अतिरिक्त मालव के भावड शाह का स्वर्णमय नेमिबिम्ब बनाने का उल्लेख, कुमार के अजित एवं रतन नामक श्रावकों का वहाँ संघ लेकर आना, तथा वस्तुपाल तेजपाल का कल्याणत्रय मन्दिर आदि बनवाना आदि घटनाएं रास के ऐतिहासिक महत्व को स्पष्ट करती हैं।[2]

प्रस्तुत रचना ४ कडवकों में विभक्त है। कडवक का शाब्दिक अर्थ या इसका ठीक-ठीक शब्दों का विभाजन का सूचक नहीं है। अपभ्रंश के संधि काव्यों में अनेक कडवक मिलते हैं। साहित्य दर्पणकार ने अपभ्रंश काव्यों में कडवक सर्गों को कहा है।[3] परन्तु पउम चरिउ, हरिवंश पुराण आदि ग्रंथों में तो सर्ग संधि कहलाते हैं। प्रायः इन काव्यों में अनेक संधियाँ होती थीं और एक-एक संधि में अनेक कडवक होते थे। दूसरे शब्दों में कई कडवक मिलकर एक संधि को बनाते थे। अतः संधि को कडवकों का एक समूह कहा जा सकता है।[4] हेमचन्द्र ने कडवकों का जो विवेचन किया है[5] उसके अनुसार दो कडवकों के मध्य में वर्णित घत्ता उस कडवक की समाप्ति का सूचक है। प्रस्तुत रास के कडवकों का वर्णन के एक भाग का अन्त और दूसरे नये सर्ग के आरम्भ का संकेत समझा जा सकता है। अर्थात् प्रत्येक कडवक के अन्त में कथा समाप्त होती है और प्रत्येक कडवक के साथ कथा आरम्भ।

१—प्रा० गु० का० संग्रह, भा० ... पृ० ३।
२—आपणा कविओ ले० के० का० शास्त्री पृ० ११८।
३—अपभ्रंश-निबद्धे अस्मिन् सर्गाः कुडवकाभिधाः।
४—कडवक समूहात्मक संधि।
५—रेवंतगिरिरासु सं० ह० चु० भायाणी सम्पादित, पृ० ३–४।
'सन्ध्यादौ कडवकान्ते च ध्रुवं स्यादिति ध्रुवा ध्रुवकं घत्ता वा'—हेमचन्द्र।

रेवतगिरि रास चार कडवको मे विभक्त है। इन कडवको मे कोई विशेष कथा सूत्र नही है, चारो कडवको मे गिरनार, नेमिनाथ, सघपति, अबिका, यक्ष तथा मन्दिरो का वर्णन है। वस्तुपाल तेजपाल के सघ द्वारा नेमिनाथ की प्रतिष्ठा का महामहोत्सव होता है। एक विशेष बात यह है कि इस काव्य मे प्रत्येक कडवक म स्वतत्र वर्णन है जिसका पारस्परिक कोई सम्बध नही। इन कडवको मे जयसिह, कुमारपाल, दण्डनायक, मालव के मावड शाह के वर्णन हैं तथा कश्मीर के अजित और रत्न नामक भाइयो की सघ यात्रा-वर्णन, दानवीरता, सघ तीर्थों के शिल्प, मूर्ति का पराक्रम तथा चमत्कार पूर्ण घटनाओ का वर्णन है। श्रावक भक्तो को धर्मशील बनने का आग्रह और धर्म प्रचार ही रास का उद्देश्य है।

प्रस्तुत रास की एक प्रति पाटण भण्डार मे है जो ताड पत्र पर लिखी हुई है। डॉ० हरिवल्लभ भायाणी ने अपना पाठ सम्पादन श्री सी० डी० दलाल के प्राचीन गुजराती काव्यसंग्रह से ही किया है। [१]

रेवतगिरि रास गीति प्रधान रास है। गेय तत्व नृत्य मे सहायक होता है विशेषतया महोत्सव मे श्रद्धालु भक्तो के ये रास एक अभूतपूर्व उल्लास की सृष्टि करते थे। धर्म ने हमारे समाज के मनुष्यो मे एक जीवन्त विश्वास की सृष्टि की है। इह लोक और परलोक का ज्ञान, अहिंसा और अध्यात्म से प्रेम आस्तिको की श्रद्धा के ही परिणाम हैं। अत समाज की इसी विशिष्ट मनोवृत्ति ने ही समय समय पर अनेक साहित्यिक विधाओ और पोषक तत्वो का निर्माण किया है।

रेवतगिरि रास के वर्णनो मे प्रगाढ तन्मयता है। कवि की पदावली कात सुमनोहरा और प्रसाद गुण सम्पन्न है। कृति मे सर्वत्र भक्ति रस व्याप्त है। श्रद्धा स्निग्ध प्राणियो मे शात रस का प्रवाह फूटता पडता है। भाषा समास बहुला है।

प्रारम्भ म ही कवि मगलाचरण करके आगे बढता है। मगलाचरण की परम्परा भारतीय प्रबध काव्यो की प्राचीन परम्परा है। कवि ने गिरनार के सौन्दर्य के कई मधुर चित्र खीचें हैं। अनुभूति की सरसता उन्हे और भी मार्मिक बना देती है। कवि गिरनार का ससार यात्रा के साथ रूपक बाधता है —

जिम जिम चडइ तडि कडणि गिरनार तिमि तिम ऊडइ जणभवण ससार
जिम जिम सेउ जलु ॥ गि पाराडए, तिम तिम कलिमलु सयलु ओहटटए [२]

१—रेवतगिरि रास, डॉ० ह० व० भायाणी सम्पादित पृ० १—४।
२—वही ग्रन्थ, द्वितीय कडवक।

वहाँ की शीतल वायु तीनों ताप हरण करने वाली है —

जिम जिम वायइ वाउ तहि निज्झर सीयलु
तिम तिम भव तणा तक्खणि तुट्टइ निच्चलु [1]

पक्षियों के मधुर गुंजन, कोकिलों की मिठास, मयूर का कलरव, भ्रमरों का गुंजार और निर्झरों का नाद सारे प्रान्त को मुखरित कर देता है। वर्णन की ध्वन्यात्मकता और नादात्मकता द्रष्टव्य है —

'कोयल कलयला मोर केकारवो सम्मए महुयर (?) महुर गुंजारवो

जलद जाल पवमाल नीझरणि रमाउलु रेहइ उज्जिल सिहरि अलि कज्जल सामलु
बहल वह धातु रस भेइणी जलवंत दिवइ मारग मइ मडणी
उदय त्थपति विवोम ही सुन्दरा निरन्तर रम्य गभीर गिरि कन्दरा
जाइ कुन्दु विहसंतो ज कुसुमिहि संकुल दीसए,
दस दिसि दिवसो किरि तारा मडलु [2]

(मेघों के जल समूह से प्रवाहित रमणीय निर्झर अलि एवं अंजन गिरि श्यामल शिखर की शोभा अनेक धातुओं एवं रसों से युक्त स्वर्णमयी मेदिनी अर्थात् औषधियों से परिपूर्ण वसुन्धरा और विकसित कुन्द कुसुमों का दस दिशाओं का नक्षत्र मण्डल है) आदि उपमान उत्तम कोटि के तथा कवि की उत्प्रेक्षाएं भी अति नूतन हैं।

समास बहुला अनुप्रासात्मकता और सरस पदावली में कवि ने नीरस पत्थरों में भी रस के स्रोत उमड़ाए हैं। निम्नांकित पंक्तियों के प्रकृति वर्णन से जयदेव के गीत गोविन्द की कोमल कान्त पदावली का स्मरण हो आता है —

मिलिय नवल दलि कुन्द कुसुम भर नालिया
ललिय सुर महि लवण चलण तल तालिया
गलिय थल कमल मयरन्द जल कोमला
विउल सिलवट्ट सोहंति तहि सामला [3]

प्रकृति वर्णन में कवि ने नाम परिगणनात्मक रूप को प्रस्तुत किया है। अनेक वनस्पतियों का परिगणन उसकी विशाल ज्ञान दृष्टि एवं कल्पना की परिचायक है और साथ अनुप्रासात्मक और नादात्मक है। एक ही अक्षर से प्रारम्भ होने वाले अनेक वृक्षों के नामों का तथा कवि की कुशलता को देखिए —

१—वही पृ० ३ कडवक २ पद ४।
२—रेवंतगिरि रास डा० हरिवल्लभ भायाणी पृ० ३।
३—वही, पद ५ पृ० ३।

"अ गुरण [redacted] जरण आविलीय, अ बाडय अ कुल्लु,
१ [redacted] वक अ बरु आमलीय, अगरु असोय अहल्लु
करवर करपट करुणतर, करवदी करवीर,
कुडा कडाह कयब वड, करब कदलि कपीर
बेयुल बजुल वउन बड, बेउल बरुण विडग,
वासती वीरिणि विरह, वासियाली वरण वग
भीसम सिंवलि सिर (स) समि, सिंघुवारि सिरखड
सरल सार साहार सय, सागु सिगु सिरण दंड
पल्लव पुल्ल फनुल्ल सिय, रेहइ ताहि वणराइ,
तहि उज्जिल तलि धम्मि यह, उल्लटु अ गि न माय [1]

अनुप्रास, यमक, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अनक अलकारों का स्वाभाविक निरूपण हुआ है। कृति मे विशेष कर अनुप्राम, रूपक व उत्प्रेक्षाओं की तो घटा ही उमडी पड़ती है —

अनुप्रास —

(१) निम्मल सामल सिहर भरे
(२) तस सिरि सामिउ सामलउ सोहग सु दर सार
(३) [redacted] गुण [redacted] जण अ बौलीय अ बाडय [redacted] कुल्लु

उपमा रूपक व उत्प्रेक्षा —

(१) जिमि जिमि चडइ तडि कडिणि गिरनारह
तिमि उडइ जण भवण ससारह
(२) आह कु द विहसता ज कुसुमिहि महुलु
दीसइ दस दिसि दिवसा किरि तारा मडलु
(३) जत्थ सिरि नेमि जिणु अच्छरा अच्छरा
असुर सुर उरग किंनरय विज्जाहरा
मउड मणि किरण पिंजरिय गिरि सेहरा [2]

उल्लेख वरणन क्रम तथा स्वाभावोक्ति —

(१) अइरावरण गयराय पाय मुद्दा मम टाउक
दिट्ठ गयदम कु ड विमल निर्झर सम लकिउ
(२) गयण गग ज सयल तित्थ अवयारु भणिज्जइ

१–वही, पृ० २, पद १८–१७।
२–रेवतगिरि रास श्री भायाणी, द्वितीय कडवक।

पत्रमनिवि तहि म ग दुक्ख जन म जनि निज्जइ

(३) गहगण्ण ए माहि (?) जिम माणु पन्नय माहि जिम मरु गिरि
तिहू पुयण तम पनाण निय मोहि रवनगिरि

(८) नयण मनूणउ नमि जिणु [1]
नयण मनूणउ प्रयाम विनना उत्कृष्ट है।

ग्रोर अन्त म कवि म प्रकृति क उपादाना द्वारा नमिनाथ का ग्रभिषेक कराया है। नमिनाथ क इन वर्णन करन म कवि क काव्य कौशल का परिचय मिलता है। ग्रतिरञ्जना म एकदम रहित है। जैसा स्वाभाविक भाव निष्पन्न हुग्रा उसको ज्यो का त्यो सजा लिया है।

नामर (स) ए चमर ढलति मघाडवर सिरि धरीय
निसह ए मउ रवनि सिहामणु नय नमि जिण [2]

गुजराती विद्वानो न प्रति पाटन भण्डार में उपलब्ध होन स इस प्राचीन गुजराती क विकास की कडी बनाया है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि प्राचीन गुजराती का उत्कर्ष ही प्राचीन राजस्थानी का उत्कर्ष है। ग्रत इस बात का कोई स्वतन्त्र महत्व नहीं प्रतीत होता। वस्तुत कृति केवल प्राचीन राजस्थानी की दृष्टि स महत्वपूर्ण है।

छन्द क क्षेत्र म रवतगिरि रास का मौलिक योग है। चारो कडवको में क्रमश २० १० ११ ग्रौर २० पद है। प्रथम कडवक क बीमा छन्द दोहा छन्द म वर्णित हैं। जिनका ग्रपभ्र श ग्रौर डिंगल का दोहरा छन्द है। कवि न उस बडी ही सफाई स निभाया है।[3]

द्वितीय कडवक में एक प्रकार का मिश्र छन्द है जिसम पहली दो पक्तियाँ का छन्द गणना क आधार पर ठीक नहीं बैठता ग्रौर शष चार पक्तियो म "सूरगणा" छन्द है जो २० मात्राओं का होता है।[4]

तृतीय कडवक का छन्द रासा[5] है। यह छन्द ११ कडियो का है।

१—वही, पृ० ६ पद १८—२०।
२—वही पृ० ६ पद २०।
३— परमसर तित्थेसर पय पकय पणमेवि
भणिसु रास रवतगिरि ग्रविक दिवि सुमरवि—पद १, कडवक प्रथम।
४—रवतगिरि रास—डा० नारायण—पद ४ कडवक २।
५—समुद विजय सिवदेवि पुत्तुजायव कुल मडणु
जरासिंघ दलमदणु मदमाण विहडणु।

डा० भायाणी ने उसे २२ पंक्तियों में विभक्त किया है। रोला छंद भी अपभ्रंश परम्परा का प्रमुख छंद है। चतुर्थ कडवक की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह पूरा कडवक ही सोरठा छंद में लिखा गया है। इस छन्द में वर्णित "ए" वर्ण रचना को गीतात्मक बनाता है और इसे हटा लेने पर सोरठा की मात्राएं बराबर ठीक बैठती हैं। कवि का वर्णन चातुर्य इसी छन्द में है।[1]

प्रस्तुत रास की रचना का उद्देश्य सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रकाश में जीवन में निर्वेद का महत्व तीर्थों और चरित नायकों के आदर्शों की सहायता से स्पष्ट करना है। जीवन निर्माण में यह रास एवं आध्यात्मिक सन्देश देता है। इस कृति से तत्कालीन जैन राजाओं की साहित्यिक प्रवृत्ति और धार्मिक प्रवृत्ति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत रास की भाषा में सरलता, प्राजलता और जयदेव की वाणी की भांति प्रसाद और मधुरता है। शब्दों की विकासात्मक प्रवृत्ति तथा भाषा में तद्भव व तत्सम शब्दों की झलक स्पष्ट है। प्रयुक्त राजस्थानी और गुजराती के शब्दों में भी नवीनता का प्रयोग है। जासु परव तूसइ सामिणिए, उजिल, कवर पाज, दीसइ, गिरनार, भाय, धरिउ, पाल्हण, अठाई, सीहू दीठु प्रमुख आदि। कुछ शब्दों का विशेष विश्लेषण देखिए —

(१) सुमय या सुषम—सुसम से सूमू हो गया।

(२) सुखमय—सुखमयु—सुहयउ—सुहमु—सूमू।

(३) रेवतगिरि प्रयोग षष्ठी विभक्ति का लगता है। "ए" का रूप संस्कृत 'गिरे' से मेल खाता है। गिरि का गिरे बना दिया है। ऐसा भी संभव है कि गिरे सप्तमी विभक्ति का हो।

(४) अविउ, गलियु गमभीर भल्हलइ, गलइ, रासु कप्पिउ जइजइकार, भावइ, धरिउ, बलतउ, ठामि ठामि आदि स्पष्ट पर्यायवाची शब्द हैं जिनमें अधिकांश रूप सप्तमी के हैं।

(५) कडवक शब्द की उत्पत्ति देखिए —

(क) कटप्र>कडप्प>कडवक या

(ख) कम्प्र>कडप्प>कडाप>कलाप या

(ग) कटप्र>कडप्प>कटप>कडव>कव्व>कडवक अत कटप्र शब्द ही इसका उद्भव लगता है। हेमचन्द्र ने लिखा है "कटप्पा कटप्र

१–वही, पृ० ५ पद २, चतुर्थ कडवक।

शब्द सर्वास्वप्यस्ति सच सर्वीना नाति प्रसिद्ध इति निबद्धम् ।" वे कट्टश शब्द को संस्कृत का बताते हैं।[1]

(६) रसी शब्द की व्युत्पत्ति सम्भवत —रश्मि शब्द से हुई होगी। रश्मि+ल प्रत्यय —रश्मि ल=रश्मिल। रश्मिल>रस्सल>रसी।

(७) तु शब्द सर्वनाम तु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(८) तिरय माहि, पचय माहि प्रयोग सप्तमी के हैं। माहि शब्द मध्ये मज्झ–मांझि–मांधि–माहि रूप से हो सकता है। धरि, जामि आदि रूप तृतीया के हैं।

(९) प्रथम शब्द प्रथ धातु से और अम प्रत्यय लगाकर बना है। प्रथ के ह्रस्व प्रत्यय लगने से पढमिल्ल तथा प्राकृत पढम–पुढम–पढुम–पुढुम आदि रूप बनते हैं। हेमचन्द्र ने थ को ढ में परिवर्तित हो जाने का ही विधान किया है।[2]

(१०) सण्ठाविय संठाविय आदि रूप तुल्य स्थापित बनते हैं। ठासु का मूल रूप स्था धातु में है।[3]

निष्कर्षतः रेवंतगिरि रास की काव्य की दृष्टि से अपूर्व सुन्दर है। वास्तव में संस्कृत साहित्य की दृष्टि से भी हम इस काव्य में उच्च कविता देख सकते हैं। इसमें कुछ शब्द चमत्कृति और कुछ अर्थ चमत्कृति वाली कविता है। यह विद्वान् लेखक श्री शास्त्री जी का विचार है।[4] इस प्रकार धार्मिक स्थल, धार्मिक विषय तथा आध्यात्मिक तत्त्व पूर्ण रचना होते हुए भी इसमें साहित्यिकता और निखरी काव्यात्मकता का संगम है। धर्म इसमें प्रेरणा के रूप में है।

१—देशी नाम माला गाथा [illegible] श्री हेमचन्द्र।

२—रेवंतगिरि रास पृ० १–८।

३—वही।

४—गुजराती कविता श्री केशवराम काशीराम शास्त्री, पृ० [illegible]।

नेमिनाथ रास [1]

१३वी शताब्दी का एक महत्वपूर्ण रास नेमिनाथ रास है। इसके रचयिता श्री सुमतिगणि हैं। यह रास १३वी शताब्दी की उत्तरार्द्ध का है। इसका रचना काल स० १२७० है। विजयसेन सूरि के रेवतगिरि रास के पहले ही इस रास की रचना हुई होगी। क्योंकि रासकर्त्ता सुमतिगणि की अन्य रचनाओं की तुलना मे यही कृति पहले रची हुई है ऐसा प्रतीत होता है। कवि सुमतिगणि का निवासस्थान राजस्थान ही था। वे एक प्रतिभाशाली कवि और यशस्वी टीकाकार थे।

प्रस्तुत रास जैसलमेर की स० १४३७ की स्वाध्याय पुस्तक मे उपलब्ध हुआ। एक और प्रति जसलमेर के दुर्ग स्थित बडे भण्डार में है। इन दोनो के आधार पर ही प्रति का पाठ सम्पादन हुआ है। सुमतिगणि जसे कवि की और भी रचनाए होगी जो प्रचार की कमी से लुप्त हो गई प्रतीत होती है।

नेमिनाथ पर रचे काव्या की परम्परा अपभ्रश से ही मिलती है। अपभ्रशेतर रचनाओ मे तो नेमिनाथ जैसे प्रसिद्ध व्यक्तित्व पर तो सैकडो की सख्या म ग्रन्थ रचे गये है। कवि ने नेमिनाथ रास मे नेमिनाथ के चरित पर प्रकाश डाला है रचना छोटी है कुल मिलाकर ५८ छन्द हैं पर कवि की काव्य प्रतिभा की परीक्षा इसी मे हो जाती है।

नेमिनाथ के ख्यातवृत पर आगे विस्तार मे प्रकाश डाला जायगा यहा कृति का एक मूल्याकन ही प्रस्तुत किया जारहा है। नेमिकुमार जैनियो के २२वें तीर्थंकर थे। उनका राजकुमार होना तथा शक्तिशाली वीर, पराक्रमी होकर भी ससार से वीतरागी हो जाना, तथा विवाह के अवसर पर अभिन्न यौवना राजमती को छोडकर चल देना बडी आश्चर्यजनक घटना है। राजमती भी उन्ही के चरणो मे जाकर दीक्षाग्रहण कर लेती है और अत म दोनो महानिर्वाण की प्राप्ति करते हैं। बरातियो के लिए जीवित पशुओ का वध किया जाकर भोज्य

१–हिन्दी अनुशीलन वर्ष ७ अङ्क १ पृ० ४४–५० "सुमतिगणि कृत नेमिनाथ रास लेख।

बनाना प्रारि बाता न उनम वैराग्य उत्पन्न कर दिया। नमिनाथ श्रीकृष्ण बलराम के भाई थे तथा यान्त्र कुल म सब से सब शक्तिमान थे।

रास के अध्ययन म ज्ञात होता है कि रचना जन भाषा में लिखी हुई है जो वर्णनात्मक और गेय तत्व प्रधान है ना सम्भवत गाने और नतन के लिए ही रचा गया है।

प्रारम्भ में मगलाचरण कर कवि न नमिकुमार (अरिष्टनेमि) के नाम का व उनके पिता समुद्रविजय व सौरीपुर की महारानी शिवादेवी का वणन किया है।

बाल्यकाल में ही नेमिकुमार असाधारण पराक्रमी थे। खलते-खेलते ही एक दिन उनको कृष्ण की आयुध शाला म जाकर उनके धनुष की टकार की तथा लीला मात्र म ही कृष्ण का शख बजा दिया। कृष्ण अत्यन्त भयभीत हुए। जिनवर नेमिनाथ का बाल्य रूप और आयुधशाला का पराक्रम वर्णन दृष्टव्य है —

सो माहाा निनाणु दिलोमल रूवरह जिय मयणु सुणीमरू
मुर गिरि धरि चरउ नम्व वदत नेमि मुहमुहि तम्व ॥२१॥
तहि वसति जाय व कुन कानिहि रमहि रमहि बालहि चहि छाडिहि
सगपुरी इदुव मव कान गयउ न जाणइ विति उ कालू
नमि कुमर अन दियहि रमतउ गन्हरि आगह मार भमतउ
मलु नेवि लालइ वाएव मखमिह तिहुयण खामइ ॥२४॥

तमणि पमणई कन्हा किण वायर सख
भणिउ जणेण नरिन्दा दिण वयुर असमु
ता भयभाउ मणह हरि रामनु भाइ नन्दि थामु कर जावर
लेमइ नेमिकुमरू तह रज्जू हा हा हियर धमक्कर अज्जु [1]

विविध रूपा म कवि न नमिनाथ का राज्य के प्रति निर्लिप्त का वणन किया है। विषय सुखा के प्रति व सदा उदासीन रह।

राम भणइ मन करइ विषाद रज्जु न लमइ तुह कवि भाउ
यहु सुसाम विरत्तु जिणेसरू सुरुव सुरुव परिहरिउ परमसरू
रज्जु मुक्ख करि सुइ जुवडर धारनरइ सा निवरइ निच्छर
पुणवि मागइ हरि रामह अग्गइ वधव गय रह पुव्वि ममगइ
अनुज परिक्कमु नमिकुमारू लेमिइ रज्जु न निणइ महारू

1—हिन्दी अनुशीलन वर्ष ७ अङ्क १, पृ० ८८।

राम जणद्दगु पडिवाहेइ, मुग्गह वारण रज्जु मु लेइ
मुद्दकु बुद्दिवतु कुवि हाइ मामिउ मुणहि विम्व विमु भवगइ (२७-३४)

विविध दृष्टाता स कवि ने भाषा को सबल व भावपूर्ण बना दिया है। भ्रागे रचनाकार न नमिनाथ के विवाह पर प्रकाश डाला है। उग्रसेन की लडकी राजुल का रोती छोड नमिनाथ वीतरागी बन गये। विरहिणी राजुल चिरविरहिणी बन गई। बाडे म बधे पशुग्रा का करुण क्रन्दन नमिनाथ से नही सहा गया जा बरातिया क भोज्य के लिए वध किये जाने वाले थे भ्रौर इस प्रकार द्वार तोरण पर भ्राये नमिनाथ न मु ड़कर राजुल क सारे स्वप्ना को प्रभावहीन कर दिया। रूपवती राजुल के सौन्दर्य वर्णन म कवि का कौशल दर्शनीय है। भ्रलकरण की छटा न स्थल का सौन्दर्य भ्रौर बढा दिया है —

"हू जाणउ भइ भ्रच्छइ वाली राइमई बहु गुणिहि विसाली
उग्गमण राय गहि जाइय, रुव सुहाग लाणि विक्खाइय
जसु धणु केम बनावु सुनतउ, नाजु किरण जालुच्व फुरतउ
दीसइ गोहर नयण सहती न निजुप्पल लील हसति
वयणु कमलु न छण ससि मडणु, दिक्खवि भुल्लइ धूया खडणु
मणधरु धणहरु मणु मोहेइ कचन कलसह सोह न देई
सरल बाहुलय मत विम्हय, न कपय सय गयवणि लज्जिउ
जसु सल्लु पतिण उत्तासिय नरह गइयस वत्थ विनासिय
इय विण विणु वरिह सा बाल वराविय
नमिकुमारह दमि (कुपत्थिय) जायव मेलाविय (४१-४५)

सौन्दर्य वर्णन पर्याप्त सुघड है तथा सौंदर्य क उपमाना मे भी मौलिकता है। रूपवती राजमती की जीवन भर की साधना व्यर्थ हो गई, राजमती का सारा शृ गार क्रन्दन म तिरोहित हो गया। उसकी कांति रुदन में बदल गई पर उसने धैर्य नही छोडा। ऐसे दिव्य पुरुष मुझ मूर्ख के वल्लभ कैसे हो सकते हैं ? करुण रस मे डूबी हुई राजमती की वाणी बडी दयनीय स्थिति की द्योतक है। भ्रन्त मे राजमती स्वय नमिनाथ के पास गिरनार जाकर दीक्षित हो, कैवल्य पद को प्राप्त करती है —

"स निमुणेविणु राय भई, चिंतइ धिगुधिगु एहु ससारु
निच्छय जाणिउ हव मह न परणइ नेमिकुमारु
जा विहुयण रूपिण करि छडियउ, जं बन्ततु कुरुविन्द खडिउ
सुर रमणी हवि जा विर दुल्लहु, सा किम्व हुई महु मुद्दिय वल्लहु
पुणरवि चितइ राइमइ जहहउ नेमि कुमारिण मुक्कि

गय सुकुमाल रास [1]

जैसलमेर के बड़े भण्डार में सं० १४०० में लिखित एक प्रति गय सुकुमाल रास की उपलब्ध होती है। इस प्रति की प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय में विद्यमान है। इसके रचयिता मुनिचन्द्र सूरि के शिष्य श्री दल्हण हैं। दल्हण का समय निर्धारित नहीं है, पर क्योंकि जगचन्द्र सूरि का समय सं १३०० है अतः बहुत सम्भव है कि इनका काल भी सं० १३०० या १३१५ से सं १३२५ के बीच में कहीं अनुमानित किया जा सकता है।

कृति की भाषा को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि यह अपभ्रंश शब्दों की अधिकता लिए है। इससे पूर्व वर्णित रास कृतियों में आने वाले अपभ्रंश आदि के शब्दों के अनुपात में इस कृति में अपभ्रंश के शब्द अधिक हैं। फिर भी लोकभाषा की कृति होने से इसका महत्व स्पष्ट है।

प्रस्तुत रास मुनि गज सुकुमाल पर लिखा एक चरित काव्य है। गज सुकुमार कृष्ण के एक सहोदर अनुज थे। देवकी को उसके पहले पैदा हुए कृष्ण सहित ७ पुत्रों का सुख न मिल सकने पर उसने कृष्ण को मातृ सुख व शिशु-क्रीडा आनन्द का अभाव बताया। कारण नगर में नेमिनाथ के साथ ६ साधु एक ही रूप के थे और वे दो दो की टोली बना कर देवकी के यहां आहार ग्रहण करने को आये। देवकी का मातृत्व उमड़ पड़ा। नेमिनाथ से पूछने पर उसे उन्होंने बताया कि ये छहों मुनि उसी के पुत्र हैं जो कंस द्वारा मार डालने पर बच गये थे। देवकी को अब बालक की इच्छा हुई। कृष्ण ने तपस्या करके पता लगाया। देवता ने बताया कि बालक तो इसके और हो सकता है पर यह उसका बाल्य-काल का सुख ही देख सकेगा। युवा होने से पूर्व ही वह दीक्षा ले लेगा। नियत समय पर बालक हो गया। क्योंकि वह हाथी के बच्चे की भांति सुकुमार व सुकोमल था अतः उसका नाम गजसुकुमाल रख दिया गया। मां देवकी ने उसे खूब लाड़-प्यार से पाल कर अपनी मातृ-सुख व वात्सल्य की

१–राजस्थान भारती वर्ष ३ अङ्क २, पृ० ८७ पर गयसुकुमाल रास– श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

अतृप्त-कामना की पूर्ति की। एक दिन नेमिनाथ पुनः द्वारका आये उनकी रसीली वाणी सुनकर गयसुकुमाल को वैराग्य हो गया। माँ के बहुत मना करने पर भी इन्होंने बात न मानी। नेमिनाथ से दीक्षा ले ली। पहले ही दिन उनसे उन्होंने कैवल्य की प्राप्ति का उपाय पूछा। नेमिनाथ ने निद्रा द्वेष रहित होकर तितिक्षा धारण करना बताया। बालक सुकुमाल श्मशान में जाकर ध्यानस्थ हो गया। इधर उसी का पाणिग्रहण करने के लिए एक सुन्दर लड़की के ब्राह्मण पिता को जब ज्ञात हुआ कि इसने तो साधु होकर मेरी सुन्दरी कन्या का जीवन ही मिटा दिया है तो उसने चिता के गर्म-गर्म अंगार लेकर उसके सिर पर डाल दिये। बालक पूरा जल गया पर मन तो ज्ञान में खो गया था कि मैं तो आत्मा हूँ जल तो केवल शरीर रहा है। इस तरह साधना व मोक्ष प्राप्ति के लिए बालक ने जीवन उत्सर्ग कर दिया। पापी ब्राह्मण भी कृष्ण का दर्शन मात्र करने से मृत्यु को प्राप्त हुआ। यही इस रास की कथा सार है।

कथा में घटनाओं की वैचित्र्य और कथा सूत्र में कथात्मकता होने से पाठकों का उत्साह अंत तक बना रहता है। जैन सूत्रों में भी गज सुकुमाल का जीवन चरित्र मिलता है। वस्तुतः पूरा रास कवि ने गजसुकुमाल की साधना, तितिक्षा व कैवल्य प्राप्ति में प्रशंसा के चरित्र वर्णन के रूप में लिखा है।

भाषा की दृष्टि से इस रास को डॉ० हरिवंश कोछड़ ने अपभ्रंश काव्यों में लिया है परन्तु उनकी यह मान्यता सम्भवतः ठीक नहीं है। कृति की भाषा अपभ्रंश से पूर्णतः मुक्त तथा तत्कालीन लोकभाषा से सम्बन्ध रखती है। भाषा के स्वरूप यह तो कहा जा सकता है कि इस कृति की रचना काल सम्भवतः सं० १३०० के ही आस-पास माना जा सकता है पर कृति की अपभ्रंश तत्कालीन भाषा परिवर्तन काल की उपेक्षा करती है। वास्तव में यह रचना संधिकालीन रचना है। कवि ने यह रचना श्री देवेन्द्र सूरि के कहने से ही लिखी है —

'सिरि देविंद सूरिन्द वयणु, मणि उवसमि संठियउ
गयसुकुमाल चरित्तु सिरि देल्हणि रइयउ'—

आगे कवि के काव्यात्मक स्थलों, तथा भाषा का रूप स्पष्ट करने के लिए कुछ रचना के उदाहरण दिए जा रहे हैं —

कृष्ण के राज्य का वर्णन, द्वारका का आकार इन्द्र आय हुए समान तथा ६ मुनियों को देखकर वात्सल्य का जागना इन स्थलों को देखिये —

"नयरिहि रज्जु करेइ तहिं कण्हु नरिंदु
नरवइ मंति सगुणहा जिम सुरगणि इंदु

सख चक्क गय पहरण धारा
कंस नराहिव भय महारा
जिण चाण उरि मल्लु वियरिउ
जरासिंधु बलवतउ धाडिउ

तासु जणउ वसुदेवा वर रुवनिहाणू
महियलि पयड पयावा रिउ भड तम भाणू
जणणिहिं देवइ गुण संपुत्तिय
नावइ सुरलायह उत्तिन्निय
सा निय मंदिर अच्छइ जाम्व
तिन्नि जरि जुयल मुणि आइय ताम्व
सिरि वच्छंकिय वच्छे रूवि विक्खाया
चितइ धन्निय नारी जसु जाया (५–६) रा० भा० वर्ष ३ अङ्क २

छहा मुनियो को एक रूप देखकर देवकी को शंका हुई कि मुनि तीन बार कसे आहार ग्रहण करने आये और इसका परिहार नेमिनाथ ही करते है और देवकी के मन मे बाल सुख का अभाव विषाद भर देता है —

'मुनिवर सुदर लक्खण सहिया, महमुय कसि कयच्छि गहिया
बारवइ मुणि विभइ इत्थू कह वलिवलि मुणि आयउ इत्थू
पूछइ देवइ ता पभणहिं मुनिवर ताम्वा (अम्ह) सय रूव सहोन्र
सुलस सरविय कुखि धरिया कुवण विसय पिमाइ नडिया
सुमरिउ जिणवर नेमिकुमारु, तसु पय मूलि लयउ वय भारु

जाइवि पुच्छिइ नेमिकुमारू, संसउ ताडइ तिहुयण सारू
पुव्वि छच्च रयण तत हरिया, विणि कारणि तुह सुय अवहरिया
कस वि होइ निमित्तू वर करइ करेई सुलस सराविय ताम्वा सुरु अल्लइ
देवइ मुणिवर वंदइ जाम्व हरिस विसाउ धरइ मणि ताम्व
सुलस सधन्निय असु धारितहिय हउ पुण बाल विउइहि दहिय
खिल्लवइ मल्हावइ जाम्व देवइ मन दुम्मण हुइ ताम्व

कवि ने गयसुकुमाल का श्मशान मे जाकर कठिन तितिक्षा का वर्णन देखिए —

"माह लहागिरि पूरण मज्जू, भवतरुवर उम्मूलण गज्जू
सुमरिवि जिणवरु नेमिकुमारु, गय सुकुमारु लेइ वयभारु
ठिउ का उसग्गि ताम्व जाय वि मसाणि,

धारवर नगराण वाहिर उपवनो
नमि गुरु गिर वर कुसुमिउ तरुवर सहिविर जय पव्वाविउ निवाद
पाद पुव विनविर परिणिय जेम अमिया नवु पभु नन्द मलुवा

ए र भावना म न यन जान का उल्लेख म्य भावा या भाति कोमल
स्थूलभद्र मंदिर क्षण म विया म ग उपगार बनार वान न स जन
का यही आश्रम हो स्थ द र निवासु का जात हुआ । नादर वो यह भावना
कवि ने बड़ा हो ढंग से वर्णित की है —

तारद नयभुकुमार निरि गवि वर्षे नारम नयर ध्रमारा निरि पुरुषमंई
उपनइ मंगिवस्त स्थूलभद्रकुमारु संसिउ निरिय दुगिणि विमासु
सिन नर न्याय न कुसुमिरि हरू निव लग्गु इय दु न माउर करइ
मनरागु गोरी निरिदार निमिलु नरविर पुत्त ममाइ हुवइ विसिरिवि
मणि मयमुनि स्थूलभद्र निरव उमर नगर जाइ
पतनिवि नवाहि नामु वाविउ मानय निवगुण नामु [1]

रास के अन्त म कवि ने रास निमल का उद्देश्य स्पष्ट किया है । कवि
ने इस चरित प्रधान रास स्थूलभद्र का निर्मा ण प्रधान भावना की प्राप्ति
के रूप में लिखा है । यह रास ज्ञान मनन करने और आनन्द मग्न होने के लिए
ही लिखा गया है —

एह रासु पुनवह जाऊ रमन मनु मंपु पवाइ
एहु रासु जो गाइ पुति गा मा सातय निव सुकवइ सहिरो [2]

वस्तुत सचि वानान रासा में भाषा क दृष्टि स ऐसा कृतियों विशेष
महत्व का हो सकता है । इनमें तत्व या वातान प्रधान और भोज भाषाओं के
बाध को सन्धि का स्थिति स्पष्ट होता है । इस प्रकार भाषा की दृष्टि से
कृति का महत्व स्पष्ट है ।

४ इन्हीं का यह रास निर्मित है कवि ने नयभुकुमार के चरित वर्णन
करने म ही माता चरित गान किया है । इस प्रकार प्रथम बार यान भान पर
र ८ हो जाता है कि रास के रचना इन्द म कल्प कुन्थान उल्लास आदि
आदि न रह कर नवम बना तन का पूर्णतया समाप्त हो गया था । इस तरह
रास नामक रचनाओं का वस्तु स्थिति म कालान्तर म स्पष्ट परिवर्तन हो गया ।

१—मिश्र-राजस्थान भारती, वर्ष अङ्क पद्य (२८–१) पृ० ३ ।
२—वही पद्य ३८ ।

कच्छूली रास

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एक रचना कच्छूली रास मिलती है। रचना का लेखक अज्ञात है। रचना काल रचनाकार और रास के रचना स्थल का सम्भाव्य संकेत रास की कुछ अन्तिम पंक्तियों में पाया जा सकता है। श्री मोहनलाल देसाई ने भी इसका रचनाकार श्री प्रज्ञातिलक सूरि माना है[2] पर यह बात ठीक नहीं जँचती है। रास की अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

"सात्तीसइ अषाढि लक्खमणु मयधर साऊणा
छपणी नयर मझारि मोरिठवणउ भीमि किमा
कमल सूरि नियपाटि सई हथि प्रज्ञासूरिठामा
पमोउ पमारोउ मीतु भणसणि अप्पा सुधुनीमा
पणि पहुत्तउ सुरखादि गणहरु गमाजन विमलो
तासु सीसु चिरकालु प्रनपउ प्रज्ञातिलक सूरे
जिण सासणि महधदु सुह गुरु भवीयहं कल्पतरो
ता जाणे जयवंत उमाहा जा जगि ऊगइ सहसकरो
तेर त्रिसठइ रासु कोरिंटावडि निम्मिउ
जिण हरि रंगि सुणंत मण वंछिय सवि पूरवउ'

इस तथ्य से प्रज्ञातिलक सूरि का नाम रास का रचना संवत् १३६३ तथा रचना स्थल कोरिंटवड स्पष्ट होता है। देसाई जी की बात का परिहार इस बात से हो जाता है कि यदि कृति का कर्ता स्वयं प्रज्ञातिलक होता तो वह स्वयं अपने लिए प्रशंसात्मक वर्णन कैसे कर सकता था। श्री के० का० शास्त्री का मत है कि ऐसा लगता है कि किसी अज्ञात लेखक ने यह रास रचा होगा।[3] पर शास्त्री जी का आधार भी इस दृष्टि से किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँचता। अस्तु रचना व रचना को उसके चरित नायक तथा ऐतिहासिक

१–प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह श्री चिमनलाल दलाल, पृ० ६२६।
२–जैन गुर्जर कवियो, भाग १ पृ० ८।
३–आपणा कवियो श्री के० का० शास्त्री पृ० २०३।

वातावरण पूर्ण उल्लास एवं प्रभावात्मक वर्णना को देखकर यह कहा जा सकता है कि या तो इसकी रचना विमल मधाधिप द्वारा हुई या प्रभातिलक सूरि के ही किसी अतरंग शिष्य द्वारा हुई होगी।

वच्छूत्रा रास एक ऐतिहासिक गीति रचना है जिसमें आबू का अचलेश्वर जैन मन्दिर चन्द्रावती कोरिण्टवड आदि जैन तीर्थों का वर्णन है। साथ ही आबू के परमारों व परमारों का वर्णन भी कवि ने किया है। रास में कोई कथा विशेष नहीं। वच्छूत्रा ग्राम में उत्पन्न श्री उदयसिंह सूरि का पराक्रम और शौर्य वर्णन है। धार्मिक दृष्टि से वच्छूत्री ग्राम का महत्व स्पष्ट किया गया है। साथ ही कवि ने सब वर्णन किया है जिसमें प्रभातिलक सूरि प्रमुख पात्र हैं। उदयसिंह ने मंत्र सिखाया मंत्र चन्द्रावली गया वही साजण के पुत्र कमल सूरि की शिक्षा हुई और तब कोरिण्टवड स्थान पर प्रभातिलक के किसी शिष्य विशेष ने रास रचना की होगी।

कथा की दृष्टि से इस कृति का कोई विशेष महत्व नहीं कथा में कोई नवीनता भी नहीं मिलती पर भाषा शैली और छन्दों की दृष्टि से रचना महत्वपूर्ण है। कवि ने मंगलाचरण से ही प्रारम्भ किया है। आचार विचार और अनियमित जीवन यापन करने वाले कवियों के लिए कुछ अच्छे सिखावन कवि ने दिए हैं —

> 'केवल मुगति न जिणु भणइ नारिहिं सिद्धि भजणि
> उदयसूरि पमणउ पलीउ नय तन राय प्रयाणि
> केवल मुगति म आति कर नारि जति ध्रुव सिद्धि
> तिस मय सिद्धा वज्जि जाय लाइ आहार विसुद्धि '

छन्दों की दृष्टि से इस कृति में वाह्य मिलता है। यों दोहा चौपाई आदि छन्द तो मिलते ही हैं पर भूलणा छन्द विशेष शिल्प के साथ वर्णित हुआ है। यह छन्द २० मात्राओं के चरणों का मिलता है। इसके दो कड़ियां होती हैं जिसमें एक दोहा का व दूसरी कोई द्विपदी होता है। छन्दों के क्षेत्र में इसका मौलिक योग दिखाई पड़ता है। बीच बीच में जो बार बार पदों का आवर्त्तन होता है वह छन्द को कलात्मक बनाता है। इसमें इस रास में गेयता जय प्रवृति स्पष्ट होती है। एक उदाहरण देखिए —

> मयवर नउ हिव रहिउ ज गुरु सिद्धिहिं चढा
> विमहरू आवनु परिवनि ज लपाउ ए लपाउ न्हु पयडा

१–प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, आ न्यास पृ० ७६–६२।

तउ गुरि मुहता मिल्हि करि होइ गरहु पयेणा
धाईउ लीयउ चचु पडे गिलीउ ए गिलीउ ए गिलीउ छाल भुयंगो
पाउ पिल्लिवि समुहीय डर डरनु थीउ गाधो
जावणहार सवि बल मलीय हीयडई ए हीयडई ए हीयडइ पडीउ दाधो

तउ गुरि मुकीउ रय हरणु कीधउ सीहु कराली
याधह जता दूरि मीउ हरिसीउ ए हरिसीउ ए हरिसीउ नयह सवालो [1]

झूलणा छन्द इससे पूर्व सोम मूर्ति रचित जिनेश्वर सूरि विवाह वर्णन रास में भी मिलता है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। एक और छन्द जो स० १२४१ के भरतेश्वर बाहुबली मे मिलता है इसमे वर्णित हुआ है। इस छन्द में १६+१६+१३ मात्राओं का प्रयोग है जिसका निर्वाह पहले शालिभद्र सूरि ने किया है। [2] सम्भवत इस छन्द का वरणन कवि ने परम्परा निर्वाह के लिए ही किया हो। छन्द है —

सिरि भद्देसर सूरिहि वसो, बीजो साह व निसु रासा, धमीय रोलु निवारीउ
नमकु ड संमम परमार, राजु करइ तहि छे सविवार आबू गिरिवर तहि पवरो
जणमण जयणह कम्पण मूनी बहुली विरि लक्ष विलासी सर प्रववि मणोहरीय [3]

श्री लालचन्द गाधी ने इस छन्द को रास छन्द की सज्ञा दी है जो सम्भवत रास रचनाओं के लिए एक छन्द विशेष हो गया था। [4] श्री के० का० शास्त्री ने इस छन्द को मिश्र छन्द कहा है तथा इसमे १६+१६+१३+ और १६+१६+१३ की द्विपदिया बताई है। [5] इन छन्दों के अतिरिक्त दोहा चौपाई छन्द भी मिलते हैं। रास महोत्सव के लिए लिखा गया है अत गेयता उसमें विद्यमान है।

भाषा के सम्बन्ध में रचना का महत्व साधारण है। लोक भाषा के प्रवाह में कवि ने "बू ब" जैसे शब्द का प्रयोग किया है—

"हुइ कमालीउ कालमुहो लोविहि ये लोविहि ये लाविहि बाइय बू ब [6]

१—प्राचीन गु० का० स०, पृ० ६१।
२—भरतेश्वर-बाहुबली रास, श्री ला० भ० गाधा पृ० २।
३—प्राचीन गु० का० स०, श्री दलाल पृ० ५६।
४—भरतेश्वर-बाहुबली रास, पृ० २।
५—आपणा कवियो, श्री के० का० शास्त्री, पृ० १५६–१६०।
६—प्रा० गु० का० सं०, श्री दलाल, पृ० ६१।

राजस्थानी में बोलचाल में आज भी बूंब शब्द मिलता है जो सम्भवत गौर से चोंगल के लिए प्रयुक्त होता है। यह भी सम्भव है कि यह शब्द विदेशी हो।

नये शब्दों में—कमठ, नाद वरमाल, धमगल, पामजिण, मनलद्धु द चिन्तामणि, हिमगिरि धवलठ, आविर उपवाग, मुरीड, वीजी, मुरति, धाति, चिरतार विमल आदि अनेक शब्द मिलते हैं। अत इन शब्दों से भाषा में नवीन शब्दों के ग्रहण की शक्ति स्पष्ट होती है।

१४वीं शताब्दी के इन्हीं काव्यों की परम्परा में इसी प्रकार की कथा वस्तु के दो विस्तृत रास काव्य मिलते हैं। इन काव्यों में भी युद्ध वर्णन है तथा दानवीर मण्डपतियों की दानशीलता का वर्णन है। इन दोनों कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन संक्षेप में किया जायगा। काव्य रूप, भाषा और छन्दों की दृष्टि से ये दोनों रास महत्वपूर्ण प्रबन्ध हैं।

१—पेथड रास[1]—सं० १३६३—मंडलिक

२—समरा रास[2]—सं० १३७१—अंबदेव

ये दोनों कृतियां प्रकाशित हैं तथा इनमें पेथड और समरसिंह की दानवीरता पराक्रम और शौर्य, तीर्थोद्धार तथा संघ का वर्णन है। दोनों रासों में से प्रथम का लेखक और समय अनिश्चित-सा है पर प्राप्त बहिरंग प्रमाणों के आधार पर इसे सं० १३६३ की रचना मानी जा सकती है। पेथड रास की पूर्णता पर श्री क० का० शास्त्री ने शंका प्रकट की है[3] यों रचना की पुष्पिका 'इति श्री प्राग्वाटवंश मौक्तिक काव्य पेथड रास समाप्त" को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रचना अपूर्ण नहीं है। रचना का लक्ष्य भी पूरा हो गया है। अत रचना को अपूर्ण कहना असम्भव ही लगता है। वस्तुत शास्त्री जी का अनुमान बहुत ठीक नहीं है। कवि मंडलिक पर भी मत वैभिन्य है पर मंडलिक का प्रमाण रास में मिल जाता है।

कृति का ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। कई ऐतिहासिक पुरुषों यथा कर्णदेव सगार आदि का वर्णन भी मिलता है। श्री शास्त्री इसके कर्ता के विषय में लिखते हैं कि या तो इस काव्य का रचयिता ही सगार है या वह नहीं है, तो मंडलिक का पिता सगार होगा और वह वृद्ध होगा

१—प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, श्री दलाल एडिशन १० पृ० २१।
२—वही पृ० २७।
३—आपणा कवियो, श्री क० का० शास्त्री, पृ० १६७।

प्रत मडलिक ही इसका कर्त्ता रहा होगा। खंगार की मृत्यु का प्रमाण तो वि० स० १३१६ में ही मिलता है।[1]

जो भी हो, कृति के रचनाकार और रचना काल दोनो की स्थितिया अस्पष्ट हैं। प्राप्त प्रमाणो के आधार पर मडलिक को ही इसका रचनाकार कहा जा सकता है व इसका काल सं० १३६० माना जा सकता है।

पेथड वस्तुपाल और तेजपाल की भांति यशस्वी था। समरसिंह का यश भी पेथड से कम नहीं था। पेथड और समर दोनो दानवीर पुरुषो ने सघ निकाला था। पथड रास में कई स्थानो पर क्रीडा, ताल, लकुटा रास, नृत्य, गीत, गान आदि के पद मिलते हैं। कुछ काव्यात्मक सरस स्थल द्रष्टव्य है —

'ठ्वानई वाजाय नदणि विसालीय तितीय ताली रगि फिरंती हरिस भरे तहि पैला नाचइ पल बहुयत वेला वाला भोल लटुका रसि रमई[2]

कामिणी धामिणि धवल दयती गायती गुण जिणवरह
शति अमाहु जात्र समाहुउ वरीयल कनि सुणतीह य
ते चउरा रुडा तउवा ताडी, नवा नवेरा दसइ गेहण गण सघण
तं घणा घणेरा सम बिसमेरा सखि न दीसई मसखि पुण—

पद चयन की सुगठितता, सरलता तथा गीतिमयता के साथ-साथ कवि ने रास क्रीडा का महत्व स्पष्ट किया है —

'रास रमेवउ जिन भुवणि ताल मेव ठवियाउ
संघ तलायन रोपिउ ए समागिरि विमगिरि बेवि"

अनेक आलकारिक सूक्तियाँ भी रास में मिल जाती हैं —

(१) लाछिनगउ जउ गरव करेइ लीजइ राउल छनह धरेई
(२) मणूय जनम हव सफन करोजउ जिविय योवन लाहउ लीजर
(३) एक चित सवि ममाणु आणु
(४) जिम कंबरा कस वटटीय पामिउ बहुगुण रेह
(५) घण कण रयण भडार ते सवि अठगिय असार

साथ हो नारियो के नृत्य कामिनियो के आल्हादकारी हास तथा रास क्रीडा के साथ-साथ गिरिनार और सुवर्ण रेखा नदी के काव्यात्मक वर्णन अनूठे हैं।[3]

१—गुजरात—राजस्थान, पृ० ३०८।
२—प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह, पृ० २६ एडि‍स १०।
३—वही पृ०, २७ छद ४६।

इसी प्रकार श्री अम्बदेव सूरि कृत समरा रास के काव्यात्मक स्थल भी उल्लेखनीय हैं। रास रचना का उद्देश्य, गाने, क्रीड़ा करने और नृत्य हेतु पठन बताया है यथा—'एहु रासु जो पढ़इ गुणइ नाचिउ जिण हरि देइ

श्रवणि सुणइ सो बयठऊ ए तीरथ ए तीरथ ए तीरथ जात्र फलु लेई

समरसिंह ने मुसलमान सुल्तान को प्रसन्न कर संघ निकाला। बादशाह सुल्तान ने संघ की बड़ी सहायता की। समरसिंह ने जैन शास्त्रानुसार समय में शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार कर आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित की। और जूनागढ़ प्रभास पाटण आदि अनेक ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा कर समरसिंह पाटण लौट आये। रास कर्ता ने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध का रास में उल्लेख किया है। कवि ने पातशाह, सुल्तान आलम अलपखान और मलिक अहिम्मर मलिक आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों से रास का सम्बन्ध स्पष्ट किया है। रास पर विस्तृत अध्ययन अन्यत्र प्रस्तुत किया गया है

रचना का वस्तु वर्णन भासा में विभक्त है। मुनि जिनविजय जी ने इनकी संख्या १२ ही बताई है और श्री व्यास ने भी इस छाली भासा ही कहा है।[1] इन भासा का विचार अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सम्भवतः कवि ने विभाजन छन्द के आधार पर किया हो क्योंकि हर भासा में छन्द वैविध्य है। भासा समाप्त होते ही छन्द परिवर्तन हो जाता है इस दृष्टि से पाठ का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इसे १२ भासा के स्थान पर १३ भासा में विभक्त होना चाहिए। क्योंकि छाली भासा की ६ कड़ियाँ एक ही छन्द में चलती हैं जिसको के० का० शास्त्री ने त्रिपदी का समान छन्द कहा है।[2] पर उसके बाद छन्द बदल जाता है इस भासा दोहा में रची गई है जिसमें "ए" स्वर के साथ वर्णों का तीन बार आवर्तन मिलता है। अतः इस अवशेष भाग को १३वां भासा कहा जा सकता है। भासा शब्द "कड़वक" की भांति कथा विभाजन का सूचक है अतः यह सर्ग परिवर्तन सूचक शब्द है।

कवि ने अलाउद्दीन और मीर अलप खा की प्रशंसा सात संदों पर की है कवि की वर्णन की अलंकारिता दृष्टव्य है—

"तहि अवधूइ सुरतिहि सुवण सनखड पमत्यो
विश्वकर्म विमान करिउ थाइउ
अमिय सरोवर सहसलिंगु इकु धरणिहि कुंडलु,

१—प्रा० गु० का० सं० श्री दलाल पृ० २६।

२—आपणा कवियो, श्री के० का० शास्त्री, पृ० २१९।

खित्ति धम्मु किरि अवर देसि मागइ माल हलु

पात साहि सुरताण मोवु तहि राजु करेइ,
अलपखानु हीदूग्रह लोय घणु मानजु देई
मीरि मलिकि मानियइ समरु समरखु, पभणी-जइ,
पर उवयारिय माहि लीह जसु पहिलिय दीजई

असंख्य सेना के साथ समरसिंह चलते हैं। हाथी, घोड़े, यात्री, सैनिक पालकी, और स्थान-स्थान पर उत्सव आनंद सबका अनुभूतिपूर्ण वर्णन है घोड़ो ऊंटों व सेना वर्णन में कवि का कौशल दर्शनीय है —

"वजिय सख असख, नादि काहल दुड दडिया
घोडे चडइ सक्षार सार राउत सीगडिया
तउ देवालय जोत्ति, वेगि घाघरि रवु झमकइ
सम विसम नवि गणइ, कोइ नवि वारिउ थक्कइ

सिजवाला धर धडहडइ वाहिणि बहु वेगे
धरणि धडक्कइ रज्जु उयए नवि सूझवि मागे
हय हीसइ आरसइ करह वेगि वहइ वहल्ल
साल्किया थाहरइ, अवरु नवि देइ बुल्ल
रात्रि के दीपकों का तारागणों से साम्य कितना स्पष्ट है —
"निसि दीवी झलहलहि जेम ऊगिउ तारायणु
पावल पाउ न पामियए वेगि वहइ सुखासणु

प्रकृति वर्णन, भाषा की सरलता काव्यमयता कवि की तन्मयता तथा अलंकारों की योजना निम्नांकित पदों से स्पष्ट हो जाती है —

(१) हिव पुण नवीयज बात जिणि दीहडइ दोहिलए
खलिय खगु न लिति साहसि यह साहसुगलए
(२) तसु गुण करइ उदोउ जिम अधारइ फटिक मणि
(३) सारणि अमिय तणीय जिणी वहावी मरूमडलिहि
(४) तसु पय कमल मरालुलउ ए कक्क सूरि मुनि राउत
ध्यान धनुष जिणि भजियउ ए मयण मल्ल भडिवाउत
(५) धम्म धोरिय धुरि धवल दुइ खुत्तया, कुम पिंजरि कामधेनु पुत्तया
इन्दु जिमि जयरथि चडिउ सचारए, सूह वसिरि सालि धानु निहालए
(६) रितु अवतरिउ तहि जिवसतो सुरहि कुसुम परिमल पूरतो

समरह वाजिय विजय ढाक, सांधु सेतु सल्लइ सच्छाया
वेमुय कुडव कयव निकाया—

(७) माणिके मोतिए चउकु सुर पूरइ, रतन मइ वेहि सोवन जवारा
मनहर धूप घनु धामू पल्लव श्लिहि त्रिभुवन रतियले तोरण माला
देवराया विविध पवन भवन भिवइ किनर गायहि जगत गुरो [1]
लगत मुन्दर सुरसुरा गायण पठोठ करई सिध पूरि घुरो

उक्त उद्धरण में कृति का काव्य कौशल तथा भाषा में तत्सम शब्दों का समावेश स्पष्ट हो जाता है।

भाषा में विदेशी शब्दों के अनेक उदाहरण इस कृति में मिल जाते हैं—

(१) सल्लार—पाछे धसइ सल्लार मार राउत सोणहिया
(२) पानखानु—मेटिउ य तउ पानखानु
(३) अहिम्मदमलिक—अहिम्मद ए मलिक साम्ग शाह से आमुलि मारणए
(४) मीर मलिक—मीर मलिक मलियर समरू समरथ
(५) पातसाहि, अलपखान दुनिय हज

हिंदुम, अहम्मदि—(१) पातसाहि सुरताण भीबु तहि राउ करेइ
अलपखान हाटुपटु लाय पाणु मान धुरेइ
(२) महला ए दुनिय निराम हज मागीय हींदुम तणाए
(३) साखिण ए निगुणि अहम्मदि [2]

छन्दों के क्षेत्र में पेथड और समरा दोनों रासों का बहुत ही महत्व है। इन दोनों रासों ने भाषा और छन्दों में मौलिकता तथा वैविध्य के पृथक अनेक प्रयोग किए हैं उनका क्रमशः अध्ययन इस प्रकार है—

पेथड रास में छन्दों का वैविध्य दृष्टव्य है। एक तो जोर भाषा और दूसरे छन्दों के यन्तन क्रम ने काव्य प्रवाह को बनाया है। इस कृति में चालू दोहा चौपाई और चौपाया तो है ही, पर छन्दों में सवैया जैसी गुजराती कविता में सर्व प्रथम प्रयुक्त हुए हैं। गुजराती कविता कहने का कारण यह है कि जयदेव के गीत गोविन्द के पूर्व प्रयुक्त भले ही में तो ऐसी पद्धति थी ही परन्तु इस रास में सवैया में विविधता लाने का प्रयत्न है। इसमें चालू मात्र के पदों में कुछ

१—समराराम प्रा० गु० का० संग्रह, पृ० २८७।

२—समरा रास, पृ० २४५।

मात्राए अधिक दी है और कुछ मात्रा बढाये हुए छन्द मे त्रिभगी छन्द की भाति मति अनुप्रास जैसी पद्धति प्रस्तुत की है। [१]

त्रिभगी छद मे ३२ मात्राए होती है। यह छन्द सम होता है आदि में जगण (।ऽ।) वर्जित है। १०, ८, ८, ६ पर यति और अन्त में गुरु वर्ण का होना इसके शास्त्रीय लक्षण माने जाते है।

उदाहरणार्थ—धम्मीय निउणउ लोय मज्झि सधतणउ समाहउ भवीअणउ
प्राणू अ दीजइ भसिजत्ति भवीया लहइ लाहइ धण वणउ
पेलिसि रत्तीयइ रगि रान इव नवरस नवरग नवीय परे
सुणि सामहणी सधतणी जो करइ निरतर धराहि धरे

एक विशेष शब्द लडण इस रास मे मिलता है। जिस तरह कटवक शब्द कही कही ठवणि कहलाता है। कच्छूली रास मे जिस प्रकार वस्त शब्द का उल्लेख है, उसी प्रकार कवि ने इस पद्धति को लडण कहा है।

एकार वाला पद लडण के पश्चात जो आता है वह सोरठा है और उसी के साथ ४२ वी कडी मे दोहा परिलक्षित होता है पर उत्तरार्द्ध में उसी पक्ति में बार बार पुन आवृत्ति मिलती है। इस छद के बाद देशी सवैया का प्रयोग है। ये चार प्रयाग अत्यन्त ही विशिष्ट हैं —

"वाय वद्धामणउ अतिहि सोहामणु रिमह भुवणि रलीआमणु ए
ममिजन कलस कवण मय मडिवल ए
दुवरा जलजलि देयति कुसुमजले
धुणति हीण रीण जीण उतारति
जल लवण नम्हण करति सामी सुगध जले

कपूरी पूरि पूरीय तिणि कीयलि मृग नामि अडा निजग गुरू
पुण मिलउ देवाधिदेव जोउ वेलवउ सेवत्री पाडल बहूल
कुसुम परमल विपुल पूजहे ।। वाय वद्धामणु ।।

इसके अतिरिक्त गीत गोविन्द की २७ मात्राओ की देशी सवैया पद्धति मे दो छन्द मिलते हैं। इन सवैया का प्रयोग पहले गीत गोविन्द मे ही मिलता है —

"राजल वत। तहि नाचिनए सहिलडीय ललागोय गिरिनारे
राजलिवर रलिआमुणउ सामलउ ससारो ।। वहि नाचिनए ।।

१—आपणा कवियो, श्री शास्त्री, पृ० २०४।

धंग परवाति मुगयन्मइए जन पहराय धाति प्रवीत
इम्र महोत्सव भायमी तहि बयठविबद्ध धणवत ।। नन्दि नाषिनए महि० ।।

और इसके पश्चात कवि ने रास के अन्त में ऋतु पद्धति में दोहा का वर्णन किया है वह भी अपने ढंग प्रकार का है जिसकी तुक योजना में भी एक वैचित्र्य है —

> प विवि भास मणोहर पूरी भवनाईय जाप्राय
> माज पूजन कुमारीय वर्णायउ पय नम मुरी थाय ।।
> तहि ना सहल ए रूना या गढ गिरिनारि
> सोमनाथ कम पग कम्पर देसाउ वर्णीउ जाम

दिउ पायाण विव मन रहिमउ मदलिक मणर एम ।। तहि ना० ।।
दिउ पीपाणवेगि तहि हरामाला मृगा रे सूरवान मवत मनीना मूढारे

समर रास में भी छन्दों के मौलिक प्रयोग हैं। कवि ने दोहा रोला द्विपदी सोरठा आदि छन्दों में रास रचा है। छठा व ७ वा भाषा में चौपाई तथा ५ कड़ियाँ रोला की हैं। ८ वा ६ वा में क्रमशः १० कड़ियाँ द्विपदी का तथा ६ कड़िया का एक फूलणा छन्द है जिसमें अन्त्यानुप्रास का काव्य चमत्कार है जिसमें उसकी गयता स्पष्ट होती है और यह छन्द प्रथम बार प्रयुक्त हुआ है। १० वा भाषा में दोहा और ११ वा में कवि के नये प्रयोग हैं। प्रारम्भिक कड़िया में १६ १६ मात्राओं का एक चरण है और फिर १३ मात्राओं की एक अर्धाली। १२ वा १३ वा भाषा में त्रिपदी नामक अज्ञात छन्द है। इसमें दोहे के साथ 'ए' का प्रयोग व आवर्तन तीन बार मिलता है। इस प्रकार दोनों कृतियाँ छन्दों की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

डा० हरिवंश कोछड़ ने अपने ग्रन्थ अपभ्रंश साहित्य में इन कृतियों को स्फुट साहित्य कह कर छोड़ दिया है और इन रासों को अपभ्रंश की ही कृतियाँ मानी है पर उक्त विवेचन के आधार पर इस धारणा का परिहार हो जाता है। *ऐसी कृतियों को अपभ्रंश की कहना भ्रान्त तत्कालीन रचना* सभा रचनाओं के शिल्प, भाषा शैली काव्य इतिहास, कथा वस्तु तथा इतिहास के तत्वों की उपेक्षा करना है। वस्तुत दोनों रास इन्हें माहित्य में विशिष्ट स्थान के अधिकारी रखना निः हैं।

मयणरेहा रास [1]

हिन्दी जैन साहित्य में जैन चरित नायकों की ही भांति जैन साध्वियों और आदर्श नारियों (सतियों) पर लिखी गई अनेक रचनाएं उपलब्ध होती हैं। मयणरेहा रास जैन आदर्श राजपुत्री मदनरेखा की जीवन कथा है। प्रस्तुत रास ८ ठवणि में पूरा हुआ है। सतियों के जीवन चरित वर्णन की परम्परा भी अब प्राकृत और अपभ्रंश के काल से ही मिलती है। १३वीं से १५वीं शताब्दी में रास और चतुष्पदिकाओं के रूप में अनेक कथाकाव्य मिलते हैं। पूर्वोल्लिखित चन्दनबाला रास की भांति मयणरेहा रास भी सती मदनरेखा के सतीत्व, नारीत्व और पतिव्रत्य जीवन की मार्मिक और करुण कहानी है। [2] प्रस्तुत रास जिनप्रभ सूरि की परम्परा-संग्रह-पुस्तिका सं० १४२५ से प्राप्त हुई है। रचना की प्रति अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर में सुरक्षित है।

कृति में रचनाकार का नाम कहीं नहीं मिलता है। रास की अन्तिम पंक्ति में दो बार रयणु शब्द का प्रयोग हुआ है —

सयलह रयणह वयर रयणु जिव भूलु न जाय
तिम जिम सासणि सीलु रयणु कवि कहण न माए

अतः बहुत सम्भव है कि यह रयणु ही रचनाकार हो, पर फिर भी स्थिति असंदिग्ध नहीं कही जा सकती।

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का यह खंड-काव्य काव्य की दृष्टि से, एवं भाषा प्रवाह और कथा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस रचना का

१—देखिए—हिन्दी अनुशीलन वर्ष ६ अङ्क १–४ पृ० ६६–१०३ पर सतियों के दो रास—शीर्षक लेख।

२—विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—महामना मदनरेखा—जैन महासती मंडल भाग १ पृ० १ से २१ तथा सती मदनरेखा प्रकाशक श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल रतलाम सम्पादक श्री हुक्मीचन्द महाराज, सन् १९५०, पृ० १–२८८।

प्रारम्भिक अंश प्रति का मध्यवर्ती पत्र प्राप्त नहीं होने से उपलब्ध नहीं होता। प्रारम्भ के ५ छन्द नहीं मिलते और ६ठे छन्द से ही रचना प्रारम्भ होती है।

मयणरेहा सुदर्शनपुर के राजा मणिरथ के भाई युगबाहु की रानी थी। मणिरथ ने उसके असाधारण सौन्दर्य पर आसक्त हो उससे प्रेम का प्रस्ताव रखा। सती ने उसको साफ ठुकरा दी। वसंत क्रीड़ा के बहाने एक बार युगबाहु सम्पति उपवन में गया। मणिरथ ने धोखे से वहां पहुँच कर उसकी भारम हत्या कर दी। मयणरेहा निष्पाप का प्रेम करती थी। उसके पुत्र का नाम चन्द्रकुमार था। पति की हत्या के समय वह अंतस्सत्वा था। उसी स्थिति में वह वन में निकल गई। इधर मणिरथ को भी साँप ने काट लिया और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। पुत्र प्राप्ति होने पर मयणरेखा नदी में स्नानार्थ गई तो एक हाथी ने उसे उछाल दिया और एक विद्याधर ने उसकी रक्षा की तथा उसके साथ प्रणय का घृणित प्रस्ताव रखा। इधर सती के सद्य उत्पन्न शिशु को एक पद्मरथ नामक राजा ले गया और बड़ा होने पर वही नमिराजा राजा हुआ। चन्द्रयश भी सुदर्शनपुर का राजा बनाया गया। सती मयणरेखा ने इधर दीक्षा लेकर विद्याधर से अपने शील सतीत्व की रक्षा की और उसे केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। अन्त में उसके दोनों पुत्रों ने भी अपनी माध्वी मां सुव्रता (मयणरेखा) से ज्ञान प्राप्ति कर दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार सती मयणरेखा ने अपने शील की रक्षा की।

कवि को इस वर्णन कृति की रचना में अनेक स्थलों में काव्यात्मक वर्णन करने का अवसर मिला है। रचना में अनेक मार्मिक स्थल हैं। प्रारम्भ में ही कवि ने मयणरेहा के सौन्दर्य का सुगठित वर्णन किया है।

रइ रूवह लीला दवदंती रायमए प्रिम नेहु करंती
समकितु अविचलु हियइ धरंती जिण गणहर पय पउम नमंती
चन्द्र मं कुमर माइला गमइ दोह सा कम्गुणवंता
अन्न जासहरि इमि हुसता हरि गुणवंति भाइ वहुतो– (६–८)

उसके इस प्रकार के सौन्दर्य पर मणिरथ रीझ गया उसने अपना दुष्प्रस्ताव मयणरेहा से रखा। कवि ने उन दोनों के उत्तर प्रत्युत्तरों को बड़ी ही चातुर्य से वर्णित किया है। बीच में कवि की उत्प्रेक्षात्मक सूक्तियाँ बड़ी अनूठी हैं—

ज नवि वय पुराण गुणाजर त जिय पामरि लाइ इसामइ
तपि नरेसर मंदिर मज्झू पवउ मयण महा मद रज्झू

धुलि धम लोहिम वुद्धि भरतउ निम्गुण वछो भगि दहंतउ
हा हारय तिहुयणि पावतउ मणि रहु मयणा मंग्गिरिपतउ

तामह ए मणिरहा राउ मयणि महाभडि भज्जिउ ए
वुल्लइ ए वयणु विन्नाणु, जेण जणगणि लाजिय ए
सोनह ए सोवन रेह वुलए मयणा निम्मलीय
नरवर ए भवणु विचारु निय कुल लपणि मनिरलीय
सुरगिरि ए मिल्हइ ठाउ जइवि सुराचउ महियल ए
तिहुयणु एवह मेनेइ ताय न मयणा मनु चल ए (१०-२)

और इसके पश्चात् कवि मधुऋतु के वर्णन में डूब जाता है। प्रकृति के उपादानों का परिगणन कवि ने कुशलता से किया है। मधुऋतु क्या आई, मानो मयणरेहा की वसन्त श्री ही मन्न के लिए छुट गई। वसन्त क्रीडा के लिए युगबाहु और मणिरथ जाते हैं और कामान्धातुर मणिरथ नंगी तलवार लेकर वहाँ पहुँचता है कामकी वातावरण को किस प्रकार वह बीभत्स बना देता है। मीठी मीठी बातों में अपने भाई को उलझा कर उसका धाव से वध करना कहा ही दुर्मनीय करुण प्रसंग है। राज्य श्री व प्रकृति वर्णन द्रष्टव्य है। अनुप्रासात्मकता व प्रकृति का नाम परिगणनात्मक रूप देखिए —

मउरी अब कमब जेव जबीरी मोहइ
कयनीय लवलीय ललिय वेलु मानइ मणु माहइ
चम्पए चपइ चारु चित्त चारइ दीसता
मरुवक करुणी कुडय कुंद किंसुय विहसता
कोइल पंचमु सरु करए भमरउ झणकारइ
पाडल परिमलु महमहए मलयानिलु चल्लइ
मयण सरासणु करइ कज्जु विरहिणि मणु कंपइ
अवनीरिय गिरि वसंत राय मणिरहु इव जंपइ

युगबाहु और मयणरेहा की केलि क्रीडा और राग आनन्द मणिरथ से नही देखा गया। मीठी मीठी वाणी बोल कर कृत्रिम सहानुभूति दिखाता हुआ वह वहाँ आया और मयणरेखा को प्राप्त करने के लालच से पर छूते हुए भाई के सिर पर तलवार मार दी। तत्पश्चात् मदनरेखा दीन हारकर भटकने लगी पर अपने चरित्र व सतीत्व की पूर्ण रक्षा करने में उसने कोई कसर बाकी नही छोड़ी। स्वामी की मृत्यु पर रुदन करती हुई मयणरेहा की स्थिति बड़ी करुणाजनक हो गई और सती को सताने वाले दुर्मति मणिरथ को भी साप ने काट लिया —

जमजीहा मम मग्गु लउ बहु कात्रि जनतउ
माया वंचिउ ममत नाउ केनाहरि पहुतउ
कुमए न मुग्ग पइ त्रियउ वणवासि वसतइ
महिमडलि बइरि गणिहि निमि त्रिमु भमतइ
ए जणता नर वरान्ह सो पणमइ पाय
मग्गु महायरह सिरि मिन्हइ धाय

तक्खणि धायउ नाउ म्हारखु जगि उच्छलिउ
मामा पमिउ धाउ मयणा नयनमुय कंनिय
हूनउ मुगाजउ सनु तारण कमोय वयर हरे
ग्य जाणे विकणु नाउ नमइ मुकउ धवन हरे
कुसुमहो भाउ रमि मिनउ मागिहि मोगहिउ
तक्खणि नरइ पडेर पाव महामरि आ भरिउ
जिणि करि मयण हरमि नमइ कुति मनि रमिय
तिणि करि हमिअउ माणि गेबह कुरमति माहिलीय (ठवणि ३।७ ४।२)

रचना ५ ठवणि म पूरा हो जाती है। भाषा सरल और आलंकारिक है। करुण रस के स्थल स्थान-स्थान पर मिल जाते हैं। रचना की समाप्ति निर्वेद म की गई है। कृति में चौपाई और रास छंद प्रमुखता से मिलता है। भाषा की सरलता, उसकी सरसता तथा प्रवाहात्मकता के लिए एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

करिवरि बिम वयान कालि नवकारि हुलता
जउ परिमता मयणरेहु, तउ सरवरि पत्ता
सणु पनि सुरजनि गमिउ, त्रिम निमि [illegible] ग्गोइ
कना हरि मिन्त्रि कुमर सिरि न्हाणु करेइ
जन हरि नमिणा पनु, जम गयणियनि उचालइ
घरनि वडना बीजु जम विजाहर नन्दइ
सुंदरि जाणि न मार रात्र मणिमइ विजाहर
नंगिमर वरि भम्हं ताउ मगि चूलु सुणाइउ

तिणु हम पुत्र करेति जाम मुणि पाय नमवि
मग निमुणिय समर रात्र मयणा सामइ

कुमरह मयलह जिएाह वयरिंग पडिवोह करती
केवल नाणु धरेवि मयए सा सिद्धि पहूता–(ठवरिंग ५,३५)

वस्तुत १४वा शताब्दी मे भाषा की तत्समता के स्वरूप इस कृति म देखे जा सकत ह । अपभ्रश के शब्द भी कही-कही देखन को मिलते हैं । कृति इस दृष्टि स महत्वपूर्ण है । १४वा शताब्दी मे इसी प्रकार के अन्य अनेक रास मिलत हैं उदाहरणाथ महावीर राम (१३०७) गयसुकुमाल रास, वारव्रत रास (१३३८) सप्तक्षेत्रीय रास जिनपद्मसूरि-पट्टाभिषेक राम, श्रावकविधि रास आदि । परन्तु ये रचनाए काव्य की दृष्टि स साधारण ही है, अधिक महत्वपूर्ण नही है ।

१४वी शताब्दी के बाद १५वी शताब्दी म राम सज्ञक अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती है । वास्तव मे १५वी शताब्दी का रास साहित्य बडा सम्पन्न है ।

श्री जिनपद्मसूरि पट्टाभिषेक रास[1]

पाटाभिषेक या पट्टाभिषेक एक ही अर्थ के सूचक हैं। १४वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हमने सोमसूर्ति के जिनेश्वरसूरि विवाह वर्णन रास पर विचार किया है। ठीक इसी प्रकार का रास सं० १३८८ का सारमूर्ति द्वारा लिखित जिनपद्मसूरि-पट्टाभिषेक रास है। जिसका उद्देश्य तथा मुख्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से यह कृति सोमसूर्ति की रचना से पर्याप्त साम्य रखती है, परन्तु भाषा और रस की दृष्टि से इसका स्वतन्त्र महत्व है। १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना होने से यह रचना महत्वपूर्ण है। इस रचना की प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के संग्रह श्री अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है। श्री नाहटा ने कृति के आदि-अन्त एवं समय का उल्लेख किया है। कृति ऐतिहासिक है। इसकी ऐतिहासिकता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।[2] इस प्रकार यह रास ऐसा गीत है, जो जन साधारण की भाषा में लिखा गया है। जैन गुरुओं और मुनियों ने समय-समय पर जो धर्म प्रभावना की, राजाओं, महाराजाओं और सम्राटों पर अपने धर्म की धाक बैठाई और समाज के लिए अनेक धार्मिक अधिकार प्राप्त किए, उनका उल्लेख इन रासों में पद पद पर मिलते हैं। विशेष ध्यान देने योग्य यह उल्लेख है कि इन मुसलमानों शासकों पर प्रभाव डालने की बात कही गई है।[3]

प्रस्तुत रास के नायक गुरु श्री जिनचन्द्र सूरि ने सुल्तान कुतुबुद्दीन के चित्त को प्रसन्न कर लिया था। सुलतान ने भी हाथी ग्राम घोड़े धनादि देकर सूरीश्वर का सम्मान करना चाहा पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। सुलतान ने उनकी बड़ी भक्ति की और फरमान निकाला तथा वसति निर्माण के जिसका रास में स्पष्ट उल्लेख है —

१—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह श्री अगरचन्द भंवरलाल नाहटा पृ० २१।

२—वही ग्रन्थ प्रस्तावना पृ० २६।

३—वही ग्रन्थ प्रस्तावना डा० [illegible] जैन लिखित पृ० [illegible]।

४—वही।

कुतुबद्दीन सुलतान राउ रंजिउम मणोहरु
जगि पयउव जिणचन्दसूरि सूरिहिं सिर सेहरु [1]

इसी प्रकार कवि सारमूर्ति के जिनपद्मसूरि भी ऐतिहासिक तथ्यों से सम्बन्ध रखते हैं। ये जिन कुशल सूरि के जिनका पुराना नाम तरुणप्रभ है, और जो षडावश्यक बालावबोध के कर्त्ता रहे हैं, सम्बन्धित हैं। इन्हीं का नाम जिनपद्म था। प्रस्तुत गीति रास में धर्म की नीरस सैद्धान्तिकता ही नहीं है, पर ऐतिहासिक प्रामाणिकता तथा काव्यात्मकता है। धर्म की प्रेरणा से काव्य की भाषा भाव और शैली और प्रभावशाली हो गई है। कुछ काव्यात्मक स्थलों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। कवि ने रास को भाव भक्ति से गाने के लिए लिखा है —

इहु पय टवणह रासु भाव भगति जे जर नियहिं
ताहि होइ सिववास सारमुत्ति मुणि इम भणइ

आध्यात्मिक विवाह का साहित्य में महत्व स्पष्ट है। आगे जाकर आध्यात्मिक विवाह की इन जैन रचनाओं का प्रभाव सम्भवतः कबीर की साहित्य साधना पर पड़ा हो। कबीर के साहित्य में भी आध्यात्मिक विवाह का महत्व पूर्णतया स्पष्ट होता है। इस अवसर पर रासकर्त्ता ने अभिषेक पर हुई अनेक क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। श्रद्धालु श्रावकगण संग बना कर प्रतिष्ठा में शामिल होते हैं। स्थान स्थान पर वधावा और रास महोत्सव होते हैं और नारियाँ श्रद्धा से झूम झूम कर नृत्य करती हैं। कवि ने इस छोटे से गीत में गेयता की प्राधान्य देते हुए रचना को श्रावकों के उल्लास प्रधान जीवन के सम्बन्ध में ला दी। कवि की कुछ अनुभूतियाँ इस प्रकार हैं जो भाषा और भाव की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है —

उदयउ तसु पट्टि सयल कला सपत्तु मयंकू
सूरि मउड चूडावदसु जिणकुशल मुणिंदु
महि मण्डल विहातु भुपरि आयउ देराउरि
तत्थ विहिय वय गहण माल पय ठवण विविहपरि (५)

कुकुवत्तिय पाउ ठवण इसरिसि सघ हरेसु
सयल सघ मिलि आवियउ, मच्छरि करइ पवेसु

आदि जिणेसर वर भुवणि ठविय नंदि सुविसाल
धय पडाग तोरण कलिय चउदिसि वदुरवाल
सिरि तरुणप्पह सूरिवरो सरसइ कंठाभरणु

1—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० १४।

सुगुरु वयणि पट्टाभि ठविउ पउमसूरिहि मुणिरयणु
कुशलपहाणु जिणपउमसूरि नाम ठविउ गुणवित्त
आणंदिय सुर नररमणि जय जयकार करंति

सब वर्णन और नारियों का उल्लास राग तथा नृत्य गान मंगलाचार आदि का वर्णन देखिए —

मिलिउ दसदिसि मिलिउ दसदिसि सघ अपार
दराउरि वर नयरि तर सहि गज्जंति अवर
नचतिय वर रमणि ठामि ठामि पिक्खणय सुंदर
घर ठवणु चवि जगवरह विहसिउ सगगानंद
जय जय सद्द समुछलिउ तिहुं भुवणि हुयउ पमोउ

तिहुअणि जय जयकार पूरिउ महिमंडु तुरंग
घणु वरिसइ वसुधार नर नारिय सद्दविविह पर

वर कथा भरणाण पूरिय मग्गण लोग जण
धवलह भरणु जमण सुपरि माहु हरियालु जिहम
नाचइ भवनाय बान पव भरइ वाजइ सुपर
घरिघरि मंगलाचार घरि घरि गूडिय उभविय
उत्सउ वति भवनइ पाट तिलउ जिणकुशल सूरि
जिण सासणि सायह जयवंतउ जिण पउम सूरे

जिम ताराअणि चंद सम्मनयण उत्तम गुरह
चिंतामणि रयणाइ तिम सुगुरु गुरूयउ गुणह
नवरस दसणवाणि सवणंजलि जे नर पियहि
मणुय जम्मु ससारि सहलउ किउ इत्थु कलितिहि
जाम गयण ससि सूर धरणि जाम थिर मेरु गिरि
तिहि संघह सजनु ताम जयउ जिणपउम सूरे

इस प्रकार उक्त उद्धरणों से कृति के आध्यात्मिक विचार का महत्त्व समझा जा सकता है। काव्य की अधिक सुन्दरता पर भाषा की सरलता व तन्मयता की दृष्टि से सब सम्पूर्ण है। इसी प्रकार की सं० १३८९ में लिखित कवि धर्मकलश की जिनकुशल सूरि पट्टाभिषेक रास मिलता है। यह कृति भी इसी तरह गेय तथा वस्तु निर्देश और वर्णन-पद्धति आदि में दोनों का पर्याप्त साम्य है। इसका विषय भी पट्टाभिषेक ही है। दोनों रचनाएँ ऐतिहासिक हैं तथा १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का प्रतिनिधित्व करती हैं।

कुमारपाल रास [1]

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विरचित रास रचनाओं में एक प्रसिद्ध रचना देवप्रभ विरचित कुमारपाल रास है। इस का सम्पादन डा० भोगीलाल साडेसरा ने किया था और मुनिजिनविजय ने इस रचना को प्रकाशित किया। [2] प्रस्तुत रचना एक ऐतिहासिक काव्य है जिसका प्रमुख विषय राजा कुमारपाल के वैभव, राज्य उन्नति, प्रदर्शन तथा सब वर्णन है। प्रस्तुत रास की अंतिम कड़ी में कवि देवप्रभगणि का नाम मिलता है। कड़ियों में भी देवप्रभगणि का नाम मिल जाता है। पाटण के सघवी मुहल्ले के जैन ज्ञान भंडार की सं० १४३४ में लिखी हुई पार्श्वनाथ चरित्र की प्रशस्ति में सोमतिलक सूरि के शिष्य मंडन में देवप्रभगणि का नाम मिलता है। [3] काव्य की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसकी नकल सं० १५५८ के चैत्र बुध ३ शुक्रवार को की गई। यह भी स्पष्ट होता है कि कुलमंडन सूरि जो मुग्धावबोध औक्तिक के लेखक हैं देवप्रभ के समकालीन थे। क्योंकि मुग्धावबोध औक्तिक का रचनाकाल सं० १४५० है अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि इस रास की रचना १५वीं शताब्दी के प्रथम दशक या द्वितीय दशक में हुई होगी।

पूरी रचना एक सरस काव्य है। कवि के पद लालित्य और काव्य प्रवाह में कहीं भी शिथिल्य नहीं है। ४३ कड़ियों में पूरी रचना समाप्त हुई है। रचना की काव्यात्मकता उल्लेखनीय है। कवि ने काव्य का प्रारम्भ ही महावीर गौतम स्वामी सरस्वती कपर्दी यक्ष अम्बिका देवी आदि की विनय तथा नमस्कार द्वारा किया है।

कुमारपाल अजातशत्रु बन कर रहे। उनके राज्य का प्रभाव तपोवन की भांति था। कुमारपाल की असाधारण घोषणा से मनुष्य ही नहीं वरन् पशु पक्षियों तक ने अपनी पारस्परिक स्वभाव शत्रुता छोड़कर सर्वत्र अहिंसा का

१—भारती विद्या सं० मुनि जिनविजय, भाग २ अङ्क ३ सं० १९९८ पृष्ठ ३१३–३२४।

२—वही।

३—वही पृष्ठ ३१३।

साम्राज्य स्थापित किया। पशुओं में बकरे, भेड़, खरगोश, हिरन, भैंस आदि मारना, सूअर आदि प्राणियों का मरवाना बन्द कर दिया। यहां तक कि जूं और खटमल भी मारना पाप समझा गया। शिकारियों के समूह सुखपूर्वक खेती करने लगे। पिंजरे के तोता, मैना, पशु आदि मुक्त होकर रहने लगे। पाठशालाओं में भी चर्चा रहती कि गाजर, पालक आदि वनस्पतियों को भी कष्ट न हो। कुमारपाल के राज्य का ऐसा विस्तार था कि जगत् तपोवन सा दिखता, आरंभ और हिंसा से रहित हो सकता था। उसके राज्य में सांप, कौवा और यहां तक कि कुत्ता को भी कोई नहीं मारता था। कवि ने बड़ी सरसता से इस प्रकार के चित्र उतारे हैं —

पच्चिउ धरा धनधनाकी गिरि सर समाणउ
कुमर निहारइ करउ भाति सवि मच्छि बराखउ
मारन धम पूतना ए मइ सयगन ठाठा
समलि कुमर नरिंद राय हस गुरि पूभावइ
भाण्डउ नारिउ सयनग्गि राय धम्मवरावइ
प्ररिग्ग नमि जिम कुमर पालि डागरउ निवारिउ
छालि धाइ करइ बाल गालि वधावई
ममना नाचइ गनिय सर अजरामर हूआ
नहिया नदिया करइ प्राणि पारवइ महाप्रा
सइमा अनइ हरिणा रान सूअर अनइ सबर
घाउ कुमर नरिंद राजि रगि नाचइ तावर
जूम न माकुण नार कोइ कहवि न मारइ
हरिणा हरिणा करइ कवि सुणि हमसूरि वारइ
राउ नवइ पजरथिया सुणि अच्छइ भूतलि
मुन्ना नवि पजरइ थिया पुण नाचइ मातलि
बाउरि अनइ हान भगइ सामलि तू मारइ
पाणा मांगि जि अच्छउ ए नाथानवि मारइ
सारसरी सार हास नवइ मारउाय वधावइ
अनइ हाउ कुमर पाल अभय मरण न भावई
याण गउ अनइ मृगइ घाउ काइ नवि पावइ
न मर न नर नरिंद राजि मांमि हायउढ मावइ (८-९)

ऐसा था कुमार पाल का राज्य। जिस शिकार में लाख्य का पत्र वियोग से मरना देखा जिसे कुमारपाल ने बन्द करवा दिया। जिस द्यूत क्रीडा में नल को सब कुछ हार जाना पड़ा कुमारपाल के राज्य में ऐसा क्या हुआ समझा था। जिस मद्य के कारण समस्त यादवपुर विनाश को प्राप्त हो गया उस

लोग कुमारपाल के राज्य में स्वर्ग का भी पार समझने लगे। मांस भक्षण से जिस प्रकार सुदास और श्रेणिक नामक राजाओं को दुख मिला उसका कुमार पाल ने दृढ़ निषेध किया। गणिका गमन घोर पाप था। वेश्याएं सती स्त्रियों की भांति बन गई और जिन पूजन करने लगी। चोरों का उपद्रव सम्पूर्ण देश में कहीं भी नहीं था। पानी नगर में तीन बार वितरण होता। विविध प्रासादों तथा विहारों से राजा ने अनहिलवाड की शोभा में अपूर्व वृद्धि की। कवि ने इस वर्णन को अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। काव्यगत सरसता शब्द चयन और वर्णन की चमत्कारिता उल्लेखनीय है। उक्ति का अनूठापन काव्य की सरसता में और अधिक वृद्धि कर देता है —

पारधि जीवन पोसीय ए बहु पावह पापु
पारधि खेलन दसरसह हूउ पुत्र वियोगु
कुमर नरसेर नियरज्जि आहेडउ वारइ
जनचर थलचर, खचरजीव इम कोइ न मारइ

जूअ वसणि हूउ नल नरिंद दमयंति वियोगु
अडविभमता बार बरिस पाडव मनि सोगु
दपी दूपण जूअ तणउ नवि पवइ सारि
जूआरि नवि जय रमइ, नवि बानइ मारि
मसवसणि सोदासराय पामिउ दुहसणीय,
दीठी नरगह तणीय भूमि नखइ पुण सेणिय
आमिप भोयण तणइ दडि बतीस विहार,
राय करावइ कुमर पाल जगि तिहूअण सार
दूपण मदिरापान तणइ जायव कुल नामा,
किरिउ दीवायणि दुटठ दवि बारवइ विणाम।
राया दमइ नीच सव हिय मदिरा मल्हइ
मतवाला नवि मधु करइ मू मनी पेलइ
गणिका गमणु निवारद ए नरवइ निय राजि
छडवि वशावसण लोग लागमवि काजि
वेशा काधी माइ सरिस तइ कुमरड राय
ता पण पूजइ जिणह मुत्ति वदइ गुरुपाय
वशावसणिइ गमइ अरय जा पुरिस अहुभउ
पाछइ झूरइ मनह माहि सिम बणाय कयनउ (११–१७)

नगर वर्णन और सघ वर्णन में कवि अपना सानी नहीं रखता। भवनों

की निर्माण कला उस समय अपनी उत्कृष्टता को प्राप्त थी। विविध वाद्यों से निनादित अनेक राजाओं से सुसज्जित कुमार का संघ ऐश्वर्य अवर्णनीय था। विविध नृत्य-गान, लय तान और सूत मागधी गणों का जयजयकार संघ की शोभा बढ़ाने लगे। लोगों को उसमें स्वर्ग का इन्द्र भरत या शालिभद्र का प्रादुर्भाव, मन या स्वयं इन्द्र है इस प्रकार का सन्देह होने लगा। अन्त में इस प्रकार संघ धीरे धीरे शत्रुंजय पहुँचा। वहाँ पर नेमिनाथ की गिरनार में, सत्यपुरी में महावीर की, भागनोर में पार्श्वनाथ की तथा शंख कानानार में सामनाथ तथा पाल्ण में पार्श्वनाथ की पूजाएँ कीं और संघ पुनः लौटा।

वर्णन की प्रासादिकता, भाषा की सरलता, जन भाषा होने के कारण उक्ति का अनूठापन तथा विविध लोकोक्तियों का सन्निवेश प्रस्तुत रास का महत्व बढ़ा रहे हैं। कुछ वर्णन देखिए —

नगर वर्णन—

भावन थंभे पूतली ए भारण जाणंती
निज्जम हथिहि मासण्इ ए सिहुयण मानंती
हार माणिक्य चूनडी ए पाथर नंड जडिया
निम्मनवंता विवरामि अइनिउण घडिया
मंतिय माहनि सति सति बहु संघ सथावर
धामी बहु भामीम सिर राउ जान धनायर (२३-२८)

वाद्य नृत्य गान वर्णन—

बहुय मेलह बहुय देसह संघ मनावि
जिण भतिहि ओमलि भूमि नाहु मनु जि वच्छर
गाइ धाइ कनिय मरी संघ लाह आगहि नच्चइ
ठामि ठामि आधाधिम न्हि हुइ मगर धार
अरथहि बरसइ मेह जिम दानि मानि मुचि धार (२७)

मिलिय सावयगणा नार धनि धनह समागणा
गाजीय वन्तो गामरमनि शुह शुरणी आगणा
भरा भूगन ढान घणा घमघमह नीसाणा
नेना नाचइ रंग भरे नवलवा सुजाणा
धामिणि तरुणि न्हि रासु धरि मग्गह भाजी
मधुरी वाणिहि मणुह मामविवि कंन सुनाली

वंदी जयजयकार करइ कइ गेहर साथि
गायइ गायण सत सर कवि किनर साथि (२८–२९)

अनुप्रास और सदेह अलकारो का विविध सुन्दर चित्र खीचा गया है मनुष्यो को कुमारपाल को इस रूप को देखकर भ्रम उत्पन्न हो जाता है कवि ने इसी भ्रम का दृश्य प्रस्तुत किया है —

थानीय गयवड भाल्हती, ए भारती मद वारि
लागो ग्णता तुरय नाप करहा सइ च्यारि
राउत पायक राजनाव अनइ मागणहार
सख विवज्जिय मिनिय लोक काइ जाणइ सार
कि मह थानिउ भरत राउ ? कि सगर नरिन्दो,
राया सपइ दमन अहो कि कन्ह गोविन्दो ?
कि वा गीसइ नल नरिंदु कि देवहराउ
भ्रति उपज्जइ जायता ए नरवइ समुन्राउ (३०–३१)

कवि ने पूरा काव्य रोला छन्द म लिखा है। बीच मे वस्तु छन्द का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है। वस्तु छन्द का एक उदाहरण देखिए —

मारि वारीय मारि वारीय देस अट्ठारि
देम विदेसह मेलि करि भविय लोक जिणी जत्त कारिय
चऊ दमह चालीसह राय विहार किय रिद्धि सारिय
मोगड मूकी जेण हिव जगि लीधउ जसवाउ
हुउ न होसिइ चिहु युगे कुमरउ सरिसउ राउ (३६)

वस्तुत पूरी रचना को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह काव्य कुमारपाल का चरित काव्य है जिसमे उसके जीवन की विविध घटनाओ और महत्वपूर्ण कार्यों के सुन्दर चित्र कवि ने उतारे हैं। काव्य म अहिसा की विजय सर्वत्र परिलक्षित होती है। कवि ने अहिसा राज्य का विविध उदाहरणो और स्वाभावगत शत्रुओ के पारस्परिक मेल से स्पष्ट किया है जो सामाजिक शान्ति का प्रतीक है। सास्कृतिक दृष्टि से तथा धर्म और इतिहास की दृष्टि से भी प्रस्तुत रचना महत्वपूर्ण है। कवि ने रचना मे काशी कोशल मगध कोशाम्बी वत्सा, मरहठ मालव लाट, सारापुर, कच्छ, गुजरात सिंधु सवालख, काश्मीर कुरु कंति मामरि कन्हुउ जालधर आदि देशो तथा नगरो के राजाओ का उल्लेख किया है। सघ उत्सव वर्णन जैन समाज का सदैव म ही सास्कृतिक पर्व रहा है। कवि ने पूर्ण कौशल के साथ इस छोटे से काव्य मे उसको सजाया है। रचना की भाषा सरल राजस्थानी है जिस पर अपभ्रश का यत्र तत्र प्रभाव

परिलक्षित होता है। मदिरा, पान जुआ, वेश्यागमन आदि आदि सामाजिक कुकृत्यों का भी कवि प्रकाश में लाया है। अतः रास समाज दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस काव्य को कवि ने यद्यपि 'रास' संज्ञा दी है परन्तु रास के नाम पर कालान्तर में परिवर्तित प्रवृत्ति अर्थात् चरित प्रधान का छोड़कर अन्य बातें नहीं मिलती हैं। सम्भवतः १६वीं शताब्दी तक रास नामक रचनाओं के शिल्प में चरित काव्यों का ही स्थान लिया जाता होगा। यद्यपि रचना में रास, गुरु, लघु, 'दूहा', मूल आदि वर्णन नहीं मिलते न कोई रास छन्द ही मिलता है। अतः यह कहा जा सकता है कि रास नाम से युक्त-मुक्त-वर्णन तक। रास छन्द भी कालान्तर में उपेक्षित होना प्रारम्भ हो गई होगी और रास के नाम सकल सामान्य चरित आख्यानक काव्यों को ही दे दिया जाता होगी। साथ ही उनका नामकरण भी इन के रास काव्यों की भांति रास ही किया जाता होगा।

रचना के अन्त में कवि ने अपने आश्रय के रूप में कुमारपाल के इस रास काव्य को युगों युगों तक प्रचारित रहने और अमर होने का आशीर्वाद दिया है। जब तक सुमेरु पर्वत अचल स्थान में न बना रहे, जब तक सूर्य चंद्र रहें जब तक शेषनाग भूमि और सागर का भार धारण करता रहे, और जब तक संसार में धर्म विद्यमान है तथा जब तक ध्रुव तारा निश्चलता को प्राप्त है तब तक कुमारपाल राजा का यह रास संसार में आनन्द को प्राप्त करे —

मेरु रामह न धनन जाव जा चन्द्र दिवायर
सेसुनागु जा धरइ भूमि जा सायर सायर
धम्मह बिसउ जा जगह महो, धार निच्चल होए
कुमरह रासह तणउ रामु ता नन्दउ लोए

इस प्रकार इन वाक्यों द्वारा कवि ने रास को निर्देश निरूपित किया है। पूरा कृति सरल तथा सुन्दर है। भाषा नैसर्गिक है तथा वर्णन प्रभाव पूर्ण है और यथार्थ अर्थ प्रदान करता है। कुछ मिला कर रचना छोटी होते हुए भी रास रास रचनाओं के शिल्प में वैविध्य प्रस्तुत करता है। अतः कृति का महत्व और भी बढ़ जाता है।

c

कुमारपाल रास [1]

(श्री वीतरागाय नमः)

दोहा

पढम जिणिन्दह नमीय पाय भनइ वीरह सामी,
गोयम पमुह जि सूरिराय मुणि सिद्धिहि गामी,
समरवि सरसति कवडि जक्ख वरदेवि अंबाई
कुमरनरिन्दह तणउ रासु पभणउ सुहदाई, ॥ १ ॥

वस्तु

चच्चनन्दन चच्चनन्दन गुणह सम्पन्न
पाहिणिन्वा उवरि धरिउ माढवसि उपन्न सुणीद,
पुप्फवृष्टि सुरवइ करइ ए जाम जनमि उवतार,
चगदेव चिर जाविजिउ जिणसासणि साधार, ॥ २ ॥

बालकालि सजम लियउ गुरु विनय करन्ता,
हेमसूरि गुरु नाम दिन जगि जस जयवन्ता
मति थाडी गुणतणी रासि हउ कहवि न जाणउ,
हेमसूरि गुरुतणउ चरित किम करीस वक्खाणउ, ॥ ३ ॥

मपु पडी फरसिय जाव मसि कीजइ सायर
अन्त न लाभइ गुणह तणउ जिम चन्द दिवायर,
पहिलउ धरीइ धजपताव गिरि मेरु समाणा
कुमरविहारह करउ भगति सवि मण्डलिकराणा, ॥ ४ ॥

रावनयमे पूतनी ए मइ मयगल दीठा,
सम्भलि कुमरनरिन्द राउ जिनपडिल बइठा,
रायह कुमरनरिन्द राय हेमसूरि बूझावइ
माहडउ वारिउ सयलदेसि राय धम्म करावइ, ॥ ५ ॥

अरिटठनमि जिम कुमरपालि डागरउ दिवारिउ,
घाना बारड वरइ वात, गाडरि वधावइ,

---

[1] विवरण के लिये देख पृ० १०१ ।

ममता नाचए नियमरे अजरामर हुआ
रसिया [illegible] वरए मानि पारजए मनाश्रा ॥ ६ ॥

मरमा अनए हरिण राम मुयर अनए मवर
घोआ कुमरारि[illegible]राजि रगि नाचए तावर
नूम न मानुण नाक वार कहुवि न मारए
हरिणा [illegible]रिणा वैरए नवि मुपि [illegible]मानुषिमारए ॥ ७ ॥

गावा नवर पजर निया मणि [illegible] मनति
मृग हा नवि पजरए यिया पुण्ण नाचए मातनि
बावरि अनए [illegible] मणए मामनि नू मारए
पाणा मानि जि मच[illegible]रा [illegible] नाधा नवि मारए ॥ ८ ॥

मारमरी मरि हाम नवर मारहाम बधारए
[illegible] हाज कुमरपान [illegible]मरण न आवइ
थान मरण अनए मुणए घान वान नवि [illegible]
न मरन कुमरनरि[illegible] राजि मणि [illegible] माघर ॥ ९ ॥

[illegible] चामइ [illegible] मानति तन मानगि
दुटि न प[illegible] नगाय वान अकि[illegible] अरण्य मावगि
[illegible] श्रावणए विनि थाका आनाचा
[illegible]मृरि मणिम[illegible] विम[illegible] राम तन न [illegible]हुवा ॥ १० ॥

नानाना[illegible] [illegible] [illegible] व पढगि प[illegible]
र[illegible] न श्रामिय नणा श्रान अहि[illegible] बाकुन पना
वानीना [illegible] थाम [illegible] [illegible]
म[illegible] नाहुर वरए मानि अनए [illegible] ॥ ११ ॥

पारदि जावन पाना [illegible] [illegible] [illegible] जाण
पारधि [illegible] [illegible] [illegible] पुत्रविशाणु
कुमग्ग[illegible]मर निरगन्ति [illegible] मारए,
जनचर यनचर मचर नाव [illegible] वार न मारए ॥ १२ ॥

प[illegible]गि [illegible] प[illegible]गि [illegible] जावगधार
मूअर मवर [illegible] नवि निरइ जन निम मणए नावर
[illegible] नीनर मावन[illegible] व[illegible] म[illegible] न[illegible]मरण आवर
छाना बोकड [illegible] वान न यान यान
राहु मरए जा म[illegible]गिनि कुमरह रा[illegible]राज ॥ १३ ॥

रासा

जूय रमगि हूउ नलनरिन्द न्मयति विग्रागु,
म्रइमि भमता यार वरिम पाडव मनि मोगु
दयी नूपग जूग्रतगाउ नवि पेनइ सारि
जूग्रारो नवि जूय रमइ, नवि बानइ मारि ॥ १४ ॥
ममवमगिा सान्नाम राय, पामिउ दुन्मगाय,
दाठा नरगह तगाय भूमि नरवइ पुग सगिय
ग्रामिपभायगा तगाइ दटि बत्तीस विहार,
राय करावइ कुमरपाल जगि तिहुग्रगासार, ॥ १५ ॥
दूपगा मन्दिरापान तगाइ जायवकुलनामा,
विरिउ गावायगि दुटठ गेरि बारनइ विगासा।
रायान्मिन नाम सन हिव मन्दिरा मल्हइ
मतवाना नवि मधु करइ, भूमला न पेलइ, ॥ १६ ॥
गगिका गनगु निवारिउ ए नरवइ निय राजि
छुटविवसानमगा नाग लागा सवि काजि
वगा काधी माइ सरिम तइ कुमरड राय
ता पग पूजइ जिगाह मुत्ति वन्दइ गुरु पाय ॥ १७ ॥
वेगावमगिन गमइ मरय जा पुरिस महन्तउ
पाछइ भूरइ मनहमाहि जिम वगीय क्यराउ,
जारह जगगी न्म भगान्द ए माभलि वच्छ वात,
निदचइ आवडउ जाइसइ ए जइ पाडिमि पात, ॥ १८ ॥
गोमइ चार न देमषाहि जिम मुममइ रकु,
धरि ऊघाडे वारगाइ लोग सूयइ निसकु
परस्त्रीदामिहि रावगाइ ए किउ नरगि पीग्रागु
न्मरयनन्गिा रामदवि किउ ग्रवह कहागाउ ॥ १९ ॥
नियनिय मन्दिरि भगाइ नारी, साभलि परतार
नारि निवारिय जा ग्रत्तउ हिव जागािसि मार
रगन्द घरगाी भगाह नाह, सुगि धम्म विचारा
मनुसुन्दिहि हिव करि न मामि, परस्त्री परिहारो ॥ २० ॥

वस्तु

जूय वारिय जूय वारिय मससजुत्त
गुरागागु नवि जागािइ, वमवसगा नयगा न गोमइ,

कामागनारि कुमारि करि बालिम पम्नउ हर ॥ ३५ ॥
भगा कुमरन भगा कुमरन गिगह मयधारि
करि जाना हु चानयन गामि नागि हु काम न मागउ,
जिहा कुम गिग गरि उतगिउ गिग धारइ मन्नउ,
गिरि गतु जर गिरिगिहरि वर पंगाउ करइ, ॥ ३६ ॥

राता

मानिधि मागमागरि तगुर नधि काधा जाग,
पा गि माता नारि करन धरि धरि म्म थाग,
काधी जंउग जाग मग्न गहु नामि पगाउ
प्रगगउ मारि माधानिधन हमगुरि गिउ राउ ॥ ३७ ॥

दाना कागन मगध म्ग कार्मधा वन्धा
मरहर मानउ नाम्म गारागुर वन्धा
गिन्धु गवानग कागमार कुर कनि गद मरि,
काहिरग काहिय मगुन जागिय तारधरि ॥ ३८ ॥

वस्तु

मारि वाराय मारा वाराय म्ग मदकारि
म्ग गिग्गन मनि करि मचिन नाग जिगि जल कारिय
मउम्मंह पानागर राउ विहार किय रिद्धि मारिय
मोगइ मूकी जग हिय जगि पापह जगवाउ
कुउ न हागिर चिग गुगे कुमरह गरिगउ राउ ॥ ३९ ॥

राता

विह कुवण जगु कीनि मदहणि गुजरराइ
कुमयुग मय प्रवनारि नेव गंजर कनिवाइ
गनिय विमानरि कम्मणानि जिम मम मकागरि
दसगुमि गिर मिदवग्न जयसिंह नरागरि ॥ ४० ॥

गुनिस्यवणा निहुगुराग-गुनम्र वर-मागू
जिणम वन्दुरि धरतन ग गगार नवागू
पारि वम्नउ कुमारपागु करि मामममागउ
मंदइ रगुरंगर जागु तगाइ माइ राउ न रागउ, ॥ ४१ ॥

मग टामन न घनर जाव जा घन-निधायर
गयनागुना धरइ भूमि जा सातइ सायर

पंचपाण्डव चरित रासु [1]

१४वीं शताब्दी में प्रबन्धात्मक शैली में लिखे गये समरारास के पश्चात् १५वीं शताब्दी की सबसे प्रमुख कृति श्री शालिभद्र सूरि विरचित पंचपाण्डव चरित रासु है। रास परम्परा का यह रास एक प्रमुख कड़ा है। विद्वानों ने इस कृति पर विविध प्रकाश डाला अवश्य है [2] परन्तु स्वतन्त्र रूप से हम इस रचना का पाठ हाल ही में प्रकाशित गुर्जर रासावली में प्राप्त होता है। संपादकों ने इस पाठ को बड़ौदा की एक प्राचीन प्रति में उपलब्ध होने वाले पाठों में से एक कहा है। रचना की प्रति महाराज जसविजय के पास सुरक्षित है।

ये शालिभद्र सूरि भरतेश्वर-बाहुबली रास के रचयिता से भिन्न कवि हैं। अब तक उपलब्ध रचनाओं में पंचपाण्डव चरित रासु ने वर्ण्य विषय, कथा वस्तु, छन्द और भाषा सब दृष्टियों से नवीन योग दिया है। शालिभद्रसूरि पूर्णिमा गच्छ के थे। यह रास नर्मदा के किनारे स्थित नान्दोद नामक नगर में लिखा गया। कवि ने स्वयं भी अपने समय के लिए परिचय दिया है जिसका उल्लेख सम्पादकीय में भी मिलता है। [3]

आदिकालीन हिन्दी जैन रचनाओं में अब तक हम धार्मिक कथाओं, चरित नायकों, पुराण पुरुषों एवं उपदेशों आदि से सम्बन्धित विषयों का ही विवेचन मिलता है परन्तु पौराणिक आख्यान की कथा-वस्तु के रूप में स्वीकार करने वाले श्री शालिभद्र सूरि ही हैं।

१—पंचपाण्डव चरित रासु गुर्जर रासावली G O S CXIII बड़ौदा पृ० १—३४।

२—प्राचीन गुर्जर कवियो श्री क० का० शास्त्री पृष्ठ २६६।

३—गु० रासावली पृष्ठ ३—It was composed in V S 1410 i e 1351 AD and the matter of the poem is based as the poet says on 'वडुय कथानायक' Thus the date of the composition is mentioned by the poet himself

प्रस्तुत रास में पांचों पाण्डवों के चरित के रूप में सम्पूर्ण महाभारत का सार है। पाण्डव चरित जैनियों द्वारा विरचित संस्कृत काव्यों में भी मिलता है। गुजराती विद्वानों ने भी महाभारत लिखा है। पंचपाण्डव चरित रास की कथा महाभारत की कथा से मेल तो खाती है, परन्तु कुछ रचना स्थलों, घटनाओं और प्रमुख पात्रों को कवि ने अपने जैन धर्मानुसार मोड़ा है तथा उसी के अनुसार उसकी सृष्टि भी की है। रासकार ने प्रमुख चरित्रों को जैन परम्पराओं के ताने बाने में उलझाकर कथा सूत्र प्रस्तुत किया है।

पूरी कथा १५ ठवणि में विभक्त है। ठवणि नाम सर्ग विभाजन का सूचक है। भरतेश्वर-बाहुबली रास,[1] मयणरेहा रास[2] आदि में ठवणि का प्रयोग मिल जाता है। प्रत्येक ठवणि के बाद रासकार ने वस्तु छन्द दिया है। सिर्फ अन्तिम ठवणि को छोड़कर जिसमें उसने वस्तु छन्द अलग नहीं रखा। कवि ने ठवणि और वस्तु को मिला दिया है।

कवि ने रास की कथा का प्रारम्भ नेमिजिनेंद्र तथा सरस्वती की वन्दना करने के पश्चात् द्वितीय ठवणि में ही किया है। गंगा और शान्तनु का प्रेम तथा गंगा का उनकी अन्यायी प्रकृति से रूठ जाना व अपने पुत्र गांगेय के साथ रूठ कर अपनी माँ के यहाँ चले जाने का वर्णन मिलता है। गांगेय आश्रम में शान्तनु से शिकार के लिए विरोध करता है —

हरिण एक हरिणी सु बेनइ,
कामन वशिगि हरिणी आनइ, पलि पलि प्रिय पारधीउ
निनु निनु राउ अहहइ चलइ
रागि चढ़ी राणी इम बुल्लइ, प्रियतम पारधि मन करेउ
धनुष धरा भाउनउ पढावइ
जाव न्या नियमिति रहावइ, बोधि चारण मुनि तणइ[3]

वस्तुत जिनधर्म ही सच्चा मार्ग है यह जानकर गंगानन्दन ने अहेरी पिता को धिक्कार से रोका व उनसे युद्ध करने को तैयार हो गया। गंगा ने आकर शान्ता को शान्त किया। गंगा के न आने पर शान्तनु एक धीवर कन्या पर मुग्ध हो जाता है और राजा को प्रतिश्रुत करा कन्या सत्यवती का विवाह उनके साथ कर देता है। वर्णन की सरसता द्रष्टव्य है —

१–भरतेश्वर बाहुबली–रास श्री गांधी।
२–हिन्दी अनुशीलन वर्ष ६ अङ्क १–४, पृ० १००–१०३।
३–G O S CXIII, पृ० ३८।

सामलि सामी अम्ह घर सुनो, तुम धरि अच्छइ गंगा पूतो
मइ वेटी ज्उ तुम्हह देसी, तउगइ हयि हूग अरेवी
कुरंसह धरउ मडणु, राज करेमि गगा नन्दणु
धीय महारी तणा जिवान, त सवि पामइ दुग धरान [1]

सत्यवती के दो लड़के में से पहला कर्मों के दोष से बचपन में ही मर गया व दूसरा कुमार विचित्र वीर्य हुआ जिसने काशीराज की अंबा, अंबाली और अंबालिका तीन कन्याओं से विवाह किया। जिनके क्रमशः विदुर, पाण्डु व धृतराष्ट्र हुए। धृतराष्ट्र ने गांधारी से और पाण्डु ने माद्री से विवाह किया। कुन्ती के कर्ण कुमारी अवस्था में उत्पन्न हुआ इसकी अन्तर्कथा जैन महापुराण में [1] एक विद्याधर की अंगूठी से सम्बन्धित है। यहाँ कवि ने इतना ही वर्णन किया है कि किस प्रकार पुण्यवती भी पाप करते हैं। कर्ण मंजूषा में डाल कर गंगा में बहा दिया गया —

करिणीय धारी एक कुमरि आगणीय जि धवणी
मन्दिर वति वसंति हुई पुनू आयउ रमणी
गग प्रवाहिउ रयण मान्हि घालेउ मंजूसं
कीजइ पातकु पुण्यवति कई लाज कि रीसं

इधर गांधारी के १०० कौरव पाण्डु के ५ पुत्र पाण्डवों से ईर्ष्या रखने लगे। अर्जुन धनुर्विद्या और राधावेध" (मत्स्यवेध) में सफल उतरे।

चतुर्थ ठवणि में कवि ने अखाड़े में राजपुत्रों के शौर्य प्रदर्शन की माया जन मन पर किया। युधिष्ठिर तो अजातशत्रु थे, भीम दुर्योधन से गदा युद्ध हुआ, अर्जुन और कर्ण में द्वन्द्व युद्ध अर्जुन के मन बाण-बाणों से नहीं हो सका —

अरजुन वाजइ, र अजुनीन, अरजुन भूमिगि गइ गु हीर
अरजुन सरसी मेहि न कीजइ, निवसुन मानि गरव वहीजइ
इस आगणु धणू वखाण, आनि न नियजुन तणू प्रमाणू
मइ गगा उगमतइ भीम माधी रतन भरी मंजूस [2]

अखाड़े में भी अर्जुन विजयी हुए। इधर द्रौपदी का स्वयंवर होना है और पाँचों पतियों से विवाह होने का कारण चारणमुनि द्रुपद को पूर्वजन्म से

1—वही, पृष्ठ २।

2—उत्तरपुराण, पृष्ठ ३४४, इलोक नं० १०४, श्री गुणभद्राचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी।

3—G O S CXIII, पृष्ठ १३।

सम्बन्धित बनजाते हैं। प्रत्येक पाण्डव की नारद द्रौपदी के साथ अवधि बांध देते हैं उपरान्त पर अर्जुन को १२ वर्ष वन में रहना पड़ता है जहां वे वैताढ्य पर्वत पर आदिनाथ का अभिनन्दन करते हैं। वहां अपने मित्र चन्द्रचूड़ की बहिन की वे सहायता करते हैं। आगे कवि ने पाण्डवों को जुआ में अपकर्ष व वनवास दिखाया है। सभा में द्रौपदी का वस्त्र हरण होता है। आगे वनवास में भीम का राक्षसों को मारना, लाक्षागृह में बचना, भीम का हिडिम्बा से विवाह आदि का वर्णन मिलता है।

दुर्योधन पाण्डवों से प्रियवद को भेजकर पुनः सहायता मांगता है द्रौपदी क्रुद्ध होती है। फिर अर्जुन विमाता (विद्याधर के लड़के को हराकर इन्द्र से शस्त्र प्राप्त करता है। दुर्योधन की बहिन के पति ने द्रौपदी का हरण किया अर्जुन उसे भी हराता है। दुर्योधन ने पाण्डवों के विनाश की घोषणा की। एक पुरोहित के लड़के ने कृत्या राक्षसी उन पर छोड़ी। नारद की आज्ञा से पाण्डव साधना में लग गये। विराट के पास पाण्डवों का अधिवास रहा। कृष्ण दूत बनकर दुर्योधन के पास गये। दुर्योधन ने माना। भयंकर युद्ध हुआ। असंख्य योद्धा काम आये। अंतिम अवस्था में सब पाण्डव जैन दीक्षा लेते हैं। नेमिनाथ उनको प्रव्रज्या देते हैं। परीक्षित को हस्तिनापुर का राजा बनाकर धर्म घोष उन्हें शिक्षा देकर उनको पूत भव, सुरक्षित, सत्तम देव सुमति और सुभद्र आदि नामों से स्पष्ट करता है। उन सबने गणधर के समक्ष साधु वृत्ति स्वीकार की तथा अनुत्तर स्वर्ग से च्युत होकर पाण्डव वन और अब पूर्णता को प्राप्त हुए।

इस प्रकार सम्पूर्ण महाभारत को कवि ने ७६५ छन्दों में सजाया है। भाषा की सरलता जन-साधारण के लिए राम को बोधगम्य होना तथा पौराणिक कथानक को नई रचनाओं में बांधना कवि की प्रतिभा के द्योतक हैं। पात्र थोड़े हैं। पात्रों पाण्डव द्रौपदी, कुन्ती दुर्योधन कर्ण आदि। पात्रों से यह ज्ञात होता है कि कवि ने साधु असाधु दोनों प्रकार के पात्रों का वर्णन कर असत्य पर सत्य की विजय दिखाई है। कवि के प्रयोग मौलिक हैं। जो भाषा की दृष्टि में मध्यकालीन गुजराती या राजस्थानी के मौलिक प्रयोग एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत करते हैं।

जहाँ तक कथा रूढ़ि और कथा परम्परा का प्रश्न है कवि ने दोनों का सम्यक निर्वाह मौलिक अनुष्ठान के रूप में किया है। पाण्डवों की कथा परम्परा का प्रारम्भ अपभ्रंश साहित्य से ही हो जाता है। ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना में सुरक्षित हरिवंश पुराण के यादव, कुरु युद्ध और उत्तर इन चार काण्डों

में गुणभद्र के उत्तर पुराण में पाण्डव चरित वर्णित मिल जाता है।[1] जैन महापुराण में[2] भी पाण्डवों की कथा का नेमिनाथ के प्रसंग में आंशिक उल्लेख मिलता है। आमेर भण्डार में यश कीर्ति की लिखी महाकाव्य संज्ञक कृति मिलती है जिसमें कवि ने ३४ संधियों में पाण्डव कथा का वर्णन किया है। इस प्रकार कथा परम्पराओं (Cycles) के रूप क्रमशः परिवर्तित होते रहे हैं। प्रस्तुत रास में रचनाकार ने अनेक स्थलों पर कथा में मौलिक घटनाओं का समावेश किया है तथा अनेक मनोवाञ्छित मोड़ दिए हैं जो घटना वैचित्र्य तथा कथा में मौलिकता की सृष्टि करते हैं और वैष्णव महाभारत से भिन्न हैं। कवि ने कथा का आधार महाभारत से लिया है पर उसकी परिवर्तित कथाओं पर जैन धर्म के अहिंसा का प्रभाव स्पष्ट लक्ष्य है। कुछ नवीन घटनाएँ इस प्रकार हैं —

१—गंगा का शान्तनु की अनैतिक प्रवृत्ति का विरोध करना तथा रुष्ट कर पितृगृह गमन, गांगेय की अहिंसा प्रधान शिक्षा व जैन धर्म स्वीकार करना तथा अपने पिता से युद्ध करना। कुन्ती व पाण्डु के पूर्व प्रेम व सन्तानोत्पत्ति का प्रसंग तथा कुँवर पराशर व रायारथ का प्रसंग।

२—द्रौपदी के स्वयंवर में उसके हाथ से जयमाला पाँचों पाण्डवों के गले में जा गिरना और चारण मुनि का द्रुपद को द्रौपदी का पूर्व भव समझाकर सन्तुष्ट करना।[3] हरिवंश पुराण में कवि ने अहिंसा से प्रभावित हो मत्स्य वध के स्थान पर धनुष चढ़ाने की ही कल्पना की है[4] पर प्रस्तुत रास में मत्स्य वध भी है व जयमाला वरण भी।

३—अर्जुन का वनवास में वनद्य (वयरम्ह) पर्वत पर जाकर आदिनाथ को नमन करना और मणिचूड़ की बन्दिनी को छुड़ाकर पुनः उसके पति को देना।

१—अपभ्रंश साहित्य, श्री हरिवंश कोछड़, पृष्ठ ६८।

२—महापुराण—उत्तरपुराणम्, श्री गुणभद्राचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी संस्करण पृष्ठ ४८० श्लोक ७३–८०।

3 Then the reference as to this strange incident is made to चारण sage, who was there. He narrates the previous births of Draupdi and informs how she staked all her merit for a foul determination of realizing five husbands in the next birth -G O S CXIII page 352

४—अपभ्रंश साहित्य, श्री कोछड़, पृष्ठ ६८।

४—युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ मे शाति जिनद्र की प्रतिमा का अवस्थापन करना¹ प्रियवद का प्रसग तथा पाण्डवा का पुन अपने असली स्वरूप को ग्रहण करना।

५—पाण्डवा के जाने पर कुती व द्रौपदी का नमोकार मत्र का ध्यान करना। पुरोहित का पाण्डवा पर कृत्या छोडना तथा धर्म का आकर कृत्या से उनकी रक्षा करना। कामकुमार व जीवयशा का अग्नि विसजन।

६—पाण्डवा का नेमिनाथ के उपदेश से निर्वेद होना तथा दीक्षा ग्रहण। धर्म घोष का पूर्व भव बताना व उनका निर्वाण प्राप्ति होना आदि घटनाए मौलिक हैं।

रास मे अनेक वर्णन मिलते हैं जो जन भाषा म हैं। सरलता और सहज अभिव्यक्ति ही इस काव्य की कसौटी है। राजपुत्रो के द्वन्द्व युद्ध एव उत्साह मूलक मुद्राओ क चित्रण बड प्रभावशाली बन पड है —

कवि भिडाडइ घोडा सरसु, कवि तुरगम जाणइ मरसु
चक्र छुरी किवि सावल भालइ, किवि हथियार पडता भालइ
पहिलु सरमइ धरमह पूता, जेह रहइ नवि होइ धात्रा
मठिउ भीमु गदा करतउ, तउ दुयोधन मिउइ तुरतउ

लोह पुरष छड चक्रि ममतउ, पव बाणि आहणइ तुरतउ
राधा वधु करीउ भिडाडइ तिसउ न कोई तीरण पखाडइ
तीछ हुका मठइ करणु अरजुनु पामइ मुकरि मरणु
रोसि उपइ बेउ झूझता, रणरसु जाइ दवी देवा
धरणि धमक्कइ वाजइ गयणु हारिइ जीतइ जय जयरयणु
हीया असक्कइ कायर लोक, सतलणा मन करइ सवाव
जाणे बीज पडि (अ) अकालि, जाणे मुद्र कुरुया कलिकाल
(ठवणि ८ पृ० १३)

कवि का स्वयवर, नगर तोरण, अनक वाद्यो और उत्सवो का वर्णन बडा प्रवाहपूर्ण बन पडा है —

बाजीय अवक ग्रुहिर नीसाण, दिणयरो रैणिहि छाईउए

1-According to the Jain Tradition the Rajsuya ceremony consist in raging a temple dedicated to one of the Tirthankaras where the kings are invited G O S CXIII page 354

पहुतउ आगाउ धणु नरिंदु द्रुपदु पहूचाण सामहा ए
तम्माया तोरण बदरवाल, नयर उनाविहि छाण्ड ए
मणि मय पूतला माजन थंभ, मातिउ चउक पूराविया ए
इ कय मणि मुहडउ रिगारि, घरि घरि तारण उभाया ए
नयरि पगमारउ पडु नरिंद गिरि ममराउरि मयतरा ए

कवि ने स्त्री और पुरुष पात्रों के रूप वर्णन में कलात्मकता मिलती है। पात्रों का शृंगार वर्णन अत्यन्त स्पृहणीय है। गजान नयन, सुरभित कबरी, सिन्दूरी तिलक सुन्दर ककण नूपुरों की रुनझुन और तांबूल की भांति लाल अधर सभी मन लुभाते है। स्त्री और पुरुष पात्रों के रूप वर्णन देखिए —

द्रुपद राय नदन राय तणी कुमारि
तसु रूप जामनिहि बिहउ मूयणि धर नारि नत्थाय
गामा कटु गरि कुसुमह मूद बानि मनेउर भमहदह ए
नयण मनूणाय काजल रह तिलउ कसतूरी यम लिलवडीय
करयने ककण मणि ममकाउ जाम्र पाताय पहिरणु ए
अहर तंबोलाय द्रुपद बाल पाए नेउर रणझुणइ ए

और पुरुष वर्णन में —

सोहि चमर बबाब मनु वंहि कुसुमह मान
मनुवंठि कुसुमह मान सिरि गु मयणि बालणि भावाइ
हाइ राणु भम नरिंद मह थरि, पहुतु इम गभावीयइ

(ठवणि ४ पृ० १४)

द्रोपदी के चीर हरण की घटना को और सभा में द्रोपदी को केश पकड़ कर लाने की घटना को कवि ने अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। भाषा की सरलता और वर्णन की चित्रात्मकता से वर्णन और भी सजीव हो उठा है —

राखिउ ए राउ जूठिलु बिदुरइ कयणु न मानीउ ए
हारीया ए हाथिय घाड भाइय हाराय राजि सउ ए
हारीय ए द्रुपदह धीय उन्मलिय सवि आभरण ए
ताणीय ए केसि धरवि, दवि दुसासणि दूजणिहि ए
आणीय ए सभा मझारि, दुराय द्रुयोधन इम भणइ ए
'आविन ए आवि उत्संगि द्रुपदि बहसिन सुमनय ए''
इम भणाउ स्पिउ मराग्र द (–) हुज तु कुलि सउ ए
कुपीउ ए कान्हा चाद अरठोत्तर सउ साडीय ए

(ठवणि ६, पृ० १७)

और भी अनेक मार्यात्मक स्थल हैं। द्रौपदी का करुणाजनक वर्णन कवि ने किया है। कृष्ण के दूत बन कर जाने पर भी दुर्योधन उन्हें "मुइ लद्धी भूयवलि एक चास हिवए न पामइ" गुप्त उत्तर देता है, तो महायुद्ध की तय्यारियाँ होती हैं सारा दृश्य युद्ध में बदल जाता है। युद्ध वर्णन, वीरता एवं उत्साह के अच्छे चित्र कवि ने उरेहे हैं। सैन्य वर्णन और युद्ध की अतिशयोक्तियों की चमत्कारिता द्रष्टव्य है —

दुरयोधनु अति मत्सरि चडीउ, जाई जरासिंधु पाए पडीउ
'मुझ रहइ पहिलउ न्ति अगेवाणु पडव कन्ह दलउ जिममाणु''
ईहा सेनानी गगेउ ग्रह निद्सी कुडिया न्ल वउ (पृ० ३०)

हाथी घोडा और असख्य पैदल सेना का युद्ध वर्णन, सिरों का कट कट कर गिरना और नाचना, सामन्तों की गज मिश्रित हला कुरुक्षेत्र को और भी उत्साहपूर्ण बना देती हैं। वर्णन की चमत्कारिता तथा अनुप्रासात्मकता देखिए —

दलमिलीया कलगलीय सुहड गयवर गलगलीया
धर धसकीय सलवलीय सेस गिरिवर टलटलीया
रणवणीया सवि सख तूर अ बर भाक्कीउ
हय गयवर खुरि खणीय रेणु ऊडीउ जगु झपीउ
पडई बध चलवलइ चिंध सीगिणि गुण साधई
गड वरि गड् वरु तुरगि तुरगु राउत रण रू धइ
भिडइ सहड रडवडइ सीस धड नड जिम नच्चइ
हसइ धुसइ ऊमसइ वीर मेगल जिम मच्चइ
गयघडगुड गडमडत धीर धयवड धर पाडइ
हममसता सामत सरमु सरमेलि सिखाडइ

जयद्रथ के लिए प्रतिज्ञा अर्जुन का शौर्य और द्रोण की वीरता द्रष्टव्य है। कहीं कहीं वीभत्स के भी दर्शन होते हैं। कवि ने कर्ण, शल्य, शकुनि, दुर्योधनसबके वध का वर्णन किया है —

पाडइ भिध कबध बध धर मडलि रोलइ
वाणि विनाणि विवाणि केवि अरियण धघोलइ
कुद्ध कराउ गाविदि देवि रथु धरणिहि खूतउ
मारीउ अरजुनि करणु बूडि रणि अणभूतउ
शल्यु शकुनि बउ हणाय वेगि नकुलि सहदेवि
सरवरमाहि कढावीयउ दुरयोधनु देवि
राइ सनाहु समोमीयउ भीमिहि सु भिडउ

गम्भारगि स्गाय जाथ मनि मातु सु पढि

मासु निगदा तणु ताम्रु छुगाउ छलु गाथाउ
पाप परातन नर प्रसमि मनि मातु निराधार (पृ० ३०–३२)

इस प्रकार शृंगार करुण वीर रौद्र वात्सल्य आदि भावों के चित्र खींच कर प्रसंग में पात्रों की उन भावों द्वारा सम्पूर्ण रास को चमत्कार पूर्ण और निर्वेद भाव में बदल दिया है। धर्मघोष का वचन द्रष्टव्य है —

उरनु वचन नागु मामाय ॥ नमि जिणवर ॥
मानता गामि रयाणु जिरना ॥ मारयवनु परह ॥
वरनाय गमि समाजि नागिर ॥ जाइ जिणु नमर ॥

गामाय गणार पागि गावर ॥ अरिहिनि वनु दिय ॥

यावर गुर धर्मघातु पुत्र मरि ॥ पाव ॥ गुणवाय ॥
वनह नि मयतर गामि बउव ॥ पाव ॥ भाविया ॥
गुरइग मनतु रउ सुमनिउ ॥ गुमइ गुवातु ॥
गुणुर यगाधर पागि इसमिति ॥ पाव ॥ वनु धरग
धगगाववि नतु गमु वाजइ ॥ वरर रयणावता ॥
मुहुनावति नतु माल वरउ ॥ मिनिवाविइ ॥
पावतु भाविनवथमातु नत्र तरा ॥ अगूनरि मविगिया ॥
भवायवा सुणि गया वसर ॥ नवि ॥ मिरवरि पामिगन ॥
मानता नमिनिरवातु तारण ॥ मवगुण सुणि वयगि
मनुजि ताथि घइ पावह ॥ पाहव सिद्धि गयाग
(ठवणि ११ पृ० ३९)

इस प्रकार इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने कई घटनाओं का वस्तुविन्यास करते हुए भी नाटिका सृजन किया है।

प्रस्तुत रास के छन्दों में बड़ा वैविध्य है। सम्पूर्ण रचना को ११ ठवणि[1] में विभक्त किया गया है। इस रास की ठवणि में विशेषता यह है

१—ठवणि is derived from Skt स्थापनिका Pkt ठवणिआ It forms the narrative part proper, and in that sense resembles a कड़वक of Ap and OG poetry while वस्तु

दि उसका अनुगमन वस्तु छन्द करता है। भरतेश्वर बाहुबली रास के छन्दों से इसका पर्याप्त साम्य है। प्रथम ठवणि या ठवणि म २२ कडिया मे १६+१६+१३ मात्राए है तथा २३वी कडी म वस्तु छन्द है। द्वितीय ठवणि मे चौपाई तथा उसके साथ द्विपदी भी, अत यह छन्द मिश्र बन्ध कहा गया है। [२] तृतीय म रोला है। चौथी पाचवी म दोहा चौपाई है। छठी ठवणि के सम चरण म दोहा तथा विषम मे चौपाई है। समचरण मे अन्त मे ए मिलता है। देशी सवैया की भाति प्रयुक्त चार कडियाँ भी इसी ठवणि मे मिलती है। पुन समचरण मे दोहा और चार चरणो के साथ एक हरिगीतिका भी मिलती है और अन्त म वस्तु छन्द है। जिसके नाम मे ही कथा का बोध होता है। [3] ७वी म सोरठा और ८वी म २३ कडिया तक शुद्ध सोरठ मिलते है, जिसके विषम पद म अनुप्रास मिलता है। [४] ६वी से १४वी ठवणि तक चौपाई ही मिलती है। वस्तु छन्द सबके साथ मिलता है। इस प्रकार कृति मे छन्द वैविध्य स्पष्ट है।

सूक्तियाँ —रास मे अनेक प्रसिद्ध सूक्तियाँ है, जो उल्लेखनीय हैं।

(१) किम रयणायर हीयइ तरीजइ
(२) क्रमि क्रमि जु वणि तिणि पसरीजइ बीजतणी ससिरेह जिम
(३) कीजइ पातगु पुण्यवति कइ लाज कि रीस
(४) बाधइ मनइ मद जिम पडव गुण गभीर
(५) मद्य चडया सोहइ जिमयद
(६) कु डल सरिसउ लाधा बाला रकु लहइ जिम रयण कमाली
(७) किमु न कीजइ रात्रि अवसरि लाधइ परमवह
(८) दवु न गिणई दैवु गिणाइ पुण्यनइ पापु
सताप सुयणह करई पुण्य हीन जिमराय रोलई
दारिद दुक्खु देह भरई तृष्णा निज्जि गिरि सिहर ढोलइ

❀ is a conclusive link verse, which sums up the contents of the previous ठवणि and the ठवणि to follow G O S CXVIII भूमिका पृ० ७।

२–गुर्जर रासावली पचपडव चरित रासु पृष्ठ १२–१४।

3–The वस्तु metre as its very name expresses to a song of the outline of the story It is a miniature itself, the first half of the first line always being repeated to signify that it is a ध्रुवपद। G O S CXVIII page 7

४–वही ग्रन्थ पृष्ठ २०–२२।

(६) मिटइ मण्ण रव्वहट भाग थण तण जिम नव्वल
ह्मण घुमण धममण थार मगत जिम मव्वइ

प्रस्तुत रास का भाषा सरल हिन्दी है जिसमें प्राचीन राजस्थानी, पुरानी गुजराती आदि भाषाओं का बहुतायत मिलता है। भाषा भाषा की सरलता में ध्यान पर रचना और भाषा अभिव्यक्ति में पूर्ण ईमानदारी रखना तथा उस क्लिष्टता से बचाकर जन साधारण के लिए सुलभ बना देना ही सच्चे कवि व कविता की पहिचान होती है। इस कृति में अनावश्यक आलंकारिकता तथा चमत्कारिता नहीं है जो भी है वह जनता की वाणी है। जिसमें मानव मात्र के लिए संदेश है। ((वी शताब्दी के रास में अवतरित बाहुबली रास के बाद यह रास सबसे महत्त्वपूर्ण है। भाषा में तत्सम शब्दों की प्रचुरता विशाल पैमाने पर मिलती है। साथ में ही अपभ्रंश के शब्दों के तत्काल उदाहरण मिल जाते हैं। सरल हिन्दी के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

(१) भागइ हार माहि जु वाता पंचह पाण्डव सगाउ वराता

(२) हरिणु पण हरिणिए सु नाचह, कामन कर्यागि हरिणी बोलइ-
चरित चरित प्रिय पारधाउ।

(३) पुण्ड राजा महिमणि बयणि इंणि वणि वधाइ कारणि
थवणि चावइ गत मन गर्दय

(४) गाथउ जाणइ जिण धम मार्गो तउमनि कुवण लगइ विरागा
सगाईपणू चणि वमए

(५) ए सम्हारा पुत्र मिणधारा माथा मयइ भरत कू मारा
पुत्र वमइ करण मडणू राज करमि समानदणु।

(६) हथिणागरि पुरि कुरु नरिंद वरा कुरु मंडणु
मजिहि अनु मुन्ग सातु दुमनरवर सासणु

(७) जनम महाउत्तु गुरसरइ नाथइ अवगुर बात
दु नहि बाजर गयणयत करणिहि वात बमात

(८) तिणु नावउ दुरयाधनिनि भामइ भाजन माहि
अमृत हुम्नइ परिणामिउ पुत्रिहि टरिउ पुत्राइ

(९) अरजुन वाचन र प्रगुतान अरजुन अभिसि मद सु हान
धिगु ! र धिगुर न्व रितागु पंचह पदन हुइ वणवासु

(१०) रे रावस मुभ मागलि बात मारिसि वस्तू पुगउ बात

वस्तुत आदिकालीन हिंदी भाषा का शास्त्रीय रूप धीरे धीरे किस तरह किन किन इकाइयों (Units) म बनता गया, उन सब स्रोतों की सूचना हमें इस कृति म उपलब्ध हो जाती है। रास का उद्देश्य पाण्डवों के चरित पर प्रकाश डालना है। इसके अतिरिक्त कवि ने रास रमण व क्रीडा के लिए भी बनाया है —

पडव तणउ चरीतु जो पढए जो गुणए सभलए

पूनिमपखमुणीद सालिभद्र ए सूरिहि नीमिउ ए
देवचद्र उपरोधि पडव ए रासु रसाउलु (१५ ठवणि, अतिमाश)

इस प्रकार प्रस्तुत कृति को कवि की शैली और भाषा की दृष्टि म एक उत्कृष्ट कृति कहा जा सकता है।

पचपटव चरित रासु [1]

(रचयिता—शालिभद्र सूरि)

[वि० स० १४१०]

नमिविजिणिन्द पय पउमकी
सरसति सामिणि मनि समरेवी
श्र विवि साही पणमरं ॥ १ ॥

भारह खारह माहि जु बाना
पंचह पंडव तणउ पराना
हरसि हिया नर हुं भणउ ॥ २ ॥

रासि रमाउनु मरान पुणागह
जिम रयणायर पायर मरागह
मानिधि मामगनिवि तणुर ॥ ३ ॥

प्राणि जिणसर करन बरणु
कुरुनरिंदु हुउ कुनम हणु
तासु पुत्तु हुउ गायिमउ ॥ ४ ॥

तीणइ थापिउ तिहुयणमारा
बीजउ ध्रमरागुरि अवनागा
हथिणाउरपुर वनीथा ॥ ५ ॥

तिणि पुरि हुउ मति जिणेसर
सयर मतिवरन परमसर
सकवट्टि विरि पयमउ ॥ ६ ॥

१—जिन-गुर्जर रासावली—गायकवाड ओरिएन्टल ग्रन्थमाला बड़ोदा सं० १८ पृ० १–३८।

(8) रयणायर a slip, the MS makes use of Padi matra

तिणि कुलि मुणीय सतणु राम्रो
भूयबलि भजइ रिउमडिवाम्रो
दाणि जगु ऊरिणु करए ॥ ७ ॥

अन्नदिवमि माहेडइ चल्लइ
पारधिवसणु मु विमइ न मिल्हइ
ल्लु मेल्ही दूरिहि गयम्रो ॥ ८ ॥

हरिणु एगु हरिणी मु खेलइ
कोमलवयणि हरिणी बोल्लइ
'पखि पेखि प्रिय पारघोउ' ॥ ९ ॥

मन साधी राउ केडइ धाइ
हरिणउ हरिणी सहितु पुलाइ
ऊजाईउ गिउ गगवणे ॥ १० ॥

नयणह आगलि गयउ कुरगू
राय चीति जा हूयउ विरगू
जाम वामू दाहिणउ ॥ ११ ॥

ता वणि पेखइ मणिमइ भूयणु
सोद्धे निवमइ नारीरयणु
खणि पहुतउ राउ धवलहरे ॥ १२ ॥

जहुनरिन्ह केरी धूय
गगा नामि रइसमरूय
ऊठइ नरवइ मामुहीय ॥ १३ ॥

पूछइ राजा 'कहि ससिवयणि
इणिवणि वमोइ कारणि कमणि"
बोलइ गग महासईय ॥ १४ ॥

जो अम्हारु वयणु मुणेमिइ
निश्चि सो वरु मइ परिणेसिइ

(19) The MS writes स and म similarly, thus मुणीइ can be read सुणाइ, म्रो in राम्रा and मडिवाम्रा of the next line is written as उ

(27) MS writes प for ख and प is written like ण

(43) reads मुणेमइ cf footnote 1 19

गेचइ मूघरु भूमिघरा" ॥ १५ ॥
त जि नयणु राइ मानाजइ
जइराय वगी परिणीजइ
परिणी पहुन्तउ नियघरे ॥ १६ ॥
ग पुत्तु तगु शुभि उपनउ
विद्यावदागगुणमपन्नउ
कना बाहत्तरि गा पढग ॥ १७ ॥
गगानामि गगेउ भणाजइ
क्रमि क्रमि जुन्वणि मिणि पगरीजइ
चाज नगा गमिरग जिम ॥ १८ ॥
नितु नितु राउ महेदग वन्तर
रामि चढि राणी इम जुनइ
प्रियतम पारधि मन करउ" ॥ १९ ॥
राइ न मानी गगा राणी
ताणं दूमि मनि कुरमाणी
पुत्तु लेउ पीहरि गईय ॥ २० ॥
धनुगरना माउनउ पढावइ
जावन्या नियनिनि रमावइ
बांधि चारणमुनि तणइ ॥ २१ ॥
माचउ जाणग जिणधर्ममागो
तउ मनि जूवण नगर विरागो
गगानन्णु वगि वगग ॥ २२ ॥

वस्तु

राउ मतणु राउ मनणु वयणु चुक्केवि
आन्दइ चनाउ पारमरि मनि माहि पूमीउ

---

(45) च and व become similar through the inadvertance of the scribe
(46) तजि is repeated in the MS through the scribe's slip
(67) MS has रान्मतणु २ which is written twice in the text above for clarity

पूत्तु लेउ पीहरि गई गग तीण अवमाणि दूमीय
वात सुणी पाछउ वलइ जा नवि ?खइ भंग
चउवीस [वास] रहइ जिसु रइहीणु [अणंगु] ॥ २३ ॥

[ठवणी ॥ १ ॥]

आह मनमाहि नरिन्द पारधि संभावइ
मइ दलि रमलि करंतउ गगातडि आवइ ॥

गगतडा तडि अछइ भोयणु
वित्थरि दीरधि बारह जोयणु
पामहरा वागुरीय अहय
पइग वगि कानान्सु हूय ॥

दह दिसि वाजइ ढार बहु जीव विगासइ
एकि धुसइ एकि धायइ एकि मागलि नासइ ॥

दह दिसि दम जा वनु आरोडइ
जीव विगासइ तरुयर मोडइ
जा दम ?लवइ पारधि नागइ
ताम असमसु पेखइ आगइ ॥

बिहु सवे ?? भाया करयनि कोदंडा
मानीनेसह वाना भुयदंडपयडो ॥

राय पासि पहिलु पहुचेई
पय पणमो वीनती करेई ।

'सांभलि वाचा मुझ भूपाल
इणि वणि अछउ अम्हि रखवाल ॥

जेनी भुइ तू राआ तेती तू सरणि
मुझ मनु का इग दूमइ जीअह मरणि" ॥

तासु वयणु अवहनइ राओ
अतिवणु घल्लइ जीवह घाउ
कोपि चडिउ तसु वणरखवाला

(71) The first Pada of the line is defective, वास is left out in the MS

(79) एक धुसइ repeated

धनुष नहानह जमविरराना ॥
भारा भर उगार भागना नि पार
गरग जपउ ढान्ह रान्त रूगान्ह ॥
वन्ठ रूष भरतउ जागा
तारगि भ्राना गगारागा
वन पनि मुकु भरना रागह
नियप्रिय भ्रागनि नम्गु मागर ॥
रेना गगारागा राना आगंन्डि
मन्ना मनि मधियार वन्उ भ्रानिगिन ॥
रान भगार मर निमउ पनारन
म्नि मुनि मर गु नरि पान्धारा
गनु मुन्मार पूनु मुन्मारन
भ्रन्नाउ गग निग निनारउ' ॥
पूनि भनारिनि मना भ्रनिपगु गारा
पूनु ममारउ गग भ्रालगि नरि भ्रारा ॥
पिना पूनु नन रगि मिनीया
रनि मुरनावा पान्दा वरापा
नरिग्गाउरि पुरि गनु गरे[6]
माग निम मान्ना वन्ना गमे[6] ॥
भ्रननिगनरि रागरि वरगउ
जमगनमा नि गउ पहनउ ।
नन मनेमी मागा पार
वना वन्ना मानिमार ॥
पुन्हर नगावाना नगी
ग तुग मागर वन्गी भ्रठा ।
वगावाना नग उ मामा
गाप पानि पनागर गिर नामा ॥
ग भ्रन्मागा पुनेमिगगागा

---

(102) MS has मंगा for रंगा
(111) मुरनावा पान्दावा पान्दा वराना in the MS

सामी ग्रछइ ग्रजीय कू यारी ।
कोइ न पामु वर ग्रभिराम
सफलु करू जिम नैवइ वामु" ॥
तमु घरि वइसी राउ मा वानी मागइ
वात स वेडीवाहा पुण चीति न लागइ ॥
'साभलि सामी ग्रम्ह परसूत्तो
तुम्हइ घरि ग्रछइ गगापूत्तो
मइ वेनी जउ तुम्हह देवी
तउ मइ हथि हूव भरेवी ॥
कुरवनसह वरउ मडणु
राजु करसि गगानदणु
धीय महारी तणा जि वाल
ते सवि पामइ दूख कराल ॥
ग्रम पामि तुम्हि किमु कहावउ
तुम्हि ग्रम्हारा धीय न पामउ' ।
इम निमुणीउ घरि पहत नरिन्द
जिम विध्यानलि हरीउ करिन्द ॥
मनि चिंतइ सा बात कुणहइ न कहेई
ग्रगे लागी भाल जिम न्हु दहेई ॥
कू यरु वेडीवाहा मन्दिरि
जाइउ मागइ सा इ जि कू यरि ।
वेडीवाहइ त जि भणीजइ
तीग्र कू यरि प्रतिना कीजइ ॥
मत्रि मउन्उधा महड तडइ
वेडीवाहा प्रति सु फेन्इ ।
"वयणु ग्रम्हारू म पडउ पाखइ
देवान्वी महूयइ साखिइ ॥

(129) Indefinitely reads सूत्रो or सूत्तो same way in the next line पूत्तो or पूत्रो
(139) Perhaps हरिउ a slip for गरिउ

निसुणउ मइ जि प्रतिमा कीजइ
चाउरन्त सिव तासु निवासउ ।
एतु रातु अनइ परिलेवु
मइ अनरइ जनमि करबु ' ॥
निसुणाउ वयणु गभेनउ बानइ
कार न तिहुयणि जा तुम नानइ ।
निसुणउ हिव रव कम वुतनु
एह रन हार संताणु धनू ॥

॥ वस्तु ॥

नयर मच्छर उयर मच्छर रयणाउर नामि
रयणमिन्त नरवर उमर तासु गेमि एह यात जाईन
निजावरि मनग्गाय जानमात्र नहि जमणु मिच्छाय-
त्माय गा मग्गाम पया नर मर निद कुमारि
गायवना नामि हुणिण मतणघरनारि ' ॥

[ठवणि ॥ २ ॥]

पणमाउ भामाउ नमिनाहु मसु म विहि माही
पमणिणु पंहन गणउ थरिनु पमिनवरविहारा ॥
इयिणाउरि पुरि सुरनरिन्द करा कुवमंडणु
मन्त्रिजि मंनु गुणागमानु हुय नरवर मतणु ॥
तसु घरि रागी मण्ण दुनि एक नामि म ॥
पुनु जाउ गगउ नामि निणि निहुणि मगा ॥
गायवना छन मनर नारि नमु नन्नणु हुनि
गरे मराग्गणु करवन मनु संगणुवनि ।
पच्चिमउ वन्न नयमागि बारणगि विवनउ

(158) नयर मच्छर २ The repetition is represented by the figure 2, by the scribe. We have in the text systematically repeated the expressions rather than writing 2 after the scribe.

(170) मराग्गण in MS for मरागण

विचित्रवीर्यु बाजउ कुमार बहुगुणसंपनउ ॥
राउ पहूतउ सरगनारि गंगयकुमारि
तउ लघु बंधवु ठविउ, पाटि तिणि नयणविचारि ॥
कासीसरघरि तिनि धूय अंबिनि अंबाला
आजी अंबा अछइ बान मयणह जयमाला ॥
परिणावेवा ताह बान सयवर मडाविउ
गंगानंदणु चहीउ रामि अणतेडिउ आयो ॥
समरि जिणीय सवि रार बान लेउ त्रिण्हइ आयो
धन्उ महोच्छउ करीउ नयरि बंधवु परिणाव्यो ॥
अंबिकि जाइउ धायराठु सा नयणे आधउ
अंबाला नउ पुत्तु पंडु निहु भुयणि प्रसिद्धउ ॥
अंबालगणु विदुर नामु नामि जि सरीखउ
खइ खीणइ पुणु विचित्रवीर्य पडु रानि प्रतीठिउ ॥
कुंतादिवि नउ लिखिउ रूपु दखीउ चित्रांमि
माहिउ पंडु नरिंदु चाति प्रति नीधउ कांमि ॥
विद्याधर वनि कुणिहि एकु मन्दिउ छइ बाधी
छाडिउ पंडुकुमारि पामि तसु मुद्रा लाधी ॥
एतइ अंधकवृष्णि नामि मारीपुरस्वामि
दस बटा तसु एक धूय कुंतादिवि नामी ॥
पाणी आगणिंगार पुण्यु मारियपुरि पहुतउ
"पंडु कराउ' पिय पासि कुंयरि अभनइ बहुतउ ॥
नवि जामइ नवि रमइ रंगि नवि महीय बानावइ
बानावा तो पहीय जाइ अणनडा आवइ ॥
खाजइ भू नंइ रडइ बान जिम मयद सतावइ
कमलिणिवाणगिन मण समाधि सा किमइ न पामइ ॥
चदु य चन्दणु हीयइ हार अंगार समाणउ

---

(181) माधउ in MS for आधउ
(183) नानु in MS for न मु
(197) MS has चद्द न

'बुगहह वाइ 'हइ दूगु जागाइ तु जागुउ ॥
नानजु निधिगु मद अजागु वाइ मारइ मारा
ईगि जनमि मुभ पन्तुमर रिगु नहा य मतारा ॥
विरहि विरागाय वग मभारि जान मगि भायइ
नवगिम जूवगु न्परन ता श्रातिनि जाइ ॥
ध ठि टनर जा पागु टान तग्यर गा
श्रानिन मू ढ्यभानि ताम मनि विनिउ गामि ॥
परिगाय श्रारा पन्तुमरि श्रागगाय जि थनगा
सहायर बनि णवनि हून धुनु जायउ रमगा ॥
गग प्रनान्नि रयग मानि धानिन मतूम
काजइ पानतु पुग्यवति थइ नाग नि राम ॥
जागाउ राइ पु तिनिनु पन्तु तु परिगानइ
निनिउ जागु तिनाहि जाम त मुखु भावन ॥
॥ नन्तु ॥
मवनु नरवर मयनु मरवर नमि गधारि
पु यरि तमु तगाग श्राठ धाय गधारि पहिनाय
धुनन्तनिश्रानमि धायरनन नरनान नि हीय
नवनरन्द नन्गा नुमुनगि विटुरकुमारि
बाजी मयनि मद्दनूय पन्नगान घरनारि ॥
गमु धराऊ गमु धगउ नरि गधारि
धुनन्ततिग हानन्उ कून धनिनि जग मुभि गन्नइ
पुन्यवमि गन्वरि घनन मुन्ड जम मनि गमन मनमन
गानि रन्ता बन्धग नवान हरिमु वन्दइ
मामु गमरा कुगानि मु श्रन्निमि वनन वरइ ॥
[ठवगि ॥ २ ॥]
धुमप्रभाविनि पामायउ पनिनु वु तानन्नि
धुमगणारन्तु धुन धुग मुमिगा दच नन्दि ॥
नाठउ गुरगिरि क्षारत्रा मुमिगान गिरिविन

(204) MS has प्रमाति for प्रभावि
(112) गधारिन in MS for गंधारि

जनमि युधिष्ठिरराय तणइ मिनीया गुरवर्इनि" ॥
गयणागणि वाणी पडीय 'खमि न्मि सजमि णडु
धरगपूतु जगि ऊनउ सत्यसानि सुनित्रु' ॥
रापीउ पवणिहिं कलपतरा सुमिणइ तु तिदूयारि
पवणह नदणु वज्जमम्रो भीमु सु भूयण मझारि ॥
श्रीसे माम जाईयउ दूमीय न्रि गधारि
न्विसि मधुरे ऊपाम्रो दुर्योधनु समारि ॥
दसह दसारह बहिनडीय ग्रोजउ धरइ म्राधानु
'दाणव दल सवि निद्दनउ मरि एवडु म्रभिमानु
'धनुपु चडानीउ भूयणि भमउ ' इच्छा ऊइ मन माहि
बइठउ दीठउ हाथिणीय मुरवइ सुमिणा माहि ॥
जनममहाछवु सुर करइ माचइ म्रपछरवाल
दु दुहि वाजइ गयणनले धरणिहिं तार वसाल ॥
गयणह वाणी ऊछलीय म्ररजुन इद्रह पूतु
धनुपबलि धधानिसाण दुरयाधन घरसूतु' ॥
नकुल्ल म्रनइ सहन्वु भडा जुम्रनइ जाया वेउ
प्रभु चद्रप्रभु थापीयउ नामिकि कू तादेउ ॥
सउ बटा धयराठघर पडु तणइ धरि पच
दुर्योधनु कउतिग करए कूडा कवडप्रपच ॥
मनन्गितरि गिरिमिहर राजा रमलि करेइ
कु तीवरयल म्रटवडि रडयड भीमु रहइ ॥
पाहणि पाहणि म्राफनाउ वान न दूमीउ दहु
पाहण सवि चूनउ हूयए कवडु कउतिगु एहु ॥
गयणह वाणा म्रापीयउ थागइ वज्जसरीर
वाधइ पचइ चन्द जिम पडव गुणगभीर ॥

---

(225) गयणगणि in MS
(234) दाठउ written twice in MS
(238) धधालिसाए in MS for धधालिसाए
(243) म्रना for म्रन
(245) पाहणि २ in MS

भीमु भाडतउ जमराणह कून्ह कुरवबार
पाडइ दउडइ भेडवइ बाधाय वाजइ नीरि ॥
दुरयोधनु रासिहि चडाउ वालइ सामलि भीम
तु मुझ वधव कूम्नउ म मरि अमूम्इ इम" ॥
भामि भिडिउ मद्धु पाडायउ बाधाउ घालिउ नारि
जागिउ आइइ वध वनि ननि झूमिय मरारि ॥
विगु नावन दुरयोधनिहि भीमह भोजन माहि
अमृतु हुइ नइ परिणमिउ पुनिहि दुरिइ पुनाइ ॥
अनिरयि सारथि तहि नमए राय तणइ घरिमृत्तु
राधा नामिहि तसु घरणि करणु भणु तसु पुत्तु ॥
हय कूयर पचमानउ जिनहरि पडिवा जाइ
धीर बाह मति आगनउ करणु पन्न तिणि ठाइ ॥
दहा लगइ गुरु भणउ द्रोणु सु धनुषागमि
तह पासि विद्या पहइ कूपगुर नइ उपगमि ॥

॥ वस्तु ॥

तीह कूयरह ताह कूयरह माहि दा वीर
इक्कु अरजुनु आगलउ अनइ करणु हायइ हरावउ
गुरुकूलम्ब त्रिगयह नणइ धनुष्वाण साधउ मरावउ
विरु न हुइ गुरभगति नगर माहि नउ गुरु विद्धु
अहनिसि गुरु आराधतउ एकलु यु हुय सिद्धु ॥
गुरु परिक्खइ गुरु परिक्खइ अन्नदिहसि
दुरयोधनसमुह सवि रायकूयर वण माहि लेविणु
मारापु मिल्हि करि तानक्ख सिरि नयु दविणु
तीण परोखा गुर तणी पूगउ एकु जु पत्थु
राहावहु तउ सिक्खइ मच्छद नविणु हत्थु ॥
एक वासरि एक वासरि कूयर नइ माहि
गुरि सरिसा जलि तरइ द्रोणचरणु जलजावि लिद्धउ
कूयरपरीखा तणइ मिसि गुरिहि कूक पोकार किद्धउ
धायउ अरजुनु धणुहधर अवर नधाया कइ

---

(259) म in पचमानउ is written peculiarly in M3

मेल्हाविउ गुरुचरणु तसु गुरु विम नवि वूमिइ ॥

[ठवणि ॥ ४ ॥]

गुरि वीनविउ अवसरि राउ "सविहु वेठा करउ पसाउ
तुम्हि मडवउ नवउ अखाडउ नव नव भगि पूत्र रमाडउ" ॥ १ ॥
आइसु विदुरइ साधउ राइ न्हइ निसि जणावइ जावा धाइ
सोवनथभे मंच चडावइ राणा राणि ते सहू य आवइ ॥ २ ॥
पहिलउ आवड गुरु गगेउ धायरटठ धुरि वइसइ राउ
विदुर कृपा गुरु अवर नरिन्द मचि चड्या माहइ जिम चन्द ॥ ३ ॥
नति न्खिाडइ खाडा मरमु वंवि तुरगम जाणइ मरमु
चक्र टुरा विवि सावल मानइ षिवि हथीयार पडता झालई ॥ ४ ॥
पहिलु सरमइ धरमह पूत्रा जह रहइ तवि काइ नाआ
ऊठिउ भामु गदा फरतउ तउ दुयाधन भिडइ तुरतउ ॥ ५ ॥
मनि मावीग्रह मत्सर रहीउ पाग्रइ अरजुनु अति गहगहीउ
भीमु दुजाहण ज। व भिनिया ता गुरुनदणि पाछ्या करीआ ॥ ६ ॥
गुरु ऊठाडइ अरजुनु धुमरो करणहिं सरिसउ माडइ वयरा
ष भाया बिहु खन वहई करयनि विसमु धणुह धरइ ॥ ७ ॥
लाहपुरपु छइ चक्रि भमतउ पच बाणि आहणइ तुरतउ
राधावधु करीउ न्खिाडइ तिमउ न कोई ताण अखाडइ ॥ ८ ॥
तीछ हूपा उठइ करणु 'अरजुनु पामइ मू करि मरणु'
रासि ऊठइ बउ भूभवा रणरमु जाइ देवी देवा ॥ ९ ॥
बउ हूफइ बउ वाकरवाइ राय तणा मनि रीमु उपाइ
धरणि धमक्कउ गाजइ गयणु हारिइ जीतइ जयजयवयणु ॥ १० ॥
हीया धमधमइ कायर लोक मत तणा मन करउ मशोक
जाण वीज पडि (य) अकालि जाणे मु द्र खुल्या कल्लिकालि ॥ ११ ॥
क्षणि नान्हा क्षणि मोटा दीसइ माहामाहि सुमए वड रीसइ
बधवि बीटीउ राउ दुजाहणु चिहुपखवि बीटीउ रागु ॥ १२ ॥

(281) मत्न in MS for मत्सर
(297) जयवयणु in MS for जयजयवयणु
(300) रोम in MS रोसइ

रिसु पहार गाजहि प्रबल [illegible] जय प्रबल धरि बिनउ
भरतुा बारह [illegible] भरतुन भकिगि मर मु हीन ॥ १३ ॥
भरतुन मरमा महि न रावर निन्तुनमानि तरतु बनावर
रम धारगार धणु बगाला बाविन नावकुन तणु प्रमाणु ॥ १४ ॥
रम दशानि नहि जा रणु पुन्द पराननि मार मरणु
पुरवन्दनि रा [illegible] रगायर बारानारि तुड जागरे ॥ १५ ॥
गाय धणिवगि गाजगि धाय करण नगु कुटु राज बगावर
मर गगा उगमार रास नाथा रननभरा मकुम ॥ १६ ॥
[illegible] नगिमा ता [illegible] याता वहु बरन जिमरतगा भमाता
तिति तिन [illegible] गुहिलन पुरा मनद धरि धनिउ पुरन पुरा ॥ १७ ॥
बान नहि बर बनिन उ गुनन मन प्रमित बनायर करणु तिरनार
रमाय जान मन आर्रहि जाना गुरू त [illegible] उ कुना रागा ॥ १८ ॥
करणु तुनान्ग वर भिन पथर पटव बरा गाब
समु गानु गर कपन गाजा गा मरनार जिमि तुर गाजा ॥ १९ ॥
गागगुरि कुसना मारा जय बगा बहुमानि भारा
रम रवा ता हुर प्रमाणर गुह भरतुन गगा पवार ॥ २० ॥

॥ वस्तु ॥

भतवासरि भतवासरि राजभमनानि
परिवारि मु भद्र ताम रनु पानि परनउ
परिनारनि बालहि जगार मानु बारि बगउ
पद पगामा रम बनतर दुपरनविन धाय
परनार बार नरतररारार बराय ॥
दुपरनार दुपरनावर नगा कुमारि
रनु नतर गानविनि बिन भूपति बर नारि नगाय
गाथार तुनहि मगाय धार चक्र छर यमि यमाय
बार मनि रि पुनशा निरर म सहि मगारि

(306) नहि in MS नहि
(315) म in मउ and रा in राजा are both eaten in MS

तासु नयण वहा वरा परिणउ द्रुपदि नारि" ॥

[ठवणि ॥ ५ ॥]

पडु नरसरा सइवरि जाइ हथिणाउरपुर सचरुए
राइ दले सरिसा कू यर लेउ तारे सु जिम चादुलउ ए ॥
धाजीय श्रबर गुहिर नीमाण निणयरा रेणिहि ढाईउ ए
पहूतउ जाणीउ पडु नरिंदु द्रुपदु पहूचए सामहा ए ॥
तनोया तारण वदरवान गयण उलाषिहि ढाईउ ए
मणिमय पूतला सावनयभ मानीय घउक पूराविया ए ॥
कहूय कम्णि छडउ निवारि घरि घरि तोरण ऊभीया ए
नयरि पइसारउ पडु नरिंद किरि श्रमराउरि श्रवतरी ए ॥
पालि पहूतउ पडु तजि तरणि पयट्ठु
सोनि चमर वधान श्रनु कठि कुसुमह मान ॥
श्रनु कठि कुसुमह मान किरि सु मयणि श्रापणि श्रावीइ
काइ इदु चदु नरिंदु मइवरि पहुतु इम सभावायह ॥
घडीउ घचनि नयणि निरगन्द चयणु वोनन्द सउ सही
पच पडव सहितु पहूतु तउ पडु नरवर् इइ सहा ॥
मिनिरा सुरवाण काढि सत्राम गयणो दुदुहि दहद्दहाय
मडे मइठना रायरू थार श्राव्ण कू यरि द्रुपदीय
सामि कत्तु वरि कुसुमह खूपु वानि कनवर भलहलइ ए
नयण सनूणीय काजलरह तिलउ कमतूरी यम णिवडीय
करयले ककण मणि भमकार जान्र कानीय पहिरण ए
ग्रहर तबालीय द्रूपसा बान पाण मउर रणझुणइ ए
भाईय वयणिहि राधावधु नरनर साधइ सवि भला ए
कुगिहिं न माधीउ पडु श्राएसि श्ररजुनु उठइ नरनीउ ए

---

(327) After this line MS २ ॥ठा॥ indicating the number of the second Vastu and the close of the section Jain MSS express the close by ॥ठा॥

(330) MS has जाईउ for ढाईउ

(335) MS has किरि for किरि

(341) A the end of the line ॥१

(349) MS has only नरनरीउ and not नरनराउए at the end of the line there is ॥२

'घनि धनु‍ तनु मन नूप मामि सयनु दहु
दम भगा रम्पि भामु मा धनुग नामइ कामु'
सा धनुनु नामइ कामु कागनि धरगि मामनि धइहुडा
वभइ मद बिमड थाइ नि गगि मयन वि रइरडा
नरन्नाय मायर मन गुरगिरि नमु न गि मडरडा
नमु नमु ममरमु हुउ निहयमु राउ मयन वि धरन्मा
मतइ हुयन जयजयकार गुर वमग मवि हूरमाया ए
धनु धनु रायन नुपन्नाय जाग ममभम वर वरिया ए
धनु धनु रामाय नु नामनि जमु मुहिहि न उमना ए
पचम गनि रन्न मरनया पंन पनगाग जिमा जगि हुया ए
पावन मा य गर गुरनारि गुर जग गिर मुमाविमा ए
मनापन मनिनाय परन नियाग कनमु काउ तनु दूपनाय
याग न निहू जगि हूय नारि निन पञ्चा थाइ न हानमि ए
मन म नाय पन अनार सनाय गिरामगि गाई ए ॥
राधारघु गु मरकुनि माधिन मनचातिउ रद नामय नाथउ
जा मम्नि गनि मरकुन मान नामन पावन गनि रामकान
राग युधिष्ठिरि मनि नाजाजन निगि मगि वारगि मुनि वानाजइ
निगुणन नानाय सनन प्रमाणु पुरनिरइ मनि रियउ नियाणु
भनि पम्निरन उमगि हुमा धनुउ नू बु मुगिनर निसा
नरग मन्न बनि मा गि हून पावन पुरिम प नियाणु थरन
मन न काईय परन विनार नपन्रागगायपन मनार
गान धन्न नइ मयगि पहुनउ पनु नराहितु हूयउ सयतउ
मन्नि नाजइ मगन चार जगि मधराचरि जयजयकार
नाडाय काग कुममन मान नाम्इय नाचन मनि मणाधारा
नानाप नयणु कानरन महिजिहि लाम्मा मावनन
नु ता मद्राय मारन मन्न धनु धनु पडव इनुपनि जान
पवइ पडव बइगा पन्रा नरवइ भामानन्न मउरा

(352) काम in MS for कामु
(355) धरदा in MS for धरन्दा
(370) काइयरन in MS for कानिय परउ
(376) At the end of this line there is in MS ७३ गि instead of वसु

॥ वस्तु ॥

पच पडव पच पडव देवि परिणेवि
सउ परिवारिहिं मु दलिहिं हस्तिनागपुरि नगरि आनइ
अनन्विसि रिधि नारन्ह नारि वज्जि आन्मु पामई
ममयधम्मु जा लघिमिइ तीण पुरवि मनवासि
बार वरिस वसिवु अवसि अहनिसि तीरथवासि ॥
सच्च वज्जिहिं सच्च वज्जिहिं अन दीहमि
उल्लघिउ गुरुवयणु इ दपुत्तु वनवासि चल्लई
गिरि वेयड्ढह तलि नयऊ पगमिउ नामि मल्हारु
निय मणि चूडह राउ दिइ पहिलउ उपकारु ॥
वार वरिसह बार वरिसन्ह घडिउ विमागि
अट्ठावयपमुह सवि नमीय तित्य जा घरि पहुच्चई
मणिचून्ह मित्तह मयणि राउ गरु परिहरीउ वच्चई
गहीय पभावइ रिउ हणिउ मजिउमारग कूडु
धरि पहूत्तउ वेउ मित्त लेउ हेमगडु मणिचूडु ॥

[ठवणि ॥ ६ ॥]

एतल ए पडु नरिन्द जूठिना पाटि प्रतीठिउ ए
वधवि ए विजयु करेवि राय सव वमि आणीया ए
सोवन ए राशि करेवि बधव आगलिउ गिणा ए
मित्तह ए रईय मणिचूड राय रहइ सभा रयणम ए
राइहिं ए सति जिणद नवउ प्रासादु करावीउ ए
कचण ए मणिमय थम रयणमइ विंव भरावीया ए
तेडीउ ए देवु मुरारि राउ दुरयोधनु आवीउ ए
इछीय ए दीजइ दान विंवप्रतिष्ठा नीपज ॥
वरतीय ए पेसि अमारि ऊरिण कीधी मन्नी ए
हमिऊ ए सभा ममारि राउ दुरयाधनु पराभवी ए

---

(381) धरिस in MS for वरिम
(383–384) Between these two lines there ought to be one more line rhyming with चल्लई—according to the formation of the Vastu metre

माउन ॥ मलिाउ मनु तावह धम थामनि वीनय ॥
वारिउ ॥ विटुरि साण्ण यवण न मानइ कृडाउ ॥
आणाय ॥ नमानिसल पइव ।वर गर मउ ॥
कृतिनि ॥ न्त्यर मार यवर्नि मान्न कुरन्उ ॥
गानिउ ॥ दार कृन्ति विन्दर यवण न मानाउ ॥
हागया ॥ नथिय थार मान्य हागय गजि मउ ॥
हागिय ॥ इ्दन्त थाय कन्तिउ नजि आमरण ॥
नागीम ॥ गनि थरि नरि न्गागनि दुलगिनि ॥
धामाय ॥ नमायमारि न्याय न्यावन न्म माग ॥
आनिन ॥ आरि न्नागि इ्वनि उनिन मुभ नग ॥
न्म भणा ॥ नियर मराय र [—] हज न वृरि मउ ॥
उपाय ॥ वान्वा नार धन्नानर मउ गागाय ॥
न्याय ॥ गुह नगर पुगारि दरयायनु आजिन ॥
मउ भाग ॥ पन्न १४ यवणु मनानन पतिनव ॥
मान ॥ वग्ग वगनाम नार नान्नि नरमर्ष ॥
थनि विम ॥ जालिम मनिउ थानाम व ननथु ॥
न्न ॥ नियर वगनाम मग्गाय न्न्याय इ्वनाय

॥ वरु ॥

हैय नैवर नैय नेवर न्नर पतिनाम
नियर ।वर नमना इ्वन्याय नन्मिर मन्नाय
हाग विन्न गमय गग न नि र वान्मि न्हवाय
धम भामपुर थरनि पनिय वनवारर मनिमारि
हाराज रव विम गानाइन धायमनर गृर ॥

[रवगि ॥ ७ ॥]

अन्न नैवर नमि नरि पव ॥ पन्न वनि थनिय
नविमान्नि जागनि मुरनार नियर माय पाय ॥ १ ॥
पम नगमाय निय नाय र ना मन्ना पय नमाय

---

(401) MS has वानर f r यानर

(09–410) भण m the fin il Anus ira d t is omitted at several plac s in the MS S e also 101 above

(412) MS has वान्वार for वान्वा नार

सच्च वयण निरवाहु धरिवा कागणि सचरइ ॥ २ ॥
लेई निय हथियार द्रोण सियमह्नि अणगमीय
कुतान्ति भरतार नयण नीर नीभर भरइ ए ॥ ३ ॥
सञ्चवई पिय माय अबा अबाली अविका
कुती मुद्री जाइ वउनातरा नन्दणह ॥ ४ ॥
पभणइ जूठिलु राउ माइ म अरगइ तुहि करउ
निय घरि पाछा जायउ लाहु सहयइ राहवउ ॥ ५ ॥
दाणवि कूरि कमीरि पचाली बीहानीयउ
भूझिउ मारीउ बील भीमिहिं तु दुरयाधनह ॥ ६ ॥
तउ वनि कामुकि जाइ पचह पडव कूणवि सउ
मन्नह तणइ उपाइ अरजुनु आणइ रसवती य ॥ ७ ॥
पणमीयतायह पाय पाढउ वानीउ मद्रि सउ
विद्या बुद्धि उपाइ आणीय पहूनउ पीनीयउ ॥ ८ ॥
पचाली नउ भाउ पच पचान नेउ गिउ
एतम्ह केमथु राउ कुती मिलिवा आवीयउ । ९ ॥
बलु बालीउ बनबधु मुभद्रा लेइ साचरए
हिव पणु हूउ निवधु कुती थु सरमा सात ज ग ॥ १० ॥
एहु तु पुराचन नामि पराहितु दुर्योधनह
तुम्हि मोनवियां सामि राय सुयाधनि पय नमीय ॥ ११ ॥
मइ मूरखि अजाणि अविगणउ काधउ तम्हा रहइ
मू माटा मुहकाणि तुम्ह खमउ अवगहु मुझ ॥ १२ ॥
पाधारिसिउ म रानि वारणवति पुरि रहण करउ
ताय तणइ बहुमानि हु अराधिमु तुम्ह पय ॥ १३ ॥
कूडु करी सिणि विप्रि वाग्गावति पुरि आणीया ए
विसु न कीजइ नत्रि अवसरि नाजइ परमवह ॥ १४ ॥
विदुरि पवाचिउ नखु दुरयाधनु मन चोसिसउ
एसु पुरोहितवेषु वाढु तुम्हारउ जाणिजउ ॥ १५ ॥

(443) MS reads मामि for नामि
(451) In MS पवाचिउ might also be read पवाडिउ (caused to be read) or पवाविउ which has no sense

दइ घरि मछद मनु ताल तणउ छद पवनन्हो
माणि पन्हान्ड गज णगमग गयि मन्नड ॥ १६ ॥
बाला मउन्गि गाद तुन्न कन्न जान्नउ
णउ तुन्यावनु गादु ध्राग उ पाग मागिणि" ॥ १७ ॥
भामु भगाग 'मुणि माय गान्न ययग वायनउ
पुनग तुनदगु जाग णरि मुगावनि मन्नाग" ॥ १८ ॥
गगरिणि नगाय गुनग विगुणि णिगाणय दूर नगद
हुं उगान्ड घग ग्गि न्याग १दयग ॥ १९ ॥
नणि गायणि निणि गानि पाग पूग नणि गयगन
पु ॥ नग घारानि नन्नाग नागमिया ॥ २० ॥
गानि मागग गाग माणि मुगन कुणवि मठ
णियग पुगाणिनु नाग नागनन णिगनग नयग ॥ २१ ॥
गार्धाग पन्नान नामि पुगाणिनु मामनग
मन्नाग नाग वायाण नग्ग धारा गगु मिवान ॥ २२ ॥
नगाग थनदु नाग नमी नाया माणुमग
जायग पुगभाग ।न्न जाग नगरा ॥ २३ ॥

॥ वस्तु ॥

नेतु न गिमाइँ नतु न गिमाइँ पुनु नग पानु
॰मातु मुगगाग वर्गि पुन्यपान जिम गाय गानद
नाढि नुमनु नग मगग तुणा वजिन णिणि णिमद वावग
नाग मणि निमन्ना पवग पन्व नगि
रातु न्हान्ना वणि णिगग थितु थितु धूम म ति ॥

[नयणि ॥ ८ ॥]

थितु णि थितु णि थिम नेवणिनातु पवग पवन हुइ ककुवातु
नग नामनग पथिवग नगग भामु तु नगग मिवाग ॥ १ ॥
गानि मुनन पन्ना नाट वयग न मग नगि पुनाग
न जानना जाणग णिमग नग भनग नग मानग निमग ॥ २ ॥

(471) नुमनु has its मु not written in the MS मनु is supplied as it suits the context aptly
(472) MS has नग for नाग

साधू वहूय न चालइ पाउ ऊभउ न रहइ बूठिलु राउ
माडी बोलइ "सांभलि भीम वेती मुइ वयरी नी सीम ॥ ३ ॥
इकि वयरो ना परिभव सह्या लहूया नदए पाछलि रह्या
हू थाकी अनु थाकी वहू दिणु ऊगिउ तऊ मरिसिइ सहू" ॥ ४ ॥
वासइ आघा बधव बउ माडी महिली कधि करेउ
तरुयर मोडतु चालिउ भीमु देव तणु बलु दलोइ ईम ॥ ५ ॥
एव बाह साहिउ राउ बीजी साहिउ लहुडउ भाउ
जा महिमडलि ऊगिउ सूर ता वणि पहुतउ पडव वीर ॥ ६ ॥
सहू पराधु निद्रा करीइ पाणी कारणि वणि वणि फिरइ
भीमु जाम लेउ आवइ नीर पाछलि जोमइ साहसधीर ॥ ७ ॥
एक भमभम देखइ बाल पहिलु दीठी अति विकराल
बोलइ राक्सि 'सामलि सामि हुं जि हिडबा कहीउ नामि ॥ ८ ॥
राक्स हिडब तणी हू धूय तइ दोठइ मयणातुर हूय
बइठउ ताउ अछइ नीय ठाणि बाइ आवो माणुसह्याणि ॥ ९ ॥
मुझ रहिं आइसु दीधु इमु फाई आव्यु छइ माणसु
वाधि करी लेउ वहिली आवि उपवासी मइ पारणु करावि ॥ १० ॥
कर जोडी हु पणमउ पाय मइ तुम्हि परणउ पाडवराय
तुम्ह उपकार करिसु हुं घणा दूख दलिसु वणवासह तणा' ॥ ११ ॥
'उभी उभी इमु म बोलिइ पडव बीजा मगूम म तालि
जग उद्धसिआ घर भवनरइ हठा जगनु जीवीउ हरइ ॥ १२ ॥
ए माडी ए अम्ह घर नारि ए अम्ह बधव सूता च्यारि
ईह तणे तू चकणे लागि भगति करी मनवछितु मागि ॥ १३ ॥
गतइ राक्सु रामि जलतु आवइ फुट फेकार करतु
वैरी कूसट मारइ जाम पीमु भिडेवा ऊठिउ ताम ॥ १४ ॥
'रे राक्स मुझ आगलि बाल मारिसि राउ तू भूणउ काइ
रुख उपाडी वईं विन्इ ल्ल िसि वाजइ हूगर रडइ ॥ १५ ॥

(488) MS has बन for बाल
(495) MS has दूप instead of दूप-दूख
(500) The MS has रेसि for रोमि
(501) In MS कूसट–a light word–reads like तूसठ

धनगनिद्राइ जागिउ मट्ट पगुमी वामइ हिइवा वट्ट
"माइ माइ उगान्ठ राउ न म्टउ अम्हारउ ताउ ॥ १६ ॥
इणि मागीगर मुन्ड भिटु वीजउ भाई घाउ तुरतु"
इमु गुणी नर घायउ प शु कुभइ भीम मिनिउ मइगन्नु ॥ १७ ॥
पन्डिउ भामु आगागिउ राइ गन्ग नेउ थनि माम्हउ थाइ
अरजुनु जा भूनंग जाइ रागगु भामि रुानिग टाइ ॥ १८ ॥

॥ वम्नु ॥

मन्‌ न्त्रिचना मन्‌ न्न्विा गलि धन्गेइ
कु ना भनु द्रौग्गी अ रधि नराग मागगि वनारइ
कु नी जन शिगू कृपान नन्नि न्त्रिग्न नमु नेग यावइ
पन्‌ न्त्रिगु थग जागनी भानाग नथानि
जाई जाई उगना पहन थगि विररानि ॥ १६ ॥

[ठवणि ॥ ६ ॥]

नान माग गज द्वैठि पहन गनाय मयरि त नवि आभिन्न्इ
रानि पनति प्रन्व नग्न वनि नग्नि मू र्गी कृमि पन्इ ॥ २० ॥
गम्वनि थाग गान्नि रानु आगणा नृपनि नानू मानु
भीमगन गनि मन्‍नी मान कृगावि मिनी परिगारी वान ॥ २१ ॥
भाजनु आगगन मारगि वन्न नन्न भगनि गम्मी नगन गन्द
नरउ मनागु नगा नर गमइ पथन पन्न गरगा ममन ॥ २२ ॥
गर नवगुरि न्न्न गया न्नगमवमग परि रथा
भीन्न थानन वमगानमि जिग नानगाइ तीग नमि ॥ २३ ॥

(505) The MS has no अम्हारउ
(514) At the end of the line the scribe not only does not conclude the ठवणि but also continues the verse enumeration the same as it is
(515) The MS not only does not note the end of the previous ठवणि but also keeps on the enumeration We have separated the thavani but kept the stanza-enumeration as found in the MS

राइ बोलावी बहू हिडब "अम्हि वसीसइ वेस विडबि
तुम्हि सिधावउ तायह राजि समरी आवे अम्हह काजि ॥ २४ ॥
करि रखवानु थापणि तणु अजीउ फिरेवु अम्हि वनि घणु"
नमी हिडबा पाछी जाइ बापराजि धणियाणी थाइ ॥ २५ ॥
अन दिवसि बभणु सकुटब रल जिम विलवइ पाडइ बु ब
पूछइ भीमु करी एकतु "आविउ दूखु किसु अचितु ॥ २६ ॥
वछुया साभलि" बाभणु भणइ "ए विवहारु नयरि अम्ह तणी
विद्यासिद्धी राखसु हूउ बक नामि छइ जम नउ दूउ ॥ २७ ॥
विद्या जोवा तीणइ पन्नासि पहिलु सिना रखी आकासि
राजा भाडी अवग्रहु लीउ "पइदिणि नरू एकेकउ दीउ ॥ २८ ॥
चीठी काडइ नितू कू यारि आवइ वारउ जण विवहारि
आजु अम्हारइ आविउ दूउ आजु न छूटउ हु मरणभूउ ॥ २९ ॥
केवलि वयणु जु कूडउ थाइ जउ नवि आ"या पडवराय"
पूछीउ भीमि कथा अवधु वणि जाई बग राखसु रुद्धु ॥ ३० ॥

॥ वस्तु ॥

बगु विणासी बगु विणासी भीमु आवेइ
वद्धावइ जणु सयलु 'जीवन्तनु तइ देव दिद्धउ
केवलिवयणु जु सच्चु किउ त्रिहु भुयणि जसवाउ लिद्धउ"
पखइ पडवटा वसइ तीछे बभणवेसि
वात मइ जण जण भिन्नी दुरयोधन नइ देसि ॥ ३१ ॥
राति माहे राति माहे हुई प्रच्छन्न
तउ जाइ ढंतनगि रमइ वासि उडवा करी नइ
पुष्प त्रियवटु पाठविउ विदुरि वात बक नी सुणी नइ
पय पणमी मा वीनवइ दुरयाधनु नु मत्रु
'तुम्ह पामि ए आविसिइ करणु दुरयाधन तत्र ॥ ३२ ॥
ईम निसुणीउ ईम निसुणीउ भणइ पचाति
"वणि कनता अम्ह रन्द अजीय तत्र सिउ सिउ करसिइ

---

(540) The scribe has missed वसइ in the MS - some such word वसइ or ग्रहइ is metrically necessary. The sense too needs it वसइ is therfore

राजिसिद्धि अम्हह तणी लइय जेण हिव सिउ हरैगिइ
पचानी मनि परिमवी वानइ मल्ही लाग
पाचइजण नइ हूमिइ तुम्हि रिमाइ वाज ॥ ३३ ॥

मा॰ हूई माइ हूइ वाइ नवि वक्रि
अ॰ जाया नवि मूथा तुम्ह राजु नाईं दवि न्दिउ
पुत्रत नारा अद्दइ ताह माँहि तुम्हि अजमु लिद्धउ
वमि धरानइ ताणाउ दु मामणि दुरचारि
यानपणि हु नवि मूई वाइ तुम्ह नारि" ॥ ३४ ॥

रामु नामाउ रामु नामाउ भामि अनु परिय
राउ भणइ ता नम॰ मुम वयणु जा अवधि पुन्जई
पचानी रामर्धाम अजमि य ति अम्ह वानु सिन्भई
गच्च वयणु मनि परिन्दउ भानउ जिणधर्ममूलु
गत्यजयणि ह॰ पामाइ भवसायर परकूलु" ॥ ३५ ॥

ख्यरयणि हूमवयणि राउ धूमि॰नु
गिरि गधमायण गिया व॰रानु तमु मिहइ म्न॰ठऊ
पुत्रनाणी अरजुनु न॰इ नमीउ तित्यु तगु मिहरि वइ॰ठऊ
विन्ना गवि मिन्निनि गइ जा पनइ वणराइ
माहडी भाराम्गउ ता मनु सूमइ भाम ॥ ३६ ॥

(ठवणि ॥ १० ॥)

सूयर न्या मन्डि वाणु अरजुन मिउ कुणु करइ संधाणु
तिणि मिणि मन्डिउ वणधरि वाणु उडिउ गयणि हूउ अप्रमाणु ॥३७॥

अरजुन वनचर नामउ वादु करउ भूकु उतारउ नादु
एक्सर वारणि भूमइ बउ करइ पराभा ईसर देउ ॥ ३८ ॥

न्रग अर्जुन सवि हथायार मानमूक बउ करइ प्रवार

(559) The MS has मिन्र्द for मिन्भई
(561) The first letter of the word ह॰ is moth-eaten It might be but one cannot be certain
(567) The MS continues the enumeration without separating a thavani I have separated the thav ani and preserved the enumeration

साहिउ अर्जुनि वनचरु पागि अक्कु हुई वानइ "वरु मागि" ॥ ३९ ॥
अर्जुनु बोलइ "वर भडारि पाछइ आवइ लउ उपगारि"
खचरु बोलइ सामलि 'सामि गिरि वेयड्ढु सुणीइ नामि ॥ ४० ॥
इंदु मच्छइ रहनू पुरराउ विज्जमालि त लहुडउ भाउ
चपलु भणी नइ काढिउ राइ रोसि चडिउ राखसपुरि जाइ ॥ ४१ ॥
इंदवयणु इकु तुम्हि सामलउ करीउ पसाउ नइ दाणव दल
हरखिउ अरजुनु जा रथि चडिउ दाणवघरि घु बारखु पडिउ ॥ ४२ ॥
असुर विणासी किउ उपगारु इंद्रि लोकि हूउ जयजयकारु
इंद्र तणु ए कीधु काजु असुर विणासी लाधउ राजु ॥ ४३ ॥
कवच मउड अनइ हथीयार इंद्रि आप्या तिहूयणि सार
धनुषवेदु चित्रगदि दीउ पुत्रु भणी इंद्रि परठाउ ॥ ४४ ॥
पाछउ आवइ चडीउ विमाणि माडी बधव पणमइ राणि
एतइ कमलु अगासह पडीउ वइठी द्रूपदि करयलि चडिउ ॥ ४५ ॥
सवा कमल ना इच्छा करइ भीमसनु तउ वनि वनि फिरइ
असउरा देखा आनइ राउ भीम पासि वइठदिइ जाउ ॥ ४६ ॥
माग न जाणइ खोजिउ सहू ममरी राइ हिडबा वहू
कुणबु ऊपाडी मेलिउ भीम जाणे दूतह आवा सीम ॥ ४७ ॥
मुक्षु देखी सवि पहुया तणु पडव भू यक लडानइ घणु
जाम हिडबा पाछी गई वान अपूरव ता इकहुई ॥ ४८ ॥
द्रूपदि वयणि सरोवर माहि पइठउ भामु भनेरइ ठाइ
भामु न दीसइ वनतउ तिमइ तउ अपावइ अरजुन तिमइ ॥ ४९ ॥
फेडइ नकुलु अनइ सहदेउ पाणी बून्ना तेई बउ
माइ मोकलावी पइठउ राउ सविहु हूव एकु पुण्य उ ॥ ५० ॥
काइ रोउ न लहइ राणि द्रूपदि कूती रही क ध्यानि
मनह माहि समरइ नवकार एहु मनु अम्हे करिसि सार ॥ ५१ ॥
बीजा दिवसह दिणयर उदइ ध्यान प्रभावि आव्या सइ

(575) भाउ is not in the MS
(589) The MS has मु to which some reader has added षु thus making up मुषु
(592) The MS has वनउ metrically it ought to be वनतउ

थप्पइ सावसावावज हाथि एनु पुप्फु आविउ इंद गाथि ॥ ५२ ॥
माइ नमा मनि हरिगु धरिउ पुप्फ पामि बहानइ चरीउ
एव मुनि पामइ ववन्तानु गयणि पहुचइ इंद्र विमानु ॥ ५३ ॥
तुम्ह उपरि खनहिउ जाम जाणा गुरवइ वानउ ताम
इ पाम्बिउ वगि परिहार तम्म पयानिवाउ उगाह ॥ ५४ ॥
मताय वउ इंद्र कानगि रमी इंद्र मान्मु तु यम्ह यहा
मन्तर पडर यडर वद्धमि गिणु इथियारइ वाधा भेमि ॥ ५५ ॥

॥ वस्तु ॥

नागरागइ वध नागपामर वध छाटिवि
म्हाम्मि पम्चर नागराइ निजराज छिद्दउ
हार गमाणार नरवरर गनाय रगि अनु थमनु निदउ
अरजुन गगनि भूभना गपरूम मानिहु
मागाउ माधा तुम्ह पय पंचर निया मिद ' ॥ ५६ ॥
धरमि इम्म नरमि कम्म हैतरगि जार
दुजाम्ण पर परणि महीम गिरम्र रहताव मगाइ
धम्मपुत्त वयणग्ण पुण इम्पुतु निगि मणि लगर
दुरयाधन चित्रगम्म मल्हाना उरिम पतिय
विन्नाम्ररराम्म नमर दुरयाधनु नउ मतिय ॥ ५७ ॥

(ठवणि ॥ ११ ॥)

माम उगाम्म धाम्नर पाम पूछिम धुमनु युधिष्ठिर राइ
भणुम दुरयाधनु अतिअ गुम्भाया तुम्ह पाय जउ मइ पणमाया ॥ ५८ ॥
धर उपरि दुरयाधनु घनइ एतर जयद्रथ पाडम घनर
निउ आउ वृ ता रहिम मार अरजुनि आणी मंत्र रगाइ ॥ ५९ ॥
नाचन वंची वृम घरम धानिउ धामा द्रुपदि लउ
अर्जुनु नामु भिडया अह वम कम्नु विणामिउ द्रुपदि लउ ॥ ६० ॥
पाच पाम मडिउ ( ) मामि मिडा उपाम्प रास

---

(599) MS धरम for धरिम
(606) The line is metrically defective
(621) This line is very corrupt Metrically it seems ❀

नवि मारिउ छइ माडी वयणि जिम नवि दीसइ राडी मयणि ॥ ६१ ॥
एतइ नारदु रिषि आवऊ दुर्योधन मु मत्रु करेउ
न।र माहि वज्जाविउ पडहू वालिउ दूजणु इम पडवडहु ॥ ६२ ॥
"पचह पडव करइ विणासु तह तणी हु पुरु आस"
पुत्रु पुराहित नउ इम भणइ 'कृत्या नउ वरु छइ अम्ह तणइ ॥ ६३ ॥
कृत्या पासि करावु कामु वयरी नु हु फेडउ ठामु"
कृत्या आवा धाई 'सकल वइ मारु वइ वरु विरल ॥ ६४ ॥
नारदु पहुतउ सिल्या देवि पडव बइठा ध्यानु धरेवि
एक पाइ गिणयर द्रीठि हीयडइ मत्रु पच परमेठि ॥ ६५ ॥
निम सात जा इण परि जाइ ता अच्चभू को रणवाइ
एतइ आविउ कटकु अपारु पडव धाया लई हथीयार ॥ ६६ ॥
धाइइ धानी द्रूपदि देवि साटे मारइ कटकु मिलेवि
मरछुनि जामु दलु निरग्नु राय तणु ता सूकउ गलु ॥ ६७ ॥
कृत्रिम सरवरि पाणी पोइ पाचइ पुहवा तनि मू छीयइ
सरवर पाणि द्रूपदि मिला एकि पुलिन्द आणी वली ॥ ६८ ॥
कृत्या रासमि तणाम जि सही भीलि वानी ऊभी रही
मणि माला नु पाया नाम पावइ हुया प्रवटसरीर ॥ ६९ ॥

॥ वस्तु ॥

पच पडव पच पडव चिति चितति
कुणु नरवइ आनीऊ कुणि तलावि निमनीरु निम्मिउ
कुणि द्रूपदि अपहरीय कुणि पुलिन्दि, इम चिति विम्हिउ
अमरु एकु पयडउ हूय बालइ 'साभलि एणह
ए माया सवि मइ करी कृत्या राखवाह ॥ ७० ॥
एतइ भाजनवला हुई द्रूपदि देवि करइ रसवई

ॐ two letters or 3 Matras rhyming with रीम seem wanting Again the MS has नवि मरि repeated defore नवि मारिउ of line 622, obviously the scribe's mistake

(631) Two letters सूक and सूकउ are moth eaten and hence conjuctural

(644) MS has सवई instead of रसवई

मासखमणपारणइ मुणि" वना पहुतउ बारि नरि" ॥ ७१ ॥
पचइ पंडव पय पणमति अतिथिग्गनु त मुनिवर न्ति
वाजा दुदुहि अनु दुडटुडी म वर हूती वाचा पडा ॥ ७१ ॥
मत्स्यन्सि जाई नइ रमउ ए तरमउ वरमु नागमउ
म्या वइराग्ह राय असयानि वेत विडव्या नाय अभिमानि ॥ ७३ ॥
कच भटदु बल्लवु मूग्राए मरखुनु हूउ कावावाह
घउयउ नकुनु ममघउ थाइ सहा वारइ नरवइ गाइ ॥ ७४ ॥
प्रथम पवान" काचक मरइ वाजइ दक्षिणगाग्रह वरइ
आनउ उत्तरगाग्रह हून पइनि वरमु न्म परि गमिउ ॥ ७५ ॥
अभिरनु उत्तरक थरि वरिन माता हुपिण वानाह मु करिउ
पहुतउ सहूइ ण्हडपुरि क्यारि वन्न पिहु पहव घरा ॥ ७६ ॥

॥ यस्तु ॥

दूयमावि दूयमावि गयउ गावालु
दुजाहण वयणु गुणि एव बारमह भणिउ विज्जइ
निय अवधि भावाया पडवाह बहु मानु न्जिई
इ दपत्थु तिनपत्थु पुह वारणु विसा क्यारि
हस्तिनागपुर पाषमु भाताउ मत्मद वारि ॥ ७७ ॥
भणा" कुरवु भणइ कुरवु 'न्व गावि"
मह महीयनि धणि पिरिया ग्ह मनु पडव न मानइ
भुग रढी भूयवी । एक चाम हिव ए न पामइ
इनर महिनाएव जए तीह मिलिउ तु पविख
ए उघडाणउ सच्चु किउ कूडउ कूडा सक्खि ॥ ७८ ॥
कन्ह बालइ कन्ह बानइ 'भीमवलु जा"
विमलप्पर काचका बकु हिडंयु मगाद मारिउ
लड वधवि अर्जुनि दुनि वार तुह जाउ उगारिउ
विदुरि कृपागुरि द्राणि मइ जउ न मिनइ ए राय

(656) The enumeration of these वस्तु st is begun afresh in the MS naming st 77 as st 1 While the st 81 is then marked as st 82 and the last st 82 as st 83

तउ जाणु नियकुल नु हिव कउरव नु घय जाइ" ॥ ७९ ॥

पहु पुच्छीउ पहु पुच्छीउ विदुरि घरि कन्हु
रोसारणु चल्लीयउ मग्गि मिनाउ सहूइ नावइ
"दुरयाधनु दुटठमणु विम इव दव अम्ह सलि न आवइ
हिव एकु अम्ह मानु दियउ विहु पखउ तु छडि
कउरववस विणासिवा काइ कूडु म माडि" ॥ ८० ॥

मानु न्हिउ मानु दिन्हउ कन्ह गंगेय
एवतु करि अलोउ वन गुरु सु ती पयासीउ
"इह सरिय थाइ तु मिनिउ जाइ जाइ तु मनि विमासीउ'
करणु भणइ 'सच्चु कहउ पुणू छह एकु वि नाणू
दुरयोधन रहि आपणा मइ वल्या छइ प्राण" ॥ ८१ ॥

भणइ कन्हु भणइ कन्हु "वन जाणेजि
नवि मानिउ तुम्हि हु एह वात अति हुई विरूई
अम्ह मुझ घरि अविया पडुपुत्र इह वात गरूई
दुरयोधनि हु पटवह छन्ठउ कीधउ तोइ
रणु खेडिसु अरजुन तणउ ज आवइ त होउ" ॥ ८२ ॥

(ठवणि ॥ १३ ॥)

अतु लेउ विदुर गयउ वन माहि कन्ह वली द्वारावती जाइ
विहु पखि घानक दल सामही विहु पखि आवइ भड गहगही ॥ ८३ ॥
जरासिंध नउ आविउ दूउ मानकुमर जई लग्गइ मूउ
वणिजारा ना वात माभना जरासिंधु आवइ तुम्ह भणी ॥ ८४ ॥
उत्सव मांडे उत्सवु एहु सविहु वयरा आया छह

(670) The MS has निकुलनु for नियकुलनु

(685) MS gives up its enumeration of ठवणि from the VIII If it had kept it up, following its practice upto that point, it is probably that it would have placed the end of ठवणि IX at st 22, of the X at st 36, the XI at st 57, of the XII at st 70 and at st 82 of the XIII This is one of the many points which another MS of the रास if found, will help to clear up

धमरा ना पणमाय पाय एनइ गानु मु परि न्त जाइ ॥ ८५ ॥
'फरणु रहइ न्डि गुमानणा व इमा वान निणि जानइ भणी
पाचि पचावे नि मनातु प्राणिन नहड वृ वग्ग प्रमातु ॥ ८६ ॥
इन्चतु अनु चन्नातु चिरगतु प्रसर मणिचूतु
प्राचिउ उत्तम अनु बन्रान मिनिन वाग पडन नउ घातु ॥ ८७ ॥

धूतुचमनु मनानी काउ वारन कन्डन्न सामहाउ
परिग्र भूमि मरमनि नर थाणि दनु पारन्न निणि वुन्गग्नि ॥ ८८ ॥
वउरव नइ नि गुम गगउ इतु उग्याघनु गातु मिनेऊ
गवुनि दुमामणु चयम्बु धूतु गन्उ भूरिश्रवा भगन्तु ॥ ८९ ॥
मिनाऊ जरामिनु नान्वनरि मन नगउ गग हृ गइरि
दुरयाननु प्रनि मन्मरि चनाउ जार्ष जरामिघ पाग पन्नीउ ॥ ९० ॥
मुभ रन्न पहिनउ न्डि प्रन्वाणु हव रान नउ निम मालु
न्ना मनाना गगन प्रन विन्मा तुन्या न्त थउ ॥ ९१ ॥

न्त मिनाया चनगनाय मुन्न गयवर गनगनाया
घर धमवाय गनवनाय मम मागिन्वित टनन्नाया ।
रगानगाया मवि मम नूर अवग प्रानगान
हय गयवर मुरि वणाय रगु उनान जगुनपाउ ।
पहन धम घनवनन विन मागिणि गुणु मायइ
गन वरि गइ वग्न तुरगि नुरगु गाउन रगु न घर ।
भिन्इ मन्न रडवडन माम धन नइ जिम नच्चइ
न्मइ घुमर उममर वार मगन जिम मच्चर ।
गयघडगुड गडमन्न धार धयवइ नर पान्न
इममनना मामत मन्मु मरमनि न्यिान्न ।
मऊ मउ रान न्विमि न्विमि गगउ विगामन
तउ आन्मन न्विमि वनु मन मानि विमानइ ।
मन्नाउ नान्निनि मवति वृ ग्रन उना गगु पानाऊ

---

703) This stanza is numbered 92 in the MS and there is ॥३॥ showing the loss of the metre The new metre begins thereafter and stanza-enumeration ceases

ताम सिखडीय तणीय बुद्धि तऊ वाहि खिडीऊ ।

अरजुनु पूठि सिखडीयाह बइसी सर मकइ
पडीऊ पीयामहु समर माहि किम अरजुनु चूकइ ।

त्रिगवा सरू रहावीयऊ सरि गगा आणी
कऊतिगु दाखीऊ कऊरनाह पीऊ पायु पाणी ।

इग्यारमइ दिवसि दाणि ऊठवणा काजइ
आजु अपडवु कइ अदाणू इम मनि चीतीजइ ।

काहल कलयल ढक्क बूक अथक नीसाणा
तऊ मल्हाऊ भगदत्ति राइ गजु कराऊ सढाणा ।

चूरइ रहवइ नरवरोडि दतूसलि ढारइ
अरजुन पाखइ पडवटनु हणतु कुणु वारइ ।

दाणव दलि जिम दडवडतु दती देखी नइ
धामऊ अरजुनु धसमसंतू धयरी मूकी नइ ।

दिणि आयमतइ हणिऊ हाथि हरि पडव हरखीया
दिणि तेरमइ चक्रव्यूहु गऊ कऊरवि माडीय ।

अजुनु गिऊ धनि झूझिवा तिणि अभिवनु पइसइ
मारीऊ जयन्थि करीऊ झूझु तऊ अरजुनु रूसइ ।

करीऊ प्रतिज्ञा चडीऊ भूमि जयन्थु रणि पाडइ
भूरिश्रवा नऊ तीगा समइ सरि बाहु विडारइ ।

सत्यकु छेदिऊ बलिहि सीसू तसु दिणि चऊदमइ
रीतिहि झूझइ विसम झूझि गुरू पडइ कीमइ ।

कूडऊ बोलइ धरमपूतू हथीयार छडावइ
छेदिउ मस्तकु धृष्टद्युमनि क्रमु सिउ न करावइ ।

बार पहर तऊ चडाऊ रामि गुरनन्दणु झूझइ
रणि पाडिऊ भगदत्तु राऊ कऊरव दल मभइ ।

करि करवालु धु करीऊ करणू समहरि रणू माडइ
फारक पायक तूरग नाग नवि कोई छडइ ।
धूलि मिलीय भलमलीय सयल दिसि दिणयरु छाईऊ
गयणे दुदुहि दमद्रमीय सूरवरिजसु गाईऊ ।

---

(724) The MS has ढक्क instead of ढक्क

पाडइ चिघ वदघ वध घरमर्दन रोनइ
वाणि विनाणि विनाणि कवि मरायण घधानइ ।
कूडु करीउ गाविनि भनि रयु धरणिहिं वनऊ
माराऊ अरजुनि करणु कूंहि रणि अणभूमनऊ ।
गयु गाहुनि वऊ हणाय वगि नकुलि सहदेवि
सरवरमाहि वखानायउ दुरयाधनु दैवि ।
राइ मनाहु ममापायउ भीमिहि मू भिडऊ
गन्धारहारि रणाय जाव मनि माहु मू पडिऊ ।
रहउ राम मनानिया जा पहन जाइ
कृपु कृतवर्म मामरामता निन्दर थाइ ।
पाडवानि पाणों घरम कूड साधउ रतिनउ
निहणाय पञ्च पचान वान धनु रामधि आऊ ।
भीमू गिमडा तणऊ नामु घणउ दनु माधाऊ
पान पराभन नर प्रवमि गनिमाणु विराधीऊ ।
कहहि वाधीऊ मूयण नाहु मन माणु निवारणउ
परनु मूरनाय नयरि परायणि परिवाराय ।

॥ वस्तु ॥

नाहु निरड नाहु निरड कहइ उवणिम
तहिं मरजुणि मिलिउ आणिणाय मह मणि उपठाय
वह दुरम्नु मणि चिनवाय रमन घण नयणि वुरनीय
कहरु सूरउ पराडवाडि कृणवि निवारा रामु
हथिणागपुरि आवीया मनि आणन्दि नाहु ॥

(746) वन after ववध is not in the MS the addition in conjectural

(764) रनु in दुरम्नु is moth-eaten, hence it is conjectural

(765) The MS has पराडवाड for परीरवार

(766) The MS has ठवणि and not the number written in it

(ठवणि ॥ १४ ॥)

थापीऊ पडव राजि करहु ए उत्सवु अति करए
कूणविहि गवि गधारि थयरहू ए राऊ मनावीऊ ए।
हरीयग्ग दूर्पन्ति दवि इक्कू दिणू ए नारद परिभवि ए
वेह रहइ कहु जार्णवि सुद्रह ए माहि वाटडी ए।
प्राणीय घानुकी पडि देवीय ए अरि वसि घान्नीया ए
पहुतना पासि गगेय जय तणी ए साभनइ वानडी ए।
ऊपनु केवलनाणु सामीय ए नमि जिणेसरह ए
साभनी मामि बखाणू निरता ए सावयव्रतु धरइ ए।
थरतीय दसि अमारि नामिव ए आईऊ जिणू नमइ ए
दिणि दिणि गीजइ दाव पूजीय ए जिण भूयण ऊपनऊ ए।
ऊपनऊ भवह थद्दरागु वेन्ऊ ए पीरीयखि पाटि प्रतोठिऊ ए
सामीय गणहर पासि पाचह ए हरिखिहि व्रतू लिइ ए।
साभली बलिभनि वात नियभवू ए पूठए पूछइ प्रभु कह ए
बोलइ गुरु धर्मघापु 'पुवभनि ए पाव ए कूणबीय ए।
वसइ ति अचलह गामि बधव ए पाव ए भाविया ए
सूरदेऊ सतुन देवु सुमतिऊ ए सुभद्र सूघासु ए।
सुगुरू यशाधर पासि हरिखिहि ए पाव ए व्रतु धरए
कणगावलि तपु एकु बीजऊ ए करइ रयणावली ए।
मुकतावलि तपु साभ्र चऊथऊ ए सिहनिक्कीलिऊ ए
पाचमु आविनवधमानु तपु तपी ए अणूत्तरि भवि गिया ए
चवीयना तुम्हि हूआ पचइ ए भवि ए सिवपुरि पामिसऊ ए
साभली नेमिनिरवाणु चारग ए सवणह सूणि वेमणि
सेत्रुजि तीथि चडेवि पाचह ए पाडव सिद्धि गिया ए
पडव तणऊ चरीतू जा पढए जो गुणइ सभलए

---

(772) The MS has पसि for पासि obviously an error, the metrical final ए dropped in this line and also in lines 775, 776

(777) The MS has वाटउ for वेन्उ

(779) The MS has पुढ़ए for पुठए

पार तणउ विण तगुाशु रहइ ए हेना होइसि ए
नीपनऊ नयरि मान्ऊन्नि वच्छरी ए चउन्न्होत्तर ए
तदुननेपानीयमून मामिना ए मव ग्रम्हि उधर्या ए
पुनिमपक्षगुणि मालिमद ॥ सूरिहिं नामीऊ ए
देवचद्रउपराधि ५८न ए रासु रमाउन्तु ए ॥

॥ इति पचपन्डवचरित्रराम । समाप्त ॥ छ ॥ १ ॥ ॐ



(791) The MS has पार in thaplace of पार
ॐ (ग्रारिण्टन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बडौदा, से प्रकाशित 'गुर्जर रासावली' से साभार)

गौतम रास [1]

१५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे पचपाण्डव चरित रासु के पश्चात् काव्य सौष्ठव तथा कथा प्रवाह की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति गौतम रास है। भाषा भाव तथा काव्य इन तीनो रूपो मे यह कृति अपने मे पूर्ण है। ६०० वर्ष की प्राचीन रचना होने पर भी कृति का पाठ इतना अधिक लोकप्रिय है कि आज भी मारवाड़ी जैन श्रावक (खरतर गच्छीय) इसका प्रतिदिन पाठ करते हैं। रास कई बार प्रकाशित हो चुका है। सर्व प्रथम श्री नाथूराम प्रेमी [2] और पश्चात् श्री कामताप्रसाद जैन [3] ने इस कृति के महत्व पर प्रकाश डाला। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी अपने आलोचनात्मक इतिहास मे इसका उल्लेख किया था। [4] इन विद्वानो ने [5] 'उदयवंत मुनि इम भणे और कहीं विजयभद्र मुनि इम भणे पाठ मिलने से रचयिता का नाम ही उदयवन्त या विजयभद्र रख दिया पर वास्तव में ऐसा नहीं है। स्वर्गीय देसाई मोहनलाल [6] तथा श्री अगरचन्द नाहटा ने [7] इस भूल का परिहार कर दिया है। रास की स० १४३० की सबसे प्राचीन प्रति बीकानेर बड़े ज्ञान भण्डार मे सुरक्षित है जिसकी पुष्पिका मे —"इति श्री गौतम स्वामी रास श्री स्तम्भ तीर्थ विहारे श्री विनय प्रभोपाध्याये कृत पाठ मिलता है। अत यह बहुत सम्भव है कि रास

१—साहित्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'गौतम रास व उसके रचयिता पृष्ठ २-६।

२—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास श्री नाथूराम प्रेमी पृष्ठ ३२। ३—वही।

४—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ० रामकुमार वर्मा, द्वि० स० पृष्ठ १३६-१४२।

५—जैन सिद्धान्त भास्कर भाग २० किरण २ मे प्रकाशित-अपभ्रंश साहित्य पर प्रो० रामकुमार जैन का लेख।

६—जैन गुर्जर कवियो श्री मोहनलाल देसाई भाग १ पृष्ठ १५।

७—साहित्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, गौतमरास, श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।

पार तणउ विणु तणुगु रहइ ॥ हेला होइसि ए
नीपनऊ नयरि नाल्उ़्नि वच्छरी ए चउन्न्हानर ए
तहुनरधानीषमूत्र मामिना ७ भव श्रम्हि उधर्पा ए
पुनिमपक्षमुणिन्‍ मानिमन ॥ सूरिहि नामीऊ ए
न्वचन्द्रउपराधि ५दन ॥ राग्रु रमाउनु ए ॥

॥ न्ति पंचपंडवचरित्ररास । समाप्त ॥ ॥ १ ॥ क्षि



(791) The ms has पार in thaplace of पार

क्षि (ओरिएन्टल रिसर्च न्स्टाट्यूट, बडोदा, से प्रकाशित 'गूर्जर रासावली' से साभार)

गौतम रास [1]

१५वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे पचपाण्डव चरित रासु के पश्चात् काव्य सौष्ठव तथा कथा प्रवाह की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति गौतम रास है। भाषा, भाव, तथा काव्य इन तीनो रूपो मे यह कृति अपने मे पूर्ण है। ६०० वष की प्राचीन रचना होने पर भी कृति का पाठ इतना अधिक लोकप्रिय है कि आज भी मारवाडी जैन श्रावक (खरतर गच्छीय) इसका प्रतिदिन पाठ करते हैं। रास कई बार प्रकाशित हो चुका है। सब प्रथम श्री नाथूराम प्रमी [2] और पश्चात् श्री कामताप्रसाद जैन [3] ने इस कृति के महत्व पर प्रकाश डाला। डा० रामकुमार वर्मा ने भी अपने आलोचनात्मक इतिहास म इसका उल्लेख किया था। [4] इन विद्वानो ने [5] 'उदयवत मुनि इम भणे और कही विजयभद्र मुनि इम भणे पाठ मिलन मे रचयिता का नाम ही उदयवत या विजयभद्र रख दिया पर वास्तव मे ऐसा नही है। स्वर्गीय देसाई मोहनलाल [6] तथा श्री अगरचन्द नाहटा ने [7] इस भ्रम का परिहार कर दिया है। रास की स० १४३० की सबस प्राचीन प्रति बीकानेर बडे ज्ञान भण्डार मे सुरक्षित है जिसकी पुष्पिका म —इति श्री गौतम स्वामी रास श्री स्तम्भ तीर्थ विहारे श्री विनय प्रभोपाध्याये कृत, पाठ मिलता है। अत यह बहुत सम्भव है कि रास

१—साहित्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'गौतम रास' व उसके रचयिता पृष्ठ २-६।

२—हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास श्री नाथूराम प्रमी, पृष्ठ ३२। ३—वही।

४—हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा, द्वि० स० पृष्ठ १३५—१४२।

५—जैन सिद्धात भास्कर भाग २०, किरण २ म प्रकाशित—अपभ्रश साहित्य पर प्रो० रामकुमार जैन का लेख।

६—जन गुजर कवियो श्री मोहनलाल दसाई भाग १ पृष्ठ १५।

७—साहित्य बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, गौतमरास, श्री अगरचद नाहटा का लेख।

की रचना सं० १४१२ में गौतम स्वामी के कैवल्य ज्ञान प्राप्ति दिवस पर खंभात में श्री विजयप्रभ उपाध्याय ने की हो। कृति के पद्यों में भी अनेक पाठान्तर मिलते हैं तथा विभिन्न प्रतियों में पद्यों की संख्या भी भिन्न भिन्न है।

रासकार स्वयं प्रसिद्ध मुनि और कवि थे अतः १४३१ की कृति में उपलब्ध पाठ से ज्ञात होता है कि रासकार ने यह पाठ भी सं० १४१२ में ही गौतम स्वामी के कैवल्य महोत्सव पर्व पर लिखा हो। प्रति की प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में उपलब्ध है।

प्रस्तुत रास चरित मूलक है। प्रसिद्ध जैन तीर्थङ्कर महावीर के प्रथम गणधर गौतम की साधना का इसमें विस्तृत वर्णन है। रास घटना प्रधान और भाव प्रधान रासों का समन्वित रूप है। रास की कथा विचित्र घटनाओं से सजाई गई है, जिनके वर्णन में कवि का काव्य-कौशल परिलक्षित होता है।

गौतम का मूल नाम इन्द्रभूति था व गौतम उनका गोत्र। मगध प्रदेश में राजगृह के समीप गुब्बर गांव में उनका जन्म हुआ। उनके देह की ऊंचाई ७ हाथ था। इन्द्रभूति ५०० शिष्यों के प्रतिभाशाली एवं असाधारण विद्वान् गुरु थे। एक बार श्री महावीर स्वामी पावापुरी आये वहां उन्होंने समवसरण बनाया। हजारों स्त्री-पुरुषों व देवताओं को वहां जाते देख गौतम को अपने ज्ञान पर दंभ हुआ। वे ५०० शिष्यों सहित महावीर स्वामी से शास्त्रार्थ करने पहुंचे। महावीर ने उनका समाधान वेदों के प्रमाणों से किया। इन्द्रभूति ने महावीर से दीक्षा ग्रहण करली। ५०० शिष्य भी दीक्षित हुए और गौतम प्रथम गणधर कहलाये। अनुक्रम से ११ प्रधान पंडितों ने महावीर का शिष्यत्व स्वीकार किया। गौतम के अतिरिक्त जो भी महावीर से दीक्षित होता उसे कैवल्य ज्ञान प्राप्त हो जाता था। आदिनाथ के मन्दिरों एवं जिनालयों में वंदकर गौतम ने स्वल्प से एक पात्र में अक्षुण्ण रखकर सब तापसों को खांड घी व खीर खिलाई अतः वे ५०० तापस ही केवली हो गये। ५०० को महावीर का समवसरण देखते ही कैवल्य हो गया। इस तरह १५०३ तपस्वी कैवली हो गये पर गौतम को कैवल्य ज्ञान नहीं मिल सका क्योंकि महावीर के प्रति उनके मन में राग था। ७२ वर्ष की आयु में गौतम को निकटवर्ती ग्राम में उपदेशार्थ भेजकर महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया। गौतम को बड़ा धक्का पहुंचा उन्होंने सोचा महावीर ने अन्त समय में मुझे यह सोचकर कि गौतम बालक की तरह पल्ला पकड़ कर मुझसे कैवल्य मांगेगा दूर भेज दिया। मुझे भुलावे में डाल दिया सच्चा स्नेह नहीं किया। विलाप करते हुए उनके मन में यह बात आई कि महावीर तो वीतरागी थे, उनके साथ राग भाव कैसा? और ज्ञान

प्राप्ति के साथ ही वे कैवली बन गये। गौतम ५० वर्ष तक गृहस्थ रहे। ३० वर्ष तक सयमी रहे और १२ वर्ष तक कैवली रूप मे विचरे और ९२ वर्ष की आयु में मोक्षगामी हुए। कथा का सार यही है।

सम्पूर्ण काव्य मे कवि ने घटनाओ का चयन, तथा गौतम का चित्रण उपमाओ और उत्प्रेक्षाओ के उत्कृष्ट वर्णन के साथ किया है। प्रकृति वर्णन में भी कवि की सानी नही है। पूरा काव्य चरित मूलक आख्यान है। जिसकी कथा वस्तु धार्मिक है। तथा गौतम व महावीर की साधना से सम्बद्ध है।

गौतम रास एक ऐसा खण्ड काव्य है, जिसका उद्देश्य जीवन को आध्यात्मिक और साधना की ओर उन्मुख करना है। विहार के ही नहीं, समस्त मानव समाज की प्रवृत्तियो से निवृत कर सद्प्रवृत्तियो की ओर आह्वाहन ही प्रस्तुत रास का सन्देश है। एतदर्थ रास के प्रमुख–प्रमुख काव्यात्मक स्थलो का निरीक्षण किया जा सकता है।

कवि ने समवसरण की रचना में पर्याप्त उत्साह दिखाया है। इन्द्रभूति की स्पर्धा और पाच सौ शिष्यो सहित समवसरण मे आकर महावीर से साक्षात्कार करना और महावीर का वेद उक्तियो से उसे समझाना गौतम का दीक्षित होना, प्रथम गणधर बनना तथा गौतम द्वारा सूर्य किरण पर चढकर २४ तीर्थङ्करो के मंदिर मे जाना और पुन अनेक तपस्वियो को कवली बनाना आदि अनेक स्थल गेयता और काव्यमयता के उत्कृष्ट प्रमाण हैं —

जोजन भूमि समोसरणु पेखइ प्रथमारंभि
दसदिसि देखइ विबुधवधू आवति सरंभि
मणिमय तोरण दंड धज कउसी से नववाट
वयर विवर्जित जतुगण प्रतिहारिज आठ
सुरनर किन्नर असुरवर इंद्र इंद्राणिराय
चितिय चुक्कि चीतउ ए सेवता प्रभुपाय
सहस किरण जिम वीर जिणु पेखवि रूव विसालु
एहु असभव भुसभवए साचउ ए इंदियालु
तउ बोलावइ त्रिजग गुरो इंद्र भुइ नामेण
श्री मुख ससा सामि सवि फेडइ वदू पएण
मानु मेल्हि मन्ठलि करे भगतिहि नामइ सीसु
पचव सजम भुणिव करे अगनि भुइ आवेइ
नाम लेइ आभासि करे त पुण प्रति बोधेई

गज्जइ घणि अभिमानि सारंगजा मनि चातक
ता मुनि चढ़िउ वणि आनंदवि दिनकर किरण
कंचन मणि निप्फन्न रयणमय धयवड सहिउ
वसइ परमाणंदि जिणहर भरहसर विहरइ ए
निय निय काय प्रमाणि चउ दिसि संठिय जिणह बिंब
पणमवि मन उल्लासि गोयम गणहर तहिं वसिउ (२६-२७)

रास का प्रकृति वर्णन कवि के काव्य कौशल का ज्वलन्त प्रमाण है। कवि ने गौतम स्वामी की साधना और महानता का वर्णन प्रकृति के उपादानों द्वारा किया है। कवि ने श्री गौतम गणधर में महापुरुषों के सभी अनन्य गुणों का समावेश किया है। उनका व्यक्तित्व कवि ने बड़ी ही कुशलता से तथा बड़े विचित्र उपादानों से निर्मित किया है। उपमा और उत्प्रेक्षाएं सरस हैं। वर्णन का क्रम सुन्दर है तथा विविध उदाहरणों से पूर्ण है —

जिम सहकारिहिं कोयल टहुकइ
जिम कुसुमह वनि परिमल बहकइ जिम चन्दनि सोगंध निधि
जिम गंगाजलु लहरिहिं लहकइ
जिम कणयाचलु तेजिहिं झलकइ तिम गोयम सौभागनिधि
जिम मानस सरि निवसइ हंसा
जिम सुरवर सिरि कणयवतंसा जिम महुयर राजीव वनि
जिम रयणायर रयणिहिं विलसइ,
जिम अंबरि तारागणु विकसइ तिम गोयम गुण केलिवनि
पूनिम निसि जिम ससिहर सोहइ
सुरतरु महिमा जिम जगु मोहइ पुरब दिसि जिम सहसकरो
पंचाननु जिम गिरिवरि राजइ
नरवइ घरि जिम मयगल गाजइ तिम जिन सासनि मुनिपवरो
जिम सुरतरुवरि सोहइ साखा
जिम उत्तमि मुखि मधुरी भाषा जिम वनि केतकि महमहए
जिम भूमिपति भुयबलि चमकइ
जिम जिम मंदिरि घंटा रणकइ गोयम लब्धिहिं गहगहए (२८-४१)

साधक की एक करुण स्थिति का चित्रण बड़ा मार्मिक है जब महावीर निर्वाण को प्राप्त होते हैं और गौतम को समाज के गांव में प्रतिबोध को प्रेषित कर देते हैं। गौतम मानों जान कर बालकों की तरह फूट पड़ते हैं और इसी

विलाप मे उन्हें महावीर के वीतरागी होने का ज्ञान होता है तथा उनका जितना राग महावीर के साथ था, वह सब छूट जाता है और केवली बन जाते हैं। उनके मन के अन्तर्द्वन्द्व को कवि चित्रण करना चाहता है। महावीर के जाने के बाद गौतम के मन मे उठने वाले सकल्प विकल्प—"मुझे दूर भेज दिया, लोक-व्यवहार का पालन नहीं किया।' हे प्रभो! आपने सोचा होगा गौतम बालक की तरह पीछा पकड कर मुझसे केवल्य मागेगा। आपने मुझे भुलावे मे डाल दिया, सच्चा स्नेह प्रकट नहीं किया' आदि—बडी ही मार्मिकता प्रस्तुत करते हैं। कारुण्य हृदय गौतम विलाप करते हैं —

प्रयोउ ए गोयमु सामि देवसमी प्रतिबोध किए
आपणि ए त्रिशला देवि नन्दण पहुत परम पए
वलतउ ए देव आकासि पेखवि जाणिय जिम समउ
तउ मुनि ए मनिहि विषादु नादभेद जिम ऊपनउ
तउ मुनि ए सामिय देखि, आप कन्हा हउ टालिउ ए
जाणतई ए तिहूयण नाहि लोक विवहार न पालियउ
अति भउ ए कोधउ सामि जाणिउ केवलु मागिसिए
चीतविउ ए बालक जेम अहवा केडइ लागिसिए
हउ किमवीर जिणिन्द भगतिहि भोलउ भोलविउ
आपणउ एउ वियउ नेहु नाहि न सपए सूचविउ (३३-३५)

और कृति इस तरह निर्वेदात होकर निखर उठी है। भाषा की दृष्टि से कृति की भाषा पर अपभ्रश का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है इसका कारण यह है कि सम्भवत यह कृति १४वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे लिखी गई है। क्योकि जिस समय यह रास लिखा गया, उस समय कवि बहुत वृद्ध होगये थे। अत बहुत सम्भव है कि इसका लेखन काल १४वी शताब्दी रहा हो।

रचना गेय है। रासकर्त्ता ने रास के सम्बन्ध में अपनी ओर से कुछ भी नही कहा। रचना को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रास गीति तत्व प्रधान है तथा चरितमूलक खण्ड काव्य है।

प्रति के अन्त मे पुष्पिका इस प्रकार है स० १४३० कार्तिक सुदि प्रतिपद्याया देव॥ स्तवन पुस्तक॥ (बडा ज्ञान भण्डार, बीकानेर की प्रति)

इस प्रकार १५वी शताब्दी की उपलब्ध प्रमुख रचनाओ मे श्री विनयप्रभ उपाध्याय विरचित गौतम रास का स्थान भी महत्वपूर्ण है।

कलिकाल रास [1]

हीरानन्द सूरि १५वीं शताब्दी के प्रमुख कवियों में से एक हैं, जिनकी इस शताब्दी में कई महत्वपूर्ण कृतियाँ मिलती हैं। जिनमें वस्तुपाल तेजपाल रास (सं० १४८४) दशार्णभद्र रास, जम्बू स्वामी विवाहला सं० १४९५, विद्याविलास पवाड़ा, स्थूलिभद्र बारहमासा आदि प्रमुख हैं जिन पर यथावसर प्रकाश डाला जायगा। कलिकाल रास भी अलग ढंग की रचना है। कलिकाल रास कलियुग की परिस्थितियों और बुराइयों पर प्रकाश डालता है। इस शताब्दी में रास संज्ञक रचनाओं में यह अलग प्रकार की पहली रचना है। कलियुग की वास्त-स्थिति का वर्णन महाभारत में मिल जाता है। हिन्दी में बारहठ कवि का कलि चरित्र सं० १६३८ सर्वप्रथम मिलता है। सं० १७०० में गंगा चन्द्रकृत कलिचरित्र और सं० १८९५ में रसिक गोविन्द कृत कलियुग रासो में आदि ग्रन्थ मिलते हैं।[2] परन्तु प्रस्तुत रास बारहठ के कलिचरित्र से भी २०० वर्ष पुरानी रचना है। इसकी प्रति जैसलमेर के जैन भण्डार में है तथा प्रतिलिपि अभय जैन ग्रन्थालय में उपलब्ध है। राजस्थान विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के एक गुटके में भी इसकी प्रारम्भिक २८ गाथाएँ मिली हैं। रचना प्रकाशित है।

श्री हीरानन्द सूरि की यह रचना १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की है। जिसमें इनकी भाषा सरल राजस्थानी या प्राचीन हिन्दी है। कवि ने वर्णन में यथार्थ का सहारा लिया है तथा कलियुग के कटु और मधुर अनुभवों का भविष्य द्रष्टा के रूप में स्पष्ट करने में बड़ा सुन्दर रहा है। १५वीं शताब्दी में मुसलमानी राज्य में हुए अत्याचार कलियुग के ही प्रभाव बताये गए हैं[3]। प्रस्तुत रास लघु-काव्य है, जिसमें कवि ने जीवन के हर पहलू पर कलि का प्रभाव दिखाया है। पृथ्वी की स्थिति, राजा, माता, पिता, बन्धु, इष्ट, साधु, गुरु, नाथ, ब्राह्मण, ज्ञान तथा मुनिवर आदि सबकी परिवर्तित स्थिति पर प्रकाश

१—हिन्दी अनुशीलन वर्ष १०, अंक १, सं० १९५७ में श्री अगरचन्द नाहटा का 'कलिकाल रास' शीर्षक लेख पृ० ५८–५९।

२—वही।

डाता है। इस तरह की कलिकाल सम्बन्धी रचनाएं परवर्ती राजस्थानी कवियों की अनेक मिलती हैं।

कवि की यह रचना भास, वस्तु ठवणि, ठउणु आदि नायका के अन्तर्गत विभाजित करके लिखी गई है। कवि ने वीर जिनेन्द्र तथा सरस्वती का स्मरण कर रास प्रारम्भ किया है।

प्रारम्भ में ही कवि कलियुग की सामान्य प्रवृत्तियों का उल्लेख करता है तथा कलियुग के प्रभाव कहता है। वर्णन सरल वाक्य छोटे भावपूर्ण तथा भाषा अत्यन्त सरल है —

वीर जिणेसर पामियनाणु कहिउ कलियुग तणउ प्रमाणु
समइ ममइ बहुगुणनी हाणि ईणिवचनि सहूइ हिव जाणि
पृथ्वीय वरसइ थोडामेह थोडा आयु घणा सदेह
राजित रूपि हुआ भूपाल अन्यायी नइ अति विकराल
नकरइ लाक तणा मुरसार, लाक हुआ हिव सविनिरधार
अति निमधन दीसइ दातार कृपणह घरि लिखिमा अवतार
पुण्यवत हुई क्षयउ ततकाल पापी नर जीवइ चिरकाल
औषध म कूम अप्रमाण, खारिय विद्या नहिय सुजाण
अ सरग गयउ नह विसान, विरला दीसइ अव सुगान
दव सवि हुआ निप्रभाव के न दीसइ सरल सुभाव
काइ न पालइ बाल्या बोल सहूइ नासत हुउ निटोल
काई न मैसइ ध्रुणि गमार सहूइ हुआ अबल अधीर

विनय विवेक, लोक लाज सब दूर हो गई। साहस तत्व संसार म नही रहा। कलियुग के प्रभाव स दान और दानशील दोना मिट गए हैं। परमार्थ का विनाश और पाखण्ड का प्रचार बढ़ रहा है। क्षमा हीन होगई और कटु वाणी का क्रम बढ़ गया है —

लीला लाज गई मतिइर परिनदा छइ एकइ पूरि
विनय विवेक गया अचार दयातणी कोइ करइ सारि
साहस सत्व नहा ससार रगरली नही हिया मभार

दान दाविन दान दाविन गया परदेसि
कृपाल पउ हुउ धाणु छतइ द्रव्य खाइन पोइ
ज वचइ घट आप्पणउ किसु दानते कृपण दोइ

घरि मन रचावणा मान्य थान करति
घरि आवतइ आहणइ नामत नामय जति (वस्तु ११)

चारा वर्णों का स्थिति भी कवि न बडा न्याय किया है। पसे क प्रमा स्वार्थी मित्रा तथा किए हुए उपकार को न मानने वालो की स्थिति भी उल्लेखनीय है —

बभग कुल आचरहिं हीण मित्रीयगाव धमवितिं लाग
मुग खाक मनि नवि धरइग
पाणि तणइ मिसि ढाहइ सहूम वणिड साहिम हुआ वहूम
निरन्य कर्म समाचरइग

आप सकारथि महूइ काई परवनू उर निरवउ काई
काज विणसमा मति घणाए
धार अरथि मइ बहुलहू माहर धरथ फिसावइ छेहु
अरथ मित्र समुन्नमणाए
काइ न जाणइ इन्याचाया कृतघन नाव सव हिव हूआ (वस्तु १४)

कुछ अद्भुत तथ्यो के द्वारा भी कवि ने काव्य-कौशल एव कलियुग प्रभावो का परिचय दिया है। काव्य का रस नाना मति का निष्ठुर होना धर्ममार्गी म हुए अनेक प्रचलित मत मतान्तरो का वर्णन तथा सत्य मे दूर कूटवाणी वालो का सम्मान आदि चित्र कवि न बडे ही मोहक शैली मे प्रस्तुत किय हैं —

मेर समान किया उपगार सरसव समवडि गणइ गमार
अवगुण पण न वीसरइ ए
घरि घरि जोइ छिद्र अपार नवि जोई आपण आचार
आम्हि कुरा मारगि अनुसरउ ए
इ गरि अगरि उजलउ कहई पा ढुण्दि त गणइ तेय
आपण पु मावइ घणउ ए
न्याय मान्य न्याय अनरउ विन्मारीय महि कहिइ अनरउ
ज गुण हुई त आदर ए

धरम मारग धरम मारग हुआ बहु भउ
ज पुछि जई ■ कहिए धर्म मागु अम्हि दहउ मचउ

मापि प्रशासानगि सहूम भ्रंवर धम्म मुहि कहउ कचउ
अधउ अफा बाहुडी आविय वेडि लग्ग
जाग नयरह मगी कउण दिखाउइ मग्ग
साच कोई माए कोई बोलति
सावइ राचइ कोइ नवि कूड कपट सहूइ पतीजइ
यथा अभयकुमार जिम धरम दभि वधीय लीजइ
कूड वचन बानड जिवे माया रचिह अपार

पडइ वैरिगिहि पडइ वैरिगिहि गयउ वैसास
द्रोह मित्र कलत्र सुत माइबाप गुरु विसइ लेतइ
देव द्रव्य घरि वावरइ, लोभ अध नयणे न देखइ
माय बाप कुल गुरु तणो मानइ नवि आसक
सरम भार विहि चालता हेलहिं चडइ कलंक
दोहिलि घणीय सहतडा उपति किसी न होइ
ढूमर पेट हूआ घणउ तिरिण दुखिउ सह कोइ (वस्तु ३७–३८)

कवि के वाक्य छोटे, शैली उपदेशात्मक और रुचिकर है। प्रस्तुत काव्य जन-काव्य है अत कलियुग सम्बन्धी समस्त स्थितिया और मर्यादाओ का लोप कवि ने बताया है। व्यवहारिक जीवन में कवि की वाणी एकदम यथार्थ है। मुनियों के लिए कवि ने एक अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र खींचा है। भाषा की सरलता आलकारिता तथा कथा-तत्व की भाति जनकवि पर विजय पाने वाला प्रस्तुत रास है जिसको पढ़ने मे बडा आनन्द मिलता है। साहित्य का उपयोग यही है कि वह व्यवहारिक जीवन के लिए निरन्तर उपादेय व हितकारक एव मार्ग प्रदर्शन करने वाला हो। कवि ने मुनियो तथा श्रावको का कलियुगी कायाकल्प बताया है। उद्धरण उल्लेखनीय है —

मुणिवर मछरि आगला ए पगि पगि करइ विरोध
एकइ मारगि अतरउ ए, आणइ अतिहि अबोध
काहि लोहि महि मोट्या ए मारगि नवि चालति
आप प्रशसा तप करइ ए, परनिंदा बोलति
लोक तणा मन रजिव ए वयणि धरइ वय रागु
साचा धरम ह उपरिई ए, नवि दीसइ अनुराग
पचविपय जीता नहीं ए, जिणि हिच्यारि कपाय
तेह तेहरइ सजमि करीए, जीवन तणउ उपाय

ग मन रचायणा मार्गय दान करति
धरि आवन आगार नामन भामार जति (वस्तु ११)

चारों वर्णों की स्थिति भी कवि ने उदा स्वनाय लिया है। वैश्य के प्रमा स्वार्थी मित्रों तथा किए हुए उपकार को न मानने वालों की स्थिति भी दर्शनीय है —

बमण कुल आचरहि हीण विषयातार सम्बद्धि लागु
मूग आह मति नहि परत्त
पालि तणइ मिमि द्राण मट्ठम बणिइ माण्ति हुया बहुम
निरन्तर धर्म मनाचरइण

मार मनारथि महइ को परवड़ दूर विरत काइ
काज निगुमण मति पणाए
मार मरथि मइ छुन आर मरथ निवारइ छुडु
मरथ मित्र समुहामणाए
काइ न जाणइ रत्नाकरा, इतजन नाइ मत निव हुया (वस्तु १८)

कुछ अद्भुत तथ्यों के द्वारा भी कवि ने काव्य-कौशल एवं कल्पियुगी प्रभावों का परिचय दिया है। वान्य का रस जाना मति का निष्ठुर होना धर्ममार्गों में हुए अनेक प्रचलित मत मतान्तरों का वर्णन तथा मत्य में दूर कुटवाणी वालों का सम्मान आदि चित्र कवि ने वस्तु मालिक गेया में प्रस्तुत किए हैं —

म ममान दिना टगार सरथव मनवहि गउइ गमार
अक्खण एक न आगरइ ए
पहि पणि आ छिद्रे अगार नवि आ आण्ड आधार
अम्हि कुर्ज नारहि कलुदर ए
न नरि करि दसइ मैम पा हुरिहि ए गउइ ताई
मानउ पु मानइ घाउउ ए
दबा वाहन गेह अनरथ विश्वारा नहि कहिउ अनरउ
ज कुर्ज कुर त आनर ए

धरम नारग अरल मारग हुया बहु मत
ज पुढि जई त कहिए धर्म मागु अहि दइ अवउ

आपि प्रसासानगि सहूम्र अंवर धम्म मुहि वहउ वचउ
अधउ अफा वाटुडो आविय वंडि लग्ग
जाण नयरह भणी ववरग न्यिाउइ मग्ग
साच कोई भाए कोई बोरति
साचइ रावइ कोइ नवि कूड कपट सहूइ पतीजइ
वैशा अभयकुमार जिम धरम दमि वधीय लीजइ
कूउ वचन वानइ जिके माया रचिह अगार

वडइ वेगिहि वडइ वेगिहि गयउ वैसास
द्रोह मित्र कलत्र सुत माइबाप गुरु किसइ लेखइ
देव द्रव्य धरि वावरइ, लोभ अध नयणे न देखइ
माय बाप कुल गुरु तणी मानइ नवि आसक
सरल भाव विहि बालता हेर्माहि वडइ कलक
दोहिलि धणीय सहतडा उपति किसी न होइ
दूभर पेट हूया घणउ सिणि दुखिउ सह कोइ (वस्तु ३७–३८)

कवि के वाक्य छोटे शैली उपदेशात्मक और रुचिकर है। प्रस्तुत काव्य जन-काव्य है अत कलियुग सम्बन्धी समस्त स्थितियां और मर्यादाओं का लोप कवि ने बताया है। व्यवहारिक जीवन मे कवि की वाणी एकदम यथार्थ है। मुनियो के लिए कवि ने एक अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र खीचा है। भाषा की सरलता आलकारिता तथा कथा तत्व की भांति जनरुचि पर विजय पाने वाला प्रस्तुत रास है जिसको पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है। साहित्य का उपयोग यही है कि वह व्यवहारिक जीवन के लिए निरतर उपादेय व हितकारक एव मार्ग प्रदर्शन करने वाला हो। कवि ने मुनियो तथा श्रावकों का कलियुगी कायाकल्प बताया है। उद्धरण उल्लेखनीय है —

मुणिवर मछरि आगला ए पगि पगि करइ विरोध
एकइ मारगि अतरउ ए आणइ अतिहि प्रबोध
कोहि लाहि मदि मोहिया ए मारगि नवि चालति
आप प्रसासा तप करइ ए, परनिन्दा बोलति
लोक तणा मन रंजिवा ए वयणि धरइ वय राग
साचा धरम ह उपरिइ ए नवि दीसइ अनुराग
पचविषय जीता नहीं ए, जिणि हियारि कषाय
तेह तेहरइ सजमि करीए जीवन तणउ उपाय

कुन्नि भाव थावक हुय ए, हीयडइ अति निरभाव
समकित धर मुनि नहइ वहइ ए, घनावइ बहुभाव
परिकरगण महिषी करइ ए कुनिगज करइ अपार
हरणग स्वीय वनिनमइ ए ण्वढउ मनि अहंकार
गुरु उपन्न गुणइ मन्न ए नीयन्इ नवि भोजंति
पायर पाणिय भरि वमइ ए, भीनरि नवि भीजंति (ठवणि २६)

वस्तुत पूरा रास कविकाल का स्वरूप चित्रण करता चला गया है। छन्द अलंकार और रस की दृष्टि से रचना साधारण है परंतु वस्तु, शिल्प भाषा, और वर्ण्य विषय की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। रचना की भाषा में अपभ्रंश के प्रयोग कुछ स्थल पर ही मिलेंगे। ठेठ राजस्थानी तथा गुजराती के शब्द ही मिलते हैं। पर पूरी रचना को सरल हिन्दी की रचना कहा जा सकता है।

कवि ने मर्यादा उल्लंघन के चित्र को अनेक सूक्तियों उदाहरणों दृष्टान्तों और अन्तर्कथाओं द्वारा स्पष्ट किया है। यह स्थल रास का बहुत ही महत्वपूर्ण अंश है —

अति निरनावन रूप नप मुनि थाणि कठोर
च्यारिइ वर्ण दस्या कुमाण घर माहि जि चार
मारइ बाप बधव कुटुंब सू करइ विरोध
दीसइ घरि घरि नव नवाण कारणि विनु क्रोध

लीरीय धुन गुरु तणीय रीति मू की मरयाद
मीय शीयता करइ राय मांडइ हठवाद
नीच मात्र उत्तम तणाण अवतार मुणीजइ
माघ मूच जे नवि धरइ त कहिइ प्रमाण
जे धण माया वैश्वानरथण तीर्थ करइ वखाण
रगिण परिनेता धन्न बात छइ तिन्हिविमाने
एहे भराणि जाणीइ ए आयउ कलिकाने (३६–४३ पृष्ठ ५८–५९)

मूछिम नाचन चम्म मण मन साचन जोउ
अंतरग अरि निरजाण ए भव कसमल धाव
दान सील तप भावनाइ च्यारह जिन भावइ
सहूइ निमगन हाइ धर्म मन सूधी पावइ
इमुइ मुणी मन सुधि राइ था समकित पावउ

भगइ हाराणन्द भवीय नाय भव भ्रजूभ्रानउ (४४–४६)

वस्तुत रास की वस्तु से ही स्पष्ट हो जाता है कि १५वीं शताब्दी तक आते आते रास की कथा–वस्तु सीमित नही रहा तथा उसमे विविध विषयो का भी विवेचन होने लगा। जैसा कि पूर्व पृष्ठो मे अन्य रासो मे विविध विषय वस्तु रासो मे वर्णित हुई है उसी भांति प्रस्तुत रास मे भी कवि ने अपनी स्वेच्छा मे कलियुग का सांगोपांग वर्णन किया है जो इस पैमाने पर अन्यत्र दुलभ है। साथ ही कवि ने रास लिखने के अन्य उद्देश्यो को भी स्पष्ट किया है —

चउह छीयासीय वरसि एहकलिकारह रासो
तोणिह रचीउ भवीय लाय कजि उपदेश निवासो
भणइ गुणइ जे सुणइ भवि मेनइ नर नारि
ते मन वाछित सुख लहइ ए जाइ भवपारे

इस प्रकार १५वी शताब्दी की रास संज्ञक कृतियो मे भाषा और विषय की दृष्टि से 'कलिकाल रास' का महत्वपूर्ण स्थान है।

सोलहकारण रास

१५वीं शताब्दी की रास रचनाओं में एक उल्लेखनीय रास सोलह कारण रास है जिसके रचयिता सकलकीर्ति हैं। यह रचना दिगम्बर भण्डार जयपुर की है। कृति आमेर के भण्डार जयपुर (श्री दिगम्बर अतिशय क्षेत्र कमेटी जयपुर के भण्डार) में सुरक्षित है। प्रस्तुत रचना अप्रकाशित है तथा गुटका नं० २६३।५४ के पत्र २४२-२४३ पर लिखी है। प्रति का लेखन काल सम्भवतः १५वीं शताब्दी के आसपास है। सकलकीर्ति अपने समय के दिगम्बर कवियों में प्रमुख कवि हुए हैं जिन्होंने हानिका रास भी लिखा है। प्रसिद्ध दिगम्बर कवि ब्रह्मजिनदास के ये समकालीन थे।

प्रस्तुत रास एक आख्यान-सा खण्ड काव्य है जिसमें कवि ने प्रारम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् साधना के लिए तप और तप के लिए १६ कारणों का विधान एक श्रेष्ठि कन्या प्रियवता से किया है। प्रियवता का परिचय कवि ने एक दुर्भाग्यशालिनी गतधर्मा और षट्रोगों युक्त सभी कुरूपिणी के रूप में दिया है जो पूर्व भव में किये अपराध के कारण इस गति को प्राप्त हुई थी।

> जबू दीवह भरत खेत मागध देसमा
> राजगृह तेह नगर हेम प्रभराज धनमा
> विजया सुन्दरि कनकनाम पुरोहित महासरमा
> प्रियधर्माता सु नारि पुत्री गत धरमा
> बखान भैरवि राग सहित छंद रूपविहूणा

कवि ने पूर्व भव व कर्म सिद्धान्त का प्रचार कथा के द्वारा किया है तथा सोलह कारणों में जो साधना की सफलता और मनुष्यों को निर्वाण की प्राप्ति कराते हैं प्रेम करना चाहिये यही सन्देश दिया है। कथा की नायिका एक बार पूर्व भव में आहार ग्रहण करने के लिये आये मुनियों पर थूक देती है और उसी पाप से वह इस जन्म में भयंकर रोगों से ग्रसित होकर कुरूपिणी बन जाती है। इस प्रकार से चारण मुनि उस पूर्व भव में किए पाप और इस भव में इसका उद्धार करने के १६ कारणों का निर्देश करते हैं —

राजा महीपाल वेगवतर छइ रागी
विसालमी पुत्रि नाम विवव विहूणी
आहार लेवा मुनि इक आया तत्थामा
आहार लेवा जाम चलिउ निरमल गुण धामा
गउखि बइठी तासु उवरि थूकिउ मन अ घी
राजा छेह ललूही करा तुस थूसठ गीना
निन्द गरहा आपु कर मुनिकन्ह लजाइ
कुवरि ते तसु लियउ अनसरण आहारी

और इस प्रकार भिक्षार्थ आये युगल चारण मुनि उसे १६ कारणा म सम्पन्न व्रत करन का विधान समझाते हैं। कथा मे धार्मिक तत्व होते हुए भी इस छोटी सी कृति म कथा-तत्व होने म पाठक या श्रोता की रुचि बनी रहती है। रास रचना का उद्देश्य उपदेश प्रधान है कवि जन-साधारण मे किस प्रकार पूर्व भव मे किए दुष्कृत्यो से इस भव मे फल प्राप्ति का सिखावन देकर सयम व उपासना के १६ कारणो को कथा सूत्र मे बाधता है।

इन कुली तेरो जनमु हुवा पूरव विदेह
सोलह कारण करत करो तीर्थंकर थाइ
वचन साभना पावनमा कहि सामि विचाऐ
भाद्व मासि चैत्र मासि कहिए तिहुवारा
एकाति करि साम एक सायलु पानीज्जइ,
परिहरि घरि व्यापार सबै मन सुद्धि करीजइ
निर्मल समकित धरि पानियइ सकातवि काज्जइ
दसन नान चरित्र तपा तहि विनउ करीज्जइ
सील व्रतु निंह पालिए सब दूषण टार
नान निरंतर सार पढउ बहु भ गि विसारउ
भव भव भोग सरीर महि वर रागु धरीज्जइ,
चारित्तान तप चारि भेद सकति पानीज्जइ
मुनिवर साधु समाधि करो उपगार करज्जइ
दसविध वैयावच्च करो नेमे पालिज्जइ
अरहन्त देव भक्ति करउ सव बीजा टालउ
आचारयु गुरु भवि करो भगति प्रतिपाल
सास्त्र घना मुनि जा पढहि तिन भगति करीजइ
प्रवचन जानी भगतिकरो निश्चउ मानीजइ

बादर प्रवचन पालियइ नित निश्चउ प्राणी
सोलह भावन भाविय ए गुरु पास वखाणी
दिन दिन प्रतिमा पूजियइ निसि जाप जपीजइ
श्रावह श्रवण उजमनउ मान्हि दानाजइ
स्तवन विवेचन द्वार ज्ञानभिन्तु निज्जर
मुनिवर अजिय सयल संघ सबपूजर राजर
चारण गुरु पय नमस्करी व्रत लिय घर ताना।
अन्तकाल सयाम करी लिउ सरणवि साधउ

इन सोलह कारणों में नायिका प्रियदर्शना भविष्य में श्रेष्ठ योनि को प्राप्त हुई। अन्त में कवि भरत वाक्य के रूप में सभी व्यक्तियों के लिए मंगल कामना करता है कि इन सोलह कारणों को सयमा धनकर जो पाले, वह उस असाधारण पद प्राप्त होगा —

एक चित्तु जो व्रतु करइ नर अहवा नारी
तीर्थंकर पद सानन्द जो समकित धारी
सकल कीर्ति मुनिरामु कियउ ए सोलह कारण
जे सभलहि तिन्ह सुह कारण

वस्तुतः छन्द अलंकार और रस की दृष्टि से कृति का महत्व सामान्य है परन्तु भाषा की दृष्टि से तथा कथा वर्णन या वस्तु विन्यास की दृष्टि से सोलह कारण रास उल्लेखनीय है। बहुधा दिगम्बर कवियों की रचनाएं सदा ब्रज भाषा में ही अधिक मिलती हैं क्योंकि श्वेताम्बर जैन मुनियों व कवियों ने राजस्थानी और गुजराती में अधिक लिखा, परन्तु दिगम्बर कवियों ने स्वभाषा में ही सरल साहित्य लिखा है। अतः भाषा की दृष्टि से प्रस्तुत रास कृति का महत्व अवश्य स्पष्ट है। यों कुल मिलाकर कृति साधारण है तथा काव्य की दृष्टि से बहुत प्रौढ़ नहीं है। ब्रह्म जिनदास की कुछ और कृतियों का विवेचन करने पर उनके काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ जानी जा सकती हैं। प्रस्तुत रास एक वर्णनात्मक कथा काव्य है जिसका मूल उद्देश्य धर्म प्रचार मात्र है।

ग्रसन जसा, पसु वस्त विविध विधि, सब मनि महँ रह जैसे।
सरग, नरक, चर अचर, लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे ॥३॥
विटप मध्य पुतरिका, सूत महँ कंचुकि बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाये ॥४॥
रघुपति भक्ति-वारि छालित चित, बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद बिलास जग, बूझत बूझत बूझै ॥५॥

भावार्थ—यदि यह मन अपने विकारों को छोड़ दे तो फिर भेद भाव जनित दुःख भ्रम और भारी शोक वश हो ? मन के निश्चल हो जाने पर ये सारे द्वन्द्व भी छूट जायेंगे ॥१॥

शत्रु मित्र और उदासीन इन तीनों को मन ने ही तो हठपूर्वक कल्पना कर रखी है (वैसे, वास्तव में न कोई शत्रु है न मित्र और न उदासीन) शत्रु को साँप के समान त्याग देना चाहिए मित्र को सुवर्ण की तरह ग्रहण करना चाहिए और उदासीन की तिनके की तरह, उपेक्षा कर देनी चाहिए उसकी ओर कुछ ध्यान ही न देना चाहिए ये सब मन की ही कल्पनाएँ हैं ॥२॥

जैसे मणि में भोजन वस्त्र पशु और अनेक प्रकार की वस्तुएं समाई रहती हैं, वैसे ही मन में स्वर्ग नरक चर अचर और बहुत से लोक सन्निहित हैं। भाव यह है, कि जब किसी के हाथ में मणि हो, तो वह उस बदले चाहे जो खरीद सकता है उसी प्रकार इस मनरूपी मणि के प्रभाव से यह जीव स्वर्ग नरक तथा अनेक लोकों में जा सकता है। यदि *सुकर्म करेगा तो स्वर्गादि का लाभ होगा और कुकर्मों की ओर प्रवृत्ति करेगा तो नरक* वास तो है ही। अतएव सिद्ध हुआ कि यावत पदार्थों का भाण्डार यह मन ही है ॥३॥

जैसे पेड़ अर्थात काठ के बीच में पुतली और सूत में वस्त्र बिना बनाये ही पहले से ही विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार मन में भी समय समय पर अनेक शरीर जो उसमें लीन रहते हैं प्रकट हो जाते हैं। सारांश यह कि मन की वासनाएं जन्मादि के लिए उत्तरदायी हैं। जैसी कामना होगी वैसा ही शरीर धारण करना पड़ेगा। मन के प्रभाव से मनुष्य देवता हो सकता है और मन के ही कारण खर, शूकर आदि भी ॥४॥

रघुनाथजी के भक्तिरूपी जल से जब चित्त धुलकर निर्मल हो जायेगा, अन्तःकरण से विषय प्रवृत्ति हट जायगी तब बिना किसी परिश्रम के ही सब कुछ (क्या सत और क्या असत) दृष्टिगोचर हो जायेगा *विवेक सुलभ हो जायगा*। किन्तु तुलसीदास कहते हैं कि चिदानन्द, अखण्ड आत्मानन्द समझते समझते ही समझ में आता है। क्रम-क्रम से ही चिदविलास प्राप्त होता है ॥५॥

शब्दार्थ—संसृति = संसार। मध्यस्थ = उदासीन न मित्र भाव न शत्रु भाव। बरिआई = ज़बरदस्ती। उपच्छनीय = उदासीन। पुतरिका = पुतली, मूर्ति। छालित = धोया हुआ स्वच्छ। चिद = (चित) चैतन्य।

विशेष—(१) द्वैत —राग और द्वेष —अनुकूल और प्रतिकूल संवेदन।

(२) सत्रु तमे —यहाँ क्रमालंकार है। जहाँ दो तीन या और भी अधिक वस्तुओं का जिस जिस क्रम से पहले वर्णन किया जाए उसी क्रम से उनका वर्णन अन्त तक निबाहा जाए वहाँ क्रमालंकार होता है—

क्रम सो कहि पहले कछू क्रम तें अथ मिलाय ।
यों हीं और निबाहिये, क्रम भुवन [illegible] कहाय ॥

यहाँ ये क्रम है—

१—शत्रु	२—मित्र	३—मध्यस्थ
१—त्यागन	२—गहन	३—उपेक्षणीय
१—अहि	२—हाटक	३—तन

(३) 'नाना तनु'—विविध योनियों के अतिरिक्त इसका यह भी अर्थ हो सकता है, कि मन स्थूल, सूक्ष्म, कारण महाकारण चारों शरीरों में किसी न किसी रूप में घुसा रहता है, वह पिंड नहीं छोड़ता ।

(४) बूझन-बूझत बूझे—पहले कर्मकाण्ड आदि साधना द्वारा शरीर शुद्ध किया जायगा, फिर योग द्वारा मन शुद्धि होगी तब कहीं परम ज्ञान का उदय होगा । अंत भक्ति का साम्राज्य स्थापित होगा ।

१२५

मैं केहि कहौ विपति अति भारी । श्रीरघुवीर धीर हितकारी ॥१॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥२॥
अति कठिन करहिं बरजोरा । मानहिं नहिं विनय निहोरा ॥३॥
तम, मोह लोभ अहँकारा । मद, क्रोध, बोध रिपु मारा ॥४॥
अति करहिं उपद्रव नाथा । मरदहिं मोहिं जानि अनाथा ॥५॥
मैं एक, अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥६॥
भागेहु नहिं नाथ उबारा । रघुनायक करहु सँभारा ॥७॥
कह तुलसिदास, सुनु रामा । लूटहिं तसकर तव धामा ॥८॥
चिंता यह मोहिं अपारा । अपजस नहिं होइ तुम्हारा ॥९॥

भावार्थ—तुम्हें छोड़कर हे रघुनाथजी ! और किस से अपनी दारुण विपत्ति सुनाने जाऊँ ? क्योंकि आप ही शरणागत का भला करने में धीर हैं ॥१॥

हे नाथ ! मेरे हृदय में तुम्हारा निवास-स्थान है । पर अब उसमें बहुत से चोर आकर बस गये हैं मेरे हृदय में जो तुम्हारा मंदिर है चोरों ने उसमें अपना अड्डा जमा लिया है । अब तुम कहाँ रहोगे ? ॥२॥

ये लोग बड़े ही निष्ठुर हैं, हमेशा ही जोर-जबरदस्ती करते रहते हैं । विनती निहोरा भी नहीं मानते । ऐसे पाषाण हृदयवाले हैं ॥३॥

अज्ञान मोह लोभ, अहंकार मद क्रोध और ज्ञान का शत्रु काम ये ही वे चोर हैं ॥४॥

हे नाथ ! ये सब बड़ा उधम मचा रहे हैं । मुझे अनाथ जानकर कुचल डालने पर उतारू हैं । यह समझ लिया है कि मेरा कोई धनी धोरी नहीं, सो अवसर पाकर जितना अधिक उनसे बनता है मुझे सताते रहते हैं ॥५॥

मैं हूँ एक, और ये उपद्रवी चोर बहुत-सारे हैं । कोई मेरी पुकार तक नहीं सुनता

(जिसे पुकारता हूँ, वही कानों में तेल डाल लेता है। कदाचित् डरता हो कि कहीं वे हमारा भी घर न लूट ले जायँ) ॥६॥

हे नाथ! यदि कहीं भागूँ तो भी इनसे बचना कठिन है, क्योंकि जहाँ-जहाँ जाऊँगा वहाँ ये भी पीछा करेंगे। अब हे रघुनाथजी! आप ही इनसे मेरी रक्षा कीजिए ॥७॥

तुलसीदास फिर भी कहता है कि इसमें मेरा कुछ भी नहीं जाता, आपका ही घर चोर लूट रहे हैं। भाव यह कि यदि यह हृदय भवन इन चोरों के अधिकार में आ जायेगा तो फिर आप कहाँ रहेंगे? ॥८॥

मुझे तो सिर्फ यही सोच है कि कहीं आपकी बदनामी न हो (कि राजाधिराज श्रीरघुनाथजी का घर चोरों ने लूट लिया! इसलिए शीघ्र ही इन दुष्टों को हटाकर अपने निज मन्दिर में निवास कीजिए। आशय यह है कि काम क्रोध लोभ मोह आदि शत्रुओं का नाश कर मेरे हृदय सदन में आकर आप निवास कीजिए) ॥९॥

शब्दार्थ—बरजोरा = जबरदस्ती हठ से। तम=मोह अज्ञान। बोधरिपु= ज्ञान का विनाशक। मारा=मार कामदेव। बटपारा=डाकू। सँभार=रक्षा।

विशेष—(१) तम मोह मारा—श्री शंकराचार्य ने कहा है—

काम क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः।
ज्ञान रत्नापहारायतस्माज्जाग्रत जाग्रत ॥'

(२) 'बोधरिपु'—रामेश्वर भट्टजी ने बोधरिपु का अर्थ अज्ञान लिखा है, किन्तु तम शब्द पहले ही आ गया है जिसका अर्थ अज्ञान है। यहाँ बोधरिपु मार का विशेषण है क्योंकि विशेषतः काम ही ज्ञान का नाशक है।

(३) लूटहिं—क्या-क्या लूट रहे हैं? वैराग्य, विवेक, ज्ञान, संतोष, समता करुणा श्रद्धा भक्ति आदि अनमोल रत्न।

(४) कबीर साहब इस दिनदहाड़े की लूट मार से चेता रहे हैं—

तोरी गठरी में लागे चोर बटोहिया का रे सोव।
पाँच-पचीस तीन हैं चोरवा यह सब कीन्हा सोर॥
जाग सवेरा बाट अनेरा फिर नहिं लागै जोर।
भव सागर इक नदी बहत है बिन उतरे जीव बोर॥
कहे कबीर सुनो भाई साधो जागत कीज भोर।

३५

मन मेरे मानहि सिख मेरी। जो निज भगति चहै हरि केरी ॥१॥
उर आनहि प्रभु-कृत हित जेते। सेवहि तजे अपनपौ चेते ॥२॥
दुख सुख अरु अपमान बड़ाई। सब सम लेखहि बिपति बिहाई ॥३॥
सुनु सठ काल ग्रसित यह देही। जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ॥४॥
तुलसिदास बिनु असि मति आये। मिलहिं न राम कपट लौं लाये ॥५॥

भावार्थ—हे मेरे मन! मेरा उपदेश मान ले। यदि तू अपने हृदय में भगवान की भक्ति चाहता है अर्थात् यदि तुझे भगवद्भक्ति प्राप्त कर पवित्र होना है तो मेरी सीख मानकर अपने सारे विकारों को छोड़ दे ॥१॥

पहले तो, प्रभु ने तेरे साथ जो-जो भलाई की है उसका हृदय में स्मरण कर, उसके लिए कृतज्ञता प्रकट कर। फिर अहंकार छोड़कर सावधानी से प्रभु की सेवा कर। भाव यह है कि यदि तू प्रमादवश सेवा भी करेगा, तो उसका कुछ फल न होगा सारा किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा ॥२॥

सुख दुख मान अपमान सबको एक-सा समझ। इसी समता से तेरी विपत्ति दूर होगी (राग द्वेष को छोड़ दे क्योंकि यही आनन्द का प्रतिरोधक है) ॥३॥

अरे दुष्ट! सुन यह शरीर तो काल का भेवा है न जाने कब मौत इसे अपने फन्दे में फँसा ले इसलिए इस (क्षणभंगुर) शरीर के अर्थ किसी की निन्दा न कर ॥४॥

हे तुलसीदास! जब तक ऐसी बुद्धि ऐसा विचार नहीं आया तब तक श्रीरामजी मिलने के नहीं, क्योंकि वह सकपट प्रेम करने से नहीं, किन्तु सच्चा निष्कपट प्रीति से ही मिलते हैं ॥५॥

शब्दार्थ—कृत=किए हुए। अपतपी = अहंकार। बिदूषहि = निन्दा कर।

विशेष—(१) दुख सुख "बिहाइ"—भगवद्गीता में समभाव पर विस्तार-पूर्वक कहा गया है—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभ परित्यागी, भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्ण सुखदुःखेषु समः संग विवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥

(२) कालप्रमित—

माली आवत देखिके कलियाँ करी पुकार।
फूली-फूली चुनि लई कालि हमारी बार॥'

[कबीरदास

१२७

मै जानी हरिपद रति नाही। सपनेहुँ नहिं बिराग मन माहीं ॥१॥
जो रघुबीर चरन अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे ॥२॥
काम भुजंग डसत जब जाही। विषय-नीब कटु लगत न ताही ॥३॥
असमंजस अस हृदय बिचारी। बढ़त सोच नित-नूतन भारी ॥४॥
जब-कब राम-कृपा दुख जाई। तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥५॥

भावार्थ—मैं समझ गया कि श्रीहरि के चरणों में मेरा प्रेम नहीं है क्योंकि सपने में भी मेरे मन में वैराग्य का उदय नहीं होता, जब संसार से विरक्ति ही नहीं हुई तब भगवान् में अनुरक्ति कैसे होगी? ॥१॥

जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजी के चरणों से प्रीति जोड़ ली है उन्होंने सारे भोग विलासों को रोग की तरह त्याग दिया है ॥२॥

जब जिसे कामरूपी साँप डस लेता है तब उसे विषयरूपी नीम कड़वा नहीं

मान रहा है, तनिक समझ तो, उसमें वस्तुतः कितना सुख है? (भाव यह है कि संसार में जितने भी कुछ विषय-सुख हैं, वे क्षणस्थायी हैं, उनका परिणाम महादुःखदायक है) ॥ १ ॥

जहाँ-जहाँ जिस जिस योनि में—पृथिवी, पाताल और आकाश में—तूने जन्म लिया, वहाँ-वहाँ तूने विषय-सुख की कामना की और वहाँ प्रारब्धवश तुझे मिला भी (क्योंकि जैसी मनसा तैसी दशा) ॥ २ ॥

अब तू अज्ञान में फँसकर मोह-ममता में सना हुआ, घट-पट आकाश के सीने में क्यों प्रफुल्लित हो रहा है? (भाव यह है कि जैसे आकाश का सीना असम्भव है, उसी प्रकार सांसारिक भोग-विलासों में आनन्द की आशा करना पागलपन है), हे तुलसी! यदि तुझे आनन्द-लाभ की ही इच्छा है, तो प्रभु रामचन्द्रजी का गुण-कीर्तन करके पीयूष पान क्यों नहीं करता? ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—जाय=व्यर्थ। वियत=विस्तृत। वियत=आकाश। नियत=प्रारब्ध। लटपो=लुप्त, सना हुआ।

विशेष—(१) 'प्रभु सुजस गाइ पियत'—हरि-कीर्तन अमृत रूप है। उसके पान से जीव अमर हो जाता है। सूरदासजी भी इसी सुधा रस के लिए लालायित हो रहे हैं। देखिए—

> 'सुआ पढ़ु हो बन को रसु लीज।
> जा बन कृष्ण नाम अमरत रसु, स्रवन-पात्र भरि पीज ॥'

१३३

तोसों हौं फिरि फिरि हित प्रिय पुनीत सत्य बचन कहत।
सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत ॥१॥
छोटो-बड़ो, खोटो खरो जग जो जहँ रहत।
अपने अपने को भलो कहहु को न चहत ॥२॥
बिधि-लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी, दुख दहत।
पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत, नहत ॥३॥
बिषय मुद निहार भार सिर काँधे ज्यों बहत।
यों ही जिय जानि मानि सठ, तू साँसति सहत ॥४॥
पायो केहि घृत बिचारु हरिन—बारि महत।
तुलसी तकु ताहि सरन जाते सब लहत ॥५॥

भावार्थ—रे जीव! मैं तुझसे बार-बार हितकारी, मधुर, पवित्र और सत्य वचन कहता हूँ। सुन, मन में विचार कर और समझ, तू सुगम सुन्दर मार्ग पर क्यों नहीं चलता, अथवा सुन-समझकर भी तू सुगम मार्ग क्यों नहीं पकड़ता? ॥ १ ॥

छोटा-बड़ा, खोटा-खरा जो जहाँ संसार में रहता है, कहो तो उनमें ऐसा कौन होगा जो अपना और अपने परिवार का भला न चाहता हो? ॥ २ ॥

ब्रह्मा से लेकर छोटे-से कीट तक सुख से सुखी होते हैं और दुःख से जलते हैं,

सुख दुःख सभी प्राणियों को एक-सा व्यापता है। परमात्मा ग्वाले की नाईं जीव रूपी पशुओं को बाँधता है, खोलता है और जोतता है (मोह में बाँधता है, ज्ञान से खोलता है और कर्म रूपी हल में जोत देता है।) ॥ ३ ॥

विषयों के सुखों को तनिक देख तो। वे क्या हैं मानो सिर के बोझ को कंधे पर रखना। भाव यह है कि जैसे कोई सिर पर के बोझ को कंधे पर रखकर, क्षणभर के लिए सुख मान बैठता है और कंधे पर से, दर्द होने पर, फिर सिर पर रख लेता है, उसी प्रकार तू एक विषय से हटकर दूसरे विषय में फँस जाता है और क्षणिक सुख को आनन्द मान लेता है? इस विषयानन्द में कोई चिरस्थायी आनन्द नहीं, केवल यह भ्रम है। रे शठ! क्या व्यर्थ कष्ट सह रहा है? ॥ ४ ॥

तनिक विचार तो कर मृग जल मथकर घी किसने पाया? तात्पर्य यह कि जिस संसार का वस्तुतः अस्तित्व ही नहीं, उसमें सच्चा आनन्द कैसे प्राप्त हो सकता है? (यदि तुझे आनन्द ही चाहिए तो) हे तुलसी! तू उसी प्रभु की शरण में जा, जिससे सब प्रकार का आनन्द उपलब्ध होता है ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—लगि=से आरम्भ करके। अवधि=तक। पसु-पाल=ग्वाला। नहत=जोतता है। हरिनबारि=मृग-तृष्णा। महत=मथता है।

विशेष—(१) 'पसु लौं नहत'—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥'

तथा— [भगवद्गीता

'उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामगोसाईं॥'

(२) 'जाते सब नहत'—जिससे सब सुख पाते हैं, यह भी अर्थ लगाया जा सकता है।

१३४

ताते हौं बार-बार देव! द्वार परि पुकार करत।
आरति, नति दीनता कहे प्रभु संकट हरत ॥१॥
लोकपाल सोक-बिकल रावन-डर डरत।
का सुनि सकुचे कृपालु नर-सरीर धरत ॥२॥
कौसिक, मुनि-तीय, जनक सोच-अनल जरत।
साधन केहि सीतल भए सो न समुझि परत ॥३॥
केवट खग सबरि सहज चरनकमल न रत।
सनमुख तोहि होत नाथ! कुतरु सुफरु फरत ॥४॥
बंधु-बैर कपि बिभीषन गुरु गलानि गरत।
सेवा केहि रीझि राम किये सरिस भरत ॥५॥
सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत।
ताको लिये नाम राम सब को सुढर ढरत ॥६॥

जाने बिनु राम रीति पचि-पचि जग मरत ।
परिहरि छल सरन गये तुलसिहुँ-से तरत ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे नाथ ! इसी से मैं तुम्हारे द्वार पर पड़ा बारबार पुकारकर कहता हूँ कि तुम दुःख, नम्रता और दीनता सुनते ही संकट हर लेते हो। (तुम्हारा ऐसा स्वभाव देखकर ही बारबार कहने के लिए मेरा साहस हुआ है, नहीं तो न कहता) ॥ १ ॥

जब रावण के भय से इन्द्र, कुबेर आदि लोकपाल डर गये, तब हे कृपालो ! तुम्हें नर-देह धारण करने के लिए किस बात को सुनकर संकोच हुआ था ? (दुःख, नम्रता और दीनता को ही तो) ॥ २ ॥

यह समझ में नहीं आता कि जो विश्वामित्र, अहल्या और जनक चिंता की अग्नि में जले जा रहे थे, वे किस साधन से शीतल हुए ? (किस उपाय से निश्चिन्त हुए) ॥ ३ ॥

गुह निषाद, पक्षी (जटायु) शबरी आदि की प्रीति तुम्हारे प्रति स्वाभाविक नहीं थी, किन्तु हे नाथ ! तुम्हारे सामने आते ही बुरे-बुरे पेड़ भी अच्छे अच्छे फल फलने लगते हैं ! (भाव यह कि निषाद शबरी आदि पापियों के हृदय में धर्म और भक्ति के फल फल उठे। तुम्हारी शरणागति का प्रभाव ही ऐसा है) ॥ ४ ॥

अपने अपने भाई के साथ शत्रुता करने से सुग्रीव और विभीषण दारुण दुःख से गल जाते थे। हे श्रीराम ! तुमने किस सेवा से रीझकर उन्हें भरत के समान प्रिय मान लिया ? ॥ ५ ॥

हनुमानजी तुम्हारी सेवा करते करते तुम्हारे ही समान हो गये। हे श्रीराम ! उनका (हनुमान का) नाम लेते ही तुम सब पर भली भाँति प्रसन्न हो जाते हो अर्थात् तुम्हारी प्रसन्नता के मुख्य साधक हनुमानजी माने जाते हैं) ॥ ६ ॥

हे नाथ ! बिना तुम्हारी (रीझ की) रीति जाने संसार पच पचकर मर रहा है अर्थात् यदि वह यह जानले कि तुम भक्तवत्सल और दीनबन्धु हो तो जप तप आदि अनेक दुःसाध्य साधना के फेर में वह क्यों पड़ने लगे ? कपटभाव त्यागकर तुलसी-जैसे जीव भी तुम्हारी शरण में आने से मुक्त हो जाते हैं, संसार सागर पार कर जाते हैं ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—नति=नम्रता। कौसिक=विश्वामित्र। सफल=सुन्दर फल। गरत=गला जाता है। सुढर=भलीभाँति कृपा करते हो। ढलने का अर्थ द्रवना या पिघलना अर्थात् कृपा करना है।

विशेष—(१) साहब अनुहरत—हनुमानजी शिवरूप माने जाते हैं और तत्त्वतः शिव और राम में कुछ भी अन्तर नहीं है। यों भी वह भगवान् का तात्त्विक स्वरूप जान चुके थे फिर उनमें अन्तर ही क्या रह सकता क्योंकि—

जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।

(२) इस पद में पुरुषार्थहीन होने पर भी भगवत्कृपा से जीव भाव मुक्त हो जाता है यह दिखाया गया है। इसमें 'परिहरि छल सरन गये' सिद्धान्त वाक्य है।

राग सूहो बिलावल

१३५

राम सनेही सो तैं न सनेह कियो।
अगम जो अमरनिहूँ सो तनु तोहि दियो।
दियो सुकुल जनम, शरीर सुंदर, हेतु जो फल चार को।
जो पाइ पण्डित परम पद पावत पुरारि मुरारि को॥
यह भरतखण्ड समीप सुरसरि, थल भलो, संगति भली।
तेरी कुमति कायर कलप बल्ली चहति है विष फल फली॥१॥

अजहूँ समुझि चित दै सुनु परमारथ।
है हितु सो जगहूँ जाहि ते स्वारथ॥
स्वारथहि प्रिय, स्वारथ सो का ते, कौन बेद बखानई।
देखु खल, अहि-खेल परिहरि, सो प्रभुहि पहिचानई॥
पितु मातु गुरु स्वामी अपनपौ तिय, तनय सेवक सखा।
प्रिय लगत जाके प्रेम सो बिनु हेतु हित तैं नहिं लखा॥२॥

दूरि न सो हितू हेरु हिये ही है।
छलहि छाडि सुमिरे छोहु किये ही है॥
किये छोहु छाया कमल कर की भगत पर भजतहि भजै।
जगदीस जीवन जीव को जो साज सब सबको सजै॥
हरिहि हरिता विधिहि विधिता, सिवहि सिवता जो दई।
सोइ जानकी-पति मधुर मूरति, मोदमय मंगलमई॥३॥

ठाकुर अतिहि बडो, सील, सरल, सुठि।
ध्यान अगम सिवहूँ भेटयो केवट उठि॥
भरि अंक भेटयो सजल नैन सनेह, सिथिल शरीर सो।
सुर सिद्ध मुनि कवि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुबीर सो॥
खग, सबरि निसिचर, भालु, कपि किये आपु ते बंदित बडे।
तापर तिन्ह कि सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गडे॥४॥

स्वामी को सुभाव कह्यो सो जब उर आनिहैं।
सोच सकल मिटिहैं, राम भलो मन मानिहैं॥
भलो मानिहैं, रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै।
ततकाल तुलसीदास जीवन जनम को फल पाइहै॥
जपि नाम करहि प्रनाम कहि गुन-ग्राम रामहि धरि हिये।
विचरहि अवनि अवनीस चरनसरोज-मन मधुकर किये॥५॥

भावार्थ—अरे! जिन्होंने तुझे देवताओं से भी दुष्प्राप्य शरीर दिया है उन प्रेमस्वरूप श्रीराम से तूने प्रेम नहीं किया! उन्होंने अच्छे वंश में सुन्दर कुल में, तुझे जन्म दिया और सुन्दर शरीर भी दिया है, जो अर्थ धर्म, काम और मोक्ष का कारण है

जिसे पाकर तू ज्ञान द्वारा चारों फल पा सकता है, जिसे पाकर ज्ञानी लोग शिव तथा विष्णु का परम पद प्राप्त करते हैं, कैलास और बैकुण्ठ धाम पाते हैं। फिर यह देश भारत पर नाम ही देवनदी गंगा है। यहाँ ही सुन्दर स्थान है। साथ ही सत्संगति भी है। किन्तु अरे कायर! तेरी कुबुद्धिरूपा कल्पना यहाँ भी विफले फल पैदा कर रही है। भाव यह है कि जिस बुद्धि से तुझे धर्म, ज्ञान, भक्ति आदि साधन सिद्ध करने चाहिए थे उससे तू सांसारिक विषयों को, जो विषरूप हैं, खोजता फिरता है ॥१॥

मन! समझ ले। मन लगाकर परमार्थ विषय को सुन। वही बात इस संसार में श्रेयस्कर और उसीसे अपना स्वार्थ भी सिद्ध होता है। यदि तुझे स्वार्थ ही अच्छा लगता है, परमार्थ विषय की ओर चित्त नहीं जाता तो समझ तो वह कौन है, जिससे स्वार्थ प्राप्त होगा, और वह जिसका निरूपण करते हैं (श्रीरघुनाथजी को पहचान) अरे दुष्ट! देख, साँप के साथ मत खेल। संसारी विषयों में मन न लगा, क्योंकि एक दिन ये साँप की तरह तुझे डस लेंगे। तू तो उस स्वामी को पहचान उस पति से नाता जोड़, जिसके प्रेम के कारण पिता माता गुरु स्वामी अपनी आत्मा, पुत्र सेवक मित्र आदि सब प्रिय जान पड़ते हैं। उस निष्कारण स्नेह करनेवाले प्रभु को तूने नहीं देखा ॥२॥

वह हितकारी स्नेही प्रभु दूर नहीं है। देख वह तेरे हृदय में ही है। छल छोड़कर उसका स्मरण तो कर। वह तुझ पर कृपा अवश्य करेगा। भाव यह है कि परमात्मा तो पास हृदय में तो है किन्तु बीच में कपट का परदा पड़ा हुआ है इसीसे उसका साक्षात्कार नहीं होता। परदा हटा नहीं कि प्रियतम का दर्शन हुआ। वह कृपा करके अपने जनों पर करकमल की छाया किए रहता है सदा उनकी रक्षा करता है। जो उसे भजता है वह भी उसे भजता है। वह सारे संसार का स्वामी है। जो सबके लिए सब प्रकार की सुखसामग्री प्रस्तुत करता है जिसने विष्णु को विष्णुत्व ब्रह्मा को ब्रह्मत्व और शिव को शिवत्व प्रदान किया, अर्थात् विष्णु को पालन-पोषण शक्ति ब्रह्मा को सृजन शक्ति और शिव को संहार शक्ति जिसने दी है, यह वही जानकी वल्लभ रघुनाथजी की आनन्दस्वरूपिणी कल्याणमयी सुन्दर मूर्ति है ॥३॥

ऐसा बड़ा स्वामी लोकपालों का भी अधीश्वर होते हुए वह सुशील सुन्दर और सरल भी अनुपम है। जिसका ध्यान शिव को भी दुर्लभ है उसने उठकर निषाद को छाती से लगा लिया। जब उसे अपने हृदय से लगाया तब आँखें छलछला आईं, प्रेम से शरीर शिथिल हो गया। तभी तो देव सिद्ध मुनि और कवि कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी के समान कोई भी प्रेम प्रिय नहीं है जितना उन्हें प्रेम प्यारा लगता है उतना और किसी को भी नहीं। उन्होंने पक्षी (जटायु) शबरी राक्षस (विभीषण), रीछ (जाम्बवान आदि) और बन्दरों (सुग्रीव प्रभृति) को अपने से भी अधिक वन्दनीय पूज्य बना दिया। (अब शील की ओर देखिए) इस पर भी जब उनके द्वारा की हुई सेवा को वे याद करते हैं तब सकोच के मारे गड़े से जाते हैं कि हमने इन्हें कुछ भी नहीं दिया हम इनसे ऋणमुक्त नहीं हो सकते,

सदा इनके ऋणी हो रहेंगे ॥४॥

स्वामी रघुनाथजी का जो शील-स्वभाव मैंने अभी कहा है उसे जब तू ह[illegible] में धारण करेगा उस पर मनन करेगा तब तेरी सारी चिन्ताएँ दूर हो जायेंगी [illegible] निश्चिन्त हो जायेगा और प्रभु रामचन्द्रजी भी प्रसन्न होंगे। वह तो तभी प्रसन्न [illegible] जायेंगे, जब तू हाथ जोड़कर मस्तक झुकायेगा, प्रणाम करेगा। तुलसीदास! तु[illegible] इस जन्म का फल पा जायेगा, तेरा जीवन सार्थक हो जायेगा। राम-नाम [illegible] स्मरण कर, उनकी गुणावली का कीर्तन कर और हृदय में ध्यान धर। अग[illegible] श्रीराम के चरण-कमलों में अपने मन को भ्रमर के समान बसाकर पृथ्वी पर तू नि[illegible] विचरण कर। तात्पर्य यह कि जब तू भगवद्भक्त हो जायगा तब तुझे संसार में [illegible] भी भय-स्थान न रहेगा, सर्वत्र निर्भय विचर सकेगा, कारण कि तब तेरी दृष्टि[illegible] संसार हरिमय हो जायगा ॥५॥

शब्दार्थ—पुरारि=शिव। मुरारि=विष्णु। धातु=ब्रह्मा। गुढि=गुढ[illegible] ग्राम=समूह।

विशेष—(१) 'भरतखंड'—भारतवर्ष कर्मभूमि है। सत्कर्मों का संपादन [illegible] पवित्र भूमि पर जितना हो सकता है उतना अन्यत्र नहीं। इस भूमि में एक-एक [illegible] में आध्यात्मिकता, अहिंसा, शान्ति आदि की व्यापकता मानी गई है। कहा है—

'दुर्लभं भारते जन्म।'

गोस्वामीजी के हृदय में भारतवर्ष के प्रति कितनी गहरी भक्ति भावना थी [illegible] [illegible] में व्यक्त होता है। रामचरितमानस में भी अयोध्या की महत्ता [illegible] भी [illegible] महिमामयी कही है। श्रीरामचन्द्रजी स्वयं श्रीमुख से कहते हैं—

'सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावनपुरी रुचिर यह देसा॥
जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जग जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥'

( ) [illegible] यद्यपि [illegible] विद्या में कुशल होते हैं तथापि [illegible] कभी वह भी धोखा खा जाता है, [illegible] और उसका [illegible] नहीं चलता। इसी प्रकार संसार के व्यवहार में बड़े-बड़े चतुर भी ठग हो जाते हैं [illegible] उन्हें रोना पड़ता है। कभी कभी बड़े-बड़े बुद्धिमान ऋषियों और देवेन्द्र का भी [illegible] मारा जाता है।

(३)—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], पुत्र [illegible] [illegible] [illegible] सब की मां पुत्र [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] न [illegible] प्रिय है न पुत्र। और आत्मा परमात्मा का अंश है परमानन्दस्वरूप है। [illegible] [illegible] कि [illegible] प्रिय वस्तु का [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] बृहदारण्यक उपनिषद् में किया गया है—

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रि[illegible] भवति। न वा अरे पुत्राणां कामाय [illegible] इत्यादि।

(४) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

(३) [illegible] —

[illegible] सब [illegible] । [illegible] जो [illegible] ॥
[illegible] हरि सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रगट होहिं भगवाना ॥'

(४) [illegible] —मस्ताने दरवेश का कबीर साहब ने बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है —

दरस दिवाना बावरा अलमस्त फकीरा ।
एक अकेला ह्वै रहा अस मत का धीरा ।
हिरदे में महबूब है हरदम का प्याला ।
पीवेगा कोइ जौहरी गुरु मुख मतवाला ।
पियत पियाला प्रेम का सुधरे सब साथी ।
आठ पहर झूमत रहै जस मैगल हाथी ॥
बंधन काटे मोह के [illegible] निरसंका ।
वाके नजर न आवता [illegible] राजा क्या रंका ।
धरती तो आसन किया तंबू असमाना ।
चोला पहिरा खाक का रह एक समाना ॥
सेवक को सतगुरु मिले कछु रहि न तबाही ।
कह कबीर निज घर चलो, जहँ काल न जाही ।

१३६

जिय जब ते हरि ते बिलगान्यो । तब ते देह गेह निज जान्यो ॥
मायाबस स्वरूप बिसरायो । तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो ॥
पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो ।
भव सूल सोक अनेक जेहि तेहि पथ तू हठि हठि चल्यो ॥
बहु जोनि जनम जरा बिपति, मतिमंद हरि जान्यो नहीं ।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़ ! बिचारु लखि पायो कहीं ॥१॥
आनँद सिंधु मध्य तव बासा । बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृग भ्रम बारि सत्य जिय जानी । तहँ तू मगन भयो सुख मानी ॥
तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि अब आयो तहाँ ॥
निरमल निरंजन, निरबिकार उदार सुख ते परिहर्‌यो ।
निःकाज राज बिहाइ नृप इव सपन-कारागृह पर्‌यो ॥२॥
तैं निज करम डोरि दृढ़ कीन्ही । अपने करनि गाँठि गहि दीन्ही ॥
तातें परबस पर्‌यो अभागे । ता फल गरभ-बास दुख आगे ॥
आगे अनेक समूह संसृति, उदरगत जान्यो सोऊ ।
सिर हेठ, ऊपर चरन संकट बात नहिं पूछै कोऊ ॥

सोनित-पुरीष जो मूत्र मल कृमि, कदमावृत सोवई।
कोमल सरीर, गँभीर वेदन, सीस धुनि धुनि रोवई ॥३॥
तू निज करम-जाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो।
बहुविधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हो। परम कृपालु ग्यान तोहि दीन्हो॥
तोहि दियो ग्यान विवेक जनम अनेक की तब सुध भई।
तेहि ईस की हौं सरन जाकी विषम माया गुनमई॥
जेहि किये जीव निकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई।
सो करौ वेगि सँभार श्रीपति विपति महँ जेहि मति दई ॥४॥
पुनि बहुविधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी॥
ऐसेहि करि बिचार चुप साधी। प्रसव-पवन प्रेरेउ अपराधी॥
प्रेरयो जो परम प्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ग्यान, ध्यान, विराग अनुभव जातना पावक दह्यो॥
अति खेद ब्याकुल अल्पबल छिन एक बोलि न आवई।
तव तीव्र कष्ट न जान कोउ, सब लोग हरषित गावई ॥५॥
बाल दसा जेते दुख पाये। अति असीम नहिं जाहिं गनाये॥
छुधा ब्याधि बाधा भय भारी। वेदन नहिं जानै महतारी॥
जननी न जानै पीर सो, केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सोइ करै विविध उपाय जातें अधिक तुव छाती जरै॥
कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।
व्यतिरेक तोहि निरदय महाखल! आन कहु को सहि सकै ॥६॥
जोबन जुवती सँग रँग रात्यो। तब तू महामोह मद मात्यो॥
तातें तजी धरम मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम विषादा॥
बिसरे विषाद, निकाय-संकट समुझि नहिं फाटत हियो।
फिरि गर्भगत आवर्त संसृतिचक्र जेहि होइ सोइ कियो॥
कृमि भस्म विट-परिनाम तनु तेहि लागि जग बैरी भयो।
परदार परधन, द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो ॥७॥
देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहुँ नाहिं बुलाई॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रकट देखु तनु माहीं॥
सो प्रगट तनु जरजर जराबस, ब्याधि सूल सतावई।
सिरकंप इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत, बचन काहू न भावई॥
गृहपालहू तें अति निरादर खान पान न पावई।
ऐसिहु दसा न विराग तहँ तृष्णा-तरंग बढ़ावई ॥८॥

यहि रा मो महाभव तेर। जनम एए ये यसुर गनर ॥
चारि खानि सतन अवगाही। अजहुँ न रु विचार मन माहीं ॥
अजहूँ विचारु विकार तजि भजु राम जन - सुखदायक।
भवसिंधु दुस्तर जलरथ भजु चक्रधर सुरनायक ॥
बिनु हेतु करुनाकर उदार अपार माया तारनं।
कैवल्य पति जगपति रमापति प्रानपति गतिकारन ॥९॥

रघुपति भगति सुलभ सुखकारी। सो त्रयताप सोक भय-हारी ॥
बिनु सतसग भगति नहिं होई। ते तब मिलै द्रवै जब सोई ॥
जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु सगति पाइय।
जहि दरस परस समागमादिक पापरासि नसाइय ॥
जिनके मिले दुख सुख समान अमानतादिक गुन भये।
मद मोह लोभ विषाद क्रोध सुबोध तें सहजहि गये ॥१०॥

सेवत साधु द्वैत भय भागे। श्रीरघुबीर चरन-लय लागे ॥
देह जनित विकार सब त्यागे। तब फिरि निज स्वरूप अनुरागे ॥
अनुराग सो निज रूप जो जग तें बिलच्छन देखिय।
सतोष सम सीतल सदा दम देहवत न लेखिय ॥
निरमल निरामय एकरस तेहि हरष-सोक न व्यापई।
त्रैलोक पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई ॥११॥

जो तेहि पथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहिं सहाई ॥
जो मारग स्रुति साधु दिखावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै ॥
पावै सदा सुख हरि कृपा ससार आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं दुख द्वैत दरसन बात कोटिक को कहै ॥
द्विज देव गुरु हरि सत बिनु ससार पार न पाइये।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गाइये ॥१२॥

पदच्छेद—नि + अजन। नि + आमय। कदम + आवत।

भावार्थ—हे जीव! भगवान् से जब से तू अलग हुआ तभी से तूने शरीर को अपना मान लिया। (यों तो जीव परमात्मा का ही अंश है किन्तु प्रकृति के अधीन होकर उसे परमात्मा से पृथक् होना पड़ा और उससे पृथक् होते ही उसमें देहाभिमान आ गया, जिससे स्त्री-पुत्रादि में ममत्व उत्पन्न हुआ)। माया के वश होकर तूने निजस्वरूप, सच्चिदानन्द—रूप भुला दिया और उसी भ्रम के कारण तुझे असह्य क्लेश भोगने पड़े। भाव यह है कि माया के ससर्ग से जीव में अनेक विकार—राग-द्वेष सुख दुख—आ मिले, आनन्द सदा के लिए विदा ले गया। अविद्या के कारण ससार दुःखमय भासने लगा, बड़ा ही कठिन असहनीय दुःख मिला। सुख का तो स्वप्न में भी नाम न रहा। जिस मार्ग में अनेक कष्ट और शोक भरे पड़े हैं, उसी पर से तू हठपूर्वक बार बार गया रोकने पर

भी न माना। अनेक योनियों में जन्म लेना पड़ा। बुढ़ापा भी आया, विपत्तियाँ भी झेलनी पड़ीं। पर रे मूढ़! तूने इतने पर भी भगवान् को न पहचाना। विचारकर, भला रघुपति श्रीरामचन्द्रजी को छोड़कर तुझे क्या कहीं शान्ति मिली? शान्ति और सुख का स्थान मूलाधार तो परमात्मा ही है। उसे छोड़कर कहीं भी आनन्द प्राप्त होने का नहीं। १॥

रे जीव! तेरा निज निवास आनन्द के सागर में है, तू आनन्दस्वरूप परब्रह्म से भिन्न नहीं है। उस आनन्द-सागर को भूलकर तू क्यों प्यासा मर रहा है? मृगजल को तूने सत्य मान रखा है, और उसी में आनन्द समझकर मगन हो रहा है। वहाँ तू नहा रहा है। वहाँ तो तीन काल में भी पानी नहीं और उसी को पी रहा है! अपना स्वाभाविक अनुभवगम्य स्वरूप भूलकर आज यहाँ भटक रहा है। भाव यह कि संसार मृगजल के समान भ्रममात्र है। यहाँ तू विषयरूपी झूठे जल में प्रसन्नतापूर्वक स्नान कर रहा है। विषयों में फँसकर अपने आपको शीतल या शान्त करना चाहता है पर वहाँ शीतलता कहाँ? जब जल ही नहीं, संसार का तत्त्वतः 'अस्तित्व' ही नहीं तब वहाँ सुख कहाँ से आवेगा? तूने उस आनन्द का त्याग किया, जो विशुद्ध अविनाशी और निर्विकार है। व्यर्थ ही तू राजाओं के जैसा राज्य छोड़कर स्वप्नरूपी कारागृह में आ पड़ा है। आत्मानन्द त्यागकर विषय पङ्क में आ फँसा है॥२॥

तूने स्वयं ही अज्ञान से अपनी कर्मरूपी रस्सी मजबूत करली और अपने ही हाथों उसमें अविद्या की पक्की गाँठ भी लगा दी। इसी से अरे अभागे! तू परतन्त्र पड़ा हुआ है। और इसका फल क्या होगा? आगे गर्भ में रहने का दुःख। सारांश यह कि न तू इच्छा कर कर कर्म करता और न परतन्त्र होकर मोहाधीन होकर गर्भ में बारबार आता। संसार में जो बहुतेरे दुःखों के समूह हैं उन्हें वही जानता है जो माता के पेट में पड़ चुका है। गर्भ में सिर तो नीचे रहता है और पैर ऊपर। इस सङ्कट के समय कोई बात भी नहीं पूछता। रक्त, मल, मूत्र, विष्ठा, कीड़ा और कीचड़ से घिरा हुआ (गर्भ में) सोता है। तेरा शरीर तो सुकुमार है पर कष्ट बड़ा दारुण है जो सहा नहीं जाता। सिर धुन धुनकर तू रोता है। भाव यह है कि वहाँ तू अकेला ही है, बचानेवाला वहाँ कौन बैठा है? जैसे कर्म किए उनके फल चखने ही पड़ेंगे। सो चख, चाहे तू सिर पटक, चाहे छाती पीट॥३॥

जहाँ कहीं भी तू कर्म जाल में फँसा, वहाँ भी श्रीहरि ने तेरा साथ नहीं छोड़ा। प्रभु ने नाना प्रकार से तेरा पालन-पोषण किया, और परम कृपालु स्वामी ने तुझे वहीं ज्ञान भी दिया। जब तुझे ज्ञान विवेक मिला तब पिछले अनेक जन्मों की बातें तुझे याद आईं। तब कहने लगा कि जिसकी यह त्रिगुणात्मिका दुस्तरमाया है अर्थात् जिसकी आज्ञा से माया ने जगत में तीनों गुणों का पसारा फैलाया है उसी परमेश्वर की मैं शरण हूँ। जिसने जीव-समूह को अपने वश में कर लिया है जिस माया ने उन्हें परतन्त्र बनाकर नीरस अर्थात् आनन्दरहित भी कर दिया है और जो प्रतिदिन नई ही दिखाई देती है ऐसी मायारूपी लक्ष्मी के पति ने गर्भ-वास की इस विपत्ति में ऐसा विवेक बुद्धि दी है वही इससे परित्राण करें॥४॥

फिर बहुत भाँति से मन में ग्लानि मानकर तू कहने लगा कि अबकी बार (संसार में) आकर चक्रधारी भगवान् का अवश्य भजन करूँगा। ऐसा विचारकर ज्योंही तू घूम-

हुआ, प्रसव काल के पवन ने तुझ अपराधी को प्रेरित किया, उस प्रचंड पवन के द्वारा प्रेरित होकर तूने अनेक कष्टों को सहा। जो ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और आत्मानुभव तुझे प्राप्त हुआ था वह सब कष्ट की अग्नि में जल गया मारे कष्ट के तू सब भूल गया। अत्यन्त दुःख के कारण तू व्याकुल हो गया और अन्दर बन्द रहने के कारण एक क्षण तेरे गले से आवाज भी नहीं निकली। उस समय का तेरा दारुण दुःख असह्य प्रसव काल के कष्टों के मारे मूर्च्छित-सा हो गया पर लोगों को यह आनन्द हुआ कि 'धन्य भाग आज, अमुक के पुत्र उत्पन्न हुआ है' और लगे हर्षित हो बधाई गाने॥५॥

फिर बचपन में तुझे जो जो कष्ट हुए वे असह्य हैं। भूख रोग और अनेक बड़ी बड़ी बाधाओं ने तुझे घेर लिया पर तेरी मा को उन सब कष्टों का यथार्थ पता नहीं लगा। माँ ने यह नहीं जाना कि बच्चा किसलिए रो रहा है वह तो बार बार वही उपाय करती है, वही उपचार करती है जिससे तेरी छाती और भी अधिक जले। भाव यह कि हुआ तो है तुझे रोग, पर वह तुझे बुरी नजर लगी समझकर ओझा से झड़वाती है, टोटका करती है, अथवा है तो अपच पर वह तुझे भूखा समझकर दूध पिलाती है। शैशव, कुमारावस्था एवं किशोरावस्था में तूने अगणित पाप किए जिनका वर्णन कौन कर सकता है। रे निर्दय! महादुष्ट! तुझे छोड़कर और कौन ऐसा होगा, जो उन्हें सह सकेगा?॥६॥

जवानी चढ़ते ही तू स्त्री की आसक्ति में फँस गया। भारी अज्ञान और मद में मतवाला हो गया। उस नशे में तूने धर्म मर्यादा को लात मार दी। पहले कितने कष्ट भोगे थे उन सबको भुला दिया और लगा पाप पर पाप कमाने। कष्टों के समूह भूल जाने के कारण आगे और क्या-क्या दुःख होंगे यह समझकर तेरी छाती फट नहीं जाती? जिससे फिर फिर गर्भ के गड्ढे में गिरना पड़े संसार चक्र में आना पड़े वही तूने बार बार किया इन्द्रियों के वश में पड़कर सदा विषयों में ही चित्त लगाया। जो शरीर कीड़ा राख, विष्ठा आदि का परिणाम है उसके लिए तू सारे संसार का शत्रु बन बैठा! इस क्षणिक शरीर को आराम देने के लिए तूने किन किनके साथ भला बुरा बर्ताव नहीं किया? दूसरे की स्त्री दूसरे का धन दूसरों से द्रोह यही संसार में नित्य नया करता गया। दूसरे की सुन्दर स्त्री को भारी मान को और विपुल धन को देखकर तेरे मन में कुढ़न पैदा हुई उसे चाहा जब न मिला छल बल किया और वैर बिसाह लिया। यही तूने नित्य किया यही तेरी जीवन चर्या रही॥७॥

देखते-ही देखते बुढ़ापा आ पहुँचा जिसे तूने स्वप्न में भी नहीं बुलाया था स्वप्न में इच्छा न की थी कि मैं बूढ़ा हो जाऊँ। तू तो यही चाहता था कि सदा जवान ही बना रहूँ। उस बुढ़ापे की बातें कुछ कहने की नहीं। उन सबको प्रत्यक्ष अपने शरीर में देख ले! देख शरीर तो जीर्ण हो गया है। बुढ़ापे के कारण रोग और शूल सता रहे हैं। सिर हिल रहा है! इन्द्रियों की शक्ति चली गई है। बोलना तेरा किसी को सुहाता नहीं। घर की रखवाली करनेवाला कुत्ता तक तेरा मान नहीं करता, औरों का तो गिनती ही क्या? अथवा कुत्ते से भी अधिक तेरा निरादर होता है। न तुझे कोई समय पर खाना देता है न पानी। इतनी सारी दुर्दशा होने पर भी तुझे वैराग्य नहीं होता। इतने पर भी तृष्णा की लहरों को तू बढ़ाता ही जाता है॥८॥

तेरे अनेक जन्मों की, अनेक योनियों की, कथा कौन कह सकता है? यह तो एक

यह समझकर तुलसीदास भी भव भय दूर करनेवाले श्रीलक्ष्मीरमण भगवान का गुण कीर्तन करता है ॥१२॥

विशेष—(१) जिय बिलगान्यो —जीव और ब्रह्म, तत्वत एक ही है किन्तु माया के आवरण से जीव अपना स्वरूप भूल गया है। परमात्मा प्रकृति के साथ रत होने के कारण जीव रूप' मे स्व स्वरूप भूल गया है। वास्तव में, ब्रह्म और जीव अभिन्न है।

(२) अब जग चक्रपानी —यहाँ चक्रपानी शब्द का बहुत सार्थक प्रयोग हुआ है। जीव माया के जाल मे फँसा पडा है। उसे वह जाल छिन्न भिन्न कराना है। सुदर्शन चक्रधारी विष्णु भगवान ही उस जाल को काट सकेंगे, इसीलिए वह 'चक्रपाणि' नाम से भगवान को पुकारता है।

(३) जोवन रंग रात्यो —उन्मत्त यौवनावस्था पर सुकवि बिहारी का यह दोहा प्रसिद्ध है—

इक भीजे चहले परे, बूडे बहे हजार।
किते न ऐगुन जग करत, नय वय चढती बार ॥'

(४) धर्ममर्यादा'—मनुस्मृति मे धर्म मर्यादा का निम्न लक्षण दिया है—

इज्याध्ययनदानानि तप सत्य धृति क्षमा।
अक्षोभ इति मार्गोऽय धर्मस्याष्टविध स्मृत ॥'

धर्मशास्त्र में धर्म के भिन्न भिन्न प्रकार स भिन्न भिन्न अंग कहे गये है। परन्तु सत्य क्षमा अहिंसा आदि कुछ ऐसे अंग है जो ससार के सारे ही धर्मों में किसी न किसी रूप में पाये जाते है उनमे कोई अन्तर नहीं आया है।

(५) सो प्रगट कम्पाई —वृद्धावस्था पर अनेक कवियो की सूक्तियाँ मिलती हैं। नीचे का श्रीशंकराचार्य का जरा चित्रण कितना सजीव है —

'अंग गलित पलित मुड दशनविहीन जात तुण्डम।
वृद्धो याति गृहीत्वा दड तदपि न मुञ्चत्याशा पिंडम ॥
भज गोविन्द भज गोविन्द गोविन्द भज मूढमते ॥'

(६) गृहपालहु तें अति निरादर —इसके तीन अर्थ हो सकते है —

१ घर के मालिक स भी अर्थात लडके बालो स भी अपमान हो रहा है।

२ घर की रखवाली करनेवाला कुत्ता तक अपमान करता है।

३ कुत्ते से भी अधिक अपमान लोग करते है।

(७) सत्संग —संसार-सागर से पार होने और भगवद्भक्ति प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन सत्संग ही है। भगवद्गीता में कहा है भागवत पुराण कहता है उप निषद् गाते हैं सन्त भी पुष्टि कर रहे है कि सत्संग करो सत्संग करो बिना सत्संग के गति नहीं।

साधु हमारी आतमा हम साधुन के जीव।
साधुन मद्धे यों रहें, ज्यों पय मद्धे घीव ॥
तथा—तुलसी' संगति साधु की कटे कोटि अपराध।
एक घरी आधी घरी आधी में पुनि आध ॥'

(८) 'देह-जनित लेखिये'—गीता में इस अवस्था को ब्राह्मी अवस्था कहा गया है। इस अवस्था को पहुँचे हुए स्थितप्रज्ञ के लक्षण हैं—

'प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥
यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥'

हे अर्जुन जब जीव मन की सारी इच्छाएँ छोड़ देता है, मन में किसी तरह की भी इच्छा नहीं करता तब अपनी आत्मा में ही सन्तुष्ट होकर रहनेवाला प्राणी 'स्थितप्रज्ञ' कहा जाता है। जो दुःखों में घबराता नहीं सुखों की कामना नहीं करता, राग, भय और क्रोध जिसने जीत लिये हैं उसे 'स्थितधी मुनि' कहते हैं। जिसका मन सब ओर से हट गया है, शुभाशुभ में जिसे हर्ष और द्वेष नहीं रहा उसकी बुद्धि स्थिर समझनी चाहिए। यह ब्राह्मी अवस्था भगवद्भक्त को सहज ही प्राप्त हो जाती है, किन्तु भक्ति निष्कपट और विशुद्ध होनी चाहिए।

(९) 'त्रलोकपावन'—सूरदासजी कहते हैं—

'जा दिन सन्त पाहुने आवत।
ता दिन तीरथ कोटि आप ही ताके गृह चलि आवत॥'
'ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः।'

[श्रीमद्भागवत

(१०) यह पद बड़ा ही सुन्दर प्रभावपूर्ण ज्ञान वैराग्य और भक्ति रस से परिप्लुत है। इसमें गोसाईंजी ने अपने सिद्धान्त का भली भाँति प्रतिपादन किया है। जीव की पूर्वापर दशा, उसका उद्धार और मुक्ति का उपाय सभी कुछ इसमें आ गया है। यह पद मुखाग्र कण्ठाग्र और हृदयस्थ करने योग्य है।

इति पूर्वार्द्ध समाप्त

विनय-पत्रिका

(उत्तरार्द्ध)

राग बिलावल

जापै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै।
होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै ।।१।।
तकै नीच जो मीच साधु की सो पामर तेहि मीच मरै।
वेद विदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगति पथ पाउँ धरै ।।२।।
गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन ध्रुव अबिचल कबहुँ न टरै।
अंबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै ।।३।।
सो धौं कहा जु न कियो सुजोधन अबुध आपने मान जरै।
प्रभु प्रसाद सौभाग्य बिजय जस पाडु तनै बरिआइ बरै ।।४।।
जोइ जोइ कूप खनैगा पर कहँ सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहुँ सुख न संतद्रोही कहँ सुरतरु सोउ बिष फरनि फरै ।।५।।
हैं काके द्वै सीस, ईस के जो हठि जन की सीव चरै।
तुलसिदास रघुवीर-बाहुबल सदा अभय, काहू न डरै ।।६।।

भावार्थ—यदि कृपालु रघुनाथजी की कृपा है तो औरों के बैर करने से क्या बिगड़ सकता है? हरिभक्त का बाल भी बाँका होने का नहीं चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे।।१।।

जो नीच किसी साधु की मौत सोचता है वह पापी स्वयं उसी मौत से मरता है। प्रह्लाद की कथा वेदों में प्रसिद्ध है। उसे सुनकर ऐसा कौन होगा जो भक्ति-मार्ग पर पैर न रखेगा, भक्ति के सिद्धान्त को न मानेगा? भाव यह है कि प्रह्लाद को उनके पिता हिरण्यकशिपु ने अनेक प्रकार से कष्ट दिये पर भगवत्कृपा से वह उसका बाल भी बाँका न कर सका, उलटा आप ही मारा गया। ऐसी भक्तवत्सलता सुनकर कौन अभागा होगा, जो ऐसे प्रभु की भक्ति न करेगा? ।।२।।

श्रीहरि ने गजेन्द्र का उद्धार किया, विभीषण को राज्यसिंहासन पर बिठाया, ध्रुव को अटल पद दिया, और अम्बरीष भक्त की तो बात ही निराली है। उनका महा-

मुनि (दुर्वासा) ने जो शाप दिया था, उसे स्मरण कर वह अब भी ग्लानि से गले जाते हैं, लाज से मर जाते हैं (अपना पराभव देखकर कि अम्बरीष पर भगवान का अनुग्रह है, दुर्वासा शाप देकर पछताया करते हैं) ॥३॥

दुर्योधन ने कौन सा अनिष्ट करने को छोड़ा, जो करते बना सभी किया, मूर्ख अपने ही घमंड में जलता रहा। पर भगवत्कृपा से सौभाग्य विजय और कीर्ति ने पाडवों को ही हठपूर्वक अपनाया, पांडवों को सौभाग्य मिला, विजय-लाभ हुआ और कीर्ति भी मिली ॥४॥

जो भी दूसरों के लिए कुआँ खोदेगा वह दुष्ट स्वयं उसमें गिरेगा। सन्तों के साथ बैर बिसाहनेवाले को स्वप्न में भी सुख-चैन मिलने का नहीं। उसके लिए तो कल्पवृक्ष भी विपरीत फल ही फलेगा, अर्थात् वह जिस उपाय से सुख चाहेगा, उससे उसे दुःख ही मिलेगा ॥५॥

किसके दो सिर हैं, जो भगवद्भक्त की सीमा लाँघे? (हाँ किसीके दो सिर हों तो ठीक है एक कट जायगा, तो एक तो बच रहेगा। पर यह असम्भव है) हे तुलसीदास! जिसे श्रीरघुनाथजी के बाहुबल का भरोसा है जो उनका शरणागत है, वह सदा ही निर्भय है ॥६॥

शब्दार्थ—मीच = मौत। बरिआई = हठपूर्वक। खनगो = खोदेगा। सींव = सीमा।

विशेष—(१) 'जोपै ... सरै' कविवर रहीम ने भी यही कहा है—

'कहु 'रहीम' का करि सकै ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखनहार है माखन चाखनहार ॥'

(२) कोटि उपाय—जप यंत्र मंत्र तंत्र, नाटक चेटक, प्रयोग, छल कपट, अस्त्र शस्त्र शाप विष आदि।

(३) 'सो धौं ... सुजायन'—दुर्योधन ने पांडवों के साथ सभी छलबल किए। जुए में हराया, द्रौपदी का सतीत्व भ्रष्ट करना चाहा, लाक्षा गृह में पांडवों को जलाने का प्रयत्न किया, और भी अनेक प्रकार के षड्यंत्र रचे।

(४) इस पद से मिलता जुलता सूरदासजी का भी एक पद है—

जाकौं मनमोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तें जो जग बैर परै ॥
हिरनकसिपु परहारि थक्यौ, प्रहलाद न नैकु डरै।
अजहूँ लौं उत्तानपाद-सुत राज करत न मरै ॥
राखी लाज द्रुपद-तनया की, कोपित चीर हरै।
दुर्योधन को मान भंग करि, बसन प्रवाह भरै ॥
विप्र भक्त जग अघ कूप दिय, बलि नहिं बेद छरै।
दीनदयालु कृपालु कृपानिधि, काप कह्यौ परै ॥
जो सुरपति कोप्यौ ब्रज ऊपर, कहियौ कछु न सरै।
राखे ब्रजजन नंद के लाला, गिरि धरि बिरद धरै ॥

जाको विरद है गव प्रहारी, सो कसे बिसर।
'सूरदास' भगवत - भजन करि, सरन गहे उधर॥

१३८

कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक, धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिवस नाम टेरे॥१॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक संसय मेटयो।
जेहि कर कमल उठाइ बंधु ज्यों, परम प्रीति केवट भेंटयो॥२॥
जेहि कर कमल कृपालु गीध कहँ पिंड देइ निज धाम दियो।
जेहि कर बालि बिदारि दास हित, कपिकुल पति सुग्रीव कियो॥३॥
आयो सरन सभीत बिभीषन, जेहि कर कमल तिलक कीन्हा।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान देवन्ह दीन्हा॥४॥
सीतल सुखद छाहँ जेहि कर की, मेटति पाप ताप, माया।
निसि बासर तिहि कर सरोज की, चाहत तुलसिदास छाया॥५॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी! हे प्रभो! क्या आप कभी अपने उस कर-कमल को मेरे सिर पर रखेंगे जिससे आपने दुखी भक्तों को अभय कर दिया था जब उन्होंने पराधीन हो केवल एक बार आपके नाम का स्मरण किया था?॥१॥

जिस कर कमल से शिवजी का कठोर धनुष तोड़कर आपने महाराजा जनक का सन्देह दूर किया था और जिस कर-कमल से गुह निषाद को, भाई के समान उठाकर बड़े ही प्रेम से छाती से लगा लिया था॥२॥

हे कृपालो! जिस कर-कमल से आपने (जटायु) गीध को (पिता के समान) पिंडदान देकर अपना परमलोक प्रदान किया था और जिस हाथ से अपने सेवक के लिए बालि को मारकर सुग्रीव को वानर वंश का अधिपति बना लिया था॥३॥

जिस कर-कमल से अपने समय शरणागत विभीषण का राज्याभिषेक किया था और जिसमें धनुष-बाण चढ़ाकर राक्षसों का संहार कर देवताओं को अभयदान दिया था॥४॥

तथा जिस कर कमल की शीतल आनन्ददायक छाया से पाप संताप और दरिद्रता का नाश हो जाता है हे नाथ! आपके उसी कर-कमल की छाया (रक्षा) तुलसीदास रात दिन चाहता है॥५॥

शब्दार्थ—बारक=एक बार। तिलक=राज्याभिषेक। छाया=रक्षा से तात्पर्य है।

१ ६

दीनदयाल दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव, दुआर पुकारत आरत, सबकी सब सुखहानि भई है॥१॥

प्रभु के बचन वेद बुध सम्मत, मम मूरति महिदेवमई है।
तिनकी मति रिस राग-मोह मद लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥
राज समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुप कुचाल नई है।
नीति प्रतीति, प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेर हई है ॥३॥
आश्रम बरन-धरम बिरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है ॥४॥
सांति, सत्य, सुभरीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥५॥
परमारथ स्वारथ, साधन भये अफल, सफल नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर बिबस बिकल जामति न बई है ॥६॥
कलि-करनी बरनिये कहाँलौं करत फिरत बिनु टहल टई है।
तापर दाँत पीसि कर मीजत को जाने चित कहा ठई है ॥७॥
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर, ज्यों-ज्यों सीलबस ढील दई है।
सरुप बरजि तरजिये तरजनी कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है ॥८॥
दीजे दादि देखि नातो बलि मही मोद मंगल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं, राम अवध चितवनि चितई है ॥९॥
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि, करुना-बारि भूमि भिजई है।
राम राज भयो काज सगुन सुभ राजा राम जगत बिजई है ॥१०॥
समरथ बड़ो, सुजान सुसाहब, सुकृत सैन हारत जितई है।
सुजन सुभाव, सराहत सादर, अनायास साँसति बितई है ॥११॥
उथपे थपन, उजारि बसावन गई बहोरि बिरद सदई है।
तुलसी प्रभु आरत आरतिहर, अभयबाँह केहि-केहि न दई है ॥१२॥

भावार्थ—हे दीनदयालो! पाप, दारिद्र्य और दुःख इन तीनों दारुण तापों—भौतिक, दैविक दैहिक—से दुनिया जली जा रही है (इसके पहले के पदों में गोसाईंजी ने अपने ही दुःख निवेदन किए हैं, अब इस पद में सारे ही संसार की व्यथा निवेदन कर रहे हैं)। हे भगवन्! यह आर्त्त आपके द्वार पर पुकार रहा है। देखिए, सभी का सब प्रकार से सुख जाता रहा सभी लोग दुःखी दिखाई देते हैं ॥१॥

वेदों और पंडितों की सम्मति है और आपने भी स्वयं श्रीमुख से कहा है कि ब्राह्मण मेरी ही प्रतिमूर्ति हैं अर्थात् वे 'ब्रह्ममय' हैं। पर उनकी बुद्धि को क्रोध, राग, मोह, अहंकार, लोभ और लालच ने निगल लिया है उनमें सम, संतोष, दया, धर्म शान्ति तो रहे नहीं उलटे वे कामी, क्रोधी, मूढ़ और लोभी हो गये हैं ॥२॥

इसी तरह राजसमाज (क्षत्रिय-जाति) करोड़ों बुरी-बुरी बातों से भर गया है। वे लूटना, मारना, पर-स्त्री एवं पर धन का अपहरण करना अन्याय करके प्रजा का

सताना आदि) नित्य नई-नई पापपूर्ण चाल चल रहे हैं। नास्तिकता ने राजनीति, धर्म शास्त्र, श्रद्धा, भक्ति और कुल मर्यादा की प्रतिष्ठा को, ढूंढ़-ढूंढ़कर चौपट कर दिया है। सारांश यह कि जहाँ नास्तिकवाद का राज्य हुआ परमेश्वर के अस्तित्व को न माना, वहाँ धर्म कर्म कैसे रह सकते हैं? क्योंकि परमात्मा ही सब धर्मों का मूल है ॥३॥

संसार में न तो आश्रम धर्म रहा है और न वर्ण धर्म ही। लोक और वेद दोनों की मर्यादा नष्ट होती जा रही है न कोई लोकाचार मानता है, न वेदोक्त धर्म ही। प्रजा का ह्रास हो रहा है पाखंड और पाप में वह निरत हो रही है। सभी अपने अपने रंग में मस्त हैं अथवा मनमुखी हो गये हैं, कोई किसी की नहीं सुनता ॥४॥

शांति सत्य और सुमार्ग क्षीण हो गये हैं और दुराचार और छल-कपट बढ़ रहे हैं। सज्जन कष्ट पाते हैं और सज्जनता चिन्ता-ग्रस्त है। दुष्ट मौज कर रहे हैं और दुष्टता चैन में है ॥५॥

परमार्थ स्वार्थ में परिणत हो गया धर्म के नाम पर लोग पेट पालने लगे हैं। साधन निष्फल हो रहे हैं। सिद्धियाँ भी सच्ची नहीं उतरती हैं, झूठी जान पड़ती हैं, अथवा उनमें कोई सचाई नहीं रही है। कामधेनु रूपी पृथिवी कलियुग-रूपी कसाई के हाथ में ऐसी व्याकुल हो गई है कि उसमें जो बोया जाता है जमता ही नहीं (इसीसे जहाँ तहाँ दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं) ॥६॥

कलियुग की करनी कहाँ तक बखानी जाय? यह बिना काम का काम करता फिरता है। इतने पर भी दाँत पीस पीसकर हाथ मल रहा है मन ही मन मसोस रहा है कि अभी तो मैंने किया ही क्या। न जाने इसके मन में अभी और क्या-क्या है ॥७॥

ज्यों-ज्यों आप शील के कारण इसे टाल दे रहे हैं क्षमा करते जाते हैं त्यों त्यों यह नीच सिर पर चढ़ता जाता है। जरा क्रोध करके इसे डाँट तो दीजिए। यह तरजनी दिखाते ही कुम्हड़े की बतिये की नाईं मुरझा जायेगा दब जायगा ॥८॥

आपकी बलैया लेता हूँ, देखकर न्याय कर दीजिए नहीं तो अब पृथिवी आनन्द मंगल से खाली हो जानेवाली है। आनन्द मंगल का, यदि ऐसी ही दशा रही तो, कहीं नाम भी न सुनाई पड़ेगा। ऐसा कीजिए कि जिससे लोग सौभाग्यशाली होकर प्रेमपूर्वक कहें कि श्रीरामजी ने हमें कृपादृष्टि से निहारा है ॥९॥

मेरी यह विनती सुनकर, भगवान ने मेरी ओर आनन्द से देखा और मुस्करा कर करुणा के जल से पृथिवी को भिगो दिया (शान्ति की वर्षा कर दी।) बस, राम राज्य होने से सब काम सुलभ हो गये। शुभ शकुन होने लगे, क्योंकि महाराजा राम चन्द्र जी जगद्विजयी हैं। भाव यह कि जगद्विजयी श्रीराम के आगे कायर कलि की एक भी न चली ॥१०॥

सर्वशक्तिमान सुचतुर स्वामी ने पुण्य की सेना को हारने से जिता लिया, पापों का क्षय कर दिया। उनके सद्भक्त स्वभाव से ही आदरपूर्वक उनकी सराहना करते हैं कि स्वामी ने सहज ही सारी यातनाएँ दूर कर दीं ॥११॥

आपका बाना सदा से ही चला आता है कि जिनका कहीं ठौर ठिकाना न हो, उन्हें संस्थापित करना (जैसे, विभीषण और सुग्रीव को राजसिंहासन पर बिठा देना),

उजड़े हुए का बसाना और गई हुई वस्तु को फिर से दिला देना (जैसे रावण से डरे हुए देवताओं को फिर से स्वर्ग में बसा देना)। हे तुलसी! दुखियों के दुःख हरनेवाले भगवान ने किस किसको अभय बाँह नहीं दी? ॥१२॥

शब्दार्थ—दुरित=पाप। दुनी=दुनिया। तई=तच गई है। महिदेव=ब्राह्मण से आशय है। परमिति=परम्परा की रीति। हेतुवाद=नास्तिकवाद। हई=हनी नाश की। रई=रंगा, अनुरक्त हुई। सीदत=कष्ट पाता है। खलई=दुष्टता। सई=सहा सच्ची। गामर=गऊ मारनेवाला कमाई। वई=बोई हुई। टई=काम। जई=छोटा-सा फल, जिसे बतिया कहते हैं। दारि=याय। रितई=खाली। उथपे थपन=उजड़े हुए को बसानेवाला। सदई=सदा ही।

विशेष—(१) 'दीनदयालु तई है'—गोसाईंजी के हृदय में जगत के कल्याण की शुभभावना कितनी प्रबल थी। जगत के दुःखों को वह एक क्षण भी नहीं सह सकते थे। 'कवितावली' में भी उन्होंने इसी आशय के उदात्त कवित्त कहे हैं जैसे—

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोचबस
कहैं एक एकन सों कहाँ जाइ का करी?
बेदहू पुरान कही लोकहूँ बिलोकियतु
साँकरे समय पे राम, रावरे कृपा करी।
दारिद दसानन दबाय दुनी दीनबन्धु,
दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी॥'

(२) दाँत नातो बलि—किसी किसी ने इसे राजा बलि और उनका पृथिवी दानवाला' संकेत माना है, किन्तु यह खींचातानी है। स्पष्ट अर्थ तो नातो का नहीं तो' और बलि का 'बलि का बलिहारी है।

(३) 'अभय बाँह—अभय दान, निर्भय कर देना।

'निर्भय बढ़ाय पद।'

[१४०]

ते नर नरकरूप जीवत भव भजन-पद विमुख अभागी।
निसिबासर रुचि पाप, असुचि मन, खलमति, मलिन, निगमपथ-त्यागी॥१॥
नहिं सतसंग भजन नहिं हरि को, स्रवन न राम-कथा अनुरागी।
सुत बित-दार भवन ममता निसि सोवत अति न कबहुँ मति जागी॥२॥
तुलसिदास हरिनाम-सुधा तजि सठ, हठि, पियत विषय विष माँगी।
सूकर-स्वान सृगाल सरिस जन, जनमत जगत जननि दुख लागी॥३॥

भावार्थ—वे अभागे मनुष्य संसार में नरकरूप होकर जी रहे हैं जो जन्म मरण रूप भव भय से छुड़ा देनेवाले श्रीहरिचरणों से विमुख हैं। दिन रात उनकी रुचि पापों में ही रहती है। मन उनका अशुद्ध रहता है। उन दुष्टों की बुद्धि मलिन रहती है और उन्होंने वेदोक्तमार्ग छोड़ दिया है॥१॥

कभी

[illegible] के नामों का [illegible] करते [illegible] हैं [illegible] और [illegible] के [illegible] को श्रीराम की कृपा [illegible] है। [illegible] और [illegible] को और [illegible] बुद्धि (रूप स्त्री से) कभी [illegible] ही नहीं, उनके मन में स्वप्न में भी वैराग्य का [illegible] नहीं होता ॥२॥

हे तुलसीदास! [illegible] अमृत को छोड़कर [illegible] [illegible] (बार-बार [illegible] की कामना करके) [illegible] सूअर, कुत्ते और गीदड़ के समान इस संसार में [illegible] के लिए ही जन्म लेते हैं ॥३॥

शब्दार्थ—[illegible] ।

१४२

रामचन्द्र! रघुनायक! तुमसों हौं बिनती केहि भाँति करौं।
अघ अनेक अवलोकि आपने, अनघ नाम अनुमानि डरौं ॥१॥
पर दुख दुखी सुखी पर-सुख, संत सील नहिं हृदय धरौं।
देखि आनकी बिपति परम सुख, सुनि संपति बिनु आगि जरौं ॥२॥
भगति बिराग ग्यान साधन कहि बहुबिधि डहकत लोग फिरौं।
सिव-सरबस सुखधाम नाम तव, बेचि नरकप्रद उदर भरौं ॥३॥
जानत हौं निज पाप जलधि जिय, जल-सीकर सम सुनत लरौं।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि-सम रज तें निदरौं ॥४॥
नाना बेष बनाय दिवस निसि, परबित जेहि-तेहि जुगुति हरौं।
एको पल न कबहूँ अलोल चित, हित दै पद-सरोज सुमिरौं ॥५॥
जो आचरन बिचारहु मेरो, कलप कोटिलगि औटि मरौं।
तुलसिदास प्रभु कृपा बिलोकनि, गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं ॥६॥

भावार्थ—हे रघुकुल-श्रेष्ठ श्रीराम! मैं किस प्रकार आपसे विनती करूँ? अपने पापों की ओर देखकर तथा आपके अनघ अर्थात् पापरहित नाम का अनुमान कर मन-ही-मन मैं डर रहा हूँ। (इसलिए डरता हूँ कि पाप और पुण्य एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत हैं। दोनों में पृथिवी आकाश का अंतर है। रघुनाथजी मुझ पापी का उद्धार कब कैसे कर सकेंगे?) ॥१॥

दूसरे के दुःख से दुखी और दूसरे के सुख से सुखी होना जो संतों का शील स्वभाव है उसे मैं कभी हृदय में धारण नहीं करता हूँ। (फिर करता क्या हूँ सो सुनिए) दूसरों की विपत्ति देखकर खूब प्रसन्न होता हूँ और दूसरों की संपत्ति देखकर बिना ही आग के ईर्ष्या से जला जा रहा हूँ ॥२॥

भक्ति वैराग्य ज्ञान आदि साधना का उपदेश देता हुआ अनेक प्रकार से लोगों को ठगता फिरता हूँ। शिव का सर्वस्व आनन्द का धाम जो आपका नाम है, उसे बेचकर (राम नाम जपकर यह सिद्ध करता हूँ कि मैं राम का महान भक्त हूँ) पेट भरता हूँ, उस पेट को जो नरक भेजनेवाला है। सारांश यह कि इस पापी पेट के लिए मैं आपके नाम की ओट में अनेक पाप करता हूँ ॥३॥

यद्यपि यह जानता हूँ कि मेरे पाप समुद्र के समान अपार है फिर भी जब दूसरों के मुख से अपना जल बिन्दु के समान छोटा-सा पाप भी सुनता हूँ तो उनसे झगड़ने लगता हूँ। तात्पर्य यह कि सदा यही चाहता हूँ कि लोग मुझे पापी न कहें धर्मधुरन्धर कहें। और दूसरों के धूल के कण के समान अवगुण को सुमेरु पर्वत के समान महान् मानता हूँ। और यदि उनके गुण पर्वत के समान हैं तो उन्हें धूल के समान तुच्छ देखता हूँ। मतलब यह कि मुझे अपना ही सब कुछ अच्छा लगता है, दूसरों का नहीं, ऐसा स्वार्थी हूँ ॥४॥

अनेक भेष बना बनाकर दिन रात, जैसे-तैसे दूसरों का धन बटोरता फिरता हूँ। कभी, एक क्षण भी निश्चल चित्त से प्रेमपूर्वक आपके चरणारविन्दों का स्मरण नहीं करता ॥५॥

यदि आप मेरे आचरणों पर ही विचार करेंगे, मेरे पापों का लेखा लगाने बैठेंगे तो करोड़ों कल्प तक मुझे खौल-खौलकर मरना पड़ेगा, संसाररूपी कड़ाई में जलना होगा, जन्म मृत्यु के चक्र से कभी छुटकारा न मिलेगा। हे प्रभो! पर यदि आप अपनी कृपा-दृष्टि से मेरी ओर देख देंगे तो मैं तुलसीदास इस संसार को गाय के खुर के समान अनायास पार कर जाऊँगा ॥६॥

शब्दार्थ—ठहँकत = ठगता हुआ। सीकर = बूँद कण। बित्त = धन। अचलाल= स्थिर शान्त। औटि = खौलकर, जलकर।

विशेष—(१) परदुख-दुखी आदि जरौं—गोसाईंजी ने सन्तों और असन्तों के लक्षण विस्तार से रामचरितमानस में इस प्रकार गिनाये हैं —

विषय अलंपट सील-गुनाकर। परदुख दुख, सुख सुख देखे पर ॥
सम, अभूतरिपु विमद विरागी। लोभामर्ष-हर्ष भय-त्यागी ॥
कोमल चित दीनन पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहिं मानप्रद, आपु अमानी। भरत, प्रान-सम मम ते प्रानी ॥
+ × ×
निन्दास्तुति उभय सम ममता मम पदकंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन-मंदिर सुखपुंज ॥
खलन हृदय अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा परसम्पति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥
× × ×
काहू की जो सुनहिं बड़ाई। स्वाँस लेहिं जनु जूड़ी आई।
जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी होहिं मानहुँ जग नृपती ॥

(२) 'नानावेष'—मनुष्य पेट भरने के लिए क्या-क्या नहीं करता? कभी कवि बनता है, तो कभी चित्रकार। कभी साधु-सन्त बन जाता है तो कभी अवधूत फकीर। कभी गुलामी करने लगता है, तो कभी डाका डालता है। कभी उपदेशक बनता है, तो कभी धर्मध्वज महात्मा। कहाँ तक कहा जाय इससे जो कुछ भी हो सकता है वह सब पेटपूजा के लिए करने को तैयार रहता है।

(४) 'श्लोन —निश्चल शात चित्त से यदि एक भी घण भगवन्नाम स्मरण किया जाये तो मुक्ति हाथ जोडे सामने खडी ह । चित्त-वृत्ति निरोधात्मक योग सद्य फल देनेवाला ■ ।

१४२

सकुचत हौ अति राम कृपानिधि । क्योकरि विनय सुनावौं ।
सकल धरम विपरीत करत, केहि भाति नाथ मन भावौं ॥१॥
जानत हौ हरि रूप चराचर, मै हठि नैन न लावौ ।
अजन-केस सिखा जुवती तहँ लोचन सलभ पठावौ ॥२॥
स्रवननि को फल कथा तुम्हारी यह समझौ, समुझावौं ।
तिन्ह स्रवननि परदोष निरन्तर सुनि सुनि भरि भरि लावौं ॥३॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौं ।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यो, रटि रटि जनम नसावौ ॥४॥
'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि', कहि कहि सबहिं सिखावौं ।
हौ निज उर अभिमान मोह मद खल मण्डली बसावौं ॥५॥
जो तनु धरि हरिपद साधहि, जन सो बिनु काज गँवावा ।
हाटक घट भरि धरयो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौ ॥६॥
मन क्रम बचन लाइ कीन्हे अघ, ते करि जतन दुरावौ ।
पर प्रेरित इरषावस कबहुँक, किय कछु सुभ, सो जनावौ ॥७॥
बिप्र द्रोह जनु बाट परयो हठि, सबसो बैर बढावौ ।
ताहू पर निज मति बिलास सब सतन माझ गनावौ ॥८॥
निगम सेस सारद निहोरि जो अपने दोष कहावौ ।
तौ न सिराहिं कलप सत लगि प्रभु, कहा एक मुख गावौं ॥९॥
जो करनी आपनी बिचारौं, तौ कि सरन हौ आवौं ।
मदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहि दिखावौ ॥१०॥
तुलसिदास, प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहुँ तुमहि रिझावौ ।
नाथ-कृपा भवसिधु धेनुपद सम, जो जानि सिरावौ ॥११॥

भावाथ—हे कृपानिधि श्रीराम ! मुझे बडा सकोच हो रहा ह, म किस प्रकार आपको अपनी विनती सुनाऊँ ? जो कुछ भी म करता हूँ, वह सब धम के विरुद्ध ही किया करता हूँ । फिर भला, आपको म क्या प्रिय लगूगा ? तात्पय यह कि आपको तो धर्मात्मा ही प्यारे ह मुझ-सरीखे पापी नहा इससे मुझे आपके सम्मुख आने में सकोच होता ह ॥१॥

यद्यपि म यह जानता हूँ कि भगवान् सवत्र—जड और चत य म—व्यापक ह पर ■ भगवत-स्वरूप की ओर हठपवक ध्यान नही देता । म तो अपन नत्ररूपी पतिगों को कामिन रूपी अग्निशिखा में (जलन के लिए) भेजता रहता हू ॥२॥

मैं यह स्वयं समझता हूँ और दूसरों को भी समझाता हूँ, कि इन कानों की सार्थकता तो आपकी कथा सुनने में ही है, पर उन कानों से सदा दूसरों के दोष सुन सुनकर उनमें भर भरकर रखता हूँ ॥३॥

जिस जीभ से आपका गुणानुवाद करके बिना ही परिश्रम के परमानन्द पा सकता हूँ उसी जीभ से मेढक की भांति दूसरों की निन्दा रटा करता हूँ ॥४॥

मैं यह बात सबको समझा समझाकर सिखाता फिरता हूँ, कि हृदय को सर्वथा शुद्ध बनाओ, तभी भगवान् उसमें वास करेंगे। किन्तु मैंने स्वयं अपने हृदय में अहंकार अज्ञान और मद, इन दुष्टों का ही समाज बसा लिया है। (स्वयं तो महान् दुर्व्यसनी हूँ पर दूसरों को सज्जन बनने का उपदेश देता हूँ) ॥५॥

जिस मानव शरीर को धारणकर भक्त-जन वैष्णव पद प्राप्त करने की साधना करते हैं, उसे पाकर मैं व्यर्थ ही खो रहा हूँ। घर में तो सोने के घड़े में अमृत भरा रखा है पर उसे छोड़कर आकाश में कुआँ खुदा रहा हूँ। तात्पर्य यह कि यह जो कंचन-सी देह है और जिसमें आत्मस्वरूप अमृत भरा हुआ है, उसे छोड़कर काम-कांचनरूपी मृग जल की खोज में जहाँ तहाँ मारा मारा फिरता हूँ। जिसका अस्तित्व ही नहीं भला उस जगत में सुख की आशा कैसे हो सकती है ? ॥६॥

मन से, कर्म से और वचन से जो जो पाप किए हैं, उन्हें मैं यत्न कर-कर छिपा रहा हूँ। और दूसरों की प्रेरणा से, अथवा ईर्ष्यावश यदि कभी कोई अच्छा काम बन गया तो उस (ढिंढोरा पीटता हुआ) जताता फिरता हूँ ॥७॥

ब्राह्मणों के साथ द्रोह करना तो मानो मेरे हिस्से में ही पड़ गया है। जबरदस्ती ही सबसे वैर बिसाहता फिरता हूँ। (ये तो मेरे कर्म हैं, किन्तु) यह सब होते हुए भी, अपनी बुद्धि से अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करके अपने आपको सन्तों की पंक्ति में गिनता हूँ। यह सिद्ध करना चाहता हूँ कि लोग मुझे सन्त कहें ॥८॥

शेष शेषनाग सरस्वती आदि का निहोरा कर कर भी यदि मैं उनसे अपने पापों का बखान कराऊँ तब भी हे प्रभो! सौ कल्प तक वे समाप्त होने के नहीं। फिर, मैं एक मुख से उनका क्या वर्णन करूँ ॥९॥

यदि कहीं मैं अपनी करनी पर विचार करने लगूँ तो क्या मैं आपकी शरण में आने योग्य हूँ ? मैं इतना भारी पापी हूँ कि आपकी शरण में आ ही नहीं सकता, किन्तु आप रघुनाथजी का स्वभाव कोमल है, और शील असीम है यही बल मन को दिखाता रहता हूँ। तात्पर्य यह कि जब रघुनाथजी ऐसे सुशील और कोमल स्वभाववाले हैं, तो वे मुझ सरीखे पापियों और अपराधियों को शरण में लेकर क्या न उनका उद्धार करेंगे ? बस, यही मन को सदा साहस बँधाता रहता हूँ ॥१०॥

हे प्रभो! इस तुलसीदास के पास ऐसा एक भी गुण नहीं जिसके बल भरोसे पर वह आपको स्वप्न में भी प्रसन्न कर सके। किन्तु हे नाथ! आपकी कृपा के आगे यह संसार सागर गाय के खुर के समान है। यह जानकर मन में संतोष कर लेता हूँ (कि आपकी कृपा से, अपने में कोई साधन न होने पर भी मैं संसार-समुद्र को सहज ही पार कर जाऊंगा) ॥११॥

शब्दार्थ—भावों = अच्छा लगे। सिखा = दीपक की ज्योति, आग की ज्वाला। सलभ = (शलभ) पतिंगा। तावों = दृढता से भरता हूँ। भेक = मेंढक। खनावों = खोदता हूँ। बिलास = आनन्द। सिरावौं = सन्तोष करता हूँ।

विशेष—(१) 'धरम बिपरीत'—धर्म का मुख्य स्वरूप सत्य है। सत्य की अवहेलना कर जो कुछ भी किया जाता है वह धर्म विरुद्ध है, सदाचार नहीं, कदाचार है। दम्भ अधर्म की जड़ है, इसीका प्रतिपादन इस पद द्वारा किया गया है।

(२) 'अंजन केस सिखा'—इसके दो अर्थ हैं—

१ नेत्रों में अंजन लगाये, लटकारे काले केशवाली, दीपक की ज्योति के समान कामिनी।

२ काजल के समान केश ही जिस स्त्रीरूपी अग्नि की धूम्र शिखा है। साधारणतः, नेत्रों और केशों की मोहकता पर ही कामियों का ध्यान जाता है।

(३) हाटक घट खनावौं—सूरदासजी यों कहते हैं—

परम गंगजल छाडि पियासो, दुमति कूप खनावे।'

परन्तु इस उक्ति से गोसाइंजी की 'हाटक घट' वाली उक्ति कहीं अधिक मनोहारिणी है।

(४) मन क्रम-बचन—पाप पञ्च दोनों ही त्रिविध होते हैं। यहां पापों का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है—

१ मानसिक—जैसे परधन परस्त्री आदि पर ध्यान परहानि का चिंतन मन ही मन नास्तिक भाव इत्यादि।

२ कायिक—परस्त्री गमन हिंसा चोरी आदि।

३ वाचनिक—मिथ्या भाषण परनिंदा, कठोर वचन इत्यादि।

(५) सुनु रघुपति की—कदाचित निम्नलिखित श्रीराम की इस प्रतिज्ञा का स्मरण कर गोसाइंजी ने यह कहा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो, ददाम्येतद्व्रतं मम।'

[वाल्मीकि रामायण

१४३

सुनहु राम रघुबीर गुसाईं मन अनीति रत मेरो।
चरन सरोज बिसारि तिहारे, निसिदिन फिरत अनेरो ॥१॥
मानत नाहिं निगम अनुसासन त्रास न काहू केरो।
भूल्यो सूल करम-कोल्हुन्ह तिल ज्यों बहु बारनि पेरो ॥२॥
जहँ सतसंग कथा माधव की सपनेहुँ करत न फेरो।
लोभ मोह मद काम-कोह रत तिन्ह सों प्रेम घनेरो ॥३॥
पर गुन सुनत दाह पर दूषन सुनत हरख बहुतेरो।
आप पाप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ॥४॥

साधन फल स्रुति सार नाम तव, भव सरिता कहँ बेरो ।
सो पर कर काँकिनी लागि सठ, बेंचि होत हठ चेरो ॥५॥
कबहुँक हौं संगति सुभाव तें, जाउँ सुमारग नेरो ।
तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भटभेरो ॥६॥
इक हौं दीन मलीन हीनमति, बिपति जाल अति घेरो ।
तापर सहि न जाय करुनानिधि, मन को दुसह दरेरो ॥७॥
हारि परयो करि जतन बहुत बिधि, तातें कहत सबेरो ।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब, हृदय करहु तुम डेरो ॥८॥

भावार्थ—हे रामजी ! हे रघुनाथजी ! हे प्रभो ! सुनिए मेरा मन अन्याय में ही लीन रहता है। आपके चरणारविन्दों को भूलकर दिन रात बेकार इधर उधर भटकता फिरता है, विषयों की ओर दौड़ता रहता है ॥१॥

न तो वह वेद की आज्ञा मानता है, और न उसे किसी का डर ही है। कई बार कामरूपी कोल्हू में वह तिलों की तरह पेरा जा चुका है पर अब सारा कष्ट भूल गया है (यह खबर नहीं कि दुष्कर्म करने से फिर वैसी ही दुर्दशा होगी) ॥२॥

जहाँ सन्त समागम होता है अथवा भगवत्कथा होती है, वहाँ स्वप्न में भी मेरा यह मन चक्कर नहीं लगाता, भूलकर भी उधर नहीं जाता। लोभ अज्ञान अहंकार काम और क्रोध में ही जो पगे रहते हैं उन्हीं दुष्टों से वह अधिक प्रेम करता है ॥३॥

दूसरों के गुणों को सुनकर वह (डाह के मारे) जला जा रहा है, और जब दूसरों की बुराई सुनता है तब फूलकर कुप्पा हो जाता है ! आप तो स्वयं पापों का नगर बसा रहा है पर दूसरे के (पापों के) खेड़े को भी नहीं देख सकता। भाव यह कि अपने बड़े बड़े पापों पर भी कुछ ध्यान न देकर दूसरों के जरा से पाप पर उसका उपहास उड़ाता है ॥४॥

आपका नाम जो सब साधनों का फलस्वरूप है वेदों का सार है, और संसाररूपी नदी पार करने के लिए बेड़ा रूप है, उसे दूसरों के हाथ में वह दुष्ट कौड़ी कौड़ी के लिए बेचता हुआ हठपूर्वक उनका गुलाम बनता फिरता है एक एक कौड़ी के लिए आपका नाम सुनाता फिरता है ॥५॥

यदि कभी सत्संगवश अथवा दैववश सन्मार्ग के पास जाता भी हूँ तो इन्द्रियों की आसक्ति मन को कुमनोरथरूपी गड्ढे में धकेल देती है ॥६॥

एक तो मैं वैसे ही दीन पापी और दुर्बुद्धि हूँ, विपत्तियों के जाल में फँसा पड़ा हूँ, तिस पर हे करुणालय ! इस मन का असह्य धक्का लग रहा है। मेरा मैं (निर्बल जीव) इस (प्रबल) मन का जोर का धक्का कैसे सह सकता हूँ ॥७॥

अनेक यत्न कर-कर हार गया इसलिए मैं पहले से ही कह देता हूँ कि तुलसीदास का यह भय (जन्म-मरण का दुःख) तभी दूर होगा जब आप उसके हृदय में निवास करेंगे, केवल आपके ही ध्यान से मन की चंचल वृत्तियों का निरोध सम्भव है ॥८॥

शब्दार्थ—अनुशासन = आज्ञा । कोह=क्रोध । घनेरो = बहुत ज्यादा । खेरो =

राढ़ा, छोटा सा गाँव। खरा = बड़ा। कौड़िनो = कौड़ी, छदाम। नशे = नाश। ?हरा = घबरा।

विशेष—(१) कौड़िनो—'अग्नि-?राग' के अनुसार कौड़िगा अनुप्रासा अर्थात् पण के (पल के) चौथाई भाग का का ?गा ?रन है, छदाम या कौड़िया से तात्पर्य है।

(२) अतन बहुत विधि नाग ?म और अविनश्वरता ज्ञापन।

१४४

सो धौं को, जो नाम लाज तें नहिं राख्यो रघुबीर।
कारुनीक बिनु कारन ही हरि, हरी सकल भव भीर ॥१॥
बेद बिदित, जग बिदित अजामिल बिप्र-बंधु अघ-धाम।
घोर जमालय जात निवार्‌यो, सुत हित सुमिरत नाम ॥२॥
पसु पामर अभिमान सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह।
सुमिरत सकृत सपदि आये प्रभु हर्‌यो दुसह उर-दाह ॥३॥
ब्याध, निषाद, गीध, गनिकादिक, अगनित औगुन मूल।
नाम ओट तें राम सबनि की, दूरि करी सब सूल ॥४॥
केहि आचरण घाटि हौं तिन तें रघुकुल भूषन भूप।
सीदत तुलसिदास निसिबासर पर्‌यो भीम तम कूप ॥५॥

भावार्थ—ऐसा कौन है जिसे श्रीरघुनाथजी ने अपने नाम की लाज से नहीं अपनाया, और बिना ही कारण के करुणा करनेवाले श्रीहरि ने उसका जन्म मरण भय दूर नहीं कर दिया ? ॥१॥

वेद में प्रकट है और संसार में भी प्रसिद्ध है कि अजामिल, जाति का ब्राह्मण महान पापों का आश्रय-स्थान था महान् पापकर्मा था। किन्तु जब यमलोक जाने लगा, तो उसने अपने पुत्र के बहाने आपका 'नारायण' नाम पुकारा, तब आपने उसे यमलोक जाने से रोक दिया। (धोखे से ही 'नारायण' का स्मरण करने से वह मुक्त हो गया फिर भला जो जानकर हरि नाम-स्मरण करेगा, उसकी सद्गति क्या न होगी ?) ॥२॥

महान् अभिमानी पामर पशु हाथी को मगर ने पकड़ लिया, तब उसके एक ही बार स्मरण करने पर हे प्रभो ! आप तत्क्षण वहाँ पहुँचे और उसकी असह्य हार्दिक पीड़ा को दूर कर दिया (उसे दुर्लभ परम पद प्रदान कर दिया।) ॥३॥

व्याध (वाल्मीकि) निषाद (गुह) गीध (जटायु) गणिका (पिंगला) इत्यादि जीव अगणित दोषों की जड़ थे किन्तु हे श्रीराम ! आपने अपने नाम की ओट से उनके सारे कष्टों का नाश कर दिया ॥४॥

हे रघुवंश भूषण ! इन सबों से मैं किस आचरण में कम हूँ ? फिर भी मैं तुलसीदास रात दिन भयंकर अज्ञान रूप में पड़ा हुआ दुःख भोग रहा हूँ। (अब आपने बड़े बड़े दुराचारियों का भी उद्धार कर दिया, तब मुझ पापी को क्यों भुलाए बैठे हो ! मुझे

मो ससार सागर से पार कर दीजिए न) ॥५॥

विशेष—(१) इस पद का, पद १४३ से सम्बन्ध है। उसके अन्त में कहा गया कि 'हृदय करहु तुम डेरा।' यहाँ यह प्रश्न उठता है, कि जब हृदय अपवित्र है तब उसमें भगवान् का 'डेरा' अर्थात् निवास कैसे हो सकेगा? इसके समाधान में यह पद लिखा जान पड़ता है, कि सो धौं का जो नाम लाज तें नहिं राख्यो रघुबीर इत्यादि।

(२) 'तमकूप'—अविद्यारूपी कूप। सत को असत और असत को सत मान लेना, अथवा आत्मा अनात्मा का यथार्थ ज्ञान न होना ही अज्ञान-कूप' है।

१४५

कृपासिंधु, जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे।
जब जहँ तुमहिं पुकारत आरत, तब तिन्हके दुख दाहे ॥१॥
गज, प्रहलाद, पाडुसुत, कपि सबको रिपु-सकट मेट्यो।
प्रनत बन्धु भय विकल विभीषन उठि सो भरत ज्यों भेंट्यो ॥२॥
मैं तुम्हरो लेइ नाम ग्राम इक उर आपने बसावौं।
भजन विवेक, विराग लोग भले, मै क्रम-क्रम करि ल्यावौं ॥३॥
सुनि रिसभरे कुटिल कामादिक, करहिं जोर बरिआईं।
तिन्हहिं उजारि नारि-अरि-धन पुर राखहिं राम गुसाई ॥४॥
सम-सेवा छल दान-दण्ड हौं रचि उपाय पचि हारयो।
बिनु कारन को कलह बड़ो दुख प्रभु सों प्रगटि पुकार्यो ॥५॥
सुर स्वारथी अनीस, अलायक, निठुर, दया चित नाहीं।
जाउँ कहाँ, को बिपति निवारक, भव-तारक जग माहीं? ॥६॥
तुलसी जदपि पोच तउ तुम्हरो, और न काहू केरो।
दीजै भक्ति बाँह बारक ज्यों सुबस बसै अब खेरो ॥७॥

भावार्थ—हे कृपासागर! तुम्हारा यह दीन दास तुम्हारे द्वार पर न्याय क्यों नहीं पा रहा है? (इसका इन्साफ़ क्यों नहीं किया जाता?) जब जहाँ पर दुखिया ने आर्त होकर तुम्हें याद किया तब वहीं पर उसी समय, तुमने उनके दुःख दूर कर दिये (ऐसा तुम्हारा स्वभाव है पर मेरे लिए न जाने क्यों तुमने अपनी प्रकृति बदल दी) ॥१॥

गजेन्द्र, प्रह्लाद, पाण्डव, सुग्रीव आदि सभी के शत्रुओं द्वारा दिये गये कष्टों को तुमने दूर कर दिया। भाई रावण के भय से व्याकुल शरणागत विभीषण को उठाकर तुमने भरत की भाँति छाती से लगा लिया ॥२॥

मैं तुम्हारा नाम लेकर अपने हृदय में एक गाँव बसाना चाहता हूँ। उसमें बसाने के लिए मैं धीरे धीरे भजन, विवेक, वैराग्य आदि सज्जनों को इधर उधर से लाता हूँ। (मैं हृदय में जैसे-तैसे सद्भावों को स्थान देता हूँ) ॥३॥

यह सुनकर क्रोधित हो दुष्ट काम क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि जोर जबरदस्ती करते हैं। उन बेचारे भले आदमियों को उजाड़ उजाड़कर, हे प्रभो!

धन-सम्पत्ति आदि भोगजाल को सा-गाकर बगा देते हैं (तब आ निर्वाह हो ?) ॥४॥

जप, भजन और सेवा-गुणगान करते तथा और और भी अनेक उपाय हैं। (पर य नहीं मान रहे) बिना ही कारण के सहायक सदे महान् दुःख को मान भी भुलाकर तुम्हारे सामने निरन्तर कर

(यदि कहा जाय कि अन्य देवताओं को क्यों नहीं अपना दुःख सुनाया, तो) वे देवता स्वार्थी, असमर्थ, अयोग्य और निष्ठुर हैं। उनका चित्त तनिक भी नहीं पिघलता। कहाँ जाऊँ ? कौन विपत्ति दूर करनेवाला है ? कौन इस संसार-सागर से पार उतारने वाला है ? (कोई भी तो नहीं दीख पड़ता) ॥६॥

तुलसी यद्यपि नीच है, पर है तो तुम्हारा ही और किसी दूसरे का गुलाम तो नहीं है। अपना जानकर एक बार भक्तिरूपी बाँह दे दो जिससे तुम्हारे नाम का यह खेड़ा अच्छी तरह आबाद हो जाय। (भाव यह है, कि हृदय में एक तुम्हारी भक्ति के प्रताप से ही ज्ञान, विवेक, वैराग्य आदि सद्भावों का उदय और काम-क्रोधादि का नाश होगा ॥७॥

शब्दार्थ—दादि = न्याय, इंसाफ। दाहे = जला दिये, नष्ट किए। ल्यावौं= ले जाऊँ। उजारि=उजाड़कर। अनीस=असमर्थ, निःशक्त। बारक = बार+एक, एकबार। खेरो=खेड़ा, छोटा सा गाँव।

विशेष—(१) 'कपि'—सुग्रीव से तात्पर्य है।

(२) विभीषन भेटयो—विभीषण ने ज्योंही यह कहा कि—

दीनदयालु कहावत केसव' हौं अति दीनदसा गह्यो गाढ़ो।
रावन के अघ-ओघ में केसव ! बूड़तहौं बर ही गहि काढ़ो॥
ज्यों गज की प्रहलाद की कीरति, त्योंहीं विभीषन को जस बाढ़ो।
आरत बन्धु ! पुकार सुनो किन, आरत हौं तो पुकारत ठाढ़ो।'

[रामचन्द्रिका

त्योंही श्रीरघुनाथजी ने उसे हृदय से लगा लिया—

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेखा।
दीनबचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा॥

[रामचरितमानस

[१४६]

हौं सब विधि राम, रावरो चाहत भयो चेरो।
ठौर-ठौर साहिबी होत है, ख्याल काल कलि केरो॥१॥
काल-कम इंद्रिय विषय गाहकगने घेरो।
हौं न कबूलत बाधिके मोल करत करेरो॥२॥
बंदि छोर तेरो नाम है बिरुदैत बड़ेरो।
मैं कह्यो तब छल प्रीति कै माँग उर डेरो॥३॥

नाम ओट अबलगि बच्यो मलजुग जग जेरो।
अब गरीबजन पोषिये, पाइबो न हेरो ॥४॥
जेहि कौतुक (बक) स्वान को प्रभु न्याय निबेरो।
तेहि कौतुक कहिय कृपालु ! 'तुलसी है मेरा' ॥५॥

भावार्थ—हे रामजी ! मैं सब प्रकार से आपका दास बनना चाहता हूँ, पर यहाँ तो ठौर ठौर पर साहबी हो रही है। (मन अपनी प्रभुता जमा रहा है, इन्द्रियाँ अलग ही अपना आधिपत्य दिखा रही हैं। अब मैं किस किस की गुलामी करता फिरूँ ?) यह सब कौतुक कलिकाल का है ॥१॥

काल, कर्म और इन्द्रियरूपी ग्राहकों ने मुझे घेर लिया है। जब मैं उनके हाथ बिकना कबूल नहीं करता तब वे मुझे बाँधकर मुझ पर कड़ा दाम चढ़ाते हैं, जैसे-तैसे लालच दिखा दिखाकर अपने अधीन करना चाहते हैं ॥२॥

आपका नाम बंधन से मुक्त कर देनेवाला है और आपका बाना भी बड़ा है। जब मैंने उन (ग्राहकों) से कहा, कि मैं तो रघुनाथजी के हाथ बिक चुका हूँ, तब वे कपटभरा प्रेम दिखाकर मुझसे मेरे हृदय में बसने के लिए जगह माँगने लगे। (अब मैं क्या करूँ ? यदि उन्हें स्थान दिये देता हूँ तो अभी तो वे दीनता दिखा रहे हैं, पर जगह मिलते ही धीरे धीरे उस पर अपना अधिकार भी कर लेंगे, और मुझे धता बता देंगे)॥३॥

अब तक मैं आपके नाम के सहारे बचा रहा (नहीं तो कभी का इन ग्राहकों के हाथ बिक गया होता, इन्द्रिय लोलुप हो गया होता) पर अब यह कलि मुझे परेशान कर रहा है। अतः अब इस गरीब गुलाम का पालन कीजिए, नहीं तो फिर यह खोजने से भी न मिलेगा (कलियुग इसका नाम निशान तक मिटा देगा, 'रामदास' से 'कामदास' बना लेगा) ॥४॥

हे नाथ ! आपने जिस कौतुक से पक्षी (उल्लू अथवा बगुले) और कुत्ते का फ़ैसला कर दिया था, उसी लीला से यह भी कह दीजिए कि तुलसी मेरा है (बस, इतना कह देने से कलियुग का इस पर कुछ भी वश न चलेगा, अपना-सा मुँह लिये चला जाएगा) ॥५॥

शब्दार्थ—करेरो = कड़ा। बिरुदत=बानावाने। मलजुग = कलयुग। जेरो= जेर माने परेशान करना। हेरो=ढूँढने पर। बक = बगुला। निबेरो=फ़ैसला कर दिया।

विशेष—(१) 'हौं सब केरो'—कविवर बिहारी भी यही चाहते हैं—

'हरि तुम सों कीजत यहै, बिनती बार हजार।
जेहि-तेहि भाँति डर्‌यो रहौं, पर्‌यो रहौं दरबार।'

(२) 'ठौर ठौर साहिबी'—नाई की बारात में सभी ठाकुर हो रहे हैं।

(३) इस पद में गोसाईंजी ने 'साहिबी', 'ख्याल', 'कबूलत', 'करेरो' इन फ़ारसी शब्दों का प्रयोग किया है। ये प्रयोग, बोलचाल की भाषा में आने से सरस बन गये हैं।

१४७

कृपासिंधु ताते रहौं निसिदिन मन मारे।
महाराज, लाज आपुही निज जाँघ उघारे ॥१॥

मिले रहैं, मार्‌यो चहैं कामादि संघाती।
मो बिनु रहैं न, मेरियै जारैं छल छाती ॥२॥
बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली।
कियो कथक को दंड हौं जड़ करम कुचाली ॥३॥
देखी सुनी न आजुलौं अपनायनि ऐसी।
करहिं सबै सिर मेरे ही फिरि परै अनैसी ॥४॥
बड़े अलेखी लखि परैं, परिहरे न जाहीं।
असमंजस में मगन हौं, लीजै गहि बाहीं ॥५॥
बारक बलि अवलोकिये, कौतुक जन जी को।
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को ॥६॥

भावार्थ—हे कृपासागर ! इसीलिए मैं रात दिन मन मारकर रहता हूँ कि महाराज ! अपनी जाँघ उघाड़ने से अपनी ही लाज जाती है, अपने हाथों अपना परदा खोलने से खुद ही बेशर्म बनना पड़ता है ॥१॥

यह काम, क्रोध आदि साथी मिले भी रहते हैं और मारना भी चाहते हैं, ऐसे कपटी हैं ! वे बिना मेरे रह भी नहीं सकते, अर्थात् जब तक मुझमें 'जीवत्व' भाव है तभी तक काम, क्रोध आदि का अस्तित्व है। और मेरी ही छलपूर्वक छाती जलाते हैं। (जिस पत्तल में खाते हैं उसी में छेद करते हैं !) ॥२॥

यह जानकर कि ये मेरे हृदय में बसते हैं, प्रेमपूर्वक मैंने इन सबकी रुचि भी पूरी कर दी, अर्थात् सारे विषय भोग चुका हूँ, फिर भी इन दुष्टों और कुचालियों ने मुझे कत्थक की लकड़ी बना रखा है (लकड़ी के इशारे से जैसे कत्थक लड़कों को नाच नचाना सिखाता है वैसे मुझे नाचना पड़ता है) ॥३॥

आज तक मैंने ऐसी पराधीनता न तो देखी है, और न सुनी ही है। सब तो करते हैं सारे आप, और जो कुछ बुराई होता है, वह मेरे मत्थे मढ़ी जाती है। (इन्द्रियाँ भोग विलास करती हैं और कुफल भोगना पड़ता है अनेक जन्मों तक बेचारे जीव को ! क्या अन्याय है !) ॥४॥

ये सब ऐसे विचित्र अन्यायी हैं कि देखने में तो आते नहीं (अज्ञान के मारे इनकी चाल समझ में नहीं आती) और छोड़ भी दूँ तो छोड़ने को जी नहीं चाहता। हे प्रभो ! इसी दुविधा में पड़ा हूँ। बस, अब हाथ पकड़कर मुझे निकाल लीजिए (नहीं तो, इस संसार-सागर में डूबने ही वाला हूँ) ॥५॥

आपकी बलैयाँ लेता हूँ कृपाकर एक बार अपने इस दास का यह कौतुक तो देखिए। आपके देखते ही तुलसी का दुःख दूर हो जायेगा (क्योंकि ब्रह्मदर्शन मात्र से जन्म-मरण छूट जाता है) ॥६॥

शब्दार्थ—मनमारे = उदास। संघाती = साथी। कथक = कत्थक, नाचनेवाला। दंड = लकड़ी। अनैसी = अनिष्ट। अलेखी = अन्यायी, विचित्र।

विशेष—(१) इस पद में विषयों की दुर्दम्य प्रबलता दिखाई गई है। काम, क्रोध

आदि विषय भारी धोखेबाज हैं। इनके कहे पर चलें तो निबाह नहीं और इनसे अलग रहें तो भी गुजारा नहीं। ये नाच-नाचकर भी नहीं छोड़ते। जीव को इनके अधीन होकर, अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। भारी विडम्बना है! भगवत-कृपा से ही इनसे पिंड छूट सकता है।

१४८

कहौं कौन मुँह लाइ कै रघुबीर गुसाईं।
सकुचत समुझत आपनी सब साईं दुहाईं ॥१॥
सेवत बस, सुमिरत सखा, सरनागत सो हौं।
गुनगन-सीतानाथ के चित करत न हौं हौं ॥२॥
कृपासिन्धु बन्धु दीन के आरत हितकारी।
प्रनत-पाल बिरुदावली सुनि जानि बिसारी ॥३॥
सेइ न धेइ न सुमिरि कै पद प्रीति सुधारी।
पाइ सुसाहिब रामसो, भरि पेट बिगारी ॥४॥
नाथ गरीबनिवाज हैं, मैं गही न गरीबी।
तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीबी ॥५॥

भावार्थ—हे रघुवीर! हे प्रभो! क्या मुँह लेकर आपसे कुछ कहूँ? स्वामी की सौगन्ध है जब मैं अपनी करनी की ओर देखता हूँ तब सकोच के मारे कुछ कह नहीं सकता ॥१॥

आप सेवा करने से वश में हो जाते हैं, स्मरण करने से मित्र बन जाते हैं, और शरण में आने से सामने प्रकट हो जाते हैं। ऐसे जो आपके गुण-समूह हैं उन पर भी मैं ध्यान नहीं दे रहा हूँ ॥२॥

आप कृपा के समुद्र हैं दीनों के बन्धु हैं दुखियों के हितू हैं, और शरणागतों के पालनहार हैं ऐसी आपकी विरुदावली सुनकर और जानते हुए भी मैं भूल गया हूँ ॥३॥

न तो सेवा ही की, और न ध्यान ही किया। स्मरण करके आपके चरणों में सच्चा प्रेम भी तो नहीं किया। आप जैसे श्रेष्ठ स्वामी को पाकर भी मुझसे जितना भी हो सकता, उतना बिगाड़-ही बिगाड़ किया। भाव, अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी ॥४॥

आप दीनोंपर कृपा करनेवाले हैं पर मैंने दीनता धारण नहीं की। भाव यह है कि देहाभिमान के कारण मुझमें कभी दैन्य भाव नहीं आया सदा ऐंठ ही बनी रही। फिर दीन वत्सल भगवान कृपा करें तो कैसे? अतः हे नाथ! अब अपनी ओर देखकर जो आपसे बन पड़े, वही कीजिए। साराश यह, कि आप बिगड़ों के बनानेवाले हैं सो मुझ पर भी कृपा अवश्य करेंगे ॥५॥

शब्दार्थ—हौं हौं = मैं हूँ। धेइ = ध्यान करके। कीबी = कीजिए।

विशेष—(१) मैं गही न गरीबी—स्वर्गीय भट्टजी ने इसका अर्थ यह लिखा है—

'(मैं ऐसा नीच हूँ कि) मुझे गरीबी भी ग्रहण नहीं करती। यह अर्थ सीधा

तानी से किया गया जान पड़ता है। इसका सीधा ज्यों-का-त्यों अर्थ तो यही हो सकता है कि मैंने गरीबी नहीं गही, न कि यह, कि मुझे गरीबी भी नहीं ग्रहण करती।

(२) 'कौरी'—यह बुंदेलखण्डी प्रयोग 'करबी' से मिलता-जुलता है। बिहारी ने भी 'कौरी' का प्रयोग किया है।

१४६

कहाँ जाउँ, कासों कहौं, और ठौर न मेरे।
जनम गँवायो तेरेहि द्वार किंकर तेरे ॥१॥
मैं तो बिगारी नाथ सों आरति के लीन्हे।
ताहि कृपानिधि क्यों बनै मेरी सी कीन्हे ॥२॥
दिन दुरदिन, दिन दुरदसा दिन दुख दिनदूषन।
जबलौं तू न बिलोकिहै रघुबंस बिभूषन ॥३॥
दई पीठ बिनु डीठ मैं, तुम बिस्व बिलोचन।
तो सों तुही न दूसरो नत-सोच बिमोचन ॥४॥
पराधीन देव! दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं।
बोलनिहारे सों करै बलि बिनय की झाईं ॥५॥
आपु देखि मोहि देखिये जन मानिय साचो।
बडी ओट रामनाम की जेहि लई सो बाचो ॥६॥
रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है।
ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है ॥७॥

भावार्थ—कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ! मुझे कोई और ठौर नहीं। तेरे ही दरवाजे पर (पड़े-पड़े) जिन्दगी काटी है और तेरा ही गुलाम रहा हूँ। मतलब यह कि मैं सब तरह से तेरा ही हूँ किसी दूसरे का नहीं ॥१॥

दुःखों से सताये जाने के कारण हे नाथ! मैं तो सारी करनी बिगाड़ चुका हूँ। अब हे कृपानिधि! यदि तूने भी मेरे लिए वैसा व्यवहार किया तब तो हो चुका! भाव यह कि मुझसे तो सारा बिगाड़ ही हुआ है अब तेरे हाथ है तू सुधार ले, क्योंकि तू दया का समुद्र है ॥२॥

हे रघुकुल में श्रेष्ठ! जब तक तूने (इस जीव की ओर) नहीं देखा। (कृपा नहीं की) तब तक नित्य ही खोटे दिन नित्य ही बुरी दशा नित्य ही दुःख और नित्य ही दोष भगते रहेंगे ॥३॥

मैं तुझे पीठ दिये फिरता हूँ तुझसे विमुख हो रहा हूँ क्योंकि मैं दृष्टिहीन हूँ अन्धा हूँ पर तू तो संसार मात्र का द्रष्टा है न? भाव यह कि तू मुझसे विमुख कैसे होगा? तुझ-सा तू ही है। दूसरा कौन है, जिससे तेरी उपमा दूँ? दीन-दुखियों का संकट दूर करने वाला एक तू ही है ॥४॥

हे देव! मैं परतन्त्र हूँ दीन हूँ पर तू तो स्वतन्त्र है स्वामी है। बलिहारी! (पराय

रूप), वालनेवाले से क्या उसकी परछाई विनय कर सकती है? अर्थात यह जड़ चैतन्य विभु से विनती नहीं कर सकता ॥५॥

अतएव तू पहले अपनी ओर देख, तब मेरी ओर देख, तभी इस दास को सच्चा मानना। राम-नाम की ओट बड़ी भारी है। जिस किसी ने भी रामनाम का सहारा लिया वह (जन्म-मृत्यु भय से) बच गया ॥६॥

हे राम! तेरी रहनी और तेरी रीति सदा मेरे हृदय में नित्य उमंग भरती रहती है, तेरा शील स्वभाव विचारकर मैं मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा हूँ, कि अब मेरी सारी बिगड़ी बन जायेगा। बस, यह तुलसी तेरा है जैसे भी हो, इस पर कृपाकर, इसे तू अंगीकार कर ले ॥७॥

शब्दार्थ—किंकर = सेवक। आरति के लीन्हें = क्लेशित होने के कारण। दिन= नित्य से तात्पर्य है। छाइ = छाया। बाँचो = बच गया।

विशेष—(१) 'कृपा'=श्रीभगवद्गुणदर्पण में 'कृपा' का लक्षण निम्नलिखित माना गया है—

'रक्षणे सर्वभूतानामहमेवपरो विभुः।
इति सामर्थ्य सधानं कृपा सा परमेश्वरी॥'

(२) पराधीन गुसाईं—ब्रह्म-जीव के सम्बन्ध में गोसाईंजी ने रामचरितमानस में स्पष्ट लिखा है—

'परबस जीव, स्वबस भगवंता। जीव अनेक, एक श्रीकंता॥'

यहाँ, साख्य का प्रतिपादन किया गया है, न कि अद्वैत वेदान्त का।

१५०

रामभद्र! मोहि आपनो सोच है अरु नाहीं।
जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं॥१॥
नातो बड़े समर्थ सो इक ओर किधौं हूँ।
ताको मोसे अति घने, मोको एकै तूँ॥२॥
बड़ी गलानि हिय हानि है सर्वग्य गुसाईं।
कूर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाईं॥३॥
भलो पोच राम को कहैं मोहि सब नरनारी।
बिगरे सेवक स्वान ज्यों साहिब सिर गारी॥४॥
असमंजस मन को मिटै सो उपाय न सूझै।
दीनबंधु कीजै सोई बनि परै जो बूझै॥५॥
बिरदावली बिलोकिये तिन्हमे कोउ हौं हौं।
तुलसी प्रभु को परिहर्यो सरनागत सोहौं॥६॥

भावार्थ—हे कल्याण-स्वरूप श्रीराम! मुझे अपना सोच है भी, और नहीं भी है। कारण कि जितने भी जीव हैं वे सभी संसार में दुःख के भाजन हैं, सभी **दुखी हैं।**

मुझे सोच तो इस बात का है कि हाय! मैं संसार सागर में ही डूबा पड़ा हूँ अभी तक मेरा उद्धार नहीं हुआ। और निश्चिन्त इसलिए हूँ कि जब सभी जीवों की मेरी ही जैसी दशा है तो मुझे (कर्मफल भोगने में) कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥१॥

पर यह तो बताइए कि, क्या आप-सरीखे बड़े समर्थ के साथ सिर्फ एक ही, (मेरी ही) ओर से सम्बन्ध है? क्या, जिस प्रकार मैं आपको अपना मानता हूँ वैसे आप मुझे न मानेंगे? (एकांगी ही प्रेम रखेंगे क्या?) इसलिए आपके लिए तो मुझ-जैसे अनेक हैं किन्तु मेरे लिए तो एक आप ही हैं। (आप चाहें तो मुझसे भले ही निरपेक्ष हो जाएँ, पर मैं आपसे विमुख होने का नहीं) ॥२॥

हे नाथ! आप तो घट घट की जानने हैं मुझे बड़ी ग्लानि हो रही है और हृदय में इसे मैं एक हानि भी समझता हूँ कि हूँ तो मैं दुष्ट और कुसेवक पर बातें ऐसी कर रहा हूँ, जैसे कोई सच्चा सुसेवक करता है। (मेरा यह बनावटीपन आपके आगे कैसे छिप सकता है, क्योंकि आप तो सर्वज्ञ हैं) ॥३॥

भला हूँ या बुरा पर कहते तो सभी स्त्री-पुरुष मुझे 'राम का' ही हैं। सेवक और कुत्ते के बिगड़ने से स्वामी के ही सिर गालियाँ पड़ती हैं। (तात्पर्य यह कि यदि मैं खोटाई करूँगा, तो लोग यही कहेंगे कि बुरा हो उस राम का जिसके ऐसे ऐसे नीच सेवक हैं) ॥४॥

मुझे वह उपाय भी नहीं सूझ रहा है कि जिससे चित्त की यह दुविधा दूर हो जाय (अर्थात् मेरी नीचता दूर हो जाय और आपको भी कोई बुरा न कहे) अब हे दीनबन्धो! आपको जो समझ पड़े और जो बन सके, वही (मेरे साथ) कीजिए ॥५॥

तनिक अपनी विरुदावली की ओर तो देखिए! क्या मैं कहीं उसमें स्थान पा सकता हूँ? (भाव यह है कि आप दीनबन्धु हैं, तो क्या मैं दीन नहीं हूँ आप पतितपावन हैं तो क्या मैं पतित नहीं हूँ आप प्रणतपालक हैं तो क्या मैं प्रणत नहीं हूँ? इनमें से) इस तुलसी को छोड़ भी देंगे तो भी यह उन्हीं के सामने शरण में जाकर पड़ा रहेगा और कहीं भी न जायेगा ॥६॥

शब्दार्थ—भद्र=कल्याण। पोच=नीच। गारी=गाली। असमंजस=दुविधा। बिरुद=बाना। सोहीं=सामने।

विशेष—(१) जीव ... जगमाहीं—क्योंकि जैसा कर्म करेंगे, वैसा फल भोगेंगे —

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'

(२) 'असमंजस'—यह दुविधा कि मैं खोटा हूँ अतः मालिक पर भी बट्टा लगता है खरा हो नहीं सकता, क्योंकि स्वभाव से ही मुझमें खोटाई भरी है। यह भी चाहता हूँ कि मैं चाहे जैसा बना रहूँ पर मेरे कारण मेरे मालिक की बदनामी न हो, सो भी नहीं हो सकता, दिन रात इसी असमंजस में पड़ा सोचा करता हूँ।

(३) 'कीजै सोई ... बूझ'—यही बन पड़ेगा कि अपने सेवक पर आप ही कृपा करेंगे, क्योंकि यदि दंड देंगे तो संसार आप पर हँसेगा और कहेगा कि यह कैसा स्वामी है जो अपने सेवक की दुर्दशा चुपचाप खड़ा देख रहा है! इसमें भी बदनामी का डर है इसलिए कृपा ही करते बनेगी।

(४) तुलसी सोहीं'—क्योंकि—

'चुम्बक के पीछे लग्यो फिरत अचेतन लोह।'

१५१

जो पै चेराई राम की करतो न लजातो।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो ॥१॥
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो।
बाजीगर के सूम ज्यों खल खेह न खातो ॥२॥
जो तू मन, मेरे कहे राम-नाम कमातो।
सीतापति सनमुख सुखी सब ठाँव समातो ॥३॥
राम सोहात तोहिं जो, तू सबहिं सोहातो।
काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो ॥४॥
राम नाम अनुरागही जिय जो रतिआतो।
स्वारथ परमारथ पथी तोहिं सब पतिआतो ॥५॥
सेइ साधु सुनि समुझिकै पर पीर पिरातो।
जनम कोटिको कादलो हृद-हृदय थिरातो ॥६॥
भव मग अगम अनंत है बिनु स्रमहिं सिरातो।
महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो ॥७॥
अमर अगम तनु पाइ सो जड़ जाय न जातो।
होतो मंगल-मूल तू अनुकूल विधातो ॥८॥
जो मन, प्रीति प्रतीति सों राम-नामहिं रातो।
तुलसी रामप्रसाद सों तिहुँ ताप न तातो ॥९॥

भावार्थ—हे जीव! जो तू श्रीरामचन्द्रजी की गुलामी करने में न लजाता, तो खरा दाम होकर भी खोटे दाम की तरह हाथों-हाथ न बिकता फिरता। भाव यह कि तू है तो परमात्मा का अंश, पर अपना स्वरूप भुला देने के कारण अनेक योनियों में भटकता फिरता है ॥१॥

यदि तू जीभ से श्रीराम का नाम जपने में आलस्य न करता, तो आज तुझे बाजीगर के सूम के समान धूल न फाँकनी पड़ती। (जैसे बाजीगर, जब उसे कोई कंजूस खेल देखने पर भी कुछ नहीं देता, तब उसके नाम से काठ के पुतले के मुँह में धूल डाल कर गालियाँ सुनाता है उसी प्रकार यदि तू भगवन्नाम-स्मरण करने में कंजूसी न करता खुले दिल से दिन रात नाम जपता, तो तुझे गालियाँ न खानी पड़ती, धूल न फाँकनी पड़ती, तेरी ऐसी दुर्दशा न होती) ॥२॥

यदि तू मेरे कहने से राम-नाम कमाता रामनाम रूपी धन संग्रह करता तो श्री जानकी-वल्लभ रघुनाथजी तुझे अपनी शरण में ले लेते तू सुखी हो जाता और सर्वत्र तेरा आदर होता तेरा लोक बन जाता और परलोक भी ॥३॥

जो तुझे श्रीरामजी अच्छे लगते होते, तो तू भी सबको अच्छा लगता। काम, क्रोध आदि जितने (इस जीव के) प्रबल शत्रु हैं वे तुझ पर क्रोध न करते, बल्कि तेरे अनुकूल हो जाते ॥४॥

यदि श्रीराम-नाम में ही तू मन से प्रीति जोड़ना लगाता तो स्वार्थ और परमार्थ दोनों के ही अधिष्ठाता तुझ पर निराश न रहते। अर्थात् संसार और परलोक दोनों में ही तू सुखी होता ॥५॥

जो तू संतों की सेवा करता एवं दूसरों की पीड़ा सुन और समझकर दुखी होता तो तेरे हृदय रूपी तालाब में जो अनेक जन्मों का मन जमा है वह सब बैठ जाता, तेरा मन तरल निर्मल हो जाता ॥६॥

संसार का मार्ग अगम्य है, इस पर चलना महान् दुष्कर है, किन्तु (उपर्युक्त आचरण करता हुआ) तू बिना ही श्रम के उसे पार कर जाता। क्योंकि श्रीराम का उलटा भी नाम लेने की महिमा ने (वाल्मीकि) को मुनि बना दिया था। भाव यह कि जब उलटे नाम का यह प्रभाव है तब सीधा नाम जपने से क्या नहीं बन जायगा ॥७॥

अरे जड़! तेरा यह देवों को भी दुर्लभ (मानव) शरीर यों ही व्यर्थ न चला जाता तू कल्याण का मूल बन जाता। अर्थात् ब्राह्मी अवस्था को पहुँच जाता और दैव भी तुझ पर कृपा करता ॥८॥

अरे मन! यदि तू प्रेम और विश्वास से राम-नाम में लौ लगा देता तो हे तुलसी! श्रीराम कृपा से तीनों तापों में कभी न जलता ॥९॥

शब्दार्थ—पराई=सेवा। राह=धून। कारनी=कारण प्रेरक। कोहातो=गुस्सा करता। रतिमातो=प्रीति करता। पिराता=दुखी होता। काँदलो=कीचड़, मैल। हृद=तालाब। थिरातो=बैठ जाता साफ हो जाता। सिरातो=पार कर जाता खतम कर लेता। किराता=किरात, भील। तातो=तचता=जलना।

विशेष—(१) राम सोहाते सोहातो क्योंकि—

'जापर कृपा राम कै होई। तापर कृपा करहिं सब कोई ॥'

(२) 'अनुराग—श्रीव्रजनाथजी अनुराग की परिभाषा लिखते हैं —

'व्यापकता जो प्रीति की, जिमि शुचि वसन सुरंग।
दृगन द्वार बरसत चटक सो अनुराग अभंग ॥'

(३) 'पर-पीर पिरातो—भक्तवर नरसी वैष्णव लक्षण में कहते हैं —

'वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड पराई जाणे रे।'

(४) 'अनुकूल बिधातो—ब्रह्मा इसलिए प्रसन्न हो जाता कि इस जीव के रचने से मेरा श्रम सफल हो गया इसे अब बार-बार न रचना पड़ेगा। जीव का ब्रह्म-सम्बन्ध हो जाना ही जीवन का चरम फल है।

(५) 'तिहुँ ताप—दैहिक भौतिक और दैविक।

(६) 'प्रीति—'भगवत्गुणदर्पण में प्रीति का यह लक्षण दिया गया है —

अत्यन्तयोग्यताबुद्धिरनुकूलादिशालिनी।
अपरिपूर्णस्वरूपा या सा स्यात् प्रीतिरुत्तमा ॥'

१५२

राम भलाई आपनी भल कियो न काको।
जुग जुग जानकिनाथ को जग जागत साको ॥१॥
ब्रह्मादिक बिनती करी कहि दुख बसुधा को।
रबिकुल-कैरव चन्द भो आनन्द-सुधा को ॥२॥
कौसिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तिया को।
प्रभु अनहित हित को दियो फल कोप कृपा को ॥३॥
हर्‌यो पाप आप जाइकै संताप सिला को।
सोच-मगन काढ्यो सही साहिब मिथिला को ॥४॥
रोष रासि भृगुपति धनी अहमिति ममता को।
चितवत भाजन करि लियो उपसम समता को ॥५॥
मुदित मानि आयसु चले बन मातु पिता को।
धरम धुरंधर धीरधुर गुन-सील जिता को ? ॥६॥
गुह गरीब गतग्यातिहूँ जेहि जिउ न भखा को ?
पायो पावन प्रेम तें सनमान सखा को ॥७॥
सदगति सबरी गीध की सादर करता को ?
सोच-सींव सुग्रीव के संकट हरता को ? ॥८॥
राखि बिभीषन को सके अस काल-गहा को ?
आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँ को ॥९॥
बालिस बासी अवध को बूझिये न खाको।
सो पावर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि मन थाको ॥१०॥
गति न लहै राम-नाम सों बिधि सो सिरजा को ?
सुमिरत कहत प्रचारिकै बल्लभ गिरिजा को ॥११॥
अकनि अजामिल की कथा सानन्द न भा को ?
नाम लेत कलिकाल हू हरिपुरहिं न गा को ? ॥१२॥
राम-नाम महिमा करै काम भूरुह आको।
साखी बेद पुरान हैं तुलसी-तन ताको ॥१३॥

भावार्थ—श्रीरामजी ने अपने भले स्वभाव से किसका भला नहीं किया ? युग युग से श्रीजानकी रमण का ऐसा सुयश संसार में प्रसिद्ध है ॥१॥

ब्रह्मा आदि देवताओं ने पृथिवी का दुःख सुनाकर जब प्रार्थना की, तब (पृथिवी का भार हरने के लिए राक्षसों को मारने के लिए) सूर्यवंशरूपी कुमोदिनी को प्रफुल्लित करनेवाले एवं अमृतोपम आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी आविर्भूत हुए ॥२॥

विश्वामित्र, ताड़का का तेज देखकर पाले की तरह गले जा रहे थे। प्रभु ने

ताडका को मारकर शत्रु को मित्र का-सा फल दिया एव क्रोध का फल कृपा के रूप में दिया। भाव यह कि दुष्ट ताडका को स्वर्गलोक भेजकर उस पर कृपा की ॥३॥

स्वय जाकर पाषाणी (अहल्या) का पाप सताप दूर कर दिया उसे दिव्य देह देकर पुन पति लोक भेज दिया। फिर मिथिला के महाराज जनक को शोकसागर में से डूबते हुए निकाल लिया अर्थात शिव धनुष तोडकर उनकी प्रतिज्ञा पूरी कर दी ॥४॥

परशुराम क्रोध के भाडार एव अहकार और ममत्व के धनी थे उन्हें भी आपने देखते ही शाति और समता का पात्र बना लिया अर्थात वह क्रोधी से शात और अहकारी स समद्रष्टा हो गए। यह सब श्रीरामजी के शील-स्वभाव का ही प्रभाव है ॥५॥

माता (कैकेयी) और पिता की आज्ञा मानकर प्रसन्नचित्त वन चले गये। ऐसा भला धर्मधुरधर और धर्मपुगव तथा सद्गुण और शील का जीतनेवाला दूसरा कौन है ?॥६॥

जिसकी जाति का भी कोई पता नही जिसने सभी प्रकार के जीवों का सदा भक्षण किया एस गरीब गुह निषाद ने भी (जिन रघुनाथजी से) पवित्र प्रेम के कारण सखा के जैसा आदर प्राप्त किया ॥७॥

शबरी और गीध (जटायु) का मोक्ष देनेवाला कौन है ? और महान् शोक सतप्त सुग्रीव का सकट निवारण करनेवाला कौन है ? ॥८॥

ऐसा कौन कान का आस था जो (रावण से बहिष्कृत) विभीषण को अपनी शरण में रख लता, जिस रावण के राज्य म आज भी विभीषण राजा बना बैठा है। (यह सब कृपा रघुनाथजी की है) ॥९॥

अयोध्या का रहनेवाला मूर्ख धोबी जिसमें खाक भी बुद्धि न थी अथवा जिसे कोई धूल के बराबर भी नही समझता था वह पापी भी वहाँ पहुँच गया जहा पहुँचने में मुनियो का मन भी थक जाता है। भाव यह है कि जिस परमधाम के सबध म बडे बडे मुनि विचार भी नही कर सकते, वहाँ वह सीताजी की निदा करनेवाला धोबी सहज चला गया ॥१०॥

ब्रह्मा ने एसा कौन सिरजा जो राम नाम के प्रभाव से मुक्ति का भागी न हो ? आशय यह कि जीवमात्र राम-नाम के प्रताप स मुक्त हो जाते है। पार्वतीवल्लभ शिवजी (जिस) राम नाम का स्वय स्मरण करते है और दूसरो को सुना सुनाकर उसका प्रचार करते है ॥११॥

अजामिल की कथा सुनकर कौन प्रसन्न नही हुआ ? और राम नाम का स्मरण कर इस कलिकाल में एसा कौन है जो विष्णुलोक को न चला गया हो ? ॥१२॥

राम नाम का महत्त्व अकौवा को भी कल्पवृक्ष बना सकता है। इस बात के प्रमाण वेद और पुराण है। (इस पर भी विश्वास न हो तो) तुलसीदास की ओर देखो। भाव यह है, कि मै महाअधम था किंतु राम-नाम के प्रभाव से आज राम भक्तो में मेरी गणना होती है ॥१३॥

शब्दार्थ—जागत = उजागर है। साको=यश। कौसिक=विश्वामित्र। गरत= गलते हैं। तिया = स्त्री यहाँ ताडका से तात्पर्य है। सिला = यहाँ अहल्या स आशय है। अहमति = मैं एसा अहकार। उपसम=शाति। अगम्यजाति=जिसकी जाति का भी

पता नही। काल गहा=काल का ग्रास, मरणप्राय। वालिस=मूढ़। भा=हुग्रा। गा=गया। आवो=मकौवा। तन=ओर।

विशेष—(१) इस पद में गोसाइजी ने क्रमश श्रीराम-कथा का सक्षिप्त वर्णन किया है। इस पद को यदि 'विनय रामायण' कहा जाये, तो असगत न होगा।

(२) 'गुह सखा को'—गुह निषाद को कितना बडा महत्त्व प्राप्त हुआ है —

प्रेम-पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दण्ड प्रनामू॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटे। जनु महि लुठत सनेह समेटे॥
रघुपति भगति सुमगल मूला। नभ सराहि सुर बरषहि फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड बसिष्ठ सम को जग माहीं॥
जेहि लखि लखनहु ते अधिक, मिले महामुनि राव।
सो सीतापति मिलन को प्रगट प्रताप प्रभाव॥'

[रामचरितमानस

(३) 'आज जहाँ का'—श्रीरामेश्वर भट्टजी ने इसका यह अर्थ किया है—"आज (जिस समय) जहा (लका) का राजा रावण विराजमान था। किन्तु इससे यह अर्थ अधिक उपयुक्त जचता है, कि जिस रावण के राज्य में आज भी विभीषण राजा बना बठा है।' यही अर्थ श्रीबैजनाथजी ने भी लिखा है, 'जहा को राजा रावण रहो ताको परिवार सहित मारि तहाँ को राजा विभीषण का किय सो अजहू विराजत है, भाव, अचल राज्य दिय।'

(४) 'खाको'—श्रीभट्टजी ने इस शब्द का अर्थ यों किया है—खा=रज+क=रजक। खाका का साधारणत खाक से तात्पर्य है। यहा धोबी से तात्पर्य अवश्य है, पर वह स्पष्टत व्यक्त नही किया गया।

(५) 'सुमिरत गिरिजा को'—अध्यात्म रामायण' में शिवजी ने कहा है—
अहो! भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिश भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽह दिशामि मन्त्र तव राम नाम॥'

[१४३]

मेरे रावरियै गति है रघुपति बलि जाऊँ।
निलज नीच निगुन निधन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाऊँ॥१॥
हैं घर घर बहु भरे सुसाहिब, सूझत सबनि आपनो दाऊँ।
बानर-बंधु विभीषन हितु बिनु, कोसलपाल कहूँ न समाऊँ॥२॥
प्रनतारति भजन जन रजन, सरनागत पबि-पजर नाऊँ।
कीजै दास दासतुलसी अब कृपासिंधु बिनुमोल बिकाऊँ॥३॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी! बलिहारी! मेरी तो केवल आप तक ही गति है मेरी दौड आप तक ही है क्योंकि निलज्ज नीच मूर्ख और गरीब के लिए ससार में (आपको छोडकर) न तो कोई स्वामी है और न कोई ठौर ठिकाना ही। वह किसका होकर रहे और कहाँ जाये॥१॥

यो तो घर घर में बहुत से अच्छे अच्छे मालिक भरे पडे हैं, किन्तु उन सबका अपना ही दाँव दिखता है, अपना ही स्वार्थ साधना चाहते हैं। मैं तो वानरो के मित्र और विभीषण के हितू कोशलेश श्रीरामचन्द्रजी को छोडकर और कही भी शरण नहीं पा सकता, मेरी पूछ किसी और स्वामी के यहाँ न होगी ॥२॥

आपका नाम भक्तो के दुःखो का नाश करनेवाला सेवकजनो को सुख देनेवाला और शरणागतो के लिए वज्र निर्मित पिंजडे के समान है, (अमोघ कवच है) सो अब तुलसीदास को अपना दास बना ही लीजिए। हे कृपासागर! अब मैं बिना ही मोल के (आपके हाथ में) बिकना चाहता हूँ। (आपका निष्काम सेवक बनना चाहता हूँ। मुझे अपना कोई स्वार्थ नहीं साधना है।) ॥३॥

शब्दार्थ—ठाउँ=ठाम, स्थान। पवि पजर=वज्र का पिंजडा।

विशेष—(१) पवि-पजर'—महर्षि विश्वामित्र ने वज्रपजर नाम का एक कवच रचा था। उसे राम रक्षा स्तोत्र भी कहते हैं। उसकी यह फल-श्रुति इसका प्रमाण है—

वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत्।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥'

(१५४)

देव, दूसरो कौन दीन को दयालु।
सीलनिधान सुजान सिरोमनि, सरनागत प्रिय प्रनत पालु ॥१॥
को समरथ सर्वग्य सकल प्रभु सिव सनेह मानस मरालु।
को साहिब किये मीत प्रीतिबस खग, निसिचर कपि भील भालु ॥२॥
नाथ-हाथ माया प्रपंच सब जीव दोष गुन करम-कालु।
तुलसिदास भलो पोच रावरो, नेकु निरखि कीजिये निहालु ॥३॥

भावार्थ—हे देव! (आपको छोडकर) दीनो पर दया करनेवाला दूसरा और कौन है? एक आप ही शील के स्थान, ज्ञानियों में श्रेष्ठ शरणागतो के परमप्रिय और भक्तो के पालनेवाले हैं ॥१॥

कौन आपके समान सर्वशक्तिमान् है? हे नाथ! आप सर्वज्ञ हैं सबके स्वामी हैं और शिवजी के प्रेमाधीन होकर उनके हृदय में वास करते हैं। किस स्वामी ने प्रेमवश पक्षी (जटायु) राक्षस (विभीषण) वानरो, भील (निषाद) और भालुओ को अपना मित्र बनाया? ॥२॥

हे नाथ! आपके हाथ में माया का सारा प्रपंच एवं जीवों के दोष गुण, कर्म और काल हैं। यह तुलसीदास भला हो या बुरा, आपका ही है। इसकी ओर जरा सा देखकर, इसे निहाल कर दीजिए ॥३॥

विशेष—(१) शील — भगवद्गुणदर्पण में शील का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

'हीनैर्दीनैर्मलीनैश्च बीभत्सैः कुत्सितैरपि।
महतोऽच्छिद्रसंश्लेषं सौशील्यं विदुरीश्वराः ॥'

श्रीव्रजनाथजी ने इसका पद्यानुवाद यह किया है—

'हीनरु दीन मलीन खल, घिन आवै जिहिं देखि।
सबनि आदर मान दै गुन सौशील्य बिसेखि ॥'

(२) 'प्रपंच दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है—

१ पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, इन पाँचों तत्त्वों की सृष्टि। पंचभौतिक प्रकृति।

२ अविद्या, विद्या, संधिनी, संदीपिनी और आह्लादिनी यही पंचधा माया है।

राग सारङ्ग

[१५५]

विस्वास एक राम नाम को।
मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को ॥१॥
पढ़िबो परयो न छठी छ मत रिगु जजुर अथवन साम को।
व्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचि-मरे करे तन छाम को ? ॥२॥
करम-जाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को।
ग्यान बिराग जोग जप तप भय लोभ मोह कोह काम को ॥३॥
सब दिन सब लायक भव गायक रघुनायक गुन-ग्राम को।
बैठे नाम-कामतरु-तर डर कौन घोर घन घाम को ? ॥४॥
को जानै को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥५॥

भावार्थ—मुझे तो एक राम-नाम का ही विश्वास है। मेरे कुटिल मन की कुछ ऐसी प्रकृति है, कि और कहीं प्रतीति ही नहीं करता (चाहे कोई कितना ही लाभ क्यों न दिखावे) ॥१॥

छह शास्त्रों के सिद्धान्तों तथा ऋक्, यजुर, अथर्वण और साम वेद का पढ़ना मेरे भाग्य में ही नहीं लिखा गया है (अब रहे अन्य उपाय, सो) व्रत, तीर्थ, तप आदि सुनकर मन डर रहा है। कौन (इन साधनों में) पच-पचकर मरे और शरीर को क्षीण करे ? ॥२॥

कर्म-काण्ड कलियुग में कठिन है, और द्रव्याधीन भी है। भाव यह कि एक तो पास में दाम नहीं, कि जिससे यज्ञ आदि किए जाएँ, दूसरे कलियुग में अनेक विघ्न बाधाएँ हैं, जिनके मारे कभी पूरा नहीं पड़ सकता। फिर ज्ञान, वैराग्य, योग, जप और तप में लोभ, अज्ञान, क्रोध और काम का भय लगा हुआ है (इनके मारे वे भी सधने के नहीं) ॥३॥

इस संसार में श्रीरघुनाथजी के गुणों का कीर्तन करनेवाले ही सदा सब प्रकार से योग्य हैं। भाव, हरिकीर्त्तन करनेवाले ही सर्वगुणसम्पन्न हैं, उन्हें कोई विघ्न बाधा नहीं सताती। जो रामनाम-रूपी कल्पवृक्ष की छायातले बैठे हैं, उन्हें घन घोर घटा अथवा तेज धूप का क्या डर है ? तात्पर्य यह कि उन्हें न तो संसारी विपत्तियाँ ही सता

सकती हैं और न पाप सन्ताप ही जला सकते हैं। क्योंकि उनकी सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं ॥४॥

कौन जानता है कि कौन तो नरक जायेगा और कौन स्वर्ग और कौन ब्रह्मलोक जायेगा ? तुलसीदास को तो इस संसार में श्रीराम का गुलाम होकर जीना ही बहुत प्रिय लगता है ॥५॥

शब्दार्थ—अनत = अन्यत्र, और कहीं। छठी न परया=भाग्य में नहीं लिखा। छ मत=छह शास्त्र अर्थात वैशेषिक न्याय, सांख्य योग पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त)। रिगु=ऋग्वेद। जजुर=यजुर्वेद। सहमत=डरता है। छाम= क्षीण, दुर्बल।

विशेष—(१) छ मत—छह शास्त्रों के सिद्धान्त, जिनके प्रतिपादक महर्षियों के नाम ये हैं—

१	वैशेषिक के प्रतिपादक	कणाद	परमाणु प्रधान
२	न्याय ,,	गौतम	द्रव्य प्रधान
३	सांख्य ,,	कपिल	पुरुष प्रकृति प्रधान
४	योग	पतंजलि	ईश्वर प्रधान
५	पूर्वमीमांसा ,,	जैमिनि	कर्म प्रधान
६	उत्तरमीमांसा	व्यास	ब्रह्म प्रधान

(२) भव गायक—श्रीरामेश्वर भट्ट ने इसको समस्त पद मानकर इसका [illegible] अर्थ किया [illegible]-'और शिवजी भी जिसे गाते हैं। श्रीबैजनाथजी ने यों अर्थ किया है— "रघुनायक के कृपा दया आदि जो समूह कल्याण गुण हैं तिनको ग्राम रामायणादि कथा ताको गायक होना। यहाँ भव का अर्थ शिव युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता है। बैजनाथजी का भाव भी स्पष्ट नहीं हुआ है। भव का अर्थ संसार ही होना चाहिए। अर्थात, भव (में) झंझट दूर हो जाती है। 'भव' के स्थान पर किसी किसी प्रति में गुनगायक पाठ पाया जाता है। किन्तु आगे गुन-ग्राम आया है। अतः भव पाठ ही उपयुक्त है। नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति में भयो पाठ आया है। ऐसा पाठ मान लेने से उसके सम्पादकगण इस झंझट से बच गये हैं।

(३) 'तुलसिहि गुलाम को—यहाँ गोसाइँजी हरिमय जगत' को बैकुण्ठ आदि से भी बढ़कर मानते हैं। संसार का महत्त्व इस युक्ति से स्पष्ट हो जाता है। उनके लिए रामगुलाम का जीवन स्वर्गीय जीवन से कहीं अधिक महत्त्व का है।

कहा करौं बैकुण्ठ लै कलपवृच्छ की छाँह।
अहमद ढाक सराहिए जो प्रीतम गल बाँह ॥

१५६

कलि नाम कामतरु राम को।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को ॥१॥
नाम लेत दाहिनो होत मन, बाम बिधाता बाम को।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को ॥२॥

भलो लोक-परलोक तासु जाके बल ललित ललाम को।
तुलसी जग जानियत नाम ते, सोच न कूच मुकाम को ॥३॥

भावार्थ—कलियुग में श्रीराम का नाम कल्पवृक्ष है। वह दारिद्र्य, दुर्भिक्ष, दुःख, दोष और त्रिताप की कड़ी धूप बचाने के लिए घोर मेघरूप है ॥१॥

राम का नाम लेते ही वाम विधाता का प्रतिकूल मन भी अनुकूल हो जाता है, रूठा दैव भी प्रसन्न हो जाता है। मुनीश्वर वाल्मीकि ने उलटे अर्थात मरा मरा नाम की महिमा गाई है। और शिवजी ने सीधे नाम का माहात्म्य कहा है। (तात्पर्य यह है कि उलटा नाम जपते-जपते वाल्मीकि ब्रह्मर्षि से ब्रह्मर्षि हो गये, और शिवजी सीधा नाम जपने से हलाहल का पान कर गये तथा स्वयं भगवत्स्वरूप मान गये) ॥२॥

जिसे इस सुंदर से भी सुंदर अथवा सुंदर और सुरम्य रामनाम का बल भरोसा है, उसके लोक और परलोक दोनों ही बन गये। हे तुलसी! रामनाम से इस संसार में न तो मौत की चिन्ता अनुभव होती है और न गर्भवास का क्लेश ही ॥३॥

शब्दार्थ—दुकाल = दुर्भिक्ष अकाल। दाहिनो=अनुकूल। बाम=प्रतिकूल। ललित ललाम=ये दोनों ही शब्द सुंदर के बोधक हैं सुंदर से भी सुंदर।

विशेष—(१) कलियुग में केवल रामनाम ही मोक्ष का मुख्य साधन है, इसे लक्ष्य में रखते हुए गोसाइंजी रामचरितमानस में लिखते हैं—

'कलियुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम-गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भजु रामहिं। प्रेम समेत गाइ गुन-ग्रामहिं॥
सो भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रकट कलि माहीं॥

(२) सोच न कूच मुकाम का—रामनाम के प्रभाव से जीव जन्ममरण के चक्र से छूट जाता है।

'सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनाम परात्परम्।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति॥'

[पद्मपुराण

१५७

सेइये सुसाहिब राम सो।
सुखद, सुसील, सुजान सूर, सुचि, सुंदर कोटिक काम सो ॥१॥
सारद, सेस साधु महिमा कहैं गुनगन गायन साम सो।
सुमिरि सप्रेम नाम जासो रति, चाहत चंद्र-ललाम सो ॥२॥
गमन बिदेस न लेस कलेस को सकुचत सकृत प्रनाम सो।
साखी ताको बिदित बिभीषन, बैठो है अविचल धाम सो ॥३॥
टहल, सहल जन महल महल, जागत चारो जुग जाम सो।
देखत दोष न खीझत, रीझत सुनि सेवक गुन ग्राम सो ॥४॥
जाके भजे तिलोक तिलक भये, त्रिजग जोनि तनु तामसो।
तुलसी ऐसे प्रभुहिं भजै जो न, ताहि बिधाता बाम सो ॥५॥

भावार्थ—श्रीराम सदृश सुंदर स्वामी की सेवा करनी चाहिए, जो सुख देने वाले सुशील, चतुर, वीर, पुण्यलोक तथा करोड़ों कामदेवों के समान सुंदर हैं, जिनकी महिमा का बखान सरस्वती शेषनाग और संतजन करते हैं, जिनके गुण सामवेद सरीखे गायक गाते हैं, जिनका नाम प्रेमपूर्वक स्मरण करते हुए शिव सरीखे भी उनसे प्रीति जोड़ना चाहते हैं ॥२॥

(उन श्रीराम की सेवा) जिनको विदेश अर्थात् वन जाते समय तनिक भी क्लेश नहीं हुआ (वे ऐसे एकरस सदा प्रसन्न रहनेवाले हैं कि वन जाते हुए भी कष्ट नहीं हुआ) यदि कोई एक बार भी प्रणाम कर लेता है, तो जो सकोच के मारे दब जाते हैं (ऐसे शीलवान् हैं), इसका साक्षी विभीषण प्रसिद्ध है कि जो आज भी (लंका में) अटल राज्य कर रहा है ॥३॥

(उन श्रीराम की सेवा) जिनकी चाकरी बड़ी सहल है (चूक भी पड़ जाये तो माफ कर देते हैं), जो अपने भक्तों के घट घट में, चारों युगों में(रात्रि के अथवा अविद्या रूपी रात्रि के) चारों पहर जागते रहते हैं (मोह या संकट के समय उनके हृदय में बैठ कर चौकीदारी किया करते हैं) जो अपराध देखते हुए भी सेवक पर नाराज नहीं होते हैं और जब अपने सेवक की गुणावली सुनते हैं तो उस पर निहाल हो जाते हैं ॥४॥

जिन्हें भजने से पशु-पक्षी एवं तामस शरीरधारी (राक्षस) भी त्रिलोक शिरोमणि बन गये। हे तुलसी! ऐसे (सुशील सुन्दर जनवत्सल पतितपावन एवं शरण्य) प्रभु को जो नहीं भजते, उन पर विधाता ही प्रतिकूल है यही समझना चाहिए ॥५॥

शब्दार्थ—साम=सामवेद। चन्द्रललाम=चन्द्रमा ही जिनका भूषण है, अर्थात् शिवजी। सकृत=एक बार। टहल=सेवा। ग्राम=समूह। त्रिजग=तिर्यक, पशु पक्षी। तामसो=तमोगुणी।

विशेष—(१) 'गमन क्लेस को'—श्रीरघुनाथ के इस एकरस भाव पर गोसाईजी ने रामचरितमानस में कहा है—

'पितु आयसु भूषन-बसन साज तजे रघुबीर।
बिसमय हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर॥'
मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥'

(२) जन महल जाम को'—भगवान की प्रतिज्ञा है—

'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

[भगवद्गीता

(३) त्रिजग जोनि तनु तामसो'—जटायु बन्दरों रीछों तथा विभीषण से तात्पर्य है।

१५८

राग भैरव

कैसे देउँ नाथहिं खोरि।
काम लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ॥१॥

बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।
देत सिख, सिखयो न मानत, मूढ़ता अस मोरि ॥२॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि।
संग बस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ॥३॥
करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि।
पैठि उर बरबस दयानिधि, दंभ लेत अँजोरि ॥४॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों, गरे आसा डोरि।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥५॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥६॥

भावार्थ—मैं अपने स्वामी को कैसे दोष दूँ ! हे हरे ! तुम्हारी भक्ति को छोड़कर मेरा मन काम-वासनाओं में फँसा हुआ इधर उधर भटकता रहता है। (एक क्षण भी निश्चल होकर तुम्हारा ध्यान नहीं करता) ॥१॥

अपने पुजाने पर तो मेरा बड़ा प्रेम है, सदा यही चाहता रहता हूँ कि लोग मुझे सन्त महन्त मानकर मेरी प्रतिष्ठा करें, किन्तु पूजने में मेरी बहुत कम श्रद्धा है। दूसरों को तो उपदेश करता हूँ (यह चाहता हूँ कि लोग मेरे उपदेश पर चलें) पर स्वयं किसी का उपदेश नहीं मानता हूँ ॥२॥

जिन जिन पापों को मैंने बड़े चाव से किया है, उन्हें तो हृदय में छिपाकर रख लिया, पर कभी किसी सत्संग में पड़कर मुझसे जो तुच्छ काम बन गये, उन्हें सारे संसार को निहोरा कर-करके सुनाता फिरता हूँ। सदा यही पड़ी रहती है कि दुनिया मुझे महात्मा समझे ॥३॥

कभी जो कुछ सत्कर्म बन जाता है उसे खेत में पड़े हुए अन्न के दानों की तरह बटोर-बटोरकर रख लेता हूँ किन्तु हृदय में जबरदस्ती पैठकर दम्भ उसे भी खोज खोजकर बाहर निकाल फेंकता है। भाव यह, कि दम्भ सारे किए हुए को मिट्टी में मिला देता है ॥४॥

लोभ मेरे मन को आशारूपी रस्सी से इस तरह नचा रहा है, जैसे कोई बन्दर के गले में डोरी बाँधकर उसे मनमाना नचाये। (और इसी लोभ के वश हो) मैं वैराग्य और तत्त्व ज्ञान की बातें बड़े-बड़े पंडितों की तरह बघारा करता हूँ ॥५॥

इतना सब होते हुए भी तुम्हारा (दास) कहाता हूँ। जो लाज थी, उसे भी घोलकर मानो पी गया हूँ। हे रघुनाथजी ! (और तो मेरे पास कुछ रहा नहीं) बस, इस निलज्जता पर ही रीझकर मेरा बन्धन काट दो मुझे संसार जाल से मुक्त कर दो ॥६॥

शब्दार्थ—खोरि=दोष। सचि-पचि=यत्नपूर्वक रखकर, सेंत-सेंतकर। सिला=खेत में पड़े अनाज के कण। अजोरि लेत=खोज लेता है। अँचई=पी गया।

१५९

है प्रभु ! मेरोई सब दोसु ।
सीलसिंधु, कृपालु नाथ अनाथ, आरत-पोसु ॥१॥
वेष बचन बिराग मन अघ अवगुननि को कोसु ।
राम प्रीति प्रतीति पोली कपट-करतब ठोसु ॥२॥
राग रंग कुसंग ही सो, साधु-संगति रोसु ।
चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु ॥३॥
संभु सिखवन रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु ।
दंभहू कलि नाम कुंभज सोच-सागर-सोसु ॥४॥
मोद मंगल मूल अति अनुकूल निज निरजोसु ।
रामनाम प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम परितोसु ॥५॥

भावार्थ—हे प्रभो ! सारा मेरा ही दोष है । आप तो शील के समुद्र, कृपालु, अनाथों के नाथ और दीन-दुखियों के पालने पोसनेवाले हैं ॥१॥

मेरे भेष और वचनों में तो वैराग्य झलक रहा है, किन्तु मन पापों और दुर्गुणों का खजाना है । हे श्रीराम ! आपकी भक्ति और श्रद्धा के लिए तो मन मेरा पोला-खोखला है, उसमें तनिक भी भक्ति और विश्वास नहीं है, किन्तु छल कपट के कामों के लिए ठोस है, कपट-ही-कपट भरा है ॥२॥

जैसे खरगोश सियार (गीदड़) की सेवा करके सिंह की कीर्ति चाहता है, वैसे ही मैं कुसंगति से तो प्रेम करता हूँ, आनन्द मनाता हूँ, और साधु जनों के संग से रूठा रहता हूँ । (भाव यह है, कि जैसे खरगोश गीदड़ के बूते पर सिंह का-सा यशलाभ करना चाहता है, गजेन्द्र के पछाड़ने की बहादुरी दिखाना चाहता है, पर यह कैसे सम्भव है ? सियार तो उसका भक्षक है । यश दूर रहा उसे प्राणों से भी हाथ धोना पड़ेगा । इसी प्रकार जो कुसंग में पड़कर कीर्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे कीर्ति के बदले अपकीर्ति ही मिलेगी) ॥३॥

शिवजी का उपदेश यही है कि 'नित्य जिह्वा से राम-नाम का कीर्तन करो । कलियुग में दंभ से भी लिया हुआ राम-नाम अगस्त्य की तरह दुःख सागर को सोख लेता है । (दंभ से लिया हुआ राम नाम भी लोक परलोक दोनों की चिन्ताओं को दूर कर देता है) ॥४॥

राम-नाम आनन्द और कल्याण की जड़ है । यह मेरा निश्चय है कि अपने लिए तो एक राम नाम ही अत्यन्त अनुकूल है । राम-नाम का ऐसा प्रभाव सुनकर तुलसी को भी परम सन्तोष है (इसलिए कि वह भी राम-नाम का सहारा लेकर कृतार्थ हो गया है), ॥५॥

शब्दार्थ—कोसु = (कोष) खजाना । रसन = रसना, जीभ । घोसु = (घोष) शब्द उच्चारण कर । सोसु = सोख ले । निरजोसु = अनुकूल ।

विशेष—(१) 'रसन हूँ नित राम-नामहिं घोसु'—भक्तवर प्रह्लाद ने राम-नाम का ऐसा ही माहात्म्य कहा है—

'रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात मम गात्र सन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥'

(२) 'दसहू सोमु'—रामनाम किसी भी भाव से जपा जाय, वह मंगलकारी है—

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। राम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
[रामचरितमानस

(३) निरजोसु—श्रीबैजनाथजी ने इस शब्द का अर्थ यों लिखा है—'निरयोसु जोख तौल रहित, अतुल।' श्रीदेवनारायण द्विवेदी ने इसे 'निर्दोष' का अपभ्रंश मानकर इसका अर्थ असुन्दर किया है, जो समीचीन है। इसका अर्थ 'अत्यन्त अनुकूल' मुझे उपयुक्त जंचता है।

१६०

मैं हरि पतित पावन सुने।
मैं पतित तुम पतित पावन, दोउ बानक बने॥१॥
ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने॥२॥
जानि नाम अजानि लीन्हे नरक जमपुर मने।
दासतुलसी सरन आयो, राखिये अपने॥३॥

भावार्थ—हे हरे! मैंने तुम्हें पापियों को पुनीत करनेवाला सुना है। सो मैं पापी हूँ और तुम हो पापियों का उद्धार करनेवाले बस दोनों के बाने बन गये, दोनों का मेल बैठ गया। भाव यह कि मुझे पतित-पावन की जरूरत थी और तुम्हें पतित की। मेरी भी कामना पूरी हो गई और तुम्हारी भी॥१॥

वेद साक्षी भर रहे हैं कि तुमने व्याध (वाल्मीकि) गणिका (पिंगला वेश्या), गजेन्द्र और अजामिल को संसार सागर से पार कर दिया (इतना ही नहीं) तुमने और भी अनेक अधमों को तारा है। उनकी गिनती किससे हो सकती है?॥२॥

जिन्होंने जानकर या बिना जाने भी तुम्हारा नाम स्मरण किया, उन्हें यम के लोक नरक में (अथवा स्वप्न में भी) जाने की मनाही कर दी गई है। वे सीधे साकेत लोक चले गये (यह सब समझ-बूझकर) तुलसी भी तुम्हारी शरण में आया है। इसे भी अंगीकार कर लो॥३॥

विशेष—'मैं पतित ... बने'—एक भक्त ने निम्नलिखित कवित्त में स्वामी सेवक के इसी भाव को सामने रखकर क्या ही सुन्दर जोड़ मिलाई है—

'मैं तो हूँ पतित, आप पावन पतित नाथ,
पावनपतित हो, तो पातक हरोईगे।
मैं तो महादीन, आप दीनबंधु दीनानाथ,
दीनबंधु हो तो दया जीय में धरोईगे।
मैं तो हूँ गरीब आप तारक गरीबन के,
तारक गरीब हो तो निरद करोईगे।
मेरी करनी ■ कछु सुकर न कीजे काहू!
करुना निधान हो तो करुना करोईगे॥'

राग मलार

१६१

तो सो प्रभु जापै कहुँ कोउ हातो।
तौ सहि निपट निरादर निसिदिन रटि लटि ऐसो घटि को तो ॥१॥
कृपा सुधा-जलदान माँगिबो कहौं सो साँच निसोतो।
स्वाति-सनेह सलिल सुख चाहत चित चातक को पोतो ॥२॥
काल-करम बस मन कुमनोरथ कबहुँ-कबहुँ कछु भो तो।
ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो ॥३॥
जितो दुराव दासतुलसी उर, क्यों कहि आवत ओतो।
तेरे राज राय दसरथ के, लयो बयो बिनु जोतो ॥४॥

भावार्थ—यदि तुम-सरीखा कहीं कोई दूसरा स्वामी होता तो भला ऐसा कौन मूर्ख था जो अत्यधिक अपमान सहकर दिन रात तेरा नाम रट रटकर इस तरह घटता या छीण होता ? ॥१॥

जो मैं तुमसे कृपारूपी अमृतअन्न माँग रहा हूँ, वह सचमुच निराला है। मेरा चित्तरूपी चातक का बच्चा प्रेमरूपी स्वातिनक्षत्र का आनन्दरूपी जल चाहता है। (तेरे प्रेमानन्द के लिए मेरा चित्त तड़प रहा है, उसे पलभर भी कल नहीं पड़ता बच्चा ही तो है, धीरज कैसे धरे ?) ॥२॥

काल अथवा कर्म के कारण यदि कभी कभी मन में कोई बुरी वासना आ भी जाती है (उस प्रेमानन्द से चित्त हटने लगता है)तो वह ऐसा ही है जैसे मछली सुख से जल में रहती हुई कभी कभी उछलती और फिर उसी में घबराकर गोता लगा जाती है (उसे उस क्षण भर का भी जल वियोग सहन नहीं होता, वैसे ही मेरा चित्त चातक तेरे प्रेमजल से अलग होने पर घबरा जाता है और फिर उसीके लिए चेष्टा करता है) ॥३॥

जितना छल कपट तुलसीदास के हृदय में है, वह किस प्रकार कहा जा सकता है ? (पर इतना विश्वास है कि) हे दशरथ-नन्दन ! तेरे राज्य में लोगों ने बिना ही जोते बोये पाया है। भाव यह कि बिना ही सत्कर्म किए अनेक पापियों ने मोक्षलाभ किया है। मेरी भी उसी प्रकार बन आयगी, यही विश्वास है ॥४॥

शब्दार्थ—लटि = दुबला होकर। तो = था। निसोतो=सच्चा, अमल, निराला। पोतो=बच्चा। भो=हुआ। ओतो=उतना।

विशेष—(१) श्रीवियोगीहरि द्विवेदी ने अपनी टीका में तो का अर्थ था सही नहीं माना है और इसका अर्थ तुम्हारा या तुम किया है। तो का अर्थ तुम्हारा भी कदाचित् हो सकता है पर था यह अर्थ अशुद्ध नहीं है। बुन्देलखण्डी में 'हतो' और तो' दोनों ही 'था' के लिए प्रयुक्त होते हैं।

(२) स्वाति पोतो—चातक का प्रेम आदर्श प्रेम माना गया है अनन्यता का अनुकरणीय है। एक कृष्ण वियोगिनी व्रजाङ्गना कहती है —

'बहुत दिन जीवौ पपीहा प्यारो।
बासर रैनि नाम लै बोलत, भयो बिरह-ज्वर कारो॥
आप दुखित पर दुखित जानि जिय चातक नाम तुम्हारो।
देखो, सकल विचारि सखी, जिय, बिछुरन को दुख न्यारो॥
जाहि लगै, सोई पै जानै प्रेमबान अनियारो।
'सूरदास' प्रभु स्वाति बूंद लगि, तज्यो सिन्धु करि खारो॥'

[सूरसागर

(३) ज्यों गातो—बेचारी मछली जाये कहाँ? उसके लिए तो एक जल ही सर्वस्व है। सूरदासजी भी ऐसा ही कह रहे हैं—

'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पछी, पुनि जहाज पै आवै॥' इत्यादि।

राग सोरठ

१६२

ऐसे को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर रामसरिस कोउ नाहीं॥१॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी॥२॥
जो सम्पति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्ही।
सो सपदा बिभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्ही॥३॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो॥४॥

भावार्थ—संसार में ऐसा और कौन उदार है, जो बिना ही सेवा किए दीन जनों को निहाल कर देता है?॥१॥

जिस परमगति मुक्ति को बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी मुनि भी योग, वैराग्य आदि अनेक साधन कर कर प्राप्त नहीं कर पाते, उसे प्रभु रघुनाथजी गीध और शबरी तक को दे देते हैं और उसे दान पर अपने मन में कुछ बहुत नहीं मानते उसे थोड़ा ही लेखते हैं॥२॥

रावण ने शिवजी को अपने दसों सिर चढ़ाकर उनसे जो सम्पत्ति प्राप्त की थी, वह रघुनाथजी ने बड़े संकोच के साथ विभीषण को दे दी। (संकोच इसलिए हुआ कि हमने इसे कुछ भी नहीं दिया लंका का राज्य तो इसका मानुवंशिक ही था, यह उसका उत्तराधिकारी कभी-न-कभी तो होता ही)॥३॥

तुलसीदास कहते हैं कि अरे मन! जो तू सब प्रकार से सब सुख चाहता है तो श्रीरामजी का भजन कर। कृपा-सागर प्रभु तेरे मन की सारी कामनाएँ पूरी कर देंगे तेरे सभी मनोरथ सफल हो जायेंगे॥४॥

विशेष—(१) 'उदार'—श्रीभगवद्गुणदर्पण' में उदारता का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

'पात्रापात्रविवेकेन देशकालाद्युपेक्षणात ।
वदान्यत्वं विदुर्वेदा औदार्यवचसा हरे ॥'

(२) 'बिनु सेवा ... पर'—बिना किसी बदले की आशा के जो कृपा की जाती है, वही सच्ची कृपा है, वही सच्चा प्रेम है। बदले के लिए जो किया जाता है वह कोई कृपा नहीं, वह तो वाणिज्य है। निष्कारण कृपा करनेवाला, अहैतुक प्रेम करनेवाला तो एक परमात्मा ही [redacted]।

(३) 'गीध ... जटायु'—रामचरितमानस में जटायु के प्रसंग का बड़ा हृदयद्रावक वर्णन किया गया है—

कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबिधाम मुख, बिगत भई सब पीर॥

जटायु को मोक्ष देने पर श्रीराम कहते हैं—

'जल भरि नयन कहा रघुराई। तात कर्म निज ते गति पाई॥'
'अबिरल भगति मागि बर, गृद्ध गयो हरि धाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥

(४) 'शबरी से श्रीराम कहते हैं—

'जोगिबृंद दुरलभ गति जोई। तोकहँ आजु सुलभ भइ सोई॥
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥

(५) 'जो संपति ... दीन्हो'—रामचरितमानस में भी—

'जो संपति सिव रावनहिं दीन्ह दिये दस माथ।
सो संपदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

१६३

एकै दानि सिरोमनि साँचो।
जेइ जाच्यो सोइ जाचकतारहित, फिरि बहु नाच न नाच्यो॥१॥
सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कोउ न देत बिन पाये।
कोसलपालु कृपालु कलपतरु द्रवत सकृत सिर नाये॥२॥
हरिहु और अवतार आपने, राखी बेद-बडाई।
लै चिउरा निधि दई सुदामहिं जद्यपि बाल मिताई॥३॥
कपि, सबरी सुग्रीव, बिभीषन को नहिं कियो अजाची।
अब तुलसिहिं दुख देति दयानिधि, दारुन आस पिसाची॥४॥

भावार्थ—सच्चा दानी तो दानियों में शिरोमणि एक ही है। जिस किसीने एक बार उससे माँगा, उसे पाने के लिए बहुत नाच नहीं नाचना पड़ा, वह तत्काल पूर्णकाम हो गया॥१॥

दैत्य, देव, मनुष्य, मुनि ये सभी मतलबी हैं। बिना कुछ लिये कोई कुछ भी नहीं देता है। किन्तु एक ऐसे कोसलेश कृपालु कल्पवृक्ष के समान श्रीरघुनाथजी ही हैं, जो एक ही बार प्रणाम करने पर प्रसन्न हो जाते हैं (यदि कोई निःस्वार्थ मित्र है तो एक रामजी ही)॥२॥

भगवान ने अपने और और अवतारों में भी वेदों की मर्यादा का पालन किया है। जैसे, यद्यपि सुदामा श्रीकृष्ण का बालपन का मित्र था पर उससे जब चावल के कण ले लिये, तभी उसे सम्पत्ति प्रदान की (मुफ्त में कुछ नहीं दिया) ॥३॥

हे नाथ! आपने सुग्रीव, शबरी, विभीषण और हनुमान् इनमें से किस किसको याचनारहित नहीं कर दिया अर्थात् इन सबके सभी मनोरथ पूरे कर दिये (और बदले में इन लोगों से कुछ लिया नहीं) हे दयानिधे! यह दारुण आशारूपी पिशाचिनी अब तुलसी को भारी क्लेश दे रही है (इससे पिंड छुड़ा दो) ॥४॥

शब्दार्थ—द्रवत=पिघल जाते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं। सकृत=एकबार। चिउरा=चावल के कण। निधि=सम्पत्ति।

विशेष—(१) 'सब स्वारथी मुनि'—

'सुर नर मुनि सबही की रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥'

(२) 'द्रवत नाथ'

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

[वाल्मीकीय रामायण

(३) 'आस'—आशा पिशाचिनी पर कबीर साहब ने क्या अच्छा कहा है—

'आसन मारे क्या भया मुई न मन की आस।
ज्यों तेली के बैल को, घर ही कोस पचास।
आसा जीवे जग मरे, लोग मरे मन जाहिं।
धन सच सो भी मरे, उबरे सो धन खाहिं॥'

१६४

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह-सगाई॥१॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितु तें अधिक गीध पर, ममता गुन गरुआई॥२॥
तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन परयो बन्धु बिभीषन ही को, सोच हृदय अधिकाई॥३॥
घर गुरुगृह, प्रिय-सदन सासुरे भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई॥४॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत, बानर-बन्धु बड़ाई॥५॥
प्रेम-कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई।
'तेरो रिनी' कह्यो हौं कपि सों, ऐसी मानहि को सेवकाई॥६॥
तुलसी राम-सनेह-सील लखि, जो न भगति उर आई।
तौ तोहिं जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गँवाई॥७॥

भावार्थ—प्रीति की रीति एक रघुनाथजी ही जानते है। श्रीरामजी प्रेमी के नाते के सामने सारे सम्बन्ध त्याग देते है। अर्थात् सगे सम्बन्धी को छोडकर एक प्रेमी का ही मान रखते है ॥१॥

महाराजा दशरथ ने स्नेह निभाकर शरीर तक छोड दिया, जिससे उनकी कीर्ति अमर हो गई। किन्तु ऐसे (अपूर्व) पिता को भी गीध जटायु के आगे कुछ अधिक महत्व नही दिया। गीध पर अधिक महत्त्व और शील-गाम्भीर्य दरसाया अथवा उसके करतब का भारी एहसान माना (इस कारण से कि इसने परोपकार के लिए सीता को रावण के हाथ से छुडाने के लिए अपने प्राण तिनके की तरह त्याग दिये) ॥२॥

सुग्रीव मित्र को स्त्री के विरह म देखकर अपनी प्राणाधिक प्यारी जानकी को भी भुला दिया (जानकीजी का पता लगाने की बात भुलाकर मित्रद्रोही वालि का बध करने के लिए व्याकुल हो उठे)। रणभूमि म तो अनुज लक्ष्मण (शक्ति के मारे) मूर्च्छित पडे है पर (उसका दुःख भूलकर) हृदय में विभीषण की ही चिन्ता सता रही है। तात्पर्य यह कि श्रीरामचन्द्रजी सोचते ह कि जब लक्ष्मण ही न बचेंगे तब म रावण के साथ युद्ध करके क्या करूँगा ? म भी प्राण त्याग दूगा। उस समय बेचारा विभीषण किसका होकर रहेगा ? रघुनाथजी ऐसे परदुःख कातर ह ॥३॥

घर म गुरु वसिष्ठ के आश्रम म प्रिय मित्रों के यहा, अथवा ससुराल म जब जहाँ मेहमानी हुई तब वहा यही कहा कि मुझे जसा शबरी के बेरो म स्वाद और मिठास मिला था वसा अन्यत्र कही नही ॥४॥

जब मुनि लोग आपके सहजस्वरूप अर्थात निर्गुण परमानन्दरूप का निरूपण करते हैं, तब आप लज्जा से सिर नीचा कर लेते ह। किन्तु जब केवट आपको अपना मित्र एव बन्दर अपना बन्धु कहते ह तो उसे अपनी बडाई समझते ह। अथवा केवट का सखा कह जाने पर आप प्रसन्न होते ह और वानर बन्धु कहलाने में अपनी बडाई मानते है ॥५॥

रघुनाथजी क समान प्रेम के प्रधान होनेवाला हे भाई ! तीनो लोको और तीनो कालो म कोई दूसरा नही ह। जिन्होने हनुमान से यह कहा कि 'म तेरा ऋणी हूँ', उनकी तुलना में सेवा क लिए कृतज्ञता प्रकाश करनेवाला दूसरा कौन ह ॥६॥

हे तुलसी ! श्रीराम का ऐसा स्नेह और शील देखकर भी उनके प्रति यदि तेरे हृदय में भक्ति का उदय न हुआ तो तेरी माँ ने तुझे जन्म देकर व्यर्थ अपनी युवावस्था गँवाई। भाव यह ह कि तुझे जनने से तो वह बाँझ ही अच्छी थी ॥७॥

शब्दार्थ—हान=दूर। गुरुआई=बडप्पन। माधुरी=मिठास। कनौडा=एहसानमद। जाय=व्यर्थ।

विशेष—(१) एसहु गुरुआई—राम-गीतावली में इस प्रसग का निम्न लिखित पद क्या ही भावपूर्ण ह—

राघो गीध गोद करि लीन्हों।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहुँ अरघजल दीन्हों ॥
सुनहु लषन खगपतिहि मिले बन म पितु मरन न जान्यो।
सहि न सक्यो सो कठिन बिधाता बडो पछु आजुहि भान्यो ॥

बहुबिधि राम कह्यो तनु राखन, परमधीर नहिं डोल्यो।
रोकि प्रेम, अवलोकि बदन बिधु बचन मनोहर बोल्यो॥
तुलसी, प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखे लहौं।
जाको नाम मरत मुनि दुलभ तुमहिं कहाँ पुनि पहौं॥

(२) 'रन पर्यो अधिकाई'—गोसाइजी ने कवितावली में इस प्रसग को इस प्रकार चित्रित किया है—

'तात को सोच न मात को सोच न सोच नहीं मोहि औध-तजे को।
सोच नहीं बनवास भयो कछु सोच नहीं मोहि सीय हरे को॥
लछिमन भूमि पर्यो नहिं सोच, न साव कछू नहिं लक जरे को।
सोच भयो तुलसी इक मोकहँ भक्त बिभीषन बाँह-गहे को॥

(३) सबरी के फलनि की—शबरी के फलों पर रसिकबिहारीजी की यह कितनी सुन्दर यमकालकृत उक्ति है—

बेर बेर बेर लै सराहै बेर बेर बहु
रसिकबिहारी देत बन्धु कहँ फेर फेर।
चाखि चाखि भाखैं यह वाहूतें महान मीठो
लेहु तो लखन यों बखानत हैं हेर हेर॥
बेर बेर देवे बेर सबरी सु बेर बेर
तोऊ रघुबीर बेर बेर तहि टेर टेर।
बेर जनि लावो बेर बेर जनि लावो बेर,
बेर जनि लावो बेर लावो कहैं बेर बेर॥

(४) तेरो रिनी सेवकाई—श्रीरघुनाथजी हनुमान् से कहते हैं—

'सुनु कपि तोहिं समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रतिउपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सक मन मोरा॥
सुनु कपि तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउ करि बिचार मन माहीं॥

१६५

रघुवर रावरि यहै बडाई।
निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई॥१॥
थके देव साधन करि सब, सपनेहु नहिं देत दिखाई।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप, किया सकल सँग भाई॥२॥
मिलि मुनिवृन्द फिरत दडक वन, सो चरचौ न चलाई।
बारहि बार गीध सबरी की बरनत प्रीति सुहाई॥३॥
स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर जती गयन्द चढाई।
तिय निंदक मतिमद प्रजा रज निज नय-नगर बसाई॥४॥
यहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई।
दीनदयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई॥५॥

भावार्थ—हे रघुनाथ जी ! [illegible] है कि [illegible], मनस्वी वा, [illegible] करते हैं [illegible] करते हैं ॥१॥

देवताओं [illegible] किया। किन्तु [illegible] (विभीषण) के [illegible] मार्ग बिगाड़ा ॥२॥

[illegible] (प्रभु) और [illegible] को ही [illegible] किया ॥३॥

[illegible] संन्यासी को [illegible] नगर से बाहर [illegible] निकाल दिया, और सीता को [illegible] मृग [illegible] समझकर [illegible] अपने नगर में बसाया ॥४॥

इससे सिद्ध होता है कि [illegible] दरबार में [illegible] ही [illegible] करने की परिपाटी चली आ रही है। किन्तु [illegible] (आज तक) [illegible] नहीं [illegible] (यह [illegible] की बात है?) ॥ ॥

शब्दार्थ—[illegible] । [illegible] = रावण विभीषण [illegible] है। परसो = स्पर्श भी । जती = (यति) संन्यासी । रज = [illegible] ।

विशेष—(१) इस पद में दीनता व नम्रता को [illegible] अधिक महत्त्व दिया गया है। कहा है—

ऊंचे ऊंचे सब चलें नीचो चलै न कोय ।
जो कदापि नीचो चलै (तो) प्रभु तें ऊंचो होय ॥

भक्ति-पथ में दैन्य की बड़ी महिमा है। भक्त निरभिमान होकर परमेश्वर के समीप शीघ्र पहुँच जाते हैं और ज्ञानी अभिमान में डूबे रहने के कारण माया में ही चक्कर काटते रहते हैं।

(२) यहि [illegible] आदर—दीनता की महिमा कबीरदास ने गाई है—

'लघुता तें प्रभुता मिलै प्रभुता तें प्रभु दूरि ।
चींटी [illegible] सक्कर चली हाथी के सिर धूरि ॥
सबतें लघुताई भली लघुता तें सब होय ।
जस दुतिया को चन्द्रमा सीस नवै सब कोय ॥'

१६६

ऐसे राम दीन हितकारी ।
अतिकोमल करुनानिधान बिनु कारन पर उपकारी ॥१॥
साधन हीन दीन निज अघ बस सिला भई मुनि नारी ।
गृह तें गवनि परसि पद पावन घोर सापतें तारी ॥२॥
हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बनचारी ।
भेंटयो हृदय लगाइ प्रेमबस, नहिं कुल जाति बिचारी ॥३॥

जद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत, कहि न जाय अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि सोकहत, सरन गये भय टारी ॥४॥
बिहँग-जोनि आमिष अहार पर, गीध कौन व्रतधारी ।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥५॥
अधम जाति सबरी जोषित जड लोक वेद तें न्यारी ।
जानि प्रीति, दै दरस कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी ॥६॥
कपि सुग्रीव बंधु भय-ब्याकुल आयो सरन पुकारी ।
सहि न सके दारुन दुख जन के, हत्यो बालि सहि गारी ॥७॥
रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी ।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हो भेंट्यो भुजा पसारी ॥८॥
असुभ होइ जिनके सुमिरे तें, बानर रीछ बिकारी ।
वेद बिदित पावन किये ते सब, महिमा नाथ, तुम्हारी ॥९॥
कहँलगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी ।
कलिमल ग्रसित दास तुलसी पर, काहे कृपा बिसारी ॥१०॥

भावार्थ—दीनों का ऐसा हित करनेवाले श्रीरामजी ही हैं। वे बड़े कोमल, करुणा के भाण्डार, दयामूर्ति और बिना ही किसी हेतु के दूसरों का उपकार करनेवाले हैं ॥१॥

साधनों से रहित दीन गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या अपने पापों के कारण पाषाणी हो गई थी। उसे आपने घर से जाकर अपने पवित्र चरण से छूकर घोर शाप से छुड़ा दिया ॥२॥

गुह निषाद सदा हिंसा में ही रत रहता था। शरीर तामसी था जो पशु की तरह वन में फिरता रहता था। उसे आपने, वंश और जाति का विचार किए बिना ही, प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया ॥३॥

यद्यपि इन्द्र के पुत्र जयंत ने इतना भारी अपराध किया था, कि कुछ कहा नहीं जा सकता (जयंत ने कौए का रूप धरकर सीताजी के चरण में चोंच मारी थी) तथापि जब वह (रघुनाथजी के बाण से व्याकुल होकर प्राण पाने के लिए) सारे लोकों में घूमता फिरा और अन्त में निराश होकर आपकी शरण में आया तब उसका सारा भय दूर कर दिया, उसका सारा अपराध भूलकर उसे निहाल कर दिया ॥४॥

जटायु गीध पक्षी की योनि का था, सदा मांस भक्षण करता था। उसने ऐसा कौन सा व्रत साधा था, कि जिससे आपने अपने हाथ से पिता के समान, उसकी अन्त्येष्टि क्रिया की ? उसकी करनी सब प्रकार से बनाई ॥५॥

शबरी नीच जाति की मूर्खा स्त्री थी। वह लोक और वेद दोनों से ही बाहर थी, किन्तु उसकी भक्ति भावना देखकर, हे दयालु रघुनाथजी ! उसे भी दर्शन दिया उसका भी उद्धार कर दिया ॥६॥

सुग्रीव वानर अपने भाई (बालि) के डर के मारे व्याकुल होकर जब पुकारता

हुआ आपकी शरण में आया, तब आप अपने दास का महान दुःख न देख सके और गालियाँ खाकर भी बालि का वध कर डाला ॥७॥

विभीषण, शत्रु (रावण) का भाई था और जाति का था राक्षस। वह किस भजन का अधिकारी था? किन्तु जब वह (रावण से तिरस्कृत और बहिष्कृत होकर) शरण में आया, तब उसे आपने आगे बढ़कर लिया, स्वागत किया और बाहु पसारकर उसे छाती से लगा लिया ॥८॥

बन्दर और रीछ ऐसे अधर्मी हैं कि उनका नाम तक लेने से अमंगल होता है किन्तु हे नाथ! उन्हें भी आपने पवित्र बना लिया। वेद इस बात के साक्षी हैं। यह आपकी महिमा ही है ॥९॥

ऐसे अनेक दीन हैं जिनकी विपत्तियाँ आपने दूर कर दी हैं। मैं कहाँ तक गिनाऊँ? पर मालूम नहीं, इस तुलसीदास पर ही जो कलियुग के पापों से ग्रसित है क्या आप कृपा करना भूल गये, क्यों उसे अभी तक नहीं अपनाया? ॥१०॥

शब्दार्थ—गवनि = जाकर। सुरपति सुत=इन्द्र का पुत्र जयन्त। अहार पर= खानेवाला। जापित = (शापित) स्त्री। विकारी=पापी।

विशेष—(१) गृहनें गवनि—इसका यह तात्पर्य है कि रामचन्द्रजी घर से केवल अहल्या के तारने के लिए गये थे ताड़का को मारने अथवा धनुष तोड़ने के लिए नहीं। यह बड़ी ही सुन्दर अर्थ ध्वनि है।

(२) छल किया सुरपति सुत—वाल्मीकि और कालिदास ने लिखा है कि जयन्त ने श्रीसीताजी के स्तनों पर चोंच से आघात किया था और ऐसा उसने कामवश किया था, किन्तु गोसाईंजी ने, मर्यादा का पालन करते हुए, ऐसा न लिखकर यह लिखा है, कि उसने सीताजी के चरणों में चोंच मारी थी।

(३) अगुन विकारी—कहा है—

प्रात लेइ जो नाम हमारा। ता दिन ताहि न मिलै अहारा॥

(४) कहँ लगि कहौं'—और अगणित पापियों का उद्धार किया है—

'एते जन तारे जेते नभ में न तारे हैं।'

१६७

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई ॥१॥
जो जेहि कला-कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी ॥२॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ, बल तें न कोउ बिलगाइ।
अति रसग्य सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पाइ ॥३॥
सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसय द्वैत बियोगी ॥४॥

सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस-काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं ॥५॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजी की भक्ति करने में भारी कठिनता है। कहना तो आसान है, पर करना उसका कठिन है। जिसके करते बन गई, वही इसे जानता है ॥१॥

जो जिस कला में प्रवीण है उसके लिए वह सरल और सदा सुख देनेवाली है। जैसे (छोटी-सी) मछली तो गंगा की धारा के सामने चली जाती है, परन्तु बहुत बड़ा हाथी उसमें बह जाता है। (क्योंकि वह मछली की तरह उसमें तैरना नहीं जानता) ॥२॥

(दूसरा उदाहरण उपस्थित करते हैं) जैसे यदि रेत में शक्कर मिल जाये तो उसे कोई जोर लगाकर अलग नहीं कर सकता, किन्तु उसके रस को जाननेवाली छोटी-सी चींटी उसे सहज ही अलग कर देती है ॥३॥

जो योगी दृश्यमात्र का, सारे पंचभूतात्मक प्रपंच का, अपने पेट में रख (चित्त वृत्ति निरोध द्वारा संसार का लय करके) निद्रा को त्यागकर सोता है अर्थात् अविद्या हटाकर ब्राह्मी अवस्था में लीन हो जाता है और भेदात्मक ज्ञान का आत्यन्तिक परित्याग कर देता है, वही कैवल्यपद के परमानन्द की प्रत्यक्ष अनुभूति कर सकता है ब्रह्मानन्द का पूर्णाधिकारी वही हो सकता है ॥४॥

इस परम अवस्था में शोक मोह भय, हर्ष, दिन रात और देश काल का नाम तक नहीं रह जाता, इन सबसे वह परे पहुँच जाता है। हे तुलसीदास ! जब तक यह जीव इस दशा को नहीं पहुँचता तब तक संशय निर्मूल नहीं होते (कुछ न कुछ सन्देह बना ही रहता है और जब तक सन्देह का लेश भी है, तब तक निःश्रेयस प्राप्त होने का नहीं) ॥५॥

शब्दार्थ—सफरी = मछली। सकरा = शक्कर। सिकता = रेत। पिपीलिका = चींटी। दृश्य = पंचभूतात्मक जगत। द्वैत बियोगी = जिनका भेदात्मक ज्ञान नष्ट हो गया है। संशय = सदसत् विवेक का अभाव।

विशेष—(१) 'कहत सुगम'—जैसे, कहने में तो ये चौपाइयाँ ही बड़ी आसान हैं कहने में जबान को भी जरा भी कष्ट नहीं पहुँचता—

'सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। जथालाभ संतोष सदाई॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृनसम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥'

पर इन पर अमल करना बड़ा ही कठिन है खाँड़े की धार पर दौड़ने के जैसा है। कहाँ तो कथनी और कहाँ करनी !

(२) 'सफरी पाव'—श्रीभगवतरसिकजी ने भी ऐसा ही कहा है—

'भगवत स्यामा स्याम को पावनरूप बिहार।
नहिं समय खगराज को करत चकोर अहार॥
करत चकोर अहार किलकिला जलचर लावै।
स्याह सीस मृगराजबदन तें आमिष पावै॥
ऐसे रसिक अनन्य और सब जानहु खगवत।
तजौ पराई सन, भजौ किन माफिक भगवत॥'

१६८

जो पै राम चरन रति होती ।
तौ कत त्रिविध सूल निसिबासर सहते बिपति निसोती ॥१॥
जो संतोष सुधा निसिबासर सपनेहुँ कबहुँक पावै ।
तौ कत विषय बिलोकि झूठ जल मन कुरंग ज्यों धावै ॥२॥
जो श्रीपति महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार-द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥३॥
जे लोलुप भये दास आस के, ते सबही के चेरे ।
प्रभु बिस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥४॥
नहिं एकौ आचरन भजन को, बिनय करत हौं ताते ।
कीजे कृपा दासतुलसी पर, नाथ नाम के नाते ॥५॥

भावार्थ—यदि श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति होती, तो रात दिन विपत्तियों के प्रवाहरूप तीनों प्रकार के कष्ट क्यों सहते ? ॥१॥

यदि यह मन दिन या रात में कभी स्वप्न में भी संतोषरूपी अमृत पा जाये तो विषयों के मिथ्या मृगजल को देखकर उसके पीछे क्यों हिरण की भाँति दौड़े ? ॥२॥

यदि हम भगवान लक्ष्मीकान्त की महिमा का हृदय में विचारकर भाव भक्ति से उनका भजन करते तो आज कुत्ते की तरह द्वार-द्वार पेट दिखाते हुए क्यों मारे मारे फिरते ॥३॥

जो लोभी जन आशा के दास बन गये वे सभी के गुलाम हैं और जिन्होंने भगवान् में विश्वास कर आशा को जीत लिया वे ही भगवान् के सच्चे सेवक हैं ॥४॥

मैं आपसे इसलिए विनय कर रहा हूँ कि मुझमें भजन भाव का एक भी आचरण नहीं है (श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि नवधा भक्ति से बिलकुल कोरा हूँ) हे नाथ ! तुलसीदास पर अपने नाम के नाते से ही कृपा कीजिए (क्योंकि आपके नाम दीनवत्सल, दीनबन्धु आदि हैं) ॥५॥

शब्दार्थ—निसोती = प्रवाह । कुरंग = हिरण । खलाए = पचकाकर ।

विशेष—(१) जो संतोष पावै—क्योंकि

'सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहाय ।'

(२) जे लोलुप चेरे—कबीर साहब कहते हैं—

कबिरा आशा जगत-गुरु सब जगत की दास ।
जो जग को आसा करे जगत गुरु वह दास ॥

हरिभक्त क्यों किसी की आशा करे ? चिन्ता ही किस बात की ?

भावनालम्बन चिन्ता वृथा कुर्वन्ति बान्धव ।
योऽसौ विश्वम्भरो देवः स भक्तान् किमुपेक्षते ॥

१६६

जो मोहि राम लागते मीठे ।
तौ नवरस, षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ।।१।।
बचक विषय विविध तनु धरि अनुभवे, सुने अरु डीठे ।
यह जानत हौं हृदय आपने, सपने न अघाइ उबीठे ।।२।।
तुलसिदास प्रभु सो एकहि बल बचन कहत अति ढीठे ।
नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिये कर चीठे ।।३।।

भावार्थ—यदि मुझे श्रीरामजी ही मीठे लग जाते तो नवरस (साहित्य के) एवं षट्रस (भोजन के) नीरस और फीके पड़ जाते (पर रामजी तो मीठे लगने नहीं उनसे तो प्रेम है नहीं, इसीलिए भोग विलास मधुर प्रतीत होते हैं) ।।१।।

मैं नाना प्रकार के शरीर धारणकर यह अनुभव कर चुका हूँ और मैंने सुना भी है कि विषय सारे ठग हैं (सत्कर्मों के लुटेरे हैं) । यद्यपि यह मैं अपने जी में खूब समझता हूँ तथापि (समझते हुए भी) कभी स्वप्न में भी, इनसे तृप्त होकर जी नहीं ऊबा, रुचि नहीं हटी ! ।।२।।

तुलसीदास अपने स्वामी श्रीरघुनाथजी से एक ही बल पर ये ढिठाई भरे वचन कह रहा है। (और वह बल यह है कि) हे नाथ ! आपने अपने नाम की लाज रखने के लिए किस किसके हाथ में दया करके परवाने नहीं लिख दिये हैं ? किसे संसार से मुक्त कर देने का वचन नहीं दिया ? (भाव यह है कि आपके नाम में वह शक्ति है जो जीव मात्र को भवसागर से तार देने में समर्थ है। उसीका मुझे बल भरोसा है) ।।३।।

शब्दार्थ—नवरस=शृंगार हास्य, करुण वीर रौद्र भयानक वीभत्स, अद्भुत और शांत । षटरस=कटु तीखा, मधुर, कषाय, अम्ल और लवण । सीठे= फीके । डीठे = देखे । उबीठे=ऊबे, मन से उतर गये ।

विशेष—(१) तौ ... सीठे'—क्योंकि—

'रमा विलास राम-अनुरागी तजत वमन इव जन बड़भागी ।।

[रामचरितमानस

कबीर साहब ने भी कहा है—

'पीया चाहे प्रेमरस राखा चाहे मान ।
एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान ।।

(२)'बचक विषय'—सत्संग से अथवा प्रारब्धवश यदि जीव नाम रत्नों का संचय करता है, तो इन्द्रियों के विषय क्षणभर में उन्हें लूटकर ले जाते हैं —

काम क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः ।
ज्ञानरत्नापहाराय तस्माज्जाग्रत जाग्रत ।।'

[श्रीशंकराचार्य

(३) 'नाम की लाज'—यदि पतितपावन नाम रखकर पापियों का उद्धार न किया तो नाम मुफ्त में बदनाम हो जायेगा। इसलिए जैसे-तैसे, अपनी बात रखने के लिए

पापियों का उद्धार करना ही पड़ेगा। भक्तों का यह हठ-भरा वचन कैसे गवारा हो सकता था—

"कहौ मुरारि, मुरारि कहौ अब, मेरो हुतो सोइ तेरो हुतो है ॥"

[१७०]

ऐसो मन कबहुँ तुमहिं न लाग्यो।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत बिषय अनुराग्यो ॥१॥
ज्यों चितई परनारि, सुने पातक-प्रपंच घर-घर के।
त्यों न साधु, सुरसरि-तरंग-निर्मल गुनगन रघुबर के ॥२॥
ज्यों नासा सुगंधरस-बस, रसना षटरस-रति मानी।
राम-प्रसाद-माल जूठनि लगि त्यों न ललकि ललचानी ॥३॥
चन्दन-चन्द्रबदनि-भूषन-पट ज्यों चह पाँवर परस्यो।
त्यों रघुपति-पद-पदुम-परस को तनु पातकी न तरस्यो ॥४॥
ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेये बपु बचन हिये हूँ।
त्यों न राम सुकृतग्य जे सकुचत सकृत प्रनाम किये हूँ ॥५॥
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार-द्वार जग बागे।
राम-सीय-आस्रमनि चलत त्यों भये न स्रमित अभागे ॥६॥
सकल अंग पद-बिमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है।
है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है ॥७॥

भावार्थ—मेरा मन इस प्रकार कभी भी आपसे नहीं लगा, जैसा कि यह कपट छोड़कर स्वभाव से ही विषयों में लगा रहता है, विषयों के प्रति जैसे उसकी सहज वासना रहती है ॥१॥

जैसे, मैं दूसरे की नारी को ताकता फिरता हूँ, घर-घर के पाप भरे प्रपंच सुनता रहता हूँ, वैसे न तो कभी साधुओं का दर्शन करता हूँ और न गंगा की निर्मल लहरों के समान श्रीरघुनाथजी की गुणावली ही सुनता हूँ ॥२॥

जैसे, नाक सुगन्ध के रस के अधीन रहती है और जीभ छहों रसों से प्रेम करती है, वैसे यह नाक भगवान् पर चढ़ी हुई माला के लिए और जीभ भगवत् प्रसाद पर ललक-ललककर नहीं ललचाती ॥३॥

जैसे यह अधम शरीर चन्दन, चन्द्रवदनी युवती और सुन्दर अलंकारों एवं (कोमल) वस्त्रों का स्पर्श करना चाहता है, वैसे कभी यह श्रीरघुनाथजी के चरणकमलों का स्पर्श करने के लिए उत्कण्ठित नहीं होता ॥४॥

जिस प्रकार मन, शरीर, वचन और हृदय से भली भाँति बुरे-बुरे देवों और दुष्ट स्वामियों की सेवा की, वैसी उन रघुनाथजी की सेवा कभी नहीं की, जो जरा-सी सेवा से अपने को अत्यन्त कृतज्ञ मानने लगते हैं, एक बार प्रणाम करने पर ही (सौशील्य वश) सकुचा जानेवाले हैं ॥५॥

जसे, ये चचल पैर लाभवश द्वार-द्वार भटकते फिरते ह वसे ये अभागे श्रीसीता रामजी के (पुण्य) आश्रमों म चलकर कभी थकित नहीं होना चा,ते। (यह तात्पय नहीं है, कि पुण्य आश्रमों में चलते हुए थके नहीं ह किन्तु वहाँ गये ही नहीं तब थकेंगे क्या ?) ॥६॥

हे प्रभो ! मेरे अग प्रत्यग आपके चरणों स विमुख ह (किसी भी अग स चरणों की सेवा नहीं की)। केवल इस मुख से आपके नाम की ओट ले रखी ह (और यह इस लिए कि) आपकी मूर्ति कृपा का रूप ह। तुलसी का यही एक ऋस भरोसा ह (कि आप कृपासागर होने के कारण तथा नाम की बात रखने के लिए मुझे अवश्य ससार सिन्धु पार कर देंगे) ॥७॥

शब्दार्थ—ललकि = उमग में आकर। सकृत = एकबार। वागे = फिरे, चले। ओट=भरोसा।

विशेष—(१) शरीर के समस्त अगों की निरथकता तथा सार्थकता का यहाँ निरूपण कराया गया ह। एक ही वस्तु असार एव सारमय हो सकती ह अन्तर उसकी उपयोगिता में ह। इसी प्रकार जगत यदि हरिमय ह तो वह सत्य ह, आनदरूप ह, और यदि वह 'हरि शून्य' ह, तो मिथ्या ह। आत्मा के अनुकूल प्रत्येक वस्तु सुखरूप ह उसके प्रतिकूल वही दु खरूप ह।

(२) कुदेव'—भूत प्रेत स आशय ह। गोसाइजी ने भूत प्रेतों का जहाँ-तहाँ खूब फटकारा ह छोटी छोटी कामनाओं की पूर्ति के लिए ही लोग भूत प्रेतों को माना करते हैं, फलत उनका विश्वास परमेश्वर पर से उठ जाता ह।

१७१

कीजै मोको जम जातनामई।
राम, तुमसे सुचि सुहृद साहिबहिं मैं सठ पीठि दई ॥१॥
गरभवास दस मास पालि पितु मातु रूप हित कीन्हो।
जडहिं विवेक, सुसील खलहिं, अपराधिहिं आदर दीन्हो ॥२॥
कपट करौं अतरजामिहुँ सो, अघ व्यापकहिं दुरावौं।
एसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न किया मन बावौं ॥३॥
उदर भरौं किंकर कहाइ बेंच्यो विषयनि हाथ हियो है।
मोसे बचक को कृपालु छल छाडिकै छोह कियो है ॥४॥
पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके।
भिद्यो न कुलिसहुँ ते कठोर चित कबहुँ प्रेम सिय-पीके ॥५॥
स्वामी की सेवक हितता सब, कछु निज साईं दोहाई।
मैं मति-तुला तोलि दखी भइ मेरेहि दिसि गरुआई ॥६॥
एतेहु पर हित करत नाथ मेरो, करि आयो, अरु करिहैं।
तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौडो भरिहै ॥७॥

भावार्थ—हे नाथ! मुझे तो आप यम यातना (जन्म मरण) में ही डाल दीजिए, नरक में ही भेज दीजिए, क्योंकि हे श्रीराम! मैं आप-सरीखे पवित्र और सुहृद स्वामी से विमुख हो गया हूँ (इसका दण्ड यम यातना ही हो सकता है सो मुझे वही दीजिए) ॥१॥

जब गर्भ में था तब आपने माता पिता के समान दस महीने पालन पोषण कर मेरा हित किया। मुझ मूर्ख को आपने शुद्ध ज्ञान, मुझ दुष्ट को सुन्दर शील और मुझ अपराधी को आदर दिया, (मुझे आपका कृतज्ञ होना चाहिए था आपका भजन करना चाहिए था। *वह न हुआ उलटे आपको भुलाकर कृतघ्नता का भागी बन गया।*) ॥२॥

मैं अन्तर्यामी प्रभु के साथ छल करता हूँ। सर्वव्यापी घट घट में रमनेवाले से अपने पाप छिपाता हूँ। ऐसे दुर्बुद्धि नीच नौकर पर भी श्रीरघुनाथजी ने अपना मन प्रतिकूल नहीं किया। अब भी उस पर कृपा कर रहे हैं ॥३॥

आपका दास बनकर तो पेट भरा करता हूँ, किन्तु हृदय विषयों के हाथ बेच दिया है। चाहिए तो यह था, कि जिसका खाना उसी का गाना पर मुझ अधम से यह न हुआ)। मुझ सरीखे ठग पर भी कृपालु रघुनाथजी ने निष्कपट भाव से कृपा ही की है ॥४॥

एक एक पल के उपकारों को जानकर समझकर और अच्छी तरह सुनकर भी मेरे कठोर चित्त में कभी जानकी जीवन का प्रेम नहीं भिदा ॥५॥

मैंने जब अपनी बुद्धिरूपी तराजू पर एक ओर स्वामी की सारी जन वत्सलता और दूसरी ओर थोथी सी अपनी करनी रखकर तौली तब देखने पर मेरी ओर का ही पलड़ा भारी निकला। यह मैं स्वामी की सौगन्ध खाकर कह रहा हूँ। तात्पर्य यह, कि जीव की क्षण भर की भी हरि विमुखता श्रीहरि की सारी कृपा की तुलना में भारी है, उसके कर्म ऐसे गिरे हुए हैं कि वह भगवत्कृपा होने पर भी क्षणमात्र में नरकगामी हो सकता है ॥६॥

किन्तु इतने पर भी मेरे कृपालु स्वामी ने मेरा भला किया है कर रहे हैं और करेंगे। वे सदा से मेरे हितू हैं। तुलसी अपनी ओर से जानता है कि इस कनौड़ का, एहसान से दबे हुए का स्वामी ही पालन करेंगे। (क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा है कि शरणागत का वे अवश्य परिपालन करते हैं) ॥७॥

शब्दार्थ—पाठि दई=विमुख हो गया। जड़हिं=मूर्ख को। बावीं=(वाम) प्रतिकूल। छाहँ=अनुग्रह। कनौड़ो=कृतज्ञ एहसान से दबा हुआ।

विशेष—(१) उदर भरौं किंकर कहाइ—पाखण्ड भेष धारणकर लोगों को ठगता फिरता हूँ। दूसरा की दृष्टि में ज्ञान का सन्त महात्मा सिद्ध करना चाहता हूँ।

'तन को जोगी सब करै, मन को बिरला कोय।
सहजै सब सिधि पाइये जो मन जोगी होय॥'

[कबीरदास

(२) प्रभुहिं कनौड़ भरिहैं—शरणागत भगवान् की यह प्रतिज्ञा सुप्रसिद्ध है—

'अहं भक्तपराधीनो, ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रिय॥'

[श्रीमद्भागवत

१७२

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो ॥१॥
जथालाभ संतोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरंतर, मन क्रम वचन नेम निबहौंगो ॥२॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगतमान, सम सीतल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो ॥३॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि भक्ति लहौंगो ॥४॥

भावार्थ—क्या मैं कभी इस रहनी से रहूँगा? क्या कृपालु श्रीरघुनाथजी की कृपा से कभी मैं सन्तों का सा स्वभाव ग्रहण कर सकूँगा? ॥१॥

क्या जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहूँगा, किसीसे कुछ भी पाने की इच्छा नहीं करूँगा? सदा दूसरों की भलाई करने में क्या तत्पर रह सकूँगा? मन से वचन से और कर्म से यम नियमों का पालन करूँगा क्या? ॥२॥

कठोर और असह्य वचन सुनकर उसकी आग में तो नहीं जलूँगा? किसी से मान पाने की इच्छा तो न करूँगा? क्या मन को एकरस और शीतल रखूँगा? ऐसा स्वभाव कब बनेगा कि दूसरों के गुण दोष की चर्चा न करूँ अथवा दूसरों की प्रशंसा तो करूँ, पर उनके दोष न कहूँ? ॥३॥

शारीरिक चिन्ताएँ छोड़कर और सुख दुःख को कब एक सरीखा मानूँगा? हे नाथ! क्या तुलसीदास इस मार्ग पर चलकर अटल भगवद्भक्ति को कभी प्राप्त कर सकेगा? (*क्या कभी उसका यह मनोराज्य साकार होगा*) ॥४॥

शब्दार्थ—निरत=संलग्न तत्पर। क्रम=कर्म

विशेष—(१) मनोराज्य विषयक सूक्तियाँ भक्तों ने अनेक प्रकार से कही हैं। श्रीहरिराम व्यास कहते हैं—

ऐसो कब करिहो मन मेरो।
कर करवा हरवा गुंजन को, कुंजन माँहि बसेरो ॥
ब्रजवासिन के टूक जूठ अरु घर घर छाछ महेरो ॥
भूख लगे तब माँगि खाइहौं, गिनौं न साँझ सबेरो ॥
ऐसो आस 'व्यास' की पूजै, मेरे मास न खेरो ॥'

और ललितकिशोरी भी—

'जमुना पुलिन कुंज गहवर की कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद पंकज प्रियलाल मधुप ह्वै मधुरे मधुरे गुंज सुनाऊँ ॥
कूकर ह्वै बन बीथिन डोलौं बचे सीथ संतन के पाऊँ ॥
'ललितकिसोरी' आस यही मम ब्रज रज तजि छिन अनत न जाऊँ ॥'

(२) 'जयालाभ संतोष—

'जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान।'

(३) 'यहि पथ'—सन्तों का स्वभाव, राम भक्त के सद्‌गुण संक्षेप में —

'शान्त समानमनसश्च मुनीन्द्रवर्ग—
स्तोयक्षमागुणदयामृजुबुद्धियुक्त ।
विज्ञानज्ञानविरति परमार्थवेत्ता
निर्ममको भवमन स च रामभक्त ॥'

[महारामायण

१७३

नाहिन आवत आन भरोसो ।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम फलनि फरो सो ॥१॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख, जेहि जो रुचै करो सो ।
पायेहि पै जानिबो करम-फल भरि भरि वेद परोसो ॥२॥
आगम विधि जप-जाग करत नर सरत न काज खरो सो ।
सुख सपनेहुँ न जोग सिधि-साधन, रोग वियोग धरो सो ॥३॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो ।
बिगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरो सो ॥४॥
बहुमत सुनि बहु पथ पुराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो ।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज डगरो सो ॥५॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचि मरै सो ।
राम नाम बोहित भव सागर चाहै तरन तरो सो ॥६॥

भावार्थ—मुझे कोई दूसरा बल भरोसा नहीं है (केवल एक राम-नाम का ही भरोसा है)। इस कलियुग में जितने भी साधनरूपी वृक्ष हैं उनमें केवल परिश्रमरूपी फल ही फल से दीखने हैं। अर्थात्—उन साधनों के लिए चाहे जितना श्रम किया जाय पर हाथ कुछ भी नहीं आता ॥१॥

तप तीर्थाटन, व्रत दान, यज्ञ आदि जो जिसे अच्छा लगे, सो करे। पर इन सारे कर्मों का फल पाने पर ही जान पड़ेगा यद्यपि वेदों में (पत्तल) भर भरकर फलों का परोसा है। तात्पर्य यह कि वेदों ने तो प्रत्येक सत्कर्म की फलश्रुति मनमानी लिख दी है पर कलि महाराज के मारे जब कोई सत्क्रिया सफल हो, तभी न उसका फल मिले ॥२॥

शास्त्रोक्त विधि से मनुष्य जप और यज्ञ करते हैं पर उनसे यथेष्ट कार्य सिद्धि नहीं होती। योग सिद्धियों के साधन में सुख स्वप्न में भी नहीं। इसमें भी रोग और वियोग प्रस्तुत है। शरीर रोगी होने से प्रियजनों से विछोह हो जाता है ॥३॥

काम क्रोध अहंकार लोभ और मोह ने मिलकर ज्ञान-वैराग्य को तो हर सा लिया है (इन व्यसनों के मारे यह भी सधने के नहीं) और सन्यास ग्रहण करने पर मन ऐसा बिगड़ जाता है जैसे पानी के पड़ने से कच्चा घड़ा गल जाता है ॥४॥

शास्त्रों के अनेक मत सुनकर और पुराणों में नाना प्रकार के पथ देखकर जहाँ तहाँ झगड़ ही जान पड़ते हैं (कहीं भी कोई निश्चित दृष्टि नहीं मिल रही है)। गुरु ने

तो मुझे राम भजन का ही उपदेश किया है और यही मुझे राज-मार्ग के समान अच्छा भी लगता है ॥५॥

हे तुलसी ! विश्वास और श्रद्धा के बिना जिसे बार-बार पच-पचकर मरना हो, वह भले ही मरे, किन्तु संसार सागर पार करने के लिए तो एक राम-नाम ही जहाज है ॥६॥

शब्दार्थ—आगम = शास्त्र। सरत = पूरा होता है। नावत = डालते हैं। आम = कच्चा। घरो = घड़ा। डगरो = मार्ग।

विशेष—(१) इस पद में गोसाईंजी ने सिद्धान्तरूप से रामनाम का सहज साफल्य तथा अन्य साधना का वैफल्य दिखाया है।

(२) 'तप मख'—प्रत्येक की कठिनता देखिए —

तप—पंचाग्नि तापना, जल शयन करना, धोती, नेती आदि करना,

तीरथ—तीर्थों का चलना, भूख-प्यास सहकर, पर्यटन करना,

उपवास—चान्द्रायण, कृच्छ्र, महाकृच्छ्र आदि व्रत करना,

दान—प्रसन्न चित्त से निष्काम बुद्धि से शास्त्रोक्त दान देना,

मख—अश्वमेधादि यज्ञ करना, जो महाकठिन हैं।

(३) 'बिगरत घरो सो'—संन्यास आश्रम सारे आश्रमों से कठिन है। जब मन समस्त विषयों से तृप्त हो जाय इन्द्रियों का जीत लिया जाय और शान्ति का अनुभव होने लगे, तभी इस आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। कर्म करते हुए भी, कर्म वासना का पूर्णतया त्याग कर देना सच्चा संन्यास है। ऊपर से कुछ कर्मों का त्याग संन्यास नहीं है। निर्विकल्प मनवाले साधक ही संन्यास के अधिकारी हैं। यों तो जहाँ तहाँ अनेक सन्यासी भगवा वस्त्र पहने मूड मुँड़ाये घूमते फिरते हैं —

'दाढ़ी मूँछ मुड़ायके, हुआ घुं घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मूड़िए जामें भरिया खोट ॥'
'माला तिलक लगाइकै, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइकै, चले दुनी के साथ ॥'

(४) बहुमत 'डगरो-सो'—

मत—वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा, इन शास्त्रों के तथा शैव वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, बौद्ध, जैन आदि अनेक सम्प्रदायों के मत मतान्तर।

(५) 'गुरु नीको'—इस बात को दृढ़तापूर्वक हृदय में बैठा दिया गया कि—

'न तत्पुराणं नहि यत्र रामो यस्यां न रामो न च संहिता सा।
स नेतिहासो नहि यत्र रामः काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्र रामः ॥'

[पद्मपुराण

१७४

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥१॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषण बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भये मुद-मंगलकारी ॥२॥

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥३॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासों होइ सनेह राम पद, एतो मतो हमारो ॥४॥

भावार्थ—जिसे श्रीराम-जानकी प्यारे नहीं, उसे करोड़ शत्रुओं के समान त्याग देना चाहिए, चाहे वह अपना अत्यन्त ही प्यारा क्यों न हो ॥१॥

(उदाहरण के लिए,) प्रह्लाद ने अपने पिता (हिरण्यकशिपु) को, विभीषण ने अपने भाई (रावण) को, भरत ने अपनी माता (कैकेयी) को, राजा बलि ने अपने गुरु (शुक्राचार्य) को और व्रज गोपियों ने अपने-अपने पतियों को (भगवत्प्राप्ति में बाधक समझकर) त्याग दिया और ये सभी आनन्द और कल्याण करनेवाले हुए ॥२॥

जहाँ तक मित्र और भली भाँति पूजने योग्य हैं, वे सब श्रीरघुनाथजी के ही सम्बन्ध और प्रेम से ऐसे माने जाते हैं। तात्पर्य यह कि यदि वे भगवत् दर्शन और हरि प्रेम में सहायक हैं, तो उन्हें मानना और पूजना चाहिए, अन्यथा नहीं। जिस अंजन के लगाने से आँखें ही फूट जायँ वह अंजन किस काम का ? बस अब अधिक क्या कहूँ ॥३॥

हे तुलसीदास ! जिसके कारण श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम हो, वही सब प्रकार से परमहितकारी पूजनीय और प्राणों से भी अधिक प्यारा है। हमारा तो यही मत है ॥४॥

शब्दार्थ—कन्त=पति। मतो=मत, सिद्धान्त।

विशेष—(१) 'व्रज बनितनि'—महाभाग्यवती गोपियाँ तो प्रेम-मन्दिर की 'धुजा' थीं ? एक प्रेम दीवानी गोपी यहाँ तक कहती है —

'घर तजौं, बन तजौं नागर' नगर तजौं,
बंसीवट तट तजौं, काहू पै न लजिहौं।
देह तजौं गेह तजौं नेह कहौ कैसे तजौं
और काज छाँडि आज ऐसे साज सजिहौं ॥
बावरो भयो है लोक बावरी कहत मोकौं
बावरी कहेतें मैं हूँ काहू ना बरजिहौं।
कहैया-सुनया तजौं बाप और भैया तजौं,
दैया ! तजौं मैया, पै कन्हैया नाहि तजिहौं ॥'

[नागरीदास

(२) 'एतो मतो हमारो'—इस पद पर से एक यह धारणा बन गई है कि यह पद मीराबाई के पत्रोत्तर रूप में लिखा गया है। कहते हैं कि मीराबाई को उनके परिजनों ने बहुत परेशान किया तब उन्होंने गोसाईं तुलसीदासजी को यह पद पत्र में लिखकर भेजा—

'स्वस्ति श्री तुलसी गुनभूषन दूषन हरन गुसाई।
बारहिंबार प्रनाम करौं अब हरहु सोक-समुदाई ॥
घर के सजन हमारे जेते, सबनि उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ॥

बालपन तें मीरां कीन्हीं गिरिधरलाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्योंहूँ, लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता के सम हौ हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समुझाई॥

श्रीतुलसीचरित' के अनुसार—

सो पत्र्या गुसाइं समाचार। जिमि लिखो हुती निज गति विचार॥'

'जाके प्रिय न राम-बैदेही' इत्यादि पद गोसाइंजी ने मीराबाई को लिख भेजा। यह दंत-कथा ही प्रतीत होती है। मीराबाई का गोलोक प्रयाण संवत १६०३ में हो चुका था। उस समय गोसाइंजी अधिक से अधिक १३ वर्ष के रहे होंगे। यह पद साधारणतया सभी के लिए रचा गया है। इसका पुष्टीकरण 'तुलसी-ग्रंथावली' के तीसरे खण्ड में स्व० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने भी किया है।

१७५ Important — 5

जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सम वृथा जियत जग माहीं॥१॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय पी के॥२॥
सूर, सुजान, सुपूत, सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरिभजन इँनारन के फल तजत नहीं करुआई॥३॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि सील, सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने॥४॥

भावार्थ—जिसकी श्रीरामचन्द्रजी से प्रीति नहीं है, वह इस संसार में गधे, कुत्ते और सूअर के समान वृथा ही जीवन बिता रहा है (मानव जन्म रामभक्त होने से ही सार्थक हो सकता है अन्यथा नहीं)॥१॥

यों तो काम, क्रोध अहंकार लोभ, निद्रा, भय भूख और प्यास का सभी को अनुभव होता है पर जिस कारण से देवता और संतजन मनुष्य-शरीर की प्रशंसा करते हैं, वह तो श्रीसीतानाथ रघुनाथजी का प्रेम ही है॥२॥

कोई शूरवीर, चतुर, माता पिता की आज्ञा पालन करनेवाला सुपुत्र, सुन्दर लक्षणवाला तथा महान् गुणों से युक्त भले ही हो, परन्तु यदि वह हरिभजन नहीं करता, हरिपरायण नहीं है, तो वह इन्द्रायण के फल के समान है, जो देखने में सुन्दर होने पर भी अपना कडवापन नहीं त्यागता॥३॥

कीर्ति, उच्चवंश, अच्छी करनी, बड़ी विभूति, शील और लावण्यमय स्वरूप होते हुए भी यदि उसका प्रभु रामचन्द्रजी के प्रति प्रेम नहीं है, तो ये सारे सद्गुण ऐसे हैं, जैसे बिना नमक की दाल या साग भाजी॥४॥

शब्दार्थ—गरुआई = भारीपन, बड़प्पन, इँनारन = इन्द्रायण, एक कडुआ फल। सलोने=लावण्यमय, सुन्दर।

विशेष—(१) 'तो मर माही'—हरि-विमुख जीव को कुत्ता कहा गया, कुत्ता और सूअर से की गई है। 'नया इसलिए कि' वह मनुष्य-शरीर का बड़ा भार ही ढो रहा है उसे दिया बुद्धि आदि का सुख भी त्याग कर दिया। 'कुत्ता इसलिए कि' विना ही कारण भी जाग भूकता रहता है, घर विषय म मग्न रहता है, सूअर के घर पर सार टपकाता है। सूअर इस कारण कि वह विषयरूपी अन्य अमन्य सब कुछ खाता रहता है।

(२) 'खात पीते'—यह इस श्लोक का छायानुवाद मालूम होता है —

आहार निद्रा भय-मैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीना पशुभिः समाना॥

। १७६

राख्यो राम सुस्वामी सो नीच नेह न नातो।
एते अनादर हूँ तोहि ते न हातो॥१॥
जोरे नये नाते नेह फोकट फीके।
देह के दाहक गाहक जी के॥२॥
अपने अपने को सब चाहत नीको।
मूल दुहूँ को दयालु दूलह सी को॥३॥
जीव को जीवन, प्रान को प्यारो।
सुख हू को सुख राम सो बिसारो॥४॥
कियो करैगो तोसे खल को भलो।
ऐसे सुसाहब सो तू कुचाल क्यों चलो॥५॥
तुलसी तेरी भलाई अजहूँ बूझै।
राढउ राउत होत फिरिकै जूझै॥६॥

भावार्थ—रे नीच! तूने श्रीरामचन्द्रजी-सरीखे सुन्दर स्वामी से न तो प्रेम रखा और न नाता ही जोड़ा। इतना अनादर करने पर भी उन्होंने तुझे नहीं त्यागा। तूने उन्हें छोड़ दिया, भुला दिया, पर वे जनवात्सल्य के नाते फिर भी तुझसे अलग नहीं हुए सदा तेरे साथ ही रहे॥१॥

तूने नये-नये नाते और नया-नया प्रेम जोड़ा जो सब व्यर्थ और नीरस थे (उन सबसे कल्याण होना तो दूर रहा वरन्) वे (उलटे) तेरे शरीर को जलानेवाले और प्राणों के गाहक थे (प्रियजनों के न मिलने अथवा मिलकर बिछुड़ जाने से प्राणान्तक दुःख होता है; जीव उनके कारण और भी संसार-बन्धन में दिन दिन जकड़ता जाता है)॥२॥

अपना और अपनों का तो सभी भला चाहते हैं किन्तु दोनों के कल्याण के मूल एक श्रीजानकी-वल्लभ ही हैं॥३॥

वे जीवों के जीवन हैं, प्राणों के प्यारे हैं और सुखों के भी सुख हैं अर्थात् जितने

भी सुख माने जा सकते हैं, उनके मूल कारण हैं। ऐसे श्रीरामचन्द्रजी को तूने भुला दिया। ।४।।

जिन्होंने तेरा सदा भला किया और आगे भी जो भला ही करेंगे, एेसे भले स्वामी के साथ तू ऐसी कुचालें क्यों चला ? ।।५।।

हे तुलसी ! यदि तू अब भी समझ जाय तो तेरी बन सकती है, क्योंकि बार-बार लड़ने से कायर भी शूरवीर हो जाता है। (सारांश यह कि अब भी चेत जा, पुरुषार्थ कर, तेरी सारी बिगड़ी करनी बन जायगी। निराश होने का कोई कारण नहीं) ।।६।।

शब्दार्थ—हातो = अलग हुआ। फोकट=बेकाम। सी=सीताजी। रारउ= कायर भी। राउत=वीर।

विशेष—(१) 'और फोके'—स्त्री-पुत्रादि के साथ सम्बन्ध जोड़ना व्यर्थ इसलिए है कि वे उपस्थित मृत्यु से नहीं बचा सकते, बल्कि उनके लिए जितने कुकर्म-सुकर्म किए उन सभी का फल भोगना पड़ेगा। अतएव उनके साथ का सम्बन्ध वृथा है। कहा है—

'गुरुन स स्यात स्वजनो न स स्यात पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात।
दैवं न तत् स्यान्नपतिश्च स स्यान्नमोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥'

और फीके तो हैं ही, क्योंकि जो नित्य नहीं हैं, परिवर्तनशील हैं, उनमें सरसता और आनन्द कहाँ ?

(२) 'जीव प्यारो'—रामचरितमानस में भी यही कहा है—

प्रान प्रान के जीवन जी के

गीता के 'पुरुषस्त्वन्यस्तदुच्यते' के अनुसार आत्मा का नियन्ता कोई अन्य ही है। वही जीव का जीव आत्मा का आत्मा प्राण का प्राण है।

(३) 'प्रान'—प्राण पाँच प्रकार के माने गये हैं—हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान और सब शरीर में व्यान। इन सबका संचारक परमात्मा है।

१७७

जो तुम त्यागो राम, हौं तो नहिं त्यागों।
परिहरि पाय काहि अनुरागौं ॥१॥
सुखद सुप्रभु तुम सो जग माहीं।
स्रवन नयन मन-गोचर नाहीं ॥२॥
हौं जड़ जीव, ईस रघुराया।
तुम मायापति, हौं बस माया ॥३॥
हौं तो कुजाचक, स्वामि सुदाता।
हौं कुपूत, तुम ही पितु-माता ॥४॥
जो पै कहूँ कोउ बूझत बातो।
तो तुलसी बिनु मोल बिकातो ॥५॥

भावार्थ—हे रामजी ! आप यदि मुझे त्याग दें तो भी मैं आपको त्याग न सकूँगा, क्योंकि आपके चरणों को छोड़कर मैं और किसके साथ अपना प्रेम जोड़ूँ ? ॥१॥

आपके समान सुख देनेवाला सुन्दर स्वामी (आज तक) इस संसार में न कानों से सुना है न आँखों से देखा है, और न मन में अनुमान से ही कोई दूसरा आता है ॥२॥

हे रघुनाथजी ! मैं जड़ जीव हूँ और आप विभु हैं, ईश्वर हैं। आप माया के स्वामी हैं (माया आपके अधीन है) और मैं माया के वश होकर रहता हूँ। (माया से आच्छन्न रहता हूँ अतएव विकारी हूँ) ॥३॥

मैं एक भिखमंगा हूँ और आप बड़े ही उदार स्वामी हैं। मैं आपका पुत्र हूँ और आप मेरे माता पिता हैं। आज यह कि मैं क्षमा आपको अपना नहीं मानता, तो भी आप सदा मेरा पालन पोषण किया करते हैं ॥४॥

यदि कहीं कोई भी मेरी बात पूछता (मेरी जरा भी इज्जत करता) तो मैं बिना ही मोल (उसके हाथ में) बिक जाता। (पर किसी ने मुझे रखा ही नहीं क्योंकि मैं पौरुषहीन हूँ, मुझे रखकर कोई करेगा क्या ? मेरा तो यदि कोई ग्राहक है, तो एक आपही हैं आपही मुझे खरीदकर अपना दास बना लीजिए) ॥५॥

शब्दार्थ—गोचर = इन्द्रियों के विषय। बातो=बात।

विशेष—(१) हौं जड़ ... बस माया—स्पष्टतः जीव और ब्रह्म का भिन्नत्व यहाँ सिद्ध किया गया है। जीव को जड़ इसलिए कहा गया है कि मायाकृत आवरण के कारण सद्सत ज्ञान का उसमें अभाव रहता है। अणुत्व होने से उसका ज्ञान परिमित रहता है। वह स्वपुरुषार्थ से अनन्त के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सोच सकता अतएव वह चैतन्य होते हुए भी, जड़ ही है। इसके विरुद्ध परमात्मा ईश है, विभु है, अनन्त ज्ञानसंपन्न है। माया के अधीन होने से जीव में सुख-दुःख आदि द्वन्द्व रहते हैं किन्तु कैवल्यरूप ब्रह्म माया अपरिच्छिन्न परमात्मा द्वन्द्वों से विमुक्त है। तत्वतः ब्रह्म का अंशस्वरूप (ममैवांशो जीवलोके—गीता) होने के कारण जीव का ब्रह्म के साथ तादात्म्य अवश्य है किन्तु माया के प्राबल्य से जो माया ब्रह्म के अधीन है, जीव अपना 'स्वरूप' भूल बैठा है। यदि माया मिथ्या न होती, तो ब्रह्मस्वरूप जीव पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ता। पर ऐसा नहीं है।

(२) 'जो ... बिकातो'—दुनिया भर में घूम फिर चुकने के अनन्तर आपके द्वार पर आया हूँ। यही ऐसा एक बाजार है जहाँ रद्दी से भी रद्दी चीज बिक जाती है। और यह दरबार दीन को आदर देता है यह भी सुना था, इसलिए मुझे पूरा विश्वास हो गया कि यहाँ अवश्य ही मेरा आदर होगा।

१८८

भयेहूँ उदास राम, मेरे आस रावरी।
आरत स्वारथी सब कहैं बावरी ॥१॥
जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिए।
प्रेम नेम के निबाहे चातक सराहिए ॥२॥

मीन तें न लाभ लेस पानी पुन्य पीन को ।
जल बिनु थल कहा मीचु बिनु मीन को ॥३॥
बडे ही की ओट, बलि, बाचि आये छोटे है ।
चलत खरे के संग जहा-तहा खोटे हैं ॥४॥
यहि दरबार भलो दाहिनेहुँ-बाम को ।
मोको सुभदायक भरोसो राम नाम को ॥५॥
कहत नसानी ह्वै है हिये नाथ, नीकी है ।
जानत कृपानिधान तुलसी के जी की है ॥६॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! आप भले ही मेरी ओर से उदासीन हो जायँ, पर मुझे तो आपकी ही आशा है । जो लोग दुखी अथवा स्वार्थी होते है, वे पागलों की-सी बातें किया करते हैं, विचारकर बाते नहीं करते (यही दशा मेरी है) ॥१॥

जो मेघ पानी का दान करता है और प्राणियों की रक्षा करता है, उसे किस वस्तु की कमी ? किंतु प्रेम का (अटल) नियम निबाहने के कारण पपीहे की ही प्रशंसा होती है । (भाव यह है कि मेघ पपीहे को किसी स्वार्थवश स्वाति का जल नहीं देता केवल उसका प्रेम-नेम देखकर ही वह ऐसा करता है, किन्तु उसका प्रेम इतना बड़ा होता है कि देनेवाले की तो तारीफ नहीं होती वरन् लेनेवाले पपीहे की ही होती है ॥२॥

पवित्र और पुष्टिकारक जल को मछली से लेशमात्र भी लाभ नहीं, पर मछली के लिए, जल को छोड़कर, पृथ्वी पर ऐसा भी कोई स्थान है जहाँ वह अपने प्राण बचा सके ? (तात्पर्य यह है कि वह जल को छोड़कर कहीं भी जीवित नहीं रह सकती, जल पर उसका अगाध प्रेम है और इसी कारण से उसकी प्रशंसा होती है) ॥३॥

मैं आपकी बलैया लेता हूँ देखिए, बड़ों के सहारे ही (सदा) छोटे बचते आये हैं, जहाँ-तहाँ खरे सिक्कों के साथ खोटे भी चल जाते है । (भाव यह कि आपके सच्चे भक्त असली सिक्के है, और मैं एक पाखण्डी नकली सिक्का, किन्तु आपके नाम की छाप से तथा सत्संग से मैं भी उनके साथ संसार सागर पार कर जाऊँगा ॥४॥

आपका यह दरबार कुछ ऐसा है, कि यहाँ भले-बुरे सभी का भला होता है, भले ही कोई आपके अनुकूल हो या प्रतिकूल । (जैसे विभीषण सम्मुख होने से तथा रावण विमुख होने से मुक्त हुआ) । हे नाथ ! मुझे तो केवल आपके मंगलकर नाम का ही बल भरोसा है ॥५॥

यह देने से बात बिगड़ जायगी, (क्योंकि बावला हूँ आर्त हूँ स्वार्थी हूँ) इसलिए मन की मन में ही रखना अच्छा है फिर आप तो तुलसी के जी की, हे कृपानिधान, सब जानते ही हैं । क्योंकि आप अन्तर्यामी हैं, आपसे कुछ छिपा नहीं) ॥६॥

शब्दार्थ—जीवन=पानी, जल । पीन = पुष्ट । मीच = मौत । बाँचि आये = बच आये । खरा = चोखा, असली । दाहिना = अनुकूल । बाम=प्रतिकूल ।

विशेष—(१) 'चातक सराहिए'—उदारता तो मेघ की है, परन्तु प्रशंसा चातक की की जाती है । इसी प्रकार मुझे निहाल तो आप करेंगे, पर तारीफ होगी मेरी । यह

आपकी अनन्य भक्ति की महिमा। और यही अनन्यता आपकी कृपा से ही मिलती है। अतएव जीव में जो कुछ भी योग्यता है उसके मूल कारण आप ही हैं।

(२) "जल बिनु मीन ज्यों"—क्योंकि—

'सर सूखे पंछी उड़ें और सरनि समाहिं।
दीन मीन बिनु पंख के, कहु रहीम कहँ जाहिं॥'

इसी अनन्य निष्ठा के कारण मीन की सराहना होती है। इसी प्रकार आपको छोड़कर मुझे कहीं भी ऐसा कोई ठौर ठिकाना नहीं जहाँ मैं कल्याण, मान या धन पा सकूँ। रहता तो मैं स्वार्थवश आपकी शरण में हूँ पर इसे 'अनन्यता' कहा जाता है। और मेरी प्रशंसा के पुल बाँधे जाते हैं। इसे अनन्यता कहते हैं और मेरी तारीफ करते हैं। यह आपकी ही कृपा है।

(३) बड़े खोटे हैं—जैसे अजामिल धोखे से आपका नारायण यह नाम पुकारकर यम-यातना से त्राण पा गया।

(४) 'कहत नसानी ह्वैहै'—क्योंकि "आरत स्वारथी सब कहहिं बात बनाइ।"

'मान कहहिं सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥'

[रामचरितमानस

तथा—

'कामार्त्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु।' [मेघदूत

राग बिलावल

१७९

कहा जाउँ, कासों कहौं, को सुनै दीन की।
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीन की॥१॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं।
निराधार के अधार गुनगन तेरे हैं॥२॥
गजराज-काज खगराज तजि धायो को।
मोसे दोष कोष पोसे तोसे माय जायो को॥३॥
मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के।
किये बहुमोल तैं करैया गीध स्राध के॥४॥
तुलसी की तेरे ही बनाये, बलि बनैगी।
प्रभु की बिलंब अंब दोष दुख जनैगी॥५॥

......—कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ? कौन इस (साधनहीन) दीन की सुनेगा? जिसे कहीं ठौर ठिकाना नहीं, जो सब तरह से निःसहाय है उसकी गति तीनों लोकों में एक तू ही है। (केवल तू ही उसे शरण में ले सकता है)॥१॥

यों तो दुनिया में घर घर जगदीश भरे पड़े हैं (सभी अपने-आपको कहते हैं, कि दुनिया के मालिक हमी हैं।) पर जिसे कोई सहारा नहीं उसके लिए तो एक तेरे ही

गुणों का आधार है। (भाव यह, तेरे ही गुणों का गानकर संसार सिन्धु को वह पार करता है) ॥२॥

गजेंद्र को छुड़ाने के लिए गरुड़ की सवारी छोड़कर भी कौन दौड़ा था? जिसने मुझ-जैसे महान् अपराधी का भी पालन-पोषण किया, ऐसा एक तुझे छोड़कर किस जननी ने जना है? (किसी माई के लाल में यह बलबूता न था, जो मुझ-सरीखे घोर पातकी का उद्धार कर देता) ॥३॥

मुझ-जैसे दुष्ट, कायर, कुपूत और आधी कौड़ी की कीमतवाला को भी हे जटायु के श्राद्ध करनेवाले! तूने बहुमूल्य बना दिया (मुझे पहले कोई फूटी कौड़ी के बराबर भी नहीं समझता था, पर आज, तेरी कृपा से, मैं जगत में पूज्य माना जाता हूँ) ॥४॥

बलिहारी! तुलसी की (बिगड़ी हुई) करनी तेरे ही बनाये बन सकेगी। तेरी विलम्बरूपी माता दोष और दुःखरूपी सन्तान ही जनेगी। भाव यह, कि यदि तूने मुझ निहाल करने में देर लगाई, तो फिर मुझे दोष और दुःख के सिवाय और मिलेगा ही क्या? (अतः तू शीघ्र ही मेरी बिगड़ी करनी को सुधार दे) ॥५॥

शब्दार्थ—अगहीन = निःसहाय। खगराज = गरुड़ से तात्पर्य है। दोषकोष = अपराधों का भाण्डार महान् अपराधी। पोसे = पोषण किया, पालन किया। जायो = जना, पैदा किया।

विशेष—(१) अगहीन—अगहीन पर यह दोहा बहुत ठीक घटता है—

'नहिं विद्या, नहिं बाहुबल, नहिं खरचन को दाम।
तुलसी मोसे पतित की, तुम पति राखो राम ॥'

(२) 'गजराज' धाया को—देखिए, यह भावपूर्ण कवित्त—

'दीन भयो गजराज, हीन भयो बल हूँ तें,
टूटि गयो मान, टेरयो हरी-हरी' करिकै।
पौढ़े प्रभु रमा-संग पीत-पट राते रंग,
सोवे उठि धाये नाथ नैन आये भरिकै॥
आधीरात धाये नाथ चक्र सुदर्शन लिये
काटि दीनो ग्राहफंद जरी-जरी करिकै।
'तुलसी' त्रिलोकी-नाथ, भक्तनि के सदा साथ,
गरुड़ छाड़ि धाये नाथ 'हरी-हरी' करिकै॥'

(३) 'मोसे कूर' बहुमोल—कवितावली रामायण में इसीको ज्यों का त्यों दोहराया गया है—

'राम नाम ललित ललाम कियो लाखनि को,
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को।'

१८०

वारक विलोकि, बलि, कीजै मोहि आपनो।
राय दसरथ के तू उथपन-थापनो ॥१॥

साहिब सरनपाल सबल न दूसरो।
तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो ॥२॥
वचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं।
देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ॥३॥
कौन कियो समाधान सनमान सीला को।
भृगुनाथ सो रिषी जितैया कौन लीला को ॥४॥
मातु पितु-बंधु हित लोक बेदपाल को।
बोल को अचल, नत करत निहाल को ॥५॥
संग्रही सनेहबस अधम असाधु को।
गीध सबरी को कहौ करिहै सराधु को ॥६॥
निराधार को अधार दीन को दयालु को।
मीत कपि केवट-रजनिचर भालु को ॥७॥
रंक, निरगुनी, नीच जितने निवाज है।
महाराज! सुजन-समाज ते विराज है ॥८॥
साची बिरुदावली न बढ़ि कहि गई है।
सीलसिंधु! ढील तुलसी की बेर भई है ॥९॥

भावार्थ—हे नाथ! बलिहारी! एक बार मेरी ओर देखकर मुझे भी अपना लीजिए। हे श्री दशरथ-नन्दन! आप उजड़े हुए जीवों को भी फिर से जमानेवाले हैं। (जिनका सर्वस्व हरण हो चुका उन्हें भी उनके पद पर पुनः स्थापित करनेवाले हैं।) ॥१॥

आपके समान कोई दूसरा शरणागतों का पालनेवाला सर्वसमर्थ स्वामी नहीं है। आपका नाम लेते ही ऊसर खेत भी उपजाऊ हो जाता है। (भाव यह कि जिनके पूर्व संस्कारों में सुख का कहीं नाम भी नहीं था वे भी आपके नाम के प्रभाव से भक्ति आनंद ज्ञान आदि धान्य से सम्पन्न हो जाते हैं) ॥२॥

आपके वचन और कर्म मेरे मन में जम गये हैं। (यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि शरणागतों का उद्धार और दीनों पर दया करना आपका स्वभाव है)। और मैंने उन लोगों को भी देख सुन और समझ लिया है जो दुनिया में बड़े कहे जाते हैं ॥३॥

उनमें से किसने पापाणी अहल्या का शाप दूर कर उसे शान्ति प्रदान की, और किसने सहज ही परशुराम जैसे महाक्रोधी ऋषि को जीत लिया? ॥४॥

माता पिता और भ्राता के लिए किसने लोक और वेद की मर्यादा का पालन किया? कौन अपने वचनों पर अडिग रहा? और प्रणाम के करते ही प्रणत को किसने निहाल कर दिया? ॥५॥

प्रेम के अधीन होकर किसने नीचों और दुष्टों को इकट्ठा किया अपनाया? और गीध और शबरी का पिता माता की तरह और कौन श्राद्ध करेगा? ॥६॥

जिनका कहीं भी कोई आश्रय नहीं, उनका आधार (सिवा आपके) कौन है ? दीनों पर कृपा करनेवाला कौन है ? और बानर निषाद, राक्षस तथा रीछों का मित्र कौन है ? (सिवा आपके दूसरा कौन हो सकता [redacted] ?) ॥७॥

हे महाराज ! आपने जितने दीनों, मूर्खों और नीचों पर कृपा की है वे सब साधुओं के समाज में आज सुशोभित हो रहे हैं, सन्त-समाज में उनकी भी अच्छी गणना हो रही है ॥८॥

यह आपकी सच्ची-सच्ची बड़ाई कही गई है, (एक अक्षर भी) बढ़ाकर नहीं कहा है। किन्तु, हे शील के समुद्र ! तुलसीदास के ही लिए इतना अधिक विलम्ब क्यों हो रहा है ? (यही एक आश्चर्य है ! आपकी विरदावली के अनुसार तो अब तक इसकी भी सुनाई हो जानी चाहिए थी।) ॥९॥

विनोद—(१) 'उथपे थापनो'—जैसे सुग्रीव और विभीषण का, जो अपने अपने भाई के साथ द्रोह करने से जड़ से उखड़ चुके थे फिर से स्थापित किया, उन्हें राज्यपद दिला दिया।

(२) सीला —शिला का अपभ्रंश है।

(३) 'भृगुनाथ सो'— सो (सरीखा) परशुरामजी के अपरिमित बल, वीर्य और तेज का द्योतक है।

(४) 'न बढ़ि कहि गई है'—इस कथन में अत्युक्ति या कवि चमत्कार लेशमात्र भी नहीं है। यह हृदय के सच्चे उद्गार, हैं ठकुरसोहाती नहीं है।

१८१

केहू भाँति कृपासिन्धु मेरी ओर हेरिए।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिए ॥१॥
सहस सिला तें अति जड़ मति भई है।
कासों कहौं, कौन गति पाहनहिं दई है ॥२॥
पद राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं।
कलि-मल खल देखि भारी भीति भियो हौं ॥३॥
करम कपीस बालि बली त्रास त्रस्यो हौं।
चाहत अनाथ-नाथ ! तेरी बाँह बस्यो हौं ॥४॥
महामोह-रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं।
त्राहि तुलसीस ! त्राहि तिहूँ ताप तयो हौं ॥५॥

भावार्थ—हे कृपासागर ! किसी भी तरह मेरी ओर देखो तो। मेरा कोई और ठिकाना नहीं है, एक तुम्हारा ही पक्का आसरा है (यदि तुम्हीं ने छोड़ दिया, तो फिर कहाँ, किसका होकर रहूँगा ?) ॥१॥

मेरी बुद्धि हजारों शिलाओं से भी जड़ हो गई है। (अब मैं उसे चैतन्य करने के लिए तुम्हें छोड़कर) और किससे कहूँ ? पत्थरों को किसने मुक्त किया है ! तुम्हीं ने, बस इतने ही से समझ लो। जैसे तुमने एक पाषाणी का उद्धार कर दिया था उसी प्रकार मेरी जड़ बुद्धि को भी चैतन्य और शुद्ध बना दो ॥२॥

जिस प्रकार महर्षि विश्वामित्र ने (तुम्हारे संरक्षण में निर्विघ्न) यज्ञ किया था, उसी प्रकार मैं भी एक यज्ञ करना चाहता हूँ। वह यज्ञ है तुम्हारे चरणों में भक्ति-लाभ करना। किन्तु कलि के पापरूपी दुष्टों को देखकर मैं अत्यन्त डर गया हूँ (कि कहीं ये सारा किया-कराया नष्ट भ्रष्ट न कर दें जैसे मारीच, ताड़का आदि राक्षस विश्वामित्र का यज्ञ विध्वस्त कर दिया करते थे) ॥३॥

कुटिल कर्मरूपी बन्दरों के बलवान राजा बालि से बहुत डर रहा हूँ, सो हे अनाथों के नाथ! जैसे तुमने बालि को मारकर सुग्रीव को अभय कर दिया था, उसी प्रकार मैं भी आपकी बाहु की छाया में बसना चाहता हूँ मुझे भी कुटिल कर्मों से बचाकर अपना लो ॥४॥

जैसे, रावण ने विभीषण को मारा था, उसी प्रकार मुझे यह महान मोह मार रहा है। हे तुलसी के स्वामी! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो मैं संसार के तीनों तापों से जला जा रहा हूँ ॥५॥

शब्दार्थ—टेक=सहारा बल। पद राग=चरणों में अनुराग। जाग=(याग) यज्ञ। भियो हौं=डर गया हूँ। तयो हौं=जल रहा हूँ।

विशेष—(१) तिहूँ ताप'—दैहिक, भौतिक और दैविक।

। १८२ —

नाथ! गुनगाथ सुनि होत चित चाउ सो।
राम रीझिबे को जानौं भगति न भाउ सो ॥१॥
करम, सुभाउ, काल ठाकुर न ठाउ सो।
सुधन न, सुतन न, सुमन सुभाउ सो ॥२॥
जाचौं जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो।
कासों कहौं काहू सो न बढ़त हिआउ सो ॥३॥
बाप! बलि जाउँ आपु करिये उपाउ सो।
तेरेही निहारे परै हारेहू सुदाउ-सो ॥४॥
तेरेही सुझाये सूझै असुझ सुझाउ सो।
तेरेही बुझाये बूझै अबुध बुझाउ सो ॥५॥
नाम अवलंबु अंबु दीन मीन राउ सो।
प्रभु सों बनाइ कहौं, जीह जरि जाउ सो ॥६॥
सब भाँति बिगर एक सुबनाउ सो।
तुलसी सुसाहिबहि दियो है जनाउ सो ॥७

भावार्थ—हे नाथ! आपकी गुणावली को सुन-सुनकर मेरे चित्त में चाव-सा होता है किन्तु हे रघुनाथजी! जिस भक्ति और भावना से आप प्रसन्न होते हैं, उसे मैं नहीं जानता (यदि जानता होता, तो मुझे आपके गुणों के सान्निध्य से परमानन्द प्राप्त न हो गया होता?) ॥१॥

कारण कि न तो मेरी करनी अच्छी है, न स्वभाव उत्तम है और न समय ही अनुकूल है (कलियुग है), न कोई मालिक है, न कहीं कोई ठौर ठिकाना है, न (साधन रूपी) धन है, न नीरोग शरीर है (कि जिससे योगाभ्यास आदि करूँ), न निश्चल चित्त है, और न लम्बी आयु ही है। (सारांश, भगवत्प्राप्ति का एक भी साधन मेरे पास नहीं है। सब प्रकार से बिना आधार का हूँ) ॥२॥

जिससे मैं, प्यास के मारे पानी माँगता हूँ, वह उलटा मुझसे ही अमृत पिलाने के लिए कहता है। मैं अपनी बात किससे कहूँ? कहने की किसी से हिम्मत नहीं पड़ती (मन की मन में ही रखता हूँ) ॥३॥

हे पिताजी! बलिहारी! आप ही कुछ ऐसा उपाय कर दीजिए (कि जिससे यह सारा अजमजस दूर हो जाय) क्योंकि आपके दाव देने मात्र से हारने पर भी अच्छा दाँव सा हाथ लग जाता है। बड़े-बड़े पापी भी आपकी कृपा से वैकुण्ठ-धाम के अधिकारी हो जाते हैं ॥४॥

आप यदि सुझा दें तो अदृष्ट वस्तु भी दीखने लगती है, और आपके समझा देने पर अगोचर वस्तु भी अनुभव में आ जाती है। अब जो मेरी समझ में नहीं आ रहा है, उसे आप ही समझा दीजिए ॥५॥

देखिए आपके नाम का जो आधार है, वही तो पानी है और उसमें रहनेवाला मैं दीन मीनों का राजा हूँ। बड़े भारी मत्स्य के समान हूँ, जो मैं अपने स्वामी से कपट भरी बात कहता होऊँ तो यह जीभ जल जाय ॥६॥

मेरी करनी सभी प्रकार से बिगड़ चुकी है, केवल एक ही अच्छी बात बनी हुई है। वह यह कि तुलसीदास ने अपनी करनी अपने मालिक को वचन पर जना दी है ॥७॥

शब्दार्थ—ठाकुर=मालिक। सुआउ=(सुआयु) बड़ी उम्र। अमिय=अमृत। हिआउ=साहस। अबुझ=जो समझ में न आय। जीह=जीभ। जनाउ=सूचना।

विशेष—(१) करम ... सुभउ—एक तो कुटिल कर्म फिर नीच स्वभाव, तिस पर कलियुग! सब तरह से अनाथ भी हूँ, कोई धनी धोरी नहीं, ठौर ठिकाना नहीं, मुहाकंगाल, आजीवन रोगी और चचल चित्त! यह भी नहीं, कि आयु लम्बी हो, जिससे कुछ-न कुछ साधन बन जाय। मेरा उपचार क्योंकर हो सकता है?

'ग्रह-ग्रहीत पुनि बात बस तापर बीछी मार।
ताहि पियाइय बारुनी कहो कौन उपचार॥'

(२) जाँचो पिआउ सो—तात्पर्य यह है कि जब मैं किसी से भूख-प्यास के मारे कुछ माँगता हूँ, तब वह मुझे सिद्ध महात्मा समझकर मुझसे उलटा धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र आदि माँगता है। यह लोकमान्यता मुझे बहुत खल रही है, क्योंकि—

'लोकमान्यता अनल सम, कर तप-कानन दाह।'

(३) 'तेरे हा सुदाउ-सो'—भरतजी ने भी यही कहा है—

'हारेहु खेल जितावहु मोही।'

[रामचरितमानस

(४) 'मीन राउ' बड़ा मत्स्य तालाब में नहीं रह सकता। उसका निवास

स्थान तो समुद्र ही है। अतः मैं केवल राम नामरूपी महासमुद्र में ही आनन्द कल्लोल कर सकता हूँ अन्यत्र नहीं।

राग आसावरी

१८३

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है।
बड़े की बड़ाई छोटे की छोटाई दूरि करै,
ऐसी विरुदावली, बलि वेद मनियत है ॥१॥
गीध को कियो सराध, भीलनी को खायो फल,
सोऊ साधु-सभा भली भाँति भनियत है।
रावरे आदरे लोक वेद हूँ आदरियत,
जोग ग्यान हूँ ते गरु गनियत है ॥२॥
प्रभु की कृपा कृपालु कठिन कलि हूँ काल,
महिमा समुझि उर अनियत है।
तुलसी पराये बस भये रस अनरस,
दीनबन्धु ! द्वारे हठ ठनियत है ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! प्रीति की रीति आप ही भलीभाँति जानते हैं। बलिहारी ! वेदों ने आपकी विरुदावली इस प्रकार मानी है कि आप बड़े का बड़प्पन (अभिमान) और छोटे की छोटाई अर्थात् दीनता को दूर कर देते हैं ॥१॥

आपने जटायु गीध को पिण्डदान दिया और शबरी के फल (बेर) खाये। यह बात भी संत समाज में अच्छी तरह बखानी जाती है। जिस किसी ने भी आपसे आदर सम्मान पाया उसका लोक और वेद दोनों ही आदर करते हैं। आपका प्रेम योग और ज्ञान से भी बड़ा माना जाता है ॥२॥

हे कृपालु ! आपकी कृपा से इस कराल कलिकाल में भी आपकी महिमा को समझकर हृदय में धारण करता हूँ। यद्यपि तुलसी पराधीन अर्थात् विषयों के अधीन होकर आपके प्रेम से अनरस अर्थात् आपके प्रेमानन्द से विमुख हो रहा है तथापि हे हर ! वह आपके द्वार पर अड़ा खड़ा है (बिना आपकी कृपा-दृष्टि पाये वह हटने का नहीं) ॥३॥

शब्दार्थ—सराध = श्राद्ध। भनियत है = कहते हैं। गरु = भारी।

विशेष—(१) प्रीति—प्रीति रीति के छह प्रकार हैं—

'ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यं वक्ति च पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥'

(२) गीध—जटायु की उत्तरक्रिया पर कहा है—

'दशरथ ते दसगुन भगति सहित तासु करि काज।
सोचत बन्धु समेत प्रभु कृपासिन्धु रघुराज ॥'

(३) 'भीलनी'—शबरी ने श्रीराम का इस प्रकार अनुपम आतिथ्य किया—

पद पंकजात पखारि पूजे पथ स्रम विरहित भये।
फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये।
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये।
फल चारिहू फलचारि दे परचारि फल सबरी दये॥

(४) 'रावरे आदरियत'—कहा है—

'जापर कृपा राम की होई। ता पर कृपा करहिं सब कोई॥

[रामचरितमानस

१८४

राम - नाम के जपे जाइ जिय की जरनि।
कलिकाल अपार उपाय ते अपाय भये,
जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि॥१॥
करम - कलाप परिताप, पाप साने सब,
ज्यों सुफूल फूले तरु फोकट फरनि।
दम्भ, लोभ, लालच, उपासना बिनासि नीके,
सुगति साधन भई उदर - भरनि॥२॥
जोग न समाधि निरुपाधि न बिराग ग्यान,
वचन विसेष वेष, कहूँ न करनि।
कपट कुपथ कोटि, कहनि रहनि खोटि,
सकल सराहैं निज - निज आचरनि॥३॥
मरत महेस उपदेस हैं कहा करत,
सुरसरि तीर कासी धरम - धरनि।
राम नाम को प्रताप, हर कहैं, जपैं आपु,
जुग - जुग जानैं जग वेदहूँ बरनि॥४॥
मति राम-नाम ही सों, गति राम-नाम ही सों,
गति राम - नाम ही की बिपति-हरनि।
राम-नाम सों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक,
तुलसी ढरेंगे राम आपनी ढरनि॥५॥

भावार्थ—मन की जलन राम-नाम के जपने से ही जाती है (मन शान्त होता है) कलियुग में और जितने कुछ साधन हैं वे ऐसे व्यर्थ हो जाते हैं, जैसे अंधेरा दूर करने के लिए चित्रलिखित सूर्य॥१॥

कर्मों का तो समूह का-समूह है। (कर्मकाण्ड शास्त्रों में अगाध भरा पड़ा है) परन्तु वह सब दुःख और पापों में सना हुआ है। (पाप-संताप के कारण एक भी उत्तम विधि विहित पूर्ण नहीं हो पाता)। कर्मों का करना ऐसा है जैसे किसी वृक्ष में बड़े

सुन्दर फूल फलें, पर फल लगें ही नहीं। भाव यह है कि यज्ञ, याग आदि साधन इतने सुनने में तो सुसाध्य और सरल जान पड़ते हैं पर अन्त में दुःसाध्य हो जाते हैं जिससे फल कुछ भी हाथ नहीं लगता। पाखण्ड लाभ और लालच ने उपासना को चौपट कर दिया है। और मोक्ष पद भरत का साधन हो गया है ॥२॥

न तो योग बनता है न समाधि ही उपाधि रहित सधती है (उसमें भी संकल्प विकल्प उठा करते हैं।) वैराग्य और ज्ञान सम्बन्धी चौड़ी बातें मारने और ऊपरी वेश भूषा के लिए ही रह गये हैं करनी कुछ भी नहीं कोरी कथनी ही है। कपट भरे करोड़ों कुमार्ग चल पड़े हैं। कहनी और रहनी सभी खोटी हो गई है। सभी अपना अपना भाव रखों की डींग हाँकते हैं सभी अपने को सर्वश्रेष्ठ समझ रहे हैं ॥३॥

शिवजी गंगा के तट पर काशी की पवित्र भूमि पर मरते समय जीव को क्या उपदेश देते हैं? वे श्रीराम-नाम के प्रताप का वर्णन करते हैं। दूसरों से कहते हैं और स्वयं भी जपते हैं। अनेक युगों से इसे संसार जानता है, और वेद भी कहते चले आये हैं ॥४॥

राम-नाम में ही बुद्धि को लगाना चाहिए राम नाम से ही लगन लगानी चाहिए और राम-नाम की ही शरण लेनी चाहिए, क्योंकि एक यही साधन जन्म मरणरूपी विपत्तियों को दूर करनेवाला है। हे तुलसी! यदि तू राम-नाम पर विश्वास किए रहेगा और सम्बन्ध अपना प्रेम दृढ़ बनाये रहेगा तो श्रीरघुनाथजी कभी न कभी अपने दयालु स्वभाव से तुझ पर अवश्य कृपा करेंगे ॥५॥

शब्दार्थ—अपाय=नाश। अनिष्टरूप। तरनि=सूर्य। कलाप=समूह। फोकट =वृथा किसी काम का नहीं। ढरेंगे=कृपा करेंगे।

विशेष—(१) वेष करनि—

'करनी बिनु कथनी कथै अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूँकत फिरै सुनी-सुनाई बात॥

[कबीर

(२) मरत धरनि—

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपं।
जल्पन् जल्पन् प्रकृति विकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशी निवासी॥

[काशी खण्ड

१८५

लाज न आवत दास कहावत।
सो आचरन बिसारि सोच तजि, जो हरि तुम कहँ भावत ॥१॥
सत्संग तजि भजत जाहि मुनि, जप, तप, जाग बनावत।
मो सम मंद महाखल पावर, कौन जतन तेहि पावत ॥२॥

हरि निरमल, मलग्रसित हृदय, असमंजस मोहिं जनावत।
जेहि सर काक कंक बक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥३॥
जाकी सरन जाइ कोविद दारुन त्रयताप बुझावत।
तहूँ गये मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटत न सावत ॥४॥
भव-सरिता कहँ नाउ सन्त यह कहि औरनि समुझावत।
हौं तिनसों हरि परम बैर करि, तुम सों भलो मनावत ॥५॥
नाहिन और ठौर मो कहँ, तातें हठि नातो लावत।
राखु सरन उदार चूडामनि! तुलसिदास गुन गावत ॥६॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी! मुझे (आपका) दास कहलाने में शर्म भी नहीं आती। जो आचरण आपको अच्छा लगता है, उसे मैं बिना किसी विचार के छोड़ देता हूँ। (सतों का आचरण छोड़ देने पर मुझे पश्चात्ताप भी नहीं होता। इतने पर भी मैं आपका दास बनता हूँ) ॥१॥

सब प्रकार की आसक्ति छोड़कर जिसे मुनिगण भजते हैं, जिसके लिए जप, तप और यत्न करते हैं, उस प्रभु को मुझ जैसा मूर्ख, भारी दुष्ट और पापी कैसे पा सकता है? ॥२॥

भगवान तो परम विशुद्ध हैं और मेरा हृदय है पापपूर्ण, महामलिन। मुझे यह असमंजस जान पड़ता है कि जिस तालाब में कौए, गीध, बगुले और सूअर रहते हैं वहाँ हंस क्या आने लगे? आशय यह कि मेरे महामलिन हृदय में भगवान वास करने नहीं आयेंगे। वे तो उन्हीं मुनियों के हृदय मन्दिर में विहार करेंगे, जिन्होंने ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि साधना द्वारा अपने हृदय को निर्मल बना लिया है ॥३॥

जिनकी (तीर्थों की) शरण में जाकर ज्ञान के साधक जन सांसारिक तीनों कठिन तापों को शान्त कर देते हैं अर्थात् दैहिक दैविक और भौतिक दुःखों से मुक्त हो जाते हैं वहाँ भी जाने पर मुझे अहंकार, अज्ञान और लोभ अधिक सतायेंगे, क्योंकि सौतियाडाह स्वर्ग में भी नहीं छूटता, वहाँ भी वह साथ ही लगा फिरता है ॥४॥

मैं दूसरों को यह कहकर समझाता रहता हूँ कि संसाररूपी नदी के पार जाने के लिए सन्तजन ही नौका हैं किन्तु हे हरे! मैं (स्वयं) उनसे भारी शत्रुता रखकर आपसे अपने कल्याण की इच्छा रखता हूँ ॥५॥

मैं सन्त-द्रोही होने के कारण आपके साथ सम्बन्ध जोड़ने के लायक तो नहीं हूँ, (पर करूँ क्या लाचारी है) मुझे कहीं और ठौर ठिकाना तो है ही नहीं, इसीलिए जबर-दस्ती ही आपसे नाता जोड़ता फिरता हूँ और आपका बनना चाहता हूँ। हे दाताओं में शिरोमणि रघुनाथजी! यह तुलसीदास आपके गुणों का गान कर रहा है, इसे अंगीकार कर लीजिए (मेरी भलाई-बुराई को ताक पर रख दीजिए और अपने सहज स्वभाव से मुझ पर कृपा कर दीजिए) ॥६॥

शब्दार्थ—भावत=अच्छा लगता है। सग=आसक्ति। कंक=गीध। सावत=ईर्ष्या

विशेष—(१) 'क्यों मराल आवत'—जिस सरोवर में श्रीरामरूपी हंस

विहार करते हैं, उसका वर्णन भक्तवर बैजनाथजी ने इस प्रकार किया है —

'जिनके हृदयरूपी तडाग में प्रेमरूप पावन अमल जल भरा समता, शांति, सन्तोष, ज्ञान विराग, विवेक कमल फूले, राम-नाम स्मरणरूप मुक्तासमूह वहाँ रामरूप हंस विहार करते है। और मेरे हृदयरूप तडाग में जो विषय-वासनारूप मैला जल भरा, परस्त्रीचाह विष्ठा है उसे कामरूप सूकर बसत परधन चाह शंबुक भक्ष है तहाँ लोभ रूप बगुला है, परहानि अपवाद मृतक मांस है ता हेतु क्रोध, ईर्ष्या काक कंक बसत, तहाँ राघवरूप हंस कैसे आवहिंगे ?'

(२) मिटत न सौतत'—जीव की दो स्त्रियाँ हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। ये दोनों दिन रात कलह मचाये रहती हैं। स्थूल शरीर छूट जाने पर इनसे पिंड नहीं छूटता। सूक्ष्म शरीर में भी इनका लड़ना-झगड़ना बना रहता है। जहाँ कहीं भी जीव जाता है, ये दोनों सौतिया डाह से उसके पीछे पीछे लगी फिरती हैं।

१८६

कौन जतन बिनती करिये।
निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ॥१॥
जेहि साधन हरि, द्रवहु जानि जन, सो हठि परिहरिये।
जाते बिपति जाल निसिदिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये ॥२॥
जानत हूँ मन बचन करम परहित कीन्हे तरिये।
सो बिपरीत देखि परसुख, बिनु कारन ही जरिये ॥३॥
स्रुति पुरान सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये।
निज अभिमान मोह ईर्षा बस तिनहिं न आदरिये ॥४॥
संतत सोइ प्रिय मोहिं सदा जाते भवनिधि परिये।
कहौं अब नाथ, कौन बल ते संसार सोग हरिये ॥५॥
जब कब निज करुना सुभाव तें द्रवहु तौ निस्तरिये।
तुलसिदास बिस्वास आन नहिं, कत पचि पचि मरिये ॥६॥

भावार्थ—हे नाथ! मैं किस प्रकार विनती करूँ? जब अपने (नीच) आचरणों की ओर देखता हूँ उन पर विचार करता हूँ समझता हूँ तब साहस छोड़कर हृदय में हार मानकर डर जाता हूँ। (मैं तो आपके सामने आने ही योग्य नहीं ऐसा घोर पापी हूँ) ॥१॥

हे हरे! जिस साधन से आप इस जन को दास जानकर इस पर कृपा करते हैं, अपना लेते हैं उसे मैं हठपूर्वक छोड़ रहा हूँ। जहाँ दिन रात विपत्ति के जाल में फँसकर दुःख ही मिलता है उसी रास्ते पर चला करता हूँ ॥२॥

यह जानते हुए भी कि मन, वचन और कर्म से दूसरा का भलाई करने से संसार सागर पार कर जाऊँगा, मैं उलटा ही आचरण करता हूँ दूसरों के सुख को देख कर बिना ही कारण जला जा रहा हूँ ॥३॥

वेदों और पुराणों सभी का यह सिद्धान्त है कि सन्तों का संग खूब दृढ़तापूर्वक करना चाहिए, सत्संग किसी भी प्रकार नहीं छोड़ना चाहिए, पर मैं अपने अहंकार, अज्ञान और ईर्ष्या के वश होकर सत्संग का आदर कभी नहीं करता, सन्तों के साथ सदा द्रोह ही करता हूँ ॥४॥

मुझे सदा वही अच्छा लगता है, जिससे संसार-समुद्र में ही पड़ा रहूँ। फिर, हे नाथ! आप ही कहिए, मैं किस बल-बूते पर संसार के दुःख दूर करूँ? ॥५॥

यदि कभी आप अपने कारुणिक स्वभाव से मुझ पर पिघल जायँ, तभी मेरा निस्तार होगा अन्यथा नहीं, क्योंकि तुलसीदास को किसी और का विश्वास नहीं, तब वह किसलिए (दूसरे साधनों में) पच पचकर मरे ॥६॥

शब्दार्थ—द्रवहु=कृपा करते हो। अनुसरिये=चलते हैं। सन्तत=सदा। सोग=शोक।

१८७

ताहि ते आयो सरन सबेरें।
ग्यान, विराग, भगति साधन कछु सपनेहुँ नाथ न मेरें ॥१॥
लोभ मोह मद, काम, क्रोध रिपु फिरत रैन दिन घेरें।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ रत फिरै तिहारेहि फेरें ॥२॥
दोष निलय यह विषय सोक प्रद कहत संत स्रुति टेरें।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरें ॥३॥
बिष पियूष सम करहु अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरें।
तुम सम ईस कृपालु परमहित पुनि न पाइहौं हेरें ॥४॥
यह जिय जानि रह्यो सब तजि रघुबीर भरोसे तेरें।
तुलसिदास यह बिपति बागुरो तुमहिं सों बनै निबेरें ॥५॥

भावार्थ—हे नाथ! इसी कारण मैं जल्दी आपकी शरण में आ गया हूँ (जल्दी इसलिए कि न जाने कब मृत्यु का ग्रास हो जाना पड़े)। मेरे पास स्वप्न में भी ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि साधन नहीं हैं (जिनके बल पर मैं संसार-सिन्धु से पार हो जाता) ॥१॥

लोभ, अज्ञान अहंकार, काम और क्रोधरूपी शत्रु मुझे सदा घेरे रहते हैं, (क्षण भर भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़ते)। इन सबके साथ मिलकर यह मन भी कुमार्गी हो गया है। अब यह आपके ही फेरने से फिरेगा (निश्चल होगा, अन्यथा नहीं) ॥२॥

संतजन और वेद पुकार पुकारकर कहते हैं कि यह विषयासक्ति, दोषों की खानि है दुःखदायक है पर यह जानते हुए भी मैं उसी में अनुरक्त रहता हूँ। सो, हे हरे! यह आपकी ही प्रेरणा तो नहीं है? (नहीं तो ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो जानबूझकर कुएँ में गिरेगा?) ॥३॥

आप (अपने सामर्थ्य से) विष को अमृत एवं अग्नि को हिम बना सकते हैं, आप बिना ही बेड़े के पार कर सकते हैं। आपके समान समर्थ, कृपालु और परमहितू ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। (यदि इस जन्म में आप-सरीखे स्वामी को भूलकर चूक

गया तो फिर अगले जन्मो में ऐसा दाँव मिलने का नही ॥४॥

हृदय में यह जानकर हे रघुनाथजी ! मै सब छोड़-छाडकर आपके ही भरोसे आ पडा हूँ । तुलसीदास का यह विपत्तिरूपी जाल आपके ही काटे कटेगा ॥५॥

शब्दार्थ—सबरें = जल्दी, पहले से ही । निलय = घर । बेरे=बेडा । बागुरी = जाल ।

विशेष—(१) ताहि तें—क्योकि हे प्रभो ! मै आपकी यह प्रतिज्ञा सुन चुका हूँ—

'सर्वधर्मान परित्यज्य मामेक शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥'

[भगवद्गीता

(२) विषय—शब्द, स्पर्श, रूप रस और गंध ।

(३) तुम्हरेहि प्रेरे—जीव का प्रेरक परमात्मा है । जो कुछ वह कराता है, वही यह करता है । दुर्योधन ने कहा था—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति ।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

(४) तुमहि सो बन निबरैं—क्योकि 'जो बाँधै सोइ छोरे ।'

१८८

मै तोहिं अब जान्यो संसार ।
बाँधि न सकहि मोहिं हरि के बल, प्रगट कपट आगार ॥१॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किये विचार ।
ज्यो कदलीतरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार ॥२॥
तेरे लिए जनम अनेक मै फिरत न पायो पार ।
महामोह-मृगजल सरिता महँ बोरयो हौ बारहिं बार ॥३॥
सुनु खल, छल बल कोटि किये बस होहिं न भगत उदार ।
सहित सहाय तहा बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार ॥४॥
तासो करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार ।
सो परि डरै मरै रजु अहि तें बूझै नहिं व्यवहार ॥५॥
निज हित सुनु सठ, हठ न करहिं जो चहहि कुसल परिवार ।
तुलसिदास प्रभु के दासनि तजि भजहि जहा मद मार ॥६॥

भावार्थ—रे संसार ! आज मैंने तुझे जान-पहचान लिया तेरा ठीक-ठीक भेद आज मेरी समझ में आ गया । तू साक्षात् आने कपट का घर है पर अब तू मुझे (अपने कपट जाल में) नही बाँध सकता क्योकि मुझे श्रीहरि का बल प्राप्त हो गया है (परमात्मा के सामने तेरा अस्तित्व तक नही रहता छलबल की तो बात ही क्या) ॥१॥

देखने मात्र में ही तू सुन्दर प्रतीत होता है पर विचार करने पर विवेकबुद्धि से जाचने पर तू कुछ भी नहीं, वस्तुत तेरा अस्तित्व ही नहीं है । जैसे केले के पेड को देखो

तो उसमें से कभी गूदा निकलता ही नही, जितना ही छीलो, छिलका ही छिलका निकलता जायेगा। (यही दशा ससार की है। जितना ही अधिक इस पर विचार किया जाये उतना ही यह नि सार प्रतीत होगा) ॥२॥

तेरे लिए म अनेक जन्मो से भटकता रहा हू, पर आज तक तेरा पार नही मिला। (यह ज्ञान नही हुआ कि तू क्या है, किसलिए है, मेरा-तेरा क्या रिश्ता है) तूने मुझे महामोहरूपी मृगतृष्णा की नदी में बार-बार डुबाया। (ससार की झूठी विषयासक्ति में मुझे अनेक बार फँसना पडा) ॥३॥

अरे शठ! सुन भले तू करोड़ों प्रकार के छलबल किया करे, पर श्रीहरि का परमभक्त तेरे वश में होनेवाला नही। तू तो अपनी सेना समेत वही जाकर डेरा डाल जिस हृदय में नन्दनन्दन श्रीकृष्ण का वास न हो (भगवत शून्य हृदय म ही सासारिक प्रवृत्तियो का साम्राज्य रहता है) ॥४॥

जो तेरा भेद न समझता हो उसी के साथ तू अपनी चाल चल, क्योकि वही रस्सीरूपी साप से डरकर मरेगा, जो उसके रहस्य को न जानता होगा ॥५॥

अरे दुष्ट! अपने हित की बात सुन जो तू कुटुम्ब समेत अपनी खैर चाहता है तो अब हठ न कर। तुलसीदास के प्रभु श्रीरघुनाथजी के सेवको को छोड़कर तू वहा भाग जा, जहा अहकार और काम निवास करते हो ॥६॥

शब्दार्थ—आगार = स्थान। विचार = ज्ञान। सार = गूदा। सहाय = सेना।

विशेष—(१) इस पद में गोसाईजी ने ससार को मायावाद सिद्धान्त के अनुसार मिथ्या माना है, पर साथ ही हम उनका यह वाक्य—"कोउ कह सत्य, झूठ कह कोउ जुगल प्रबल करि मान। तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै नही भूले। हरि प्राप्ति के लिए विरक्ति का होना आवश्यक है और इसलिए ससार तो क्या, असल में ससार की विषयासक्ति को मिथ्या माना गया है।

(२) 'न पायो पार'—वस्तुत जिस समुद्र का अस्तित्व ही नही, उसका पार क्या मिलेगा? पार पा लेना 'वन्ध्यापुत्रान्वेषण' ही है।

(३) 'सहित नन्दकुमार'—क्योकि—

'कहु रहीम का करि सकै ज्वारी चोर लबार।
जो पति राखनहार है माखन चाखनहार॥'

राग गौरी

१८६

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहि तौ भव-बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे ॥१॥
बास पुरान साज सब अठकठ सरल तिकोन खटोला रे।
हमहि दिहल करि कुटिल करमचँद मद मोल बिनु डोला रे ॥२॥
बिषम कहार मार मद मान चलहि न पाउँ बटोरा रे।
मन्द बिलन्द अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ॥३॥

काट कुराय लपेटन लोटन ठावँहि ठाउँ बझाऊ रे।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेट लगाऊ रे ॥४॥
मारग अगम संग नहिं संबल नाउँ गाउँ कर भूला रे।
तुलसिदास भव त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ॥५॥

भावार्थ—अरे भाई ! राम राम राम राम कहता चलो नहीं तो कहीं संसार की बेगार में पड़ गया तो छूटना बड़ा कठिन हो जायगा। (अत्यन्त कठिन इसलिए कि न तो संसार का कभी अन्त होगा और न तेरी प्रवृत्तियाँ कम होंगी। जन्म मरण का चक्र सदा चलता ही रहेगा। हाँ यदि तू राम राम जपता चला जायगा तो माया जन्य विषयरूपी शत्रु तुझे बेगार में न पकड़ सकेंगे (क्योंकि राम के दास पर उनकी माया नहीं चलती।)

हमारे कुटिल मन्द कर्मरूपी चन्द ने बिना ही मोल का ऐसा निकम्मा डोला मत्थे मढ़ दिया है कि जिसमें बाँस पुराना लगा है, बेतरतीब खटखट साज लगे हुए हैं जो सड़ा हुआ है और तिकोना है(यहाँ इस तिकोने खटोले से शरीर की उपमा दी गई है। कर्म बढ़ई हैं उसने हमें शरीररूपी डोला बनाकर मुफ्त दे दिया है। हमारी तो इसे लेने की इच्छा भी नहीं थी। अनेक जन्म जन्मान्तर से जो विषय प्रवृत्ति चली आ रही है, वही इसमें पुराना बाँस है। प्रकृति, महत्तत्त्व और अहंकार ये तीन पाटियाँ तथा सत्त्व, रज और तमोगुण, ये तीन पाये हैं। यही इसमें खटखट साज लगे हैं। असल में, इसकी सारी ही सामग्री, ज्ञान-दृष्टि से क्षणभंगुर है। इसीसे इसे सड़ा कहा गया है। जागृति स्वप्न और सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ हैं, ये ही इस खटोले के तीन कोने हैं। अज्ञानियों के लिए तो यह डोला ही है, वे इसी शरीर को सर्वस्व मानकर विषय वासनाओं में आकण्ठ डूबे हुए सुख मान रहे हैं पर ज्ञानियों की दृष्टि में यह मन्द डोला है यह स्वयं उनके लिए भाररूप हो रहा है जन्म मरण का कारण बन रहा है। अब इस शरीररूपी डोले के संबंध में और भी स्पष्ट रीति से कहते हैं) ॥२॥

इसका उठानेवाले कहार विषम हैं (दो, चार या आठ कहार डोला उठाया करते हैं पर इस शरीररूपी डोले के उठानेवाले कहार पाँच हैं और वे हैं जिह्वा नेत्र नासिका श्रवण और त्वचा अथवा इनके विषय रस रूप गन्ध शब्द और स्पर्श) ये कहार कामरूपी मदिरा पीकर मतवाले हो रहे हैं इसलिए एक-सा पैर रखते हुए नहीं चलते कोई किधर पैर रखता है तो कोई किधर (नेत्र अपने विषय की ओर दौड़ते हैं तो कान अपने विषय की ओर नाक किधर को भागती है तो जीभ किसी और ही तरफ। इस मनमानी घरजानी चाल चलने से डोला कब तक चल सकेगा और कहीं न जाकर पटक देगा) कभी नीचे की ओर कभी ऊपर की ओर चलाने से पैर और गर्दन लग रहे हैं और इस खींचतान से भारी कष्ट हो रहा है (इन्द्रियाँ कभी बुरी वासनाओं की ओर दौड़ती हैं और कभी सद्वासनाओं की ओर किन्तु मन के संकल्प विकल्प के कारण पूरा कुछ भी नहीं होता अब बेचारी बात में व्यय हो पैर लग रहे हैं इस ऐंचातानी में पड़कर रो रोकर दिन बिता रहा है) ॥३॥

रास्ते में कई विघ्न हैं (अनेक विघ्न-बाधा उपस्थित हैं) बटमार हैं लपटन बना बेर(झाड़ी की तरह) लिपट जाता है। ठौर-ठौर पर लोटना है (ठौर-ठौर

के मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं, मोह-ममता ही कंकड़ हैं, विषय विषय बेलें हैं और कर्मों की विकट झंझट ही उलझन है। इन सब कारणों से पग पग पर रुक जाना पड़ता है। शरीर यात्रा निर्विघ्न हो नहीं सकती)। और ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते हैं, त्यों त्यों लक्ष्य-स्थान दूर होता चला जा रहा है। (आशय यह है कि आत्मानुभूति करने के लिए जो जो उपाय करते हैं, माया बीच में पड़कर सारे किये कराये पर पानी फेर देती है। चाहते हैं कि ब्रह्मानन्द का पीयूष पान करें, पर मिलता है विषय सुरा का विषभरा प्याला। सुलझने का ज्यों-ज्यों प्रयत्न करते हैं त्यों त्यों और और उलझते ही जाते हैं।) कोई ऐसा सगी साथी भी नहीं मिलता, जिसके साथ जस तस वहां तक पहुँच जायें ॥४॥

मार्ग बड़ा कठिन है साथ में राह-खर्च भी नहीं (ऐसे सत्कर्म भी नहीं किए हैं, कि जिनके भरोसे रास्ता तय कर लिया जाय) और जहां जाना है, उस गाँव का नाम तक याद नहीं (कहीं जैसे-तैसे चलते चलते किसी और ही गाँव में पहुँच जायें तो बड़ी आफत हो) इसलिए हे श्रीरामजी! इस तुलसीदास के (जन्म मरणरूपी) संसार भय को आप ही कृपाकर दूर कीजिए ॥५॥

विशेष—(१) राम कहत चलु भाई रे—यहां राम कहत चलु तीन बार लिखा गया है। संभव है जीव का त्रिविध दुःख याने दैहिक दैविक और भौतिक दूर करने के लिए तीन बार यह उपदेश दिया गया हो।

(२) विषम बटारा र—स्वर्गीय रामेश्वर भट्टजी ने इस चरण का अर्थ लिखते हुए इन्द्रियों के वैषम्य और खींचतान पर एक सुन्दर छप्पय दिया है —

'कान निरन्तर गान-तान सुनिबोही चाहत।
आखें चाहति रूप रैनदिन रहति सराहत॥
नासा अतर-सुगन्ध चहति फूलन की माला।
त्वचा चहति सुख सेज संग कोमलतन बाला॥
रसना हूँ चाहति रहति नित खाटे मीठे चरपरे।
इन पंचन इहि सरपंच सों भ्रूपन की भिक्षुक करे॥

(३) इस पद की भाषा जन साधारण की है। कई अवधीभाषा के शब्द आये हैं। मुहावरे भी ग्रामीण हैं। इतना ऊँचा दार्शनिक सिद्धान्त सर्वसाधारण के हृदय में बठाने के लिए ही संभवत गोसाइजी ने ऐसा किया है।

१६०

सहज सनेही राम सों तैं कियो न सहज सनेह।
तातें भव भाजन भयो, सुनु अजहुँ सिखावन एह ॥१॥
ज्यों मुख मुकुर विलोकिये, अरु चित न रहै अनुहारि।
त्यों सेवतहुँ न आपने, ये मातु पिता, सुत, नारि ॥२॥
दै-दै सुमन तिल वासिकै अरु खरि परिहरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे मन मेचक, तनु सेत ॥३॥
करि बीत्यो, अब करतु है, करिबे हित मीत अपार।
कबहुँ न कोउ रघुबीर-सो नेह निबाहनहार ॥४॥

जासो सब नातो फुरै, तासो न करी पहिचानि।
ताते कछु समुझयो नही, कहा लाभ कह हानि ॥५॥
साचो जान्यो झूठ को, झूठे कहँ सांचो जानि।
को न गयो, को न जात है, को न जैहै करि हितहानि ॥६॥
वेद कह्यो, बुध कहत हैं, अरु हौंहुँ कहत हौं टेरि।
तुलसी प्रभु सांचो हितू, तू हिय की आँखिन हेरि ॥७॥

भावार्थ—तूने स्वभाव से ही स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी से सहज स्नेह नही किया। इसीलिए तू *संसार में बार-बार जन्म लेने योग्य हुआ है, बार बार जन्म और मरण* का पात्र हुआ है। (फिर भी अभी कुछ बिगड़ा नही) अब भी तू मेरी यह सिखावन सुन ॥१॥

जैसे दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है पर वह मुखाकृति वस्तुतः उसके अन्दर नही होती, उसी प्रकार ये माता पिता पुत्र और स्त्री सेवा करते हुए भी वस्तुतः अपने नही है। तात्पर्य यह कि इनके साथ जो रिश्ते मान लिये गये हैं वे केवल स्वार्थ के है, वास्तव में कोई भी किसी का सगा सम्बन्धी नही है ॥२॥

(अब तनिक इन स्वार्थियो की लीला तो देखो) जैसे, तिलो में फूल रख रखकर उन्हें सुगन्धमय बनाते हैं किन्तु तेल निकाल लेने पर खली को फोक समझकर फेंक देते है, वैसे ही सम्बन्धियों की दशा है (अर्थात जब तक किसी में सौन्दर्य रहता है धन कमाने की शक्ति रहती है, बल पौरुष रहता है, तब तक उसका सम्मान किया जाता है, उस पर सर्वस्व निछावर किया जाता है किन्तु रूप धन और बल नष्ट हो जाने पर उसे कोई पूछता भी नही। इस पृथिवी पर ऐसे ही स्वार्थी लोग भरे पड़े हैं जिनका मन काला है और शरीर शुभ्र है, ऊपर से तो बड़े सुन्दर दीखते है पर मन उनका महामलिन और छल कपट से भरा है ॥३॥

तूने कितने मित्र बनाये कितने बना रहा है और कि[illegible] [illegible]हार डाला किन्तु कभी निकाल में भी श्रीरघुनाथजी-सरीखा प्रेम को (एकरस) [illegible] [illegible]के भी मित्र मिलने का नही ॥४॥

जिसके कारण सारे सम्बन्ध सच्चे प्रतीत होते है उसके साथ तूने (आज तक) पहचान तक नही की र। इसी कारण तू अभी तक यह नही समझ पाया कि क्या तो सच्चा लाभ है और क्या हानि ॥५॥

जिसने असत (जगत) को सत्य और सत (परमात्मा) को मिथ्या मान रखा है, ऐसे अपने हित का नष्ट करनेवाले कौन है जो अपने सच्चे कल्याण का नाश करके (संसार से) नही चला गया कौन नही जा रहा है और कौन नही जायगा। (सारांश ऐसे मूढ़ जीव सहस्रो की संख्या में मरते जीते रहते है उनका जन्म लेना ही व्यर्थ है) ॥६॥

वेदो ने कहा है विद्वान् कहते है और मैं भी पुकार पुकारकर कह रहा हूँ कि तुलसी के स्वामी श्रीरघुनाथजी ही सच्चे हितू है। तनिक तू अपने हृदय के नेत्रो से देख तो अन्तःकरण में इस बात पर विचार तो कर ॥७॥

शब्दार्थ—भव भाजन=संसार में बार-बार जन्म मरण के योग्य। अनुहारि=

सूरत। खरि = खली, तेल निकाल लेने के बाद तिलों में से जो फोक निकलता है। मेचक = काला। फुरै = सच्चा साबित होता है।

विशेष—(१) 'द-द लेत'—यह दृष्टान्त बड़ा ही उपयुक्त है। स्वार्थी मनुष्य वास्तव में, काम-वश सौंदर्य आदि का 'उपभोग' करते हैं, 'उपासना' नहीं। यदि परम ईश्वरीय विभूतियाँ समझकर वे उनकी उपासना करें, उनका उपभोग करना छोड़दें, तो यह संसार उसी क्षण स्वर्ग में परिणत हो जाय, मिथ्या जगत सत्यरूप हो जाय।

(२) 'मन सेत'—अथवा यों कह सकते हैं कि—

विषरस भरा कनकघट जैसे।'

(३) 'नेह निबाहनिहार'—प्रेम तो क्या क्षणिक प्रेम की आसक्ति एक क्षण में ही हो जाती है। बाह्य जगत का प्रेम ऐसा ही अस्थायी माना गया है। प्रेम तो अन्तर्जगत का ही, भगवदीय ही, सच्चा, सदा एकरस है।

(४) 'साँचो जानि'—आत्म को अनात्म और अनात्म को आत्म मानना ही अविद्या है। कुछ-का-कुछ मान लेने से तो किसी वस्तु का सर्वथा ही न जानना कहीं अच्छा है।

१६१

एक सनेही साचिलो केवल कोसलपालु।
प्रेम कनौड़ो राम-सो नहिं दूसरो दयालु ॥१॥
तन-साथी सब स्वारथी, सुर व्यवहार-सुजान।
आरत अधम अनाथ हित को रघुवीर समान ॥२॥
नाद निठुर, समचर सीखी, सलिल सनेह न सूर।
ससि सरोग दिनकर बडे, पयद प्रेम-पथ कूर ॥३॥
जाको मन जासों बँध्यो, ताको सुखदायक सोइ।
सरल सील साहिब सदा, सीतापति सरिस न कोइ ॥४॥
सुनि सेवा सही को करै परिहरै को दूषन देखि।
केहि दिवान दिन दीन को, आदर अनुराग बिसेखि ॥५॥
खग-सबरी पितु मातु ज्यों माने, कपि को किये मीत।
केवट भेंट्यो भरत-ज्यों, ऐसो को कहु पतित-पुनीत ॥६॥
देह अभागहिं भाग को, को राखै सरन सभीत।
वेद विदित, बिरुदावली कवि कोविद गावत गीत ॥७॥
कैसेउ पाँवर पातकी, जेहि लई नाम की ओट।
गाँठी बाँध्यो दाम तो परख्यो न फेरि खर-खोट ॥८॥
मन मलीन कलि किलबिषी होत सुनत जासु कृत-काज।
सो तुलसी कियो आपनो, रघुबीर गरीब निवाज ॥९॥

भावार्थ—केवल कोसलेन्द्र श्रीरामचन्द्र ही एक सच्चे स्नेही हैं। प्रेम प्राणि का

१९१

जो पै जानकिनाथ सों नातो नेहु न नीच।
स्वारथ परमारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच ॥१॥
धरम बरन आस्रमनि के पैयत पोथिही पुरान।
करतब बिनु बेष देखिये, ज्यों सरीर बिनु प्रान ॥२॥
बेद बिदित साधन सबै सुनियत दायक फल चारि।
राम प्रेम बिनु जानिबो जैसे सर सरिता बिनु बारि ॥३॥
नाना पथ निरबान के, नाना बिधान बहु भाँति।
तुलसी तू मेरे कहे जपु राम-नाम दिन राति ॥४॥

भावार्थ—अरे नीच ! यदि श्रीजानकीनाथ रामचन्द्रजी से तूने प्रेम नहीं किया, उनसे नाता नहीं जोड़ा तो स्वार्थ और परमार्थ तू कैसे सिद्ध कर सकेगा ? (भाव यह है, कि बिना भगवत् प्रेम के न तो कोई यह लोक बना सकता है न परलोक ही) ॥१॥

चारों वर्ण और चारों आश्रम के धर्म केवल पोथियों और पुराणों में ही लिखे पाए जाते हैं, उनके अनुसार आचरण कोई नहीं करता। करनी कहीं नहीं दिखाई देती केवल भेष ही दीखते हैं। जैसे बिना प्राणों के शरीर, वैसे ही बिना धर्माचरण के ये कोरे भेष हैं ॥२॥

सुनते हैं कि वेदों में जितने भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध (कर्मकाण्ड के) साधन हैं वे सब अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के देनेवाले हैं किन्तु बिना श्रीरामभक्ति के उन सबका जानना ऐसा है, जैसे बिना पानी के तालाब और नदियाँ। (सारांश यह कि भगवत् प्रेम विहीन समस्त वेद-वेदान्त का ज्ञान निस्सार है) ॥३॥

मुक्ति के या अनेक पन्थ हैं भाँति भाँति के उपाय हैं किन्तु हे तुलसी ! तू तो मेरे कहने से, दिन रात केवल राम नाम का ही जप किया कर (अन्य साधना और अन्य मतान्तरों से तू कुछ भी प्रयोजन न रख) ॥४॥

विशेष—(१) 'नातो'—सेव्य सेवक भाव के नाते से ही प्रयोजन हो सकता है क्योंकि बिना इस सम्बन्ध के मुक्ति दुर्लभ है। कहा भी है—

सेवक सेव्य भाव बिनु, तरिय न भव उरगारि।

[रामचरितमानस

(२) 'करतब देखिए'—कबीरदासजी ने कहा है —

साधु भया तो क्या भया, माला पहिरीं चार।
बाहर भेस बनाइया, भीतर भरीं भगार ॥

(३) 'रामप्रेम बारि'—यहाँ सिद्धान्तरूप से भक्ति ज्ञान से बड़ी मानी है। केवल ज्ञान भक्ति के बिना निष्प्राण है सानुराग ज्ञान ही मुक्ति का मुक्त द्वार है।

(४) 'नाना पथ निरबान के'—दार्शनिकों ने मोक्ष की अनेक परिभाषाएँ लिखी हैं। जैसे—वस्तु का सावयव (सांगोपांग) ज्ञान ही मोक्ष है शास्त्रों के पथ के अनुकूल निर्दिष्ट आचरण करना ही मोक्ष है, दृश्य और अदृश्य में ज्ञान का जो अभाव है, वही मोक्ष है महावाक्यों (तत्त्वमसि सोऽहं आदि) का विवरण ही मोक्ष है स्वात्मा

न्द की ज्ञानमयी अवस्था ही मोक्ष है। 'अस्ति' और 'नास्ति' इस उभयात्मक ज्ञान के विच्छेद को ही मोक्ष कहते हैं, 'शब्दब्रह्म' के यथेष्ट ज्ञान को ही मोक्ष मानना चाहिए, निर्विकल्प समाधिगत आनन्द को मोक्ष मानना चाहिए एकदेशिक सिद्धान्त से सिद्ध जो भक्ति का विधान है वही मोक्ष है, आत्मसमर्पण करने के अनन्तर भगवत्प्राप्ति के लिए जो परम विरहाकुलता अनुभव होती है, उसे ही मोक्ष कहना चाहिए, इत्यादि अनेक मत और व्याख्याएँ मोक्ष की हैं।

(५) 'तू मेरे रीति'—केवल 'राम नाम-स्मरण' से मुक्ति की प्राप्ति सम्भव है, यही निष्कर्ष निश्चलता है। गोसाइंजी का यही सर्वतोभद्र सिद्धान्त है।

१९३

अजहुँ आपने राम के करतब समुझत हित होइ।
कहँ तू, कहँ कोसलधनी, तोको कहा कहत सब कोइ ॥१॥
रीझि निवाज्यो कबहिं तू, कब खीझि दई तोहिं गारि।
दरपन बदन निहारिकै, सुविचारि मान हिय हारि ॥२॥
बिगरी जनम अनेक की, सुधरत पल लगै न आधु।
'पाहि कृपानिधि' प्रेम सो कहे को न राम कियो साधु ॥३॥
बालमीकि केवट-कथा, कपि भील भालु सनमान।
सुनि सनमुख जो न राम सो तिहि को उपदेसहिं ग्यान ॥४॥
का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति रीति निरबाहु।
जासु बन्धु बध्यो ब्याध ज्यों, सो सुनत सोहात काहु ॥५॥
भजन बिभीषन को कहा, फल कहा दियो रघुराज।
राम गरीब निवाज के बड़ी बाह बोल की लाज ॥६॥
जपहि नाम रघुनाथ को, चरचा दूसरी न चालु।
सुमुख, सुखद, साहिब, सुधी, समरथ, कृपालु, नतपालु ॥७॥
सजल नयन, गदगद गिरा, गहबर मन, पुलक सरीर।
गावत गुनगन राम के केहि की न मिटी भव भीर ॥८॥
प्रभु कृतग्य सरबग्य हैं, परिहरु पाछिली गलानि।
तुलसी तोसों राम सो कछु नई न जान-पहिचानि ॥९॥

भावार्थ—अब भी, जो तू अपने (नीच कर्मों को) और श्रीरामचन्द्रजी के (करुणापूर्ण) करतबों को समझ ले, तो तेरा कल्याण हो सकता है। कहाँ तो तू और कहाँ कोशलेन्द्र महाराज रामचन्द्र ! (पृथिवी-आकाश का अन्तर है) तुझे सब लोग क्या कहते हैं ? (तदीय अर्थात् यह जीव भागवत है। 'तू भगवान् का है, क्या यह सम्बन्ध सुलभ है ? ऐसा सम्बन्ध बड़े बड़े योगियों को भी प्राप्त नहीं होता पर तुझे यह सौभाग्य सुलभ हो गया है) ॥१॥

प्रसन्न होकर रघुनाथजी ने कब तुझ पर कृपा की और अप्रसन्न होकर कब ? और फिर (अपनी करतूतों के लिए हार मान ले) विवेकरूपी दर्पण में देखने से यह प्रकट

विशेष (१) 'ग्यान बिराग ... हिंगारे'—भाव सादृश्य श्लोक—

'श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो,
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

[श्रीमद्भागवत

१६८

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं। कीजै कृपा आपनी नाईं ॥१॥
परमारथ सुरपुर साधन सब स्वारथ सुखद भलाई।
कलि सकोप लोपी सुचाल, निज कठिन कुचाल चलाई ॥२॥
जहँ-जहँ चित चितवत हित तहँ नित नव विषाद अधिकाई।
रुचि भावती भभरि भागहिं, समुहाहिं अमित अनभाई ॥३॥
आधि मगन मन, ब्याधि बिकल तन, बचन मलीन झुठाई।
एतेहुँ पर तुमसों तुलसी की, प्रभु, सकल सनेह सगाई ॥४॥

भावार्थ—हे श्रीराम! हे नाथ! मैं अपने को आप पर न्योछावर करता हूँ। आप अपने स्वभाव से ही (दीन वत्सलता की दृष्टि से) मुझ पर कृपा कीजिए ॥१॥

परमार्थ के, स्वर्ग के तथा स्वार्थ अर्थात् व्यवहार के जो-जो सुख देनेवाले और कल्याणकारक उपाय हैं, उन सबकी रीतियों को कलियुग ने क्रोध करके लुप्त कर दिया है और अपनी दुःखदायक कुचालों को चला दिया है (पुण्य और सत्कर्मों का लोप करके दम्भ, छल, कपट आदि का प्रचलन किया है ॥२॥

जहाँ-जहाँ यह मन अपना हित देखता है, वहाँ नित्य नूतन दुःख ही बढ़ते जाते हैं। रुचि को अच्छी लगनेवाली बातें दूर से ही डरकर भाग जाती हैं, मनचाही एक भी बात पूरी नहीं होती, और सामने वे ही चीजें आ जाती हैं, जो पसंद नहीं। (भाव इष्ट साधन करते हुए अनिष्ट घेर लेते हैं) ॥३॥

मन संकल्प-विकल्प में लीन हो रहा है, शरीर रोगों से व्याकुल है, और वाणी झूठी और मलिन हो रही है; किंतु यह सब होते हुए भी हे नाथ! आपके साथ इस तुलसीदास का सम्बन्ध और प्रेम ज्यों का त्यों बना हुआ है ॥४॥

विशेष—(१) कलि ... चलाई—कबीर साहब क्या ही स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

'डर लागै औ हाँसी आवै, अजब जमाना आया रे।
धन दौलत लै माल खजाना बेस्या नाच नचाया रे॥
मुट्ठी अन्न साधु कोइ माँगे, कहैं नाज नहिं आया रे।
कथा होय तहँ स्रोता सोवै बक्ता मूड़ पचाया रे॥
होय जहाँ कहिं स्वाँग तमासा, तनिक न नींद सताया रे।
भंग, तमाखू, सुलफा, गाँजा सूखा खूब उड़ाया रे॥

गुरु चरनामृत-नेम न धारे, मधुवा चाखन आया रे।
उलटी चलन चली दुनिया में, ताते जिय घबराया रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, का पीछे पछताया रे॥'

(२) समुहाहिं अनभाई'—स्वर्गीय भट्टजी ने इसका यह अर्थ किया है—'वे समुहाहिं कहिये सामने इतनी चली आती हैं कि जिनका ठिकाना नहीं। जिनका ठिकाना नहीं' कदाचित् 'अनभाई' का अर्थ किया गया है। किन्तु 'अनभाई', 'रुचि भावती' का उलटा शब्द है जिसका अर्थ 'नापसन्द' है।

(३) सगाई'—सेव्य-सेवक भाव का सम्बन्ध।

शब्दार्थ—लोपी = मेट डाली। भावती=मनोवाञ्छित। भभरि=डरकर। समुहाहिं=सामने आ जाती हैं। अनभाई=बुरी, अनिष्टकारिणी। आधि=चिंता संकल्प-विकल्प। व्याधि = रोग।

१६६

काहे को फिरत मन करत बहु जतन,
मिटै न दुख विमुख रघुकुल-बीर।
कीजै जो कोटि उपाइ, त्रिविध ताप न जाइ,
कह्यो जो भुज उठाय मुनिवर कीर॥१॥
सहस टेव बिसारि तुही धौं देखु विचारि,
मिलै न मथत बारि घृत बिनु छीर।
समुझि तजहि भ्रम, भजहि पद-जुगम,
सेवत सुगम गुन गहन गँभीर॥२॥
आगम निगम ग्रंथ, रिषि मुनि सुर संत,
सबही को एक मत, सुनु मति धीर।
तुलसिदास प्रभु बिनु, पियास मरै पसु,
जद्यपि है निकट सुरसरि-तीर॥३॥

भावार्थ—अरे मन! तू किसलिए बहुत-सारे उपाय करता फिरता है? (तू भले ही अनेक यत्न किया कर, पर) या तेरे दुःख तब तक दूर होने के नहीं, जब तक तू रघुवंश शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी से विमुख है। भगवद्विमुख कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे, परन्तु उसके तीनों ताप (दैहिक दैविक और भौतिक) नष्ट नहीं हो सकते, यह बात मुनिश्रेष्ठ शुकदेवजी ने भुजा उठाकर कहा है॥१॥

अपने सहज स्वभाव को भूलकर अर्थात् चंचलता छोड़कर एकाग्रचित्त से तू ही विचारकर देख तो, कि कहीं पानी के मथन से, बिना दूध के, घी मिल सकता है? (इसी प्रकार विषयों में अनुरक्त रहकर कोई ब्रह्मानन्द का पीयूष पान नहीं कर सकता यह सुधा तो विरक्ति और विवेक से ही प्राप्त होगी।) इस बात को समझकर तू भ्रम को छोड़ दे (जो तू शरीर ही को आत्मा मान रहा है इस मिथ्या ज्ञान को त्याग दे) और श्रीरामचन्द्र जी के उन युगल चरणों का सेवन कर, जो सेवा से सुलभ हैं, और सद्गुणों के गम्भीर

चन हैं अर्थात जिन चरणों की सेवा करने से विवेक वैराग्य, समता, शान्ति आदि सद्गुण अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

बुद्धि को स्थिर करके शास्त्रों वेदों अन्य ग्रन्थों तथा ऋषियों मुनियों, देवताओं और संतों का जो एक निश्चित सिद्धान्त है उसे ध्यान से तू सुन (और वह सिद्धान्त यही है कि विषयासक्ति को छोड़कर भगवद्भजन करना चाहिए)। हे तुलसीदास! यद्यपि गंगा-तट निकट है तो भी बिना स्वामी के पशु प्यासा ही मर जाता है (इसी प्रकार यद्यपि भगवत्प्राप्ति के सारे साधन विद्यमान हैं तथापि बिना भगवत्कृपा के यह जीव शान्ति-लाभ करने के लिए तड़प तड़पकर मर रहा है) ॥३॥

शब्दार्थ—कीर=शुकदेव से अभिप्राय है। टव=भाष्य। जुगम=(युग्म) दोनों। आगम=शास्त्र। निगम=वेद।

विशेष—(१) कह्यो कीर—श्रीमद्भागवत में मुनिश्रेष्ठ परमहंस शुकदेवजी ने कहा है—

'घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते।
वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशय ॥'

(२) सहज टव—जैसे—
'हरष विषाद ग्यान अग्याना। जीवधर्म अहमिति अभिमाना ॥'

१६७

नाहिंन चरन रति ताहि तें सहौं बिपति
कहत स्रुति सकल मुनि मतिधीर।
बसै जो ससि उछंग सुधा-स्वादित कुरंग
ताहि क्यों भ्रम निरखि रविकर नीर ॥१॥
सुनिय नाना पुरान, मिटत नाहिं अज्ञान
पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर।
वझत बिनहिं पास सेमर सुमन आस,
करत चरत तेइ फल बिनु हीर ॥२॥
कछु न साधन सिधि जानौं न निगम विधि,
नहिं जप तप वस मन न समीर।
तुलसिदास भरोस परम करुना कोस,
प्रभु हरिहैं विषम भवभीर ॥३॥

भावार्थ—मेरा प्रेम श्रीरघुनाथजी के चरणों में नहीं है इसीसे नाना प्रकार दुःख में भोग रहा हूँ (मन ही मन्हो) वेद और समस्त बुद्धिमान मुनियों ने भी यही कहा है क्योंकि जो हिरण चन्द्रमा की गोद में अमृत का स्वाद ले रहा है उसे भला मृगतृष्णा के जल में भ्रम क्यों होगा? (जिस जीव को ब्रह्मानन्द के रस का चसका लग गया उसे संसारी विषय धोखे में नहीं डाल सकते। मैं विषयों में पड़ा हुआ हूँ इसलिए दुःख भोग रहा हूँ! जो श्रीहरि के चरणों का उपासक होता तो ये विपत्तियाँ ही क्यों आतीं) ॥१॥

जैसे तोता पढ़ता या रटता तो सब कुछ है, पर समझता कुछ भी नहीं, वैसे ही अनेक पुराणों के सुनने मात्र से मोह दूर नहीं होता। (अज्ञानी) तोता बिना फंदे के स्वयं बँध जाता है, आप ही चोंगली पकड़कर लटक रहता है, वह सेमर के फूल की आशा करता है, (देखता है, कि इसका फूल इतना सुंदर है तो फल कितना मीठा न होगा, पर) ज्योंही उसमें चोंच मारता है, उसे बिना गूदे का सारहीन फल मिलता है, अर्थात् रुई के सिवा उसमें खाने के लिए कुछ भी नहीं मिलता तब पछताता है (इसी प्रकार मनुष्य *विषयरूपी चोंगली पकड़कर आप ही बँधा रहता है स्त्री, पुत्र, धन आदि पर मोहित होकर* उनका संग्रह करने में लगा रहता है। पर उनसे बिछुड़ते ही दुखी हो जाता है ॥२॥

न तो मेरे पास कोई साधन है, और न कोई सिद्धि ही प्राप्त हुई है। मुझे वैदिक विधियाँ भी ज्ञात नहीं। जप-तप भी करना नहीं जानता, और न प्राणायाम से मन ही वश में किया है। इस तुलसीदास को तो करुणा के भाण्डार भगवान् रामचन्द्रजी का ही एकमात्र भरोसा है। वही इसकी भयानक सांसारिक विपत्ति को दूर करेंगे, जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करेंगे ॥३॥

शब्दार्थ—उछंग=गोद। कुरंग=हिरण। रविकरनीर=मृगतृष्णा का जल। कीर=तोता। बधत=बँध जाता है। पास=(पाश) जाल। चरत=चोंच मारता है। हीर=गूदा।

विशेष—(१) सुनिय अग्यान'—कबीर साहब भी कहते हैं—

पढ़े - गुने सीखे सुने मिटी न संसय - सूल।
कह कबीर कासों कहूँ, ये ही दुख का मूल ॥
साखी कहै गहै नहीं चाल चली नहिं जाय।
सलिल मोह - नदिया बहै पाँव नहीं ठहराय ॥'

(२) 'सेमर हीर'—तोते को ऐसी ही चेतावनी कबीर साहब भी दे रहे हैं—

'सेमर सुवना बेगि तजु, घनी बिगुचन पाँख।
ऐसा सेमर जो सेवे, हिरदय नाहीं आँख ॥'

(३) 'बिधि'—शौच, दान यज्ञानुष्ठान पुरश्चरण यंत्र-मंत्र, पचाग्नि, प्राणायाम, समाधि साधना आदि।

(४) 'करुना'—श्रीवजनाथजी ने 'करुणा' की परिभाषा इस प्रकार की है—

सेवक-दुख ते दुखित ह्वै, स्वामि बिकल ह्वै जाय।
दुख हरि सुख साजै तुरत करुना गुन सो आय ॥'

१८८

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु ही ते ॥१॥
सहसबाहु दसवदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन-धाम सँवारे अन्त चले उठि रीते ॥२॥
सुत वनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अन्तहुँ तोहि तजेंगे पामर! तू न तजै अबही ते ॥३॥

वन हैं, अर्थात जिन चरणों की सेवा करने से विराग, वैराग्य, समता, शान्ति आदि सद्‌गुण अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

बुद्धि को स्थिर करके शास्त्रों, वेदों अन्य ग्रन्थों, तथा ऋषियों, मुनियों, देवताओं और संतों का जो एक निश्चित सिद्धान्त है उसे ध्यान से तू सुन (और वह सिद्धान्त यही है, कि विषयासक्ति को छोड़कर भगवद्‌भजन करना चाहिए)। हे तुलसीदास! यद्यपि गंगा-तट निकट है, तो भी बिना स्वामी के पशु प्यासा ही मर जाता है (इसी प्रकार यद्यपि भगवत्प्राप्ति के सारे साधन विद्यमान हैं तथापि बिना भगवत्-कृपा के यह जीव शान्ति-लाभ करने के लिए तड़प तड़पकर मर रहा है) ॥३॥

शब्दार्थ—कीर=शुकदेव से अभिप्राय है। टेव=आदत। जुगम=(युग्म) दोनों। आगम=शास्त्र। निगम=वेद।

विशेष—(१) 'कह्यो कीर'—श्रीमद्भागवत में मुनिश्रेष्ठ परमहंस शुकदेवजी ने कहा है—

'घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिता।
वासुदेवपरा मर्त्यास्ते कृतार्था न संशयः ॥'

(२) 'सहज टेव'—जैसे—

'हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीवधर्म अहमिति अभिमाना ॥'

१९७

नाहिन चरन रति ताहि तें सहौं बिपति
कहत स्रुति सकल मुनि मतिधीर।
बसै जो ससि उछंग सुधा स्वादित कुरंग,
ताहि क्यों भ्रम निरखि रविकर नीर ॥१॥
सुनिय नाना पुरान, मिटत नाहिं अज्ञान
पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर।
बझत बिनहिं पास सेमर सुमन आस,
करत चरत तेइ फल बिनु हीर ॥२॥
कछु न साधन सिधि, जानौं न निगम बिधि,
नहिं जप तप बस मन न समीर।
तुलसिदास भरोस परम करुना कोस,
प्रभु हरिहैं बिषम भवभीर ॥३॥

भावार्थ—मेरा प्रेम श्रीरघुनाथजी के चरणों में नहीं है, इसीसे नाना प्रकार दुःख में भोग रहा हूँ, (मैंने ही नहीं) वेदों और समस्त बुद्धिमान मुनियों ने भी यही कहा है क्योंकि जो हिरण चन्द्रमा की गोद में अमृत का स्वाद ले रहा है उसे भला मृगतृष्णा के जल में भ्रम क्यों होगा? (जिस जीव को ब्रह्मानन्द के रस का चसका लग गया, उसे संसारी विषय धोखे में नहीं डाल सकते। मैं विषयों में पड़ा हुआ हूँ, इसीलिए दुःख भोग रहा हूँ। जो श्रीहरि के चरणों का उपासक होता तो ये विपत्तियाँ ही क्यों आतीं) ॥१॥

जैसे तोता पढ़ता या रटता तो सब कुछ है, पर समझता कुछ भी नहीं, वैसे ही अनेक पुराणों के सुनने मात्र से मोह दूर नहीं होता। (अज्ञानी) तोता बिना फंदे के स्वयं बँध जाता है, आप ही चोंगली पकड़कर लटक रहता है वह सेमर के फूल की आशा करता है, (देखता है, कि इसका फूल इतना सुंदर है, तो फल कितना मीठा न होगा, पर) ज्योंही उसमें चोंच मारता है, उसे बिना गूदे का, सारहीन, फल मिलता है, अर्थात् रुई के सिवा उसमें खाने के लिए कुछ भी नहीं मिलता, तब पछताता है (इसी प्रकार मनुष्य विषयरूपी चोंगली पकड़कर आप ही बँधा रहता है स्त्री, पुत्र, धन आदि पर मोहित होकर उनका संग्रह करने में लगा रहता है। पर उनसे बिछुड़ते ही दुखी हो जाता है) ॥२॥

न तो मेरे पास कोई साधन है, और न कोई सिद्धि ही प्राप्त हुई है। मुझे वैदिक विधियाँ भी ज्ञात नहीं। जप-तप भी करना नहीं जानता, और न प्राणायाम से मन ही वश में किया है। इस तुलसीदास को तो करुणा के भाण्डार भगवान रामचन्द्रजी का ही एकमात्र भरोसा है। वही इसकी भयानक सांसारिक विपत्ति को दूर करेंगे, जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करेंगे ॥३॥

शब्दार्थ—उछंग=गोद। कुरंग=हिरण। रविकरनीर=मृगतृष्णा का जल। कीर=तोता। बझत=बँध जाता है। पास=(पाश) जाल। चरत=चोंच मारता है। हीर=गूदा।

विशेष—(१) 'सुनिय अग्यान'—कबीर साहब भी कहते हैं—

'पढ़े-गुने, सीखे-सुने मिटी न संसय सूल।
कह कबीर कासों कहूँ, ये ही दुख का मूल॥
सारो कहै गहै नहीं चाल चली नहिं जाय।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव नहीं ठहराय॥'

(२) 'सेमर हीर'—तोते को ऐसी ही चेतावनी कबीर साहब भी दे रहे हैं—

सेमर सुवना बेगि तजु, घनी बिगुचन पाँख।
ऐसा सेमर जो सेवै, हिरदय नाहीं आँख॥'

(३) 'विधि'—शौच, दान यज्ञानुष्ठान पुरश्चरण, यम नियम, पंचाग्नि, प्राणायाम, समाधि, साधना आदि।

(४) करुना—श्रीवजनाथजी ने 'करुणा' की परिभाषा इस प्रकार की है—

सेवक दुख ते दुखित ह्वै, स्वामि बिकल ह्वै जाय।
दुख हरि सुख साज तुरत, करुना गुन सो आय॥'

१९८

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु ही ते॥१॥
सहसबाहु दसवदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन-धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते॥२॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अन्तहुँ तोहि तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥३॥

अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड त्यागु दुरासा जी ते ।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते ॥४॥

भावार्थ—अरे ! अवसर बीत जाने पर तेरे मन को पछताना पडेगा, इसलिए कठिनता से मिलनेवाला मनुष्य शरीर पाकर भगवच्चरणारविन्दों का भजन कर्म वचन और हृदय से तू कर (अब भी कुछ नहीं बिगडा) ॥१॥

सहस्रबाहु और रावण सरीखे (महाप्रतापी) राजा भी बलवान काल से नहीं बचे उन्हें भी काल का ग्रास बनना पडा । जो 'हम, हम' करते हुए धन और धाम सँभालने में लगे रहे वे भी अन्त समय यहाँ से खाली हाथ ही चले गये (एक कौडी भी उनके साथ न गई ।) ॥२॥

पुत्र स्त्री आदि का मतलबी यार समझ इन सबसे तू प्रेम न बढा, क्योंकि ये तेरे ये सदा के साथी नहीं हैं, न पहले थे और न आगे रहेंगे । रे मूर्ख ! जब ये सब के सब तुझे अन्त समय छोड ही देंगे तो तू इन्हें अभी से छोड क्यों नहीं देता ? (जैसे, ये तेरे साथी न बनेंगे, वैसे तू भी इनका साथी न बन) ॥३॥

रे मूढ ! (अविद्यारूपी निद्रा से) जाग जा, अपने स्वामी (श्रीरघुनाथजी) से प्रेम कर और विषयों से सुख पाने की दुराशा को मन से छोड दे । हे तुलसीदास ! कहीं कामनारूपी अग्नि बहुत-सा विषयरूपी घी डालने से बुझती है ? (वह तो और भी प्रज्वलित होगी । शान्तिरूपी जल से ही बुझती है ।) ॥४॥

शब्दार्थ—हीं ते = हृदय से । रीते = खाली हाथ ।

विशेष—(१) हम हम रीते कबीर साहब सुनिए क्या चेतावनी देते हैं—

हम का ओढाव चदरिया चलती बिरियाँ ।
प्रान राम जब निकसन लागे उलट गइ दोउ नैन पुतरियाँ ॥
भीतर से जब बाहर लाये छूट गइ सब महल अटरियाँ ॥
चार जने मिलि खाट उठाइन रोवत ले चले डगर-डगरियाँ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो संग चलीं वह सूखी लकरियाँ ॥

तथा—

पाँचों नौबत बाजतीं, होत छतीसों राग ।
सो मंदिर खाली पडा बैठन लागे काग ॥
आस-पास जोधा खडे, सबी बजावें गाल ।
मौंझ महल से ले चला ऐसा काल कराल ॥'

(२) सुत बनितादि स्वारथरत—ऋषि वाल्मीकि का उदाहरण है । देवर्षि नारद के कहने पर जब उन्होंने अपने कुटुम्बी जनों से पूछा कि तुम लोग मेरे पुण्य-पाप के साथी हो या नहीं तो उनका उत्तर था हमें तुम्हारे पुण्य-पाप से क्या मतलब ? हम तो खान-पान के साथी हैं । हम क्या जानें कि तुम हमारे लिए कहाँ से किस प्रकार क्या कमा लाते हो ? वाल्मीकि के हृदय में तत्काल ज्ञान का उदय हो गया ।

(३) बुझै न काम अगिनि—इसी भाव-साम्य—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥'

[मनुस्मृति

१९९

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो।
तजि हरिचरन सरोज सुधारस, रविकर जल लय लायो॥१॥
त्रिजग, देव नर, असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो।
गृह वनिता, सुत, बंधु भये बहु, मातु पिता जिन्ह जायो॥२॥
जाते निरय निकाय निरंतर, सोइ इन्ह तोहिं सिखायो।
तुव हित होइ कटै भव-बंधन सो मगु तोहिं न बतायो॥३॥
अजहुँ विषय कहँ जतन करत, जद्यपि बहु विधि डहँकायो।
पावक-काम भोग घृत तें सठ, कैसे परत बुझायो॥४॥
विषयहीन दुख मिले विपति अति, सुख सपनेहुँ नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों धन दुखप्रद स्रुति गायो॥५॥
छिन छिन छीन होत जीवन, दुरलभ तनु वृथा गँवायो।
तुलसिदास, हरि भजहि आस तजि काल उरग जग खायो॥६॥

भावार्थ—रे मूर्ख मन! किसलिए इधर उधर दौड़ा दौड़ा फिरता है? श्रीहरि-चरणारविन्दों का अमृत रस छोड़कर मृगतृष्णा के जल में क्या लौ लगा रहा है? भाव यह कि ब्रह्मानन्द को छोड़कर संसार के झूठे विषयों की ओर मन मग्न को क्यों दौड़ रहा है॥१॥

पशु पक्षी, देवता, मनुष्य राक्षस एवं अनेक सांसारिक योनियों में तू भटक आया है जहाँ जहाँ तू गया वहाँ बहुत सारे घर, स्त्री, पुत्र भाई तथा तुझे जन्म देनेवाले माता-पिता हो चुके हैं (न जाने कितनी बार तू कितनों से रिश्ता जोड़ चुका है)॥२॥

जिस कर्म के करने से तुझे सदा अनेक नरकों में जाना पड़ता है लोगों ने तुझे वही विषय भोगों का पाठ सिखाया। वह मार्ग नहीं सुझाया जिस पर चलने से तेरा सांसारिक कष्ट कट जाये जन्म मरण से तू छूट जाये॥३॥

इस प्रकार कई तरह से तू छला जा चुका है, फिर भी आज तक तू विषय भोगों के ही लिए उपाय कर रहा है। रे दुष्ट! (तनिक विचार तो कर) कामरूपी अग्नि में भोगरूपी घी डालने से वह कैसे शान्त होगी? (जितना ही विषय भोग तू करेगा, उतनी ही कामाग्नि और और भड़केगी, वह तो विरक्तिरूपी जल से ही बुझेगा, अन्यथा नहीं)॥४॥

फिर जब तुझे विषयों की प्राप्ति नहीं हुई, तब बड़ा ही दुःख हुआ स्वप्न में भी सुख नहीं मिला। इसलिए वेदों ने विषयरूपी सम्पत्ति को दोनों ही प्रकार से प्रेत की आग के समान दुःखप्रद बतलाया है। (जैसे वन में यात्री भ्रम की आग देखकर मार्ग भूल जाते हैं, और भ्रम में पड़कर उनसे न आगे बढ़ा जाता है न पीछे को ही लौटते बनता है, उसी प्रकार विषयों के मिथ्या प्रलोभन में पड़कर, मनुष्य लोक और परलोक दोनों से ही हाथ धो बैठता है। न तो उसे यथेष्ट विषय-साधन मिलते हैं और न उनकी ओर से अरुचि ही होती है।)॥५॥

तेरा जीवन क्षण क्षण में क्षीण होता जा रहा है। इस दुर्लभ शरीर को तूने व्यर्थ

ही गँवा दिया। अतएव, हे तुलसीदास ! तू संसारी सुखों की आशा छोड़कर केवल श्री हरि का भजन कर। सावधान ! कालरूपी साँप संसार को ग्रसे जा रहा है (न जाने, कब किस घड़ी तू भी काल का ग्रास बन जाय) ॥६॥

शब्दार्थ—रविकरजल=मृगतृष्णा का पानी कोरा भ्रम। तिरजग=(तिर्यक्) पशु पक्षी, सर्प आदि। निरय=नरक। निकाय=समूह। दहकायो=धधका गया। प्रेत पावक=लुक की चमक जिसे लोग भूत की आग कहा करते हैं। यह जंगलों में प्रायः दिखाई देती है, और चमककर तुरन्त बुझ जाती है।

विशेष—(१) तुव बतायो—जिन्होंने अपनी संतति को बचपन से ही परमार्थ का उपदेश दिया, ऐसे माता पिता इने गिने ही मिलते हैं। कहाँ मिलती है ध्रुव की माता सुनीति और महारानी मदालसा-जैसी माताएं ?

(२) पावक बुझायो—जब तक विषयों में आसक्ति रहेगी, तब तक वे कभी शान्त होने के नहीं। अनासक्त कर्म बन्धन का कारण नहीं है, परन्तु अनासक्ति अत्यन्त कठिन है। अतः वैराग्य और अभ्यास दोनों आवश्यक हैं। यह मन अभ्यास और वैराग्य से ही वश में हो सकता है। गीता में कहा है—

'असंशयं महाबाहो, मनो दुर्निग्रहं चलं।
अभ्यासेन तु कौंतेय, वैराग्येण च गृह्यते ॥'

(३) छिन छिन तनु—

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥'

[कबीर

२००

तांबे सो पीठि मनहुँ तनु पायो।
नीच मीचु जानत न सीस पर ईस निपट बिसरायो ॥१॥
अवनि रवनि, धन धाम सुहृद सुत, को न इन्हहिं अपनायो।
काके भये, गये सँग काके, सब सनेह छल छायो ॥२॥
जिन्ह भूपनि जग जीति बाँधि जम अपनी बाँह बसायो।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हे तू गिनती कब आयो ॥३॥
देखु बिचारि सार का साँचो, कहा निगम निजु गायो।
भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि, जेहि महेस मन लायो ॥४॥

भावार्थ—रे जीव ! (क्या कहना !) मानो तूने तांबे से मढ़ा हुआ शरीर पाया है। तभी तो तू इस पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर शरीर को अजर अमर मानकर विषय भोगों में लीन हो रहा है। हे नीच ! तू यह नहीं जानता, कि मौत तेरे सिर पर नाच रही है ? तूने परमात्मा को बिलकुल ही भुला दिया (शरीर का भरण-पोषण ही जीवन का सर्वस्व समझ लिया।) ॥१॥

पृथिवी स्त्री धन मकान मित्र और पुत्र को किसने अपना नहीं माना ? किन्तु

(तनिक विचार तो कर) ये किसके हुए ? किसके साथ (मरते समय) गये ? इन सबके प्रेम में केवल कपट भरा हुआ है ।।२।।

जिन राजाओं ने सारे संसार को जीतकर, दिग्विजय कर काल को भी ... बनाकर अपने अधीन कर लिया था, उन्हें भी जब एक दिन मृत्यु ने अपना ग्रास बना लिया, तब तेरी तो गिनती ही क्या है ? ।।३।।

विचारपूर्वक (ज्ञान-दृष्टि से) देख सच्चा सार क्या है ? और, वेदों ने निश्चय रूप से क्या कहा है ? हे तुलसी ! अब भी तू श्रीराम को समझकर नहीं भजता है ।

शब्दार्थ —मीचु = मौत । रवनि=(रमणी) स्त्री । कलेऊ=कलेवा भोजन । निजु=सिद्धान्त रूप से । लायो=लगाया ।

विशेष—(१) 'नीच सीस पर'—कबीर साहब की इस पर साखी है—

'माली आवत देखिकै, कलियां करें पुकार ।
फूली-फूली चुनि लई, काल्हि हमारी बार ।।

(२) 'गये संग काके'—

'इक दिन ऐसा होइगा, कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिं ।।'

(३) जेहि महेस मन लायो —शिवजी पार्वती से कहते हैं—

'अहं जपामि देवेशि, रामनामाक्षरद्वयम् ।
श्रीरामस्य स्वरूपस्य ध्यानं कृत्वा हृदिस्थले ।।

२०१

लाभ कहा मानुष-तनु पाये ।
काय वचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ।।१।।
जो सुख सुरपुर नरक, गेह-वन आवत बिनहिं बुलाये ।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन समुझत नहिं समुझाये ।।२।।
पर-दारा पर द्रोह, मोहवस किये मूढ़, मन भाये ।
गरभवास दुखरासि जातना तीव्र बिपति बिसराये ।।३।।
भय, निद्रा, मैथुन, अहार सबके समान जग जाये ।
सुर दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाये ।।४।।
गई न निज पर बुद्धि सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाये ।
तुलसिदास यह अवसर बीते का पुनिकै पछिताये ।।५।।

भावार्थ—मनुष्य शरीर पाने से लाभ ही क्या हुआ यदि वह कभी स्वप्न में भी मन, वचन और कर्म से पराये काम नहीं आया, उससे कोई परोपकार नहीं बना ।।१।।

विषय-सम्बन्धी जो सुख बिना ही बुलाये, आपसे आप स्वर्ग नरक घर और वन में प्राप्त हो जाता है, उस सुख के लिए रे मन ! तू अनेक प्रकार के उपाय कर रहा है ! समझाने पर भी नहीं समझता ।।२।।

अरे मूढ़ ! तूने अज्ञानवश पराई स्त्री के लिए और दूसरों से वैर बाँधने के लिए

जो मन म आया सो किया (विवेक से काम नही लिया)। पूवजन्म में तूने गभ में जो महा दु ख भोगे उनका दारुण कष्ट भूल गया? (यह नही सोचा कि इन मनमाने कुकर्मों से फिर वहा गभवास क दु ख भोगने पड़ेंगे) उनके कारण गभ में आना पड़ा ॥३।

या तो जिस किसी ने ससार में जन्म लिया, उसमें भय, नींद, काम, आहार आदि एक सरीखे ही पाये जाते हैं किन्तु देवताओं को भी दुलभ मनुष्य शरीर पाकर तूने भगवान का भजन नहीं किया और मद और अहकार में उसे खो दिया ॥४॥

जिन्होंने अपने और पराये का भेद नहीं छोड़ा और निमल अन्त करण से श्री रघुनाथजी से प्रेम नहीं जोड़ा उन्हें, हे तुलसीदास! ऐसा सुअवसर निकल जाने पर फिर पछताने से क्या मिलेगा?

शब्दाथ —काय = (काया) शरीर। घटत=करता है, आता है। निज पर बुद्धि=अपने और पराये का भेद भाव।

विशेष—(१) 'घटत न काज पराय'—पिछले कई पदों में वैराग्य का प्रतिपादन किया गया है। कच्चे दिलवालों पर वैराग्य का रग बड़ी जल्दी चढ जाता है और उतर भी तुरन्त जाता है। ये जन अज्ञानवश ससार का ठीक ठीक रहस्य नहीं समझ पाते उसे दूर से ही देखकर डर जाते हैं और कायर की तरह पूछ दबाकर भागते हैं। वैराग्य का प्राय यही अथ किया जाता है कि ससारी पदार्थों को जिस रूप में वे हैं उसी रूप में, छोड़ देना चाहिए भले ही उनमें आसक्ति बनी रहे! इस पद में गोसाइजी स्वार्थ से विरक्त कराकर जीव को पुन परोपकार में लोक सग्रह के कर्मों में प्रवत्त करा रहे हैं। वे विरक्त का अथ 'वीर' करते हैं, 'कायर' नहीं। परोपकार अर्थात लोकोपकार के लिए स्वाथ त्याग की बड़ी आवश्यकता है, और इसी कारण विषयों की ओर से घृणा कराकर विरक्ति का उपदेश किया गया है। यह पद गीता के कर्मयोग की ओर हठात मन को आकृष्ट करता है।

(२) भय जाये—भाव साम्य देखिए—

'आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम।'

[भर्तृहरि

(३) 'यह अवसर पछिताये'—सत्य है,

आछे दिन पाछे गये हरि से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करे, चिड़िया चुग गईं खेत॥'

[कबीरदास

२०२

काज कहा नरतनु धरि सारयो।
पर उपकार सार स्रुति को जो धोखेहुँ न विचारयो ॥१॥
द्वैतमूल भय सूल सोक फल, भवतरु टरै न टारयो।
रामभजन तीछन कुठार लै सो नहिं काटि निवारयो ॥२॥
ससय सिन्धु नाम बोहित भजि निज आतमा न तारयो।
जनम अनेक विवकहीन बहुजोनि भ्रमत नहिं हारयो ॥३॥

देखि आन की सहज सम्पदा, द्वेष अनल मन जारयो ।
सम, दम, दया, दीन-पालन, सीतल हिय हरि न सँभारयो ॥४॥
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति तैं मन क्रम वचन बिसारयो ।
तुलसिदास यहि आस सरन राखिहि जेहि गीध उधारयो ॥५॥

भावार्थ—मनुष्य शरीर धारण करके तूने आखिर किया क्या ? जो परोपकार वेदों का सार है उस पर तूने भूलकर भी विचार नहीं किया ॥१॥

यह संसार मानो एक वृक्ष है । द्वैतभाव अर्थात भेदबुद्धि ही इसकी जड़ है, भय काँटे हैं और दुःख इसके फल हैं । यह वृक्ष हटाने पर भी नहीं हटता । क्योंकि जब तक इसकी द्वैतरूपी जड़ कट नहीं जाती तब तक इसका हटाना सम्भव नहीं । यह तो केवल रामनामरूपी तेज कुल्हाड़ी से ही कटता है । परन्तु तूने ऐसा किया नहीं ॥२॥

संशयरूपी समुद्र से पार हो जाने के लिए राम-नाम नौकारूप है, सो उसका सेवन कर, भजन कर, तूने अपनी आत्मा को (अविद्या से) नहीं तारा । अनेक जन्म तक अज्ञान वश अनेक योनियों में घूमता हुआ भी अब तक तू नहीं थका ॥३॥

दूसरों की सहज सम्पत्ति देखकर ईर्ष्यारूपी आग में मन को जलाता रहा । शम दम, दया और दीनों का पालन करते हुए हृदय को शान्त कर तूने भगवत्सेवा नहीं की ॥४॥

तूने मन से, कर्म से, और वचन से उन श्रीरघुनाथजी को भुला दिया जो तेरे (सच्चे) स्वामी हैं, गुरु हैं पिता हैं और मित्र हैं । हे तुलसीदास ! इतनी तो आशा फिर भी है, कि जिसने जटायु गीध को तार दिया, वही तुझे अपनी शरण में रखेंगे ॥५॥

शब्दार्थ—सारयो=पूरा किया, बनाया । बोहित=नौका ।

विशेष—(१) 'पर उपकार सारश्रुति को'—व्यास भगवान कहते हैं—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥'

(२) 'भवतरु'—नीचे के पद में 'संसार-वृक्ष' का साङ्गोपाङ्ग वर्णन आया है—

'अव्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने ।
षट कंध साखा पंचबिस अनेक पर्न सुमन घने ॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे ।
पल्लवित फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे ॥'

[रामचरितमानस

संसार-वृक्ष का रूपक बहुत प्राचीन है । वेद में भी इस प्रकार है—
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि ।'

२०३

श्रीहरि गुरु-पदकमल भजहु मन तजि अभिमान ।
जेहि सेवत पाइय हरि सुख-निधान भगवान ॥१॥
परिवा प्रथम प्रेम बिनु राम मिलन अति दूरि ।
जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरिपूरि ॥२॥

कार किया जाये। (परोपकार में ही नर शरीर की सार्थकता है) ॥८॥

अष्टमी के समान आठवाँ उपाय यह है, कि श्री रामचन्द्रजी अष्टप्रकृति (पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश, मन बुद्धि और अहंकार) से पर शुद्धस्वरूप हैं। जब तक हृदय से अनेक प्रकार की कामनाएं दूर नहीं हुई तब तक वे कैसे मिल सकते हैं ? (शुद्ध आनन्दघन भगवान का निवास निष्काम, निर्विकार पवित्र हृदय में ही होता है।) ॥९॥

नवमी के समान नवाँ साधन यह है कि जिसने इस नौ दरवाजे की नगरी अर्थात नौ छेद वाले शरीर में रहकर अपनी आत्मा का श्रेयस नहीं साधा, वह नाना योनियों में भटकता फिरेगा। (क्योंकि विषयों में फँसकर वह कभी जन्म मरण से छुटकारा न पा सकेगा, और सदा आत्मघाती ही कहा जाएगा।) ॥१०॥

दशमी के समान दसवाँ साधन यह है कि संयम करना चाहिए क्योंकि जिसने दसों इन्द्रियों का संयम करना नहीं जाना इन्द्रियों को वश में नहीं किया, उसके सारे ही साधन निष्फल जाते हैं उस असंयत मनुष्य को धनुर्धारी श्रीराम का दर्शन नहीं होता। (इन्द्रिय लोलुप को भगवतरसास्वादन स्वप्न के समान है।) ॥११॥

एकादशी के समान ग्यारहवाँ साधन यह है कि एकवृत्त चित्त करके (सब ओर से हटाकर एक लक्ष्य में लगाकर) भगवत्सेवा करनी चाहिए। इसी आराधना से (परमार्थरूपी एकादशी) व्रत का फल मिलता है और वह फल है जन्म मरण से मुक्त हो जाना ॥१२॥

द्वादशी के दिन जैसे (व्रत के उपरान्त) दान दिया जाता है वैसे ही बारहवाँ साधन यह है कि ऐसा दान देना चाहिए कि जिससे तीनों लोकों में कोई भी भय न रहे। उस द्वादशीरूपी बारहवें साधन का पारण यही है कि सदा परोपकार में लगा रहना चाहिए। (इस दान और पारण से) फिर शोक नहीं व्यापता ॥१३॥

त्रयोदशी के समान तेरहवाँ साधन यह है कि जागृति स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं को त्यागकर भगवान का भजन करना चाहिए (सदा एकरस निर्बाध रूप से भगवद्भजन करना चाहिए) *नारायण मन, कर्म और वाणी से परे हैं सबमें* व्याप रहे हैं, स्वयं व्याप्य हैं अर्थात दृश्यरूप भी हैं और अनन्त अपरिमित हैं। (अतएव उनका भजन इन अवस्थाओं को त्याग देने पर ही सम्भव हो सकता है, क्योंकि जब तक जीव अवस्था भेद में रहेगा, तब तक वह अनन्त, सर्वव्यापी परमात्मा का पूर्णरूपेण चिंतन कर नहीं सकता।) ॥१४॥

चतुर्दशी के समान गोपाल (इन्द्रियों के नियन्ता) भगवान चौदहवों लोकों में रम रहे हैं। जड़ और चैतन्य सब कुछ भगवान् का ही रूप है। जब तक जीव की भेद बुद्धि दूर नहीं हुई, मेरे-तेरे का भेद भाव नाश नहीं हुआ तब तक श्रीरघुनाथजी संसाररूपी जाल को छिन्न भिन्न नहीं करते जन्म मरण से नहीं छुड़ाते ॥१५॥

जब पूर्णमासी के समान पन्द्रहवाँ साधन जो सर्वोत्कृष्ट, पूर्ण साधन है, यह है कि शांत शीतल अभिमान रहित ज्ञानमय और सर्वविषयों से विरक्त हो जाना चाहिए तभी परमानन्द का अमृतरस उपलब्ध होगा। इस महारस को केवल भगवान् के सेवक ही जानते हैं। (विषयी जन इसे क्या समझ सकेंगे !) ॥१६॥

यहाँ गोसाईंजी ने फागुन मास की पूर्णमासी का वर्णन किया है। यह पूर्णमासी

अन्य महीनों की पूर्णमासी से कहीं अधिक आनन्दमयी समझी जाती है)। होली में दैहिक, भौतिक और दैविक इन तीनों तापों को जला देना चाहिए। फिर फाग खेलनी चाहिए (आनन्द मनाना चाहिए जब तक संसारी दुःखों का लेश भी रहेगा, तब तक जीव निश्चिन्त होकर परमानन्द प्राप्ति का महोत्सव नहीं मना सकता।) जो तू अपने मन में परमानन्द प्राप्ति की इच्छा करता है, तो इस मार्ग पर चल (उपर्युक्त पन्द्रह साधनों को क्रम-क्रम से साध) ॥१७॥

वेदों, पुराणों और पंडितों का यही मत है कि भगवान् की लीलाओं का कीर्तन ही होली के अवसर पर गाने के गीत हैं। इन सब साधनों पर विचार करके संसार सागर को पार कर जाना चाहिए और फिर कभी (भूलकर भी) यम-सेना के फन्दे में न पड़ना चाहिए। (जन्म मरण के चक्र में न फँसना चाहिए।) ॥१८॥

अविद्या का नाश करनेवाले दुःखों के हर्ता और आनन्द की राशि केवल नारायण ही हैं। भले ही अनेक उपाय करो पर वे, सन्तों के अनुग्रह के बिना, प्राप्त होने के नहीं (सन्त-कृपा सब साधनों में प्रधान है) ॥१९॥

संसार-समुद्र से तरने के लिए सन्तों के पवित्र चरण ही नौका हैं। हे तुलसीदास! (इस नौका पर चढ़कर अर्थात् सन्तों के चरणों की सेवा करके) दुःखों का नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी बिना ही प्रयास प्राप्त हो जाते हैं ॥२०॥

शब्दार्थ—द्वैतमति=भेद-बुद्धि। चरहि=विचरण कर। परस=स्पर्श। षट वर्ग=काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। सप्तधातु=अस्थि, चर्म, रक्त, मांस, मज्जा, मेद और वीर्य। नौद्वारपुर=नौ छेदवाला शरीर। पारन=व्रत ■ उपरान्त का भोजन। अति=जड़ से। लागु=आरूढ़ हो जा। चाँचरि=फाग के गीत।

विशेष—(१) श्रीहरि गुरु—यहाँ गुरु और हरि में अभेदत्व का प्रतिपादन किया गया है। गुरु की सेवा करने से हरि की प्राप्ति होती है। कबीर साहब कहते हैं—

'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो लखाय॥'

(२) परिवा'—चन्द्रमा की षोडश कलाएँ हैं। एक-एक तिथि में एक-एक कला की वृद्धि होती है।

'अमृता मानदा तुष्टिःपुष्टिःप्रीति रति तथा।
लज्जा, श्रिय, स्वधा, रात्रि, ज्योत्स्ना, हंसवनोत्तत॥
छाया च पूर्णा वामाममाचन्द्रकला इमा॥'

[शारदा तिलक

श्रीवैजनाथजी ने इसी प्रकार भाव की भी षोडश कलाएँ कही हैं—निराशा उदासना, शांति, निजता, करुणा, मुदिता स्थिरता, सुसंग, उदासीनता, श्रद्धा, लज्जा, साधुता, तृप्ति, क्षमा विवेक और विद्या।

(३) 'प्रेम दूरि'—

'जद्यपि प्रभु सबत्र समाना। प्रेम ते प्रगटि होत भगवाना॥'

[रामचरितमानस

(४) 'दृष्टान्त [illegible]'—

'जाके देह भवन हूँ नाहीं, ताके भारी भाई ।
कहीं कुम्भ उदर उड़ी तलिया गज को मरे बड़ाई ॥

(५) 'उदाहरण'—[illegible] कबीर के शब्दों पर विचार कीजिए—

'ऐसी नगरिया में केहि बिधि रहना । नित उठ कलंक लगावे सहना ॥
एक कुआँ पाँच पनिहारी । एकै लजुर भरै नौ नारी ॥
फट गया कुआँ बिनस गई बारी । बिलग भई पाँचों पनिहारी ॥
कहै कबीर नाम बिनु बेरा । उड़ गया हाकिम लुट गया डेरा ॥

(६) पारम्पर्य—प्रथम द्वन्द्वों पर विजय-प्राप्त करने के लिए अनुसारी राम का स्मरण यहाँ किया गया है ।

(७) सोलह गुण—सुख दुख द्वन्द्व रहित, गतमान, ध्यानरत, विषय विरक्त, सुखनिधान, सुजान, समदर्शी और निष्काम ।

(८) साधना का चरम—यथा—

मधुर भाव हरि [illegible] भाव का [illegible] ।
साधु चरन सेवन बिना, कछु ना आवे हाथ ॥

(९) यह पद साहित्य, भक्ति तथा तत्त्वज्ञान की दृष्टि से बड़ा ही सुन्दर है । साधक जनों के तो हृदय का यह पद हार ही है । क्रमशः इस पर चलता हुआ साधक पूर्ण सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं ।

२०४

जो मन लागै रामचरन अस ।
देह गेह सुत बित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस ॥१॥
द्वंद्वरहित, गतमान, ग्यानरत, बिषय बिरत खटाइ नाना कस ।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होहिं बस ॥२॥
सबभूत हित, निर्ब्यलीक चित, भगति प्रेम दृढ़ नेम एकरस ।
तुलसिदास यह होइ तबहिं जब द्रवै ईस जेहि हतो सीसदस ॥३॥

भावार्थ—यदि यह मन श्रीरघुनाथजी के चरणों में इस प्रकार लग जाय जैसे यह शरीर, गृह, पुत्र, धन और स्त्री में मग्न हो जाता है (स्वभाव से ही उनके मोह में फँस जाता है) ॥१॥

तो यह द्वन्द्वों (सुख-दुःख आदि) से रहित हो जाय, इसका अभिमान दूर हो जाय, यह ज्ञान में तल्लीन हो जाय तथा अनेक कष्टों से या उपायों से निर्मल होकर या देहासक्ति से हटकर विषयों से विरक्त हो जाय । ऐसे भाग पर आनन्दघन सुचतुर कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्र जी क्या न उसके वश में हो जायें ? ॥२॥

(जो जीव भगवच्चरणारविन्दों में इस प्रकार प्रेम करेगा) वह सब प्राणियों के हित में अपने को लगा देगा, उसका चित्त शुद्ध हो जायगा, भक्ति और प्रेम दृढ़ हो जायेंगे और उसके नियम त्रिकालाबाधित सदा एकरस रहेंगे अर्थात् वह सुख-दुःख सम्पत्ति-

विपत्ति आदि द्वन्द्वों में सम्पन्न वा विपन्न न होगा। हे तुलसीदास
हो सकेगी, जब रावण का वध करनेवाले समर्थ स्वामी (श्रीरामजी)

शब्दार्थ—कलत्र=स्त्री। खटाई=निभा जाये परख में
कस=परीक्षा। निर्व्यलीक=निर्मल, निष्कपट। एकरस=त्रिकालाबाधि

विशेष—(१) 'जो मन ... अस'—इस प्रकार भगवत्सेवा करनी ... कि श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥
मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम्।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते॥
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः॥

(२) 'खटाइ नाना कस'—श्रीव्रजनाथजी के अनुसार स्वर्गीय भट्टजी ने इसका यह अर्थ किया है—'वह (संसार के) विषयों से ऐसे अलग हो जाता है, कि जैसे कसे (काँसा) के पात्रों में धरी अनेक खट्टी वस्तुओं से मन फिर जाता है।' यह अर्थ भी घट सकता है, श्रीव्रजनाथजी ने इसे विस्तार के साथ लिखा है।

(३) 'जेहि ... सीस दस'—जिसने दस शिरवाले रावण का वध किया है वही दशों इन्द्रियों पर विजय-लाभ कराकर परमहंस अवस्था को प्राप्त कराएगा।

(४) सहज स्वभाव से निष्कपट भाव से भगवच्चरणारविन्दों में प्रेम करना चाहिए—यही इस पद का निचोड़ है।

२०५

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु।
तौ तजि विषय विकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु॥१॥
सम, संतोष, विचार विमल अति सतसंगति, ये चारि दृढ़ करि धरु।
काम, क्रोध, अरु लोभ, मोह मद, राग, द्वेष निसेष करि परिहरु॥२॥
स्रवन कथा, मुख नाम हृदय हरि, सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु।
नयनन निरखि कृपा-समुद्र हरि अग जगरूप भूप सीतावरु॥३॥
इहै भगति वैराग्य-ग्यान यह हरि-तोषन यह सुभ व्रत आचरु।
तुलसिदास सिव-मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डरु॥४॥

भावार्थ—हे मन! जो तू श्रीहरिरूपी कल्पवृक्ष का सेवन करना चाहता है, तो विषय विकारों को, काम लिप्सा को छोड़कर साररूप श्रीराम-नाम का भजन कर, और जो मैं कहता हूँ उस पर अब भी आचरण कर (अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं)॥१॥

समता सन्तोष, निर्मल ज्ञान और सत्संग, इन चारों को दृढ़तापूर्वक (हृदय में) रख ले, इनको हृदयंगम करके इनका अनुसरण कर। काम क्रोध, लोभ अज्ञान अहंकार एवं राग और द्वेष को सर्वथा त्याग दे, हृदय में इनका लेशमात्र भी न रहे। (क्योंकि जब-

ये दुर्गुण हृदय में रहेंगे तब तक सद्गुणों को वहाँ स्थान मिलने का नहीं, राम जीवन के आगे क्षेम कुशल का निर्वाह हो नहीं सकता) ॥२॥

कानों से भगवत्कथा सुनाकर मन से (राम) नाम का स्मरण हृदय में भगवद् ध्यान और मस्तक से प्रणाम तथा हाथों से भगवान् की सेवा किया कर। नेत्रों से कृपा सागर जड चेतन्य में व्याप्त महाराजा जानकीवर रामचन्द्रजी का दर्शन किया कर (इसी में तेरे शरीर की सार्थकता है नहीं तो विषयों का अनुसरण करता हुआ तू मनुष्य शरीर को यों ही व्यर्थ खो देगा न तो लोक बनेगा न परलोक ही)। ३।

यही भक्ति है यही वैराग्य है यही ज्ञान है और इसी से भगवान् प्रसन्न होते है, अतएव तू इसी शुभ कल्याणकारी व्रत का साधन कर। हे तुलसीदास ! यह मार्ग शिवजी का बतलाया हुआ है। इस (कल्याणयुक्त) मार्ग पर चलने से स्वप्न में भी (जन्म-मरण का) भय नहीं रहता ॥४॥

शब्दार्थ—सम=(शम) शान्ति, समभाव। निसेष=(निःशेष) पूर्णतया। अग=जड। जग=चेतन्य। तोषन=प्रसन्न करनेवाला। सिवमत=शिवजी का कहा हुआ सिद्धान्त कल्याणकारी मत।

विशेष—(१) विषय विकार—शब्द रूप रस गंध, स्पर्श, इन्द्रियों के भोग विलास जो नितान्त निस्सार है। विवेक द्वारा इन विषयों की निस्सारता देखकर सार स्वरूप आत्मा की उपासना ही श्रेयस्कर है। जब अन्तःकरणचतुष्टय निःशेषरूप से विशुद्ध हो जाता है तभी भगवद्भक्ति का, हरि कृपा का, अधिकार प्राप्त होता है।

(२) अग जग रूप—सर्व व्यापी परमात्मा।

सियाराममय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुगपानी॥

[रामचरितमानस

(३) हरि तोषन—भगवान् केवल अनन्य भक्ति द्वारा ही प्रसन्न होते है। अनन्य उपासक का लक्षण है—

न विधिर्न निषेधश्च प्रेमयुक्त रघूत्तमे।
इन्द्रियाणामभाव स्यात् सोऽनन्योपासक स्मृत ॥

[श्रीमहारामायण

(४) सपनहुँ नाहिन डर—प्रमाण है—

'निर्भय शरण्य पद'।

शरणागत जीव वास्तव मे निर्भय हो जाता है। भगवान ने स्वयं उसे निर्भय कर देने का वचन दिया है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम॥

[वाल्मीकि रामायण

२०६

नाहिन और कोउ सरनलायक दूजो श्रीरघुपति-सम विपति निवारन।
काको सहज सुभाउ सेवकवस काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥१॥

जन गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन।
परम कृपालु, भगत चिंतामनि, बिरद पुनीत पतितजन-तारन॥२॥
सुमिरत सुलभ दास दुख सुनि हरि चलत तुरत पटपीत सँभार न।
साखि पुरान निगम आगम सब जानत द्रुपद-सुता अरु बारन॥३॥
जाको जस गावत कवि कोविद, जिन्हके लोभ, मोह मद, मार न।
तुलसिदास तजि आस सकल भजु कोसलपति मुनिवधू-उधारन॥४॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजी के समान विपत्तियों का दूर करनेवाला तथा शरण लेने योग्य कोई दूसरा नहीं है (शरण तो उसी की लेनी चाहिए, जो निर्भय होकर रक्षा कर सके, सो श्रीराम को छोड़कर ऐसा कोई समर्थ नहीं। सभी किसी-न किसी भय से स्वयं ही पीड़ित हैं)। शरणागतों पर किसका अकारण प्रेम है? ॥१॥

जब श्रीरघुनाथजी अपने दास के जरा से गुण को देखते हैं, तब वे उसे सुमेरु पर्वत के सदृश महान् मानते हैं, और उसके करोड़ों दोषों को देखकर भी भूल जाते हैं। कारण कि वे बड़े ही दयालु भक्तों के लिए चिंतामणिरूप हैं (जो-जो भक्त माँगते हैं, वह पाते हैं) और पवित्र करने के विरदवाले तथा पापियों का (संसार सागर से) उद्धार कर देनेवाले हैं॥२॥

स्मरण करते ही बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो जाते हैं। अपने दास का कष्ट सुनकर इतनी शीघ्रता से (दुःख दूर करने को उसके पास) दौड़ आते हैं कि अपने पीताम्बर तक को नहीं सँभालते (जहाँ जैसे बैठे होते हैं, वहाँ से वैसे ही दौड़कर चले आते हैं)। इस बात के साक्षी पुराण, वेद शास्त्र द्रौपदी और गजेन्द्र, ये सब हैं (मैं कवि कल्पना से काम नहीं ले रहा हूँ इसके उदाहरण भी पाये जाते हैं)॥३॥

जिनके अंतर में लोभ, मोह अहंकार और काम नहीं है, ऐसे कवि और ज्ञानी पुरुष जिनकी कीर्ति का गान करते हैं हे तुलसीदास! सारी लोक परलोक की आशाओं को छोड़कर, अहल्या का उद्धार करनेवाले उन कोशलेश श्रीराम का ही तू भजन कर॥४॥

शब्दार्थ—दवन = (दमन) दूर करनेवाला। समन=(शमन) शांति देनेवाला। सिराहिं न=पूरे नहीं होते हैं। बारक = एक बार। लुब्ध=लोभी। सुगति=मोक्ष। कारुनीक=कृपालु।

विशेष—(१) प्रीति अकारन—निष्कारण निष्काम प्रेम ही, वास्तव में प्रेम है। किसी वस्तु की इच्छा करके जो प्रेम किया जाता है वह तो व्यापार है। सकाम प्रेम स्थिर भी नहीं रहता। सो ऐसा निष्काम प्रेम भगवान् ही जीवों पर करते हैं, और किसी का सामर्थ्य नहीं है।

(२) 'पटपीत सँभार न'—श्रीभट्टजी ने यह अर्थ किया है—"दास के दुःख को सुनते ही वे तुरत अपने पीताम्बर को सँभालकर चलते हैं अर्थात् भक्त का दुःख दूर करने के लिए पीताम्बर पहन, तुरन्त जाने को तैयार हो जाते हैं, 'पर यदि पीताम्बर पहनने लगेंगे तो देर न हो जायगी? पीताम्बर तो पहने से ही पहने हुए हैं। अतः तुरत दौड़कर बिना उसे सँभाले ही अपने भक्त के पास चले जाते हैं। पाठ 'सँभार न है, न कि

२०७

भजिबेलायक, सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद दूजो नाहिन ।
आनँदभवन, दुखदवन, सोकसमन, रमारमन गुन गनत सिराहिं न ॥१॥
आरत, अधम, कुजाति, कुटिल, खल पतित, सभीत कहूँ जे समाहिं न ।
सुमिरत नाम बिबसहूँ बारक पावत सो पद, जहाँ सुर जाहिं न ॥२॥
जाके पद-कमल लुब्ध मुनि मधुकर, बिरत जे परम सुगतिहु लुभाहिं न ।
तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस, कारुनीक जो अनाथहिं दाहिन ॥३॥

भावार्थ—भजन करने योग्य, सुख देनेवाला और शरण में रखनेवाला स्वामी श्रीरघुनाथजी के समान कोई दूसरा नहीं है । उन आनन्दधाम, दुःखों का नाश करनेवाले, शोक हरनेवाले लक्ष्मीकान्त भगवान् के गुण गिनते गिनते कभी पूरे नहीं होते । क्योंकि वे अनन्तगुण विशिष्ट हैं ॥१॥

जो दुखी, नीच, अन्त्यज, कपटी, दुष्ट पापी और भयभीत कहीं भी शरण नहीं पा सकते, वे भी एक बार ही श्रीरामनाम स्मरण कर उस पद पर पहुँच जाते हैं जहाँ देवता भी नहीं जा सकते ॥२॥

जिनके चरणरूपी कमलों में ऐसे विरक्त मुनि मधुप लुब्ध रहते हैं (रसलोलुप बने बैठे हैं), जिन्हें मोक्ष तक का लोभ नहीं (जो मोक्ष-सुख को भी तुच्छ समझकर भगवत् चरणारविन्दों का परागपान कर रहे हैं) हे शठ ! तुलसीदास ! उन करुणामय प्रभु का भजन तू क्यों नहीं करता है जो अनाथों पर सदा कृपा करते हैं ? ॥३॥

शब्दार्थ—दवन=(दमन) दूर करनेवाला । समन=(शमन) शान्ति देनेवाला । सिराहिं न=पूरे नहीं होते हैं । बारक=एक बार । लुब्ध=लोभी । सुगति=मोक्ष । कारुनीक=कृपालु ।

विशेष—(१) 'सुमिरत ... जाहिं न'—प्रमाण है—

'सकृदुच्चारयेद्यस्तु रामनामपरात्परम् ।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥

[पद्मपुराण

(२) सुगतिहु लुभाहिं न—क्योंकि—

'सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं'—

[रामचरितमानस

'चारों मुक्ति भरें तहँ पानी, घर छावैं ब्रह्मज्ञानी ।'

—हरिराम व्यास

राग कल्याण

२०८

नाथ सो कौन बिनती कहि सुनावौं ।
त्रिबिध बिधि अमित अवलोकि अघ आपने,
सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ॥१॥

विरचि हरिभगति को बेष वर टाटिका,
कपट-दल हरित पल्लवनि छावौं।
नामलगि लाइ लासा ललित बचन कहि,
व्याध ज्यों विषय बिहँगनि बझावौं ॥२॥

कुटिल सतकोटि मेरे रोम पर वारियहि,
साधुगनती मे पहलेहिं गनावौं।
परम बर्बर खर्ब गर्ब पर्वत चढ्यो,
अज्ञ सर्बज्ञ, जन मनि जनावौं ॥३॥

साच किधौं झूठ मोको कहत, कोउ
कोऊ राम! रावरो, हौं तुम्हारो कहावौं।
बिरद की लाज करि दासतुलसिहि देव!
लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावौं ॥४॥

भावार्थ—हे नाथ! आपको मै किस प्रकार अपनी विनती कह सुनाऊँ? अपने नाना प्रकार के (मन वचन और कर्म से उत्पन्न) अगणित पापों की ओर देखकर जब मैं आपकी शरण में आता हूँ, तब सामना होते ही लज्जावश सिर नीचा कर लेता हूँ (आँख से आँख नहीं मिला सकता, क्योंकि मेरे पास एक भी पुण्य का बल नहीं, कि जिससे आपकी शरण प्राप्त कर सकूँ) ॥१॥

भगवद्भक्तों का भेष धारणकर सुन्दर टट्टी बनाता हूँ, और कपटरूपी हरे हरे पत्ता से उसे छा देता हूँ। (तिलक लगाकर कण्ठी माला पहनकर राम-नाम जपता हूँ और इस धोखे से दूसरों की आँखों में धूल झोंकता हूँ। पाखण्ड कर-कर लोगों को ठगना मेरा कर्तव्य हो गया है)। आपके (राम) नाम की लग्गी लगाकर मधुर वचनों का लासा लगा देता हूँ। (राम राम जपना हुआ ऐसी मधुर वाणी बोलता हूँ कि लोग सचमुच ही मुझे महात्मा समझने लगते हैं) फिर बहेलिया की तरह विषयरूपी पक्षियों को फँसा लेता हूँ। (लोगों की दृष्टि में तो वैष्णव बनकर राम राम जपता हूँ पर करता क्या क्या हूँ सो सुनिए रूपवती स्त्रियों को काम-दृष्टि से देखता हूँ, काम-वार्ता सुनता हूँ सुगंधित माला धारण करता हूँ और जितने भी भोग विलास हैं उन सभी में इंद्रियों को फँसाता हूँ) ॥२॥

मेरे एक रोम पर सौ करोड़ पापी निछावर किए जा सकते हैं, पर तो भी अनेकों साधुओं की गणना में सर्वप्रथम गिनवाना चाहता हूँ संत शिरोमणि बनने का दावा रखता हूँ। मै बड़ा ही असभ्य और नीच हूँ, पर अभिमान के पहाड़ पर चढ़कर बैठा हूँ। महामूर्ख होते हुए भी अपने आपको श्रेष्ठ बतलाता हूँ ॥३॥

हे भगवन्! कह नहीं सकता कि झूठ है या सच पर कोई कोई मुझे देखकर कहते हैं कि यह रामजी का है' और मैं भी आपही का' कहलाना चाहता हूँ। हे देव! तब फिर अपने बाने की लाज रखकर इस तुलसीदास को आप अपना ही लीजिए (क्योंकि यदि इससे, अब आपने मुझे न अपनाया तो मैं किसका होकर रहूँगा? मेरी कलई खुल जाने पर न कोई मुझ पर विश्वास करेगा और न अपनी शरण में ही लेगा। इसलिए आप ही

२१०

और कहँ ठौर रघुबंस मनि मेरे।
पतित-पावन, प्रनत-पाल, असरन सरन,
बाकुरो बिरद बिरुदैत केहि केरे ॥१॥
समुझि जिय दोष अति रोष करि राम जो,
करत नहिं कान बिनती बदन फेरे।
तदपि ह्वै निडर हौं कहौं करुना सिंधु !
क्याऽब रहि जात सुनि बात बिन हेरे ॥२॥
मुख्य रुचि होत बसिबे की पुर रावरे,
राम ! तेहि रुचिहिं कामादि गन घेरे।
अगम अपबर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल,
नाम बल क्यों बसौं जम नगर नेरे ॥३॥
कतहुँ नहिं ठाउँ, कहँ जाउँ कोसलनाथ !
दीन बितहीन हौं, बिकल बिनु डेरे।
दास तुलसिहि बास देहु अब करि कृपा
बसत गज गीध ब्याधादि जेहि खेरे ॥४॥

भावार्थ—हे रघुवंशमणि ! मेरे लिए और कहाँ स्थान है ? (आपके चरणों को छोड़कर, बताओ और कहाँ जाऊँ ?) पापियों को पवित्र करनेवाले, शरणागतों को पालनेवाले एवं अनाथों को शरण देनेवाले तो एक आप ही हैं। आपका सा बाँका बाना और किस बाने वाले का है ? ॥१॥

हे रघुनाथजी ! अपने मन में मेरे अपराधों को समझकर क्रोध से यद्यपि आप मेरी विनती पर ध्यान नहीं देते हैं और मेरी ओर से अपना मुँह फेरे हुए हैं, तो भी मैं निर्भय होकर हे करुणा सागर ! यही कहूँगा कि मेरी बात सुनकर उस पर ध्यान दिये बिना आपसे कैसे रहा जायगा ! (क्योंकि जब आप किसी दीन की पुकार सुनते हैं तो तुरन्त उस पर ध्यान देते हैं पर मेरी ही बार टाल-टूल कर रहे हैं, इसीसे मुझे आश्चर्य होता है।) ॥२॥

(यदि आप मेरी इच्छा पूछते हैं तो सुनिए) सबसे प्रमुख कामना तो मेरी यही है कि मैं आपके धाम (साकेत लोक) में जाकर रहूँ किन्तु हे नाथ ! उस रुचि को काम क्रोध लोभ और मोह घेरे हुए हैं (ये दुष्ट उस इच्छा को दबा देते हैं)। मोक्ष तो महा दुर्लभ है (क्योंकि कामनाओं का समूल नाश नहीं हुआ)। स्वर्ग मिलना भी कठिन है क्योंकि वह अच्छे सत्कर्मों के फल से प्राप्त होता है (मैंने सत्कर्म तो कोई किया नहीं, स्वर्ग कैसे जा सकता हूँ ?)। अब रहा नरक सो आपके नाम के बल भरोसे पर वहाँ भी नहीं जा सकता हूँ। (क्योंकि जो राम-नाम का स्मरण करता है, वह नरक-यातना से छूट जाता है।) ॥३॥

अब मुझे कहीं भी रहने के लिए ठौर नहीं रहा। कहाँ जाऊँ ? हे कोशलेश ! मैं

निधन और दीन हूँ (धनाढ्य होता तो कहीं रहने का घर बनवा लेता)। निवास स्थान के न होने से व्याकुल हो रहा हूँ। अतः हे नाथ! इस तुलसीदास को कृपाकर उसी गाँव में रहने को स्थान दे दीजिए जहाँ गजेन्द्र, जटायु, व्याध (वाल्मीकि) आदि रहते हैं ॥४॥

शब्दार्थ—बाँकुरो=बाँका, निराला। बिरुदैत=बानावाला। कयाऽब=क्या+अब। अपवर्ग=मोक्ष। खेरे=खेड़े में, गाँव में।

विशेष—(१) 'करत नहिं फेरे'—ऐसा न कीजिए क्योंकि—

'सुरति करो मेरे साइयाँ, हम हैं भव जल माँहि।
आपे ही बहि जायँगे जो नहिं पकरो बाँहि॥'

(२) 'स्वर्ग नरक'—स्वर्ग जाने में मेरे ये पाप बाधक हैं और नरक जाने में आपका राम-नाम। साधक तो कहीं भी कोई नहीं दिखाई देता।

(३) 'व्याध'—वाल्मीकि से आशय है। पहले यह एक बहेलिया थे। नाम रत्नाकर था। पीछे देवर्षि नारद के उपदेश से जीव हिंसा त्यागकर 'मरा मरा' जपने लगे, और मुक्त हो गये। कहा है—

'उलटा नाम जपत जग जाना।
बालमीकि भे ब्रह्म समाना॥'

श्रीकृष्ण के चरण में बाण मारनेवाले 'जरा' नामक व्याध से भी आशय हो सकता है।

श्रीदेवनारायण द्विवेदी ने अपनी टीका में एक तीसरे ही पुराण प्रसिद्ध व्याध से आशय लिया है, जिसका नाम 'धर्म' था।

२११

कबहुँ रघुबंसमनि! सो कृपा करहुगे।
जेहि कृपा व्याध गज, बिप्र, खल नर तरे,
तिन्हहि सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे॥१॥
जोनि बहु जनमि किये करम खल बिबिध बिधि,
अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे।
दीनहित! अजित सर्वग्य समरथ प्रनतपाल
चित मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे॥२॥
मोह मद मान कामादि खल मण्डली
सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे।
जोग-जप-जग्य बिग्यान ते अधिक अति,
अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे॥३॥
मन्दजन-मौलिमनि सकल साधन-हीन,
कुटिल मन, मलिनजिय, जानि जो डरहुगे।
दासतुलसी वेद बिदित बिरुदावली,
बिमल जस नाथ! केहि भाँति बिस्तरहुगे॥४॥

कमल का एक फूल लेकर आपकी शरण में गया, तब उसके दीन वचन सुनकर चक्र सुदर्शन लेकर आप गरुड को वहीं छोड तुरन्त (दौडते हुए) चले आये (गरुड चरण भी उसका आर्त्त वचन न सुन सके) ॥२॥

जब (भरी सभा में) दुष्ट दुःशासन द्रौपदी के वस्त्र उतारने लगा, तब केवल उसके इतना कहने पर ही कि 'हाय! भगवान् मेरी लाज रखिए' आपने विविध रंगों के वस्त्रों का ढेर लगा दिया (उसकी साडी इतनी लम्बी बना दी कि खींचते-खींचते दुःशासन थक गया, पर उसे उसका छोर न मिला) ॥३॥

यह समझ-बूझकर देव, मनुष्य, मुनि और विद्वज्जन आपके चरणों की सेवा करते हैं। राजा नृग का उद्धार करने वाले समर्थ भगवान ने किसको अभय नहीं किया? (जो उनकी शरण में गया उसी को अभय कर दिया) ॥४॥

शब्दार्थ—सुनाभ=चक्र। पाहि=रक्षा करो। बरन=रंग। नृग=एक राजा का नाम।

विशेष—(१) 'सुनाभ'—श्रीयुत भट्टजी ने इसका अर्थ 'नाभि' लिखा है, अर्थात् नाभि को धारण करनेवाले भगवान् सुनाभ। इस अर्थ में शिथिलता है। 'सुनाभ' का अर्थ चक्र होता है। यही अर्थ नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'तुलसीग्रन्थावली' में भी माना गया है।

राग कल्याण

२१४

ऐसी कवन प्रभु की रीति?
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पावरनि पर प्रीति ॥१॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ ॥२॥
काम मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह।
जगत पिता बिरंचि जिन्ह के चरन की रज लीन्ह ॥३॥
नेम तें सिसुपाल दिनप्रति देत गनि-गनि गारि।
कियो लीन सु आपु में हरि राज-सभा मँझारि ॥४॥
ब्याध चित दै चरन मार्यो मूढमति मृग जानि।
सो सदेह स्वलोक पठयो प्रगट करि निज बानि ॥५॥
कौन तिन्ह की कहै जिन्ह के सुकृत अरु अघ दोउ।
प्रगट पातकरूप तुलसी सरन राख्यो सोउ ॥६॥

भावार्थ—(भगवान् के सिवाय) और किस स्वामी की ऐसी रीति है जो अपने बाने की लाज रखने के लिए पवित्र जनों का त्याग कर पामर जनों पर प्रेम करता है? ॥१॥

पूतना स्तनों में विष लगाकर उन्हें (भगवान् कृष्ण को) मारने गई थी, किन्तु कृपालु यादवेन्द्र (कृष्ण) ने उस माता की-सी मुक्ति (मोक्ष) प्रदान की ॥२॥

आपने काम-मोहित गोपिकाओं पर ऐसी अतुल कृपा की कि उनके चरणों की धूलि

जगत्पिता ब्रह्मा ने भी अपने मस्तक पर चढाई (क्योंकि प्रेमस्वरूपा गोपियों को आपने अपना ही स्वरूप दे दिया था) ॥३॥

जो शिशुपाल नित्य नियम से गिन गिनकर गालियाँ देता था (नित्य श्रीकृष्ण को सौ गालियाँ देने का उसका सकल्प था), उस भगवान् ने राजाओं की सभा में देखते देखते अपने स्वरूप में लीन कर लिया ॥४॥

मूढ बहेलिये ने तो हिरण समझकर आपके चरणों में निशाना लगाकर (बाण) मारा, पर उसे आपने, अपने दयालु स्वभाव से सदेह गोलोक भेज दिया ॥५॥

जिन्होंने पुण्य और पाप दोनों ही किये हैं उनके लिए तो क्या कहा जाय? (क्योंकि उनका सद्गति पाने का कुछ-न कुछ तो अधिकार था ही) किन्तु उन्होंने तो प्रत्यक्ष पापमूर्ति तुलसी को भी शरण में रख लिया है, यही आश्चर्य है ॥६॥

शब्दार्थ—कालकूट = विष। बानि = स्वभाव। सुकृत = पुण्य।

विशेष—(१) 'पूतना'—कहते हैं कि यह किसी पूर्वजन्म में अप्सरा थी। वामन रूपधारी विष्णु का रूप देखकर, वात्सल्य स्नेह से, उसके मन में आया कि इस बालक को पुत्र मानकर अपने स्तनों का दूध पिलाऊँ। अन्तर्यामी भगवान् उसके मन की इच्छा ताड गये। वही अप्सरा पूतना के नाम से किसी घोर पाप के कारण, राक्षसी हुई। भगवान् कृष्ण ने मातृ भक्ति प्रदर्शित कर उसे स्वर्ग भेज दिया।

(२) 'काम-मोहित गोपिकनि पर' श्रीमद्भागवत में महाराज परीक्षित ने ब्रह्मर्षि शुकदेव से जब यह प्रश्न किया कि गोपियाँ तो काम मोहित थीं उन्हें परमपद कैसे प्राप्त हुआ तब शुकदेव ने यह उत्तर दिया, कि जिन्होंने समस्त ससार को भी आनन्दकन्द पर न्योछावर कर उनसे निष्काम प्रीति जोड़ी, भला वे काम मोहित हो सकती हैं? गोपियों की उपमा किससे दी जाय? एक प्रेमदीवानी गोपी कहती है —

'सौंक पहिरावौ, पाँव बेड़ी लै भरावौ,
गाढ़े बधन बँधावौ औ खिचावौ काची खाल सों।
विष लै पिलावौ ताप मूठ भी चलावौ, मास
धार में बहावौ बाँधि पत्थर 'कमाल सों॥
बिच्छू लै बिछावौ ताप मोहि लै सुलावौ फेरि
आग भी लगावौ बाँधि कापड़ दुसाल सों।
गिरि से गिरावौ, काले नाग से डसावौ,
हा हा, प्रीति ना छुड़ावौ गिरिधारी नन्दलाल सों॥'

तथा—

'कोउ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,
कोउ कहौ रंकिनि, कलंकिनि कुनारी हौं॥
कैसो देवलोक, परलोक, नरलोक, मैं तो
लीनो है अलीक, लोक-लीकन ते न्यारी हौं॥
तन जावौ धन जावौ 'देव गुरुजन जावौ,
जीव क्यों न जावौ टेक टरति न टारी हौं॥

वृन्दावनधारी गिरिधारी की मुकुटधारी,
पीतपटधारी वाही मूरति प वारी हौं ॥'

सभी तो प्रेम परा भक्तिरूपा गोपिकाओं के विषय में कहा गया यह पद प्रसिद्ध है—

गोपी प्रेम की धुजा ।
जिन गुपाल कीन्हें बस अपने उर धरि स्याम भुजा ॥
सुक मुनि व्यास प्रसंसा कीनी उद्धव संत सराहीं ।
भूरि भाग्य गोकुल की वनिता अति पुनीत जगमाहीं ॥
कहा भयो जु बिप्र कुल जनम्यो सेवा-सुमिरन नाहीं ।
स्वपच पुनीत दास परमानँद जो हरि-सनमुख जाहीं ॥

—परमानन्ददास

(३) व्याध —कहते हैं कि पूर्व जन्म में यह बालि वानर था। बदला चुकाने के लिए इसने भी धोखे से, भगवान् कृष्ण के चरण पर प्रहार किया। चरण में पद्म के चिह्न से मृग के नेत्र का भ्रम हो जाने से इसने बाण चला दिया। बाद को पास आने पर इसे भारी दुःख और पश्चात्ताप हुआ, किन्तु भगवान् ने उसे सदेह स्वर्ग भेज दिया।

(४) उदारहृदय गोसाइंजी ने इस पद में श्रीकृष्ण भगवान् का ही गुणानुवाद गाया है। आश्चर्य है कि अनन्य (?) रामभक्त बैजनाथजी ने अपनी टीका में यह सिद्ध करने के लिए कि इस पद में श्रीकृष्ण का महत्त्व गौण है और ध्वनि से श्रीरामजी का ही प्राधान्य सिद्ध होता है व्यर्थ ही पृष्ठ रंग डाले हैं। इस पद में से तो कहीं भी ऐसा कोई अर्थ निकलता ही नहीं है। 'श्रीकृष्ण-गीतावली' के रचयिता गोसाइंजी के हृदय में कभी ऐसी संकीर्णता के भाव उद्भूत नहीं हुए होंगे।

२१५

श्रीरघुबीर की यह बानि ।
नीचहू सो करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥१॥
परम अधम निषाद पावर, कौन ताकी कानि ?
लियो सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेम को पहिचानि ॥२॥
गीध कौन दयालु, जो बिधि रच्यो हिंसा सानि ?
जनक ज्यों रघुनाथ ताकहँ दियो जल निज पानि ॥३॥
प्रकृति मलिन कुजाति सबरी सकल अवगुन-खानि ।
खात ताके दिये फल अति रुचि बखानि-बखानि ॥४॥
रजनिचर अरु रिपु बिभीषन सरन आयो जानि ।
भरत-ज्यों उठि ताहि भेंटत देह-दसा भुलानि ॥५॥
कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि ।
किये ते सब सखा, पूजे भवन अपने आनि ॥६॥

राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दिनदानि।
भजहि एसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि ॥७॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजी का स्वभाव ही ऐसा है, कि वे मन में विशुद्ध और अनन्य प्रेम समझकर नीच जनों के प्रति भी स्नेह करते हैं ॥१॥

गुह निषाद महान नीच और पापी था, उसकी क्या प्रतिष्ठा थी ? किन्तु रघुनाथ जी ने उसका प्रेम पहचानकर उसे पुत्र की तरह छाती से लगा लिया ॥२॥

जटायु गीध जिसे ब्रह्मा ने हिंसामय ही रचा था, कौन-सा दयालु था ? किन्तु रघुनाथजी ने, अपने पिता के समान, उसे अपने हाथ से जलाञ्जलि दी ॥३॥

शबरी स्वभाव से ही मैली-कुचैली थी नीच जाति की थी और सभी अवगुणों की खानि थी, परन्तु (उसकी सच्ची प्रीति देखकर) उसके हाथ के फल आपने स्वाद बखान बखानकर बड़े प्रेम से खाये (सूरदासजी ने तो यहाँ तक लिखा है कि उसके जूठे बेर खाये, क्योंकि वह चख चखकर मीठे बेर देती थी, और खट्टे फेंक देती थी) ॥४॥

राक्षस एवं शत्रु विभीषण को शरण में आया देख, आपने उठकर उसे भरत के समान हृदय में लगा लिया, उस समय प्रेमाधिक्य के कारण अपने शरीर की सुध-बुध भी भूल गये ॥५॥

बन्दर कौन-से सुन्दर और शील-स्वभाववाले थे ? जिनका नाम लेने से भी अनिष्ट होता है, उन्हें भी आपने अपना मित्र बना लिया। (इतना ही नहीं, वरन्) जब अपने घर पर, अयोध्या में, आये, तब उनका भारी आदर-सत्कार भी किया ॥६॥

श्रीरामचन्द्रजी प्रकृति से ही दयालु, कोमल स्वभाववाले गरीबों के हितू और सदा दान देनेवाले हैं। इसलिए, हे तुलसी ! तू तो छल-कपट त्यागकर ऐसे ही स्वामी का भजन कर (निष्कपट भाव से, अनन्य प्रेम से सदा भजन किया कर) ॥७॥

शब्दार्थ—कानि=प्रतिष्ठा। पानि = हाथ। दिन = नित्य।

विशेष—(१) 'गीध' श्रीरामचन्द्रजी ने जटायु के साथ वास्तव में पिता का जैसा ही बर्ताव किया था। गोद में घायल मरणासन्न जटायु को लेकर आप कहते हैं—

मेरे जान, तात ! कछु दिन जीजै।
देखिय आप सुवन-सेवा-सुख, मोहिं पितु को सुख दीजै॥
दिव्य देह इच्छा जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजै।
हरिहर-सुजस सुनाइ, दरस दै लोग कृतारथ कीजै॥
देखि बदन, सुनि बचन अमिय, तन रामनयन जल भीजै।
बोल्यो बिहग बिहँसि, 'रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै॥
मेरे मरिबे-सम न चारि फल होहिं तो क्यों न कहीजै ?'
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन ही परी मनु प्रेम सहीजै॥'

(२) जिनहिं सुमिरत हानि —स्वयं हनुमान कहते हैं—

प्रात लेइ जो नाम हमारा। तादिन ताहि न मिलै अहारा॥

(३) दिनदानि'—महान् उदार। श्रीभगवद्गुणदर्पण में 'औदार्य' गुण का यह लक्षण मिलता है—

'पात्रापात्रविवेकेन देशकालाद्युपेक्षणात।
यदादात्वं विदुर्वेदा औदार्यं वचसा हरे॥'

(४) इस पद में गोसाईंजी ने रघुनाथजी के सौशील्य, सौलभ्य, पतित-पावनता, वात्सल्य गाम्भीर्य आदि सद्गुणों का वर्णन किया है।

२१६

हरि तजि और भजिय काहि?
नाहिनै कोउ राम सो, ममता प्रनत पर जाहि॥१॥
कनककसिपु बिरंचि को जन करम, मन अरु बात।
सुतहि दुखवत बिधि न बरज्यो, काल के घर जात॥२॥
सम्भु सेवक जान जग बहु बार दिये दस सीस।
करत राम बिरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस॥३॥
और देवन की कहा कहौं, स्वारथहि के मीत।
कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ सभीत॥४॥
को न सेवत देत सम्पति, लोकहूँ यह रीति।
दासतुलसी दीन पर इक राम ही की प्रीति॥५॥

भावार्थ—भगवान श्रीहरि को छोड़कर और किसका भजन करें? श्रीरघुनाथजी के समान ऐसा कोई भी नहीं, जिसकी दीन शरणागतों पर ममता हो, जिसने उन्हें प्रेम से अपनाया हो॥१॥

(उदाहरण लीजिए) हिरण्यकशिपु ब्रह्मा का भक्त था। वह कर्म, मन और वचन से उनकी भक्ति करता था। किन्तु ब्रह्मा ने उसे पुत्र को ताड़ना देते हुए न रोका। (फल यह हुआ कि) वह यमलोक चला गया (और ब्रह्मा खड़े खड़े देखते रह गये! यदि वे पहले से उसे मना कर देते, उसे उसका अपना हित सुझा देते तो क्या वह काल का ग्रास बनता? यह तो हुई ब्रह्मा की करतूत अब शिवजी को देखिए)॥२॥

सारा संसार जानता है कि रावण शिवजी का भक्त था, और उसने कई बार अपने सिर काट-काटकर उनको अर्पित किए थे, किन्तु जब उसने श्रीरघुनाथजी के साथ वैर बिसाहा, तब आपने उसे स्वप्न में भी न रोका (चुप बैठे बैठे देखते रहे और उसे यम-धाम भेजवा दिया।)॥३॥

(ब्रह्मा और शिव का जब यह हाल है, तब) और देवताओं के विषय में क्या कहा जाय? वे तो स्वार्थ के मित्र हैं। किसी ने भी भयभीत शरणागत की रक्षा नहीं की (जब स्वयं ही वे निर्भय नहीं हैं, तब दूसरों की क्या रक्षा करेंगे? ऐसों की शरण में जाना बेकार है।)॥४॥

खुशामद करने से कौन धन-दौलत नहीं देता है? यह दुनिया का चलन ही है (जो सेवा करेगा, वह मेवा पायेगा)। किन्तु हे तुलसीदास! दीनों पर तो एक श्रीरघुनाथजी का ही स्नेह है॥५॥

शब्दार्थ—कनककसिपु = हिरण्यकशिपु नामक दैत्य। जन=भक्त। बात=

वचन। बरज्यो = रोका। ईस = शिवजी।

विशेष—(१) 'देवन मीत'—रामचरितमानस में भी कहा है—

'सुर नर मुनि सब ही की रीती। स्वारथ लागि करहिं ये प्रीती॥'

(२) 'सरन गये सभीति'—'सभीत' शब्द का अर्थ मृत्यु के भय से डरे हुए जीव का है। मृत्यु भय से बचानेवाला भगवान् के अतिरिक्त और कोई भी नहीं।

२१७

जो पै दूसरो कोउ होइ।
तौ हौं बारहिं बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ॥१॥
काहि ममता दीन पर, काको पतितपावन नाम।
पापमूल अजामिलहिं केहि दियो अपनो धाम॥२॥
रहे संभु बिरंचि, सुरपति, लोकपाल अनेक।
सोक सरि बूडत करीसहिं दई काहु न टेक॥३॥
बिपुलभूपति सदसि महँ नर-नारि कह्यो 'प्रभु पाहि'।
सकल समरथ रहे, काहु न बसन दीन्हो ताहि॥४॥
एक मुख क्यों कहौं करुनासिंधु के गुन गाथ?
भगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ॥५॥
आपसे कहुँ सौंपिये मोहि जो पै अतिहि घिनात।
दासतुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात॥६॥

भावार्थ—हे नाथ! यदि कोई दूसरा होता, तो मैं बार बार रोकर अपना दुःख आपको ही क्यों सुनाता? (मैं उसी के आगे अपना रोना रोता, आपको कष्ट न देता। पर क्या करूँ, आपको छोड़कर ऐसा कोई है ही नहीं जो दीन जनों के कष्ट दूर करे)॥१॥

(आपको छोड़कर) दीनों पर किसकी ममता है? कौन गरीबों को अपनाता है? पापियों का उद्धार करनेवाला नाम किसका है? और महापापी अजामिल को (धोखे से अपने पुत्र नारायण का नाम लेने पर) किसने अपना परम धाम दिया? (ऐसे तो एक आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं है)॥२॥

शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि अनेक लोकपाल थे पर दुःखरूपी नदी में डूबते हुए गजेन्द्र को किसी ने भी सहारा न दिया (आप ही गरुड को छोड़कर पैदल दौड़े)॥३॥

जब अनेक राजाओं की सभा में अर्जुन की पत्नी द्रौपदी ने, (दुःशासन द्वारा लाज जाते समय) कहा कि हे नाथ! मेरी रक्षा कीजिए तब सभी तो समर्थ थे, पर किसने उसे वस्त्र-दान दिया (सब लोग बैठे बैठे देखते ही रहे थे, किसी ने भी उस अबला की लाज न बचाई)॥४॥

हे करुणासागर! आपके चरित्रों की कथा एक मुँह से कैसे कह सकता हूँ? (आपके अनन्त गुणों का वर्णन अनन्त मुखों से ही हो सकता है एक मुख से नहीं) हे कोशलाधीश! आपने नर शरीर धारण करके भक्तों का क्या-क्या हित-साधन नहीं किया?॥५॥

यदि आप मुझसे बहुत ही घिनाते हैं, तो मुझे किसी एक के हाथ सौंप दीजिए, जो आपके ही समान हो (पर, यह असम्भव है क्योंकि आपके समान तो संसार में कोई है ही नहीं)। तुलसीदास किसी और तरह आपके चरणों को त्यागकर क्या जाने लगा। भाव यह है, कि मैं आपही के चरणों का शरण में रहूँगा ॥६॥

शब्दार्थ—बिपुल = बहुत से। सदसि = सभा में। नर नारि = अर्जुन की पत्नी, द्रौपदी। पाहि = रक्षा करो। करीस=गजेन्द्र। गाथ=कथा।

विशेष—(१) बिरत भूपति ताहिं'—'श्रीकृष्णगीतावली' में द्रौपदी-वस्त्र-हरण का यह पद प्रसिद्ध है—

> कहा भयो कपट जुआ जो हौं हारी ?
> समरधीर महाबीर पाँच पति, क्यों देहैं मोहि होन उघारी ॥
> राजसमाज सभासद समरथ भीषम द्रोन धनुधरधारी।
> अबला अनघ अनवसर अनुचित होति हरि करिहैं रखवारी ॥
> यों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी।
> सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय, बिकल भई भारी ॥
> अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी।
> हाथ उठाइ अनाथ नाथ सों पाहि पाहि प्रभु पाहि ? पुकारी ॥
> तुलसी परखि प्रतीति प्रीतिगति, आरतपाल कृपालु मुरारी।
> बसन बेष राखी बिसेषि लखि बिरदावलि मूरति नर नारी ॥'

(२) जाउ सतिहि घिनात—घिन क्यों लगती ? घिन तो तब नहीं लगी जब गुह निषाद को हृदय से लगा लिया। रुधिर से सने हुए जटायु को गोद में बैठा लिया, तब भी घिन नहीं लगी। शबरी के जूठे बेर खाते समय भी घिन नहीं लगी। तब तुलसी ही को देखकर क्या घिन लगती ? दास-दूत का तो कोई और ही कारण होगा, जिसे स्वामी श्रीराम ही जानते होंगे।

२१८।

कबहिं देखाइहौ हरि चरन ?
समन सकल कलेस कलिमल सकल मंगल करन ॥१॥
सरद भव सुन्दर तरुनतर अरुन वारिज बरन।
लच्छि लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन ॥२॥
गंग-जनक, अनंग अरि-प्रिय, कपट बटु बलि छरन।
बिप्रतिय नृग बधिक के दुख-दोष दारुन दरन ॥३॥
सिद्ध सुर मुनि वृन्द-बंदित सुखद सब कहँ सरन।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन तरन ॥४॥
कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत आरति हरन।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥५॥

भावार्थ—हे हरि ! क्या कभी आप मुझे उन चरणों का दर्शन करायेंगे जो समस्त

दुःखों और कलि के समस्त पापों का नाश करनेवाले और सबकल्याण के कारण हैं ॥१॥

जिनका रंग शरद् ऋतु में उत्पन्न, सुंदर और ताजे लाल-लाल कमलों के समान है, जिन्हें लक्ष्मी अपनी सुंदर हथेलियों से दबाया करती हैं, और जो अनुपम लावण्यमय हैं ॥२॥

जो गंगा के पिता हैं, (अर्थात् जिन चरणों से गंगा की उत्पत्ति हुई है), जो कामदेव को भस्म करनेवाले शिवजी के प्यारे हैं, तथा जिन्होंने कपट-ब्रह्मचारी का रूप धारणकर राजा बलि को छला है। जिन्होंने (गौतम) ब्राह्मण की पत्नी अहल्या को शाप विमुक्त कर दिया, राजा नृग को दिव्य देह प्रदान की और हिंसक निषाद (अथवा वाल्मीकि) के सारे दुःख और घोर पापों को दूर कर दिया ॥३॥

सिद्ध, देवता और मुनियों के समूह जिनकी सदा वन्दना किया करते हैं, जो सभी को सुख और शरण देनेवाले हैं, और एक बार भी जिनका हृदय में ध्यान करने से जीव स्वयं तर जाता है तथा दूसरों को भी तार देता है ॥४॥

हे कृपासागर सुचतुर रघुनाथजी ! आप शरणागतों के दुःख दूर करनेवाले हैं। यह तुलसीदास आपके उन चरणों के दर्शन की आशारूपी प्यास के मारे मरनेवाला ही है। (अब आप शीघ्र ही अपने चरण-कमल दिखाकर इसकी रक्षा कीजिए) ॥५॥

शब्दार्थ—तन्नतर=अत्यन्त नवीन। लच्छि=(लक्ष्मी)। लालित=प्यार किये गये। जनक=पिता, उत्पत्तिकर्त्ता। अनंग अरि=कामदेव के शत्रु शिवजी। बटु=ब्रह्मचारी। छरन=छलनेवाले। दरन=दलनेवाले नाशकर्त्ता। सकृत=एक बार।

विशेष—(१) २१७ पद के अन्तिम चरण 'कबहुँ कृपा चरन परिहरि जात' और इस पद के 'कबहिं देखाइहौ हरि, चरन' में सिंहावलोकन सम्बन्ध है। यहाँ गोसाईंजी प्रेमाधीर होकर चरणों का अविलम्ब दर्शन करना चाहते हैं।

(२) 'लच्छि करतल'—इस पंक्ति में स्वाभाविक सुंदर अनुप्रास की छटा के साथ-साथ भाव भी अति कोमल और मनोहर अभिव्यक्त हुआ है।

(३) गोसाईंजी की श्रीरामचरणारविन्दों के प्रति कैसी सुदृढ़ भक्ति भावना थी यह इस पद से भलीभाँति प्रकट होता है।

२१९

द्वार हौं भोर ही को आजु।
रटत रिरिहा आरि और न, कौर ही तें काजु ॥१॥
कलि कराल दुकाल दारुन, सब कुभाँति कुसाजु।
नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ मे की खाजु ॥२॥
हहरि हिय मे सदय बूझ्यो जाइ साधु समाजु।
मोहु से कहुँ कतहुँ कोउ, तिन्ह कह्यो, कोसलराजु ॥४॥
दीनता दारिद दलै को कृपा-बारिधि बाजु।
दानि दसरथराय के, तुम बानइत सिरताजु ॥४॥

जनम को भूखो भिखारी हौं गरीब निवाजु ।
पेट भरि तुलसिहि जेवाइय भगति-सुधा सुनाजु ॥५॥

भावार्थ—हे प्रभो! आज मैं सवेरे से ही आपके द्वार पर पड़कर बैठा हूँ। रें रें करके रट रहा हूँ। गिड़गिड़ाकर माँग रहा हूँ। मुझे और किसी वस्तु के लिए हठ नहीं है। एक कौर टुकड़े से ही मेरा काम बन जायगा। जरा-सी कृपादृष्टि कर देने से ही मेरी बिगड़ी करनी सुधर जायगी ॥१॥

(यदि आप यह कहें कि तू कोई उद्यम क्यों नहीं करता? तो इसका जवाब यही है, कि) इस भयंकर कलियुग में बड़ा ही विकराल दुर्भिक्ष पड़ गया है जितने उद्यम या उपाय हैं, सभी बुरे हैं। इस युग में धर्म कर्म कुछ भी निर्विघ्न पूरा नहीं हो पाता, इसलिए आपसे भीख माँगना ही मैंने उचित समझा है। हैं तो (कलियुगी) मनुष्य नीचकर्मा, पर मन है उनका ऊँची वस्तु पाने का! यह तो वही बात हुई, जैसे कोढ़ में खाज हो जाय ॥२॥

(जो-जो पाप कर चुका था, उनके फल भोगने का दुःख तो बिलकुल ही भूल गया, और नये-नये विषयों के क्षणिक सुखों में मग्न हो गया इसका भी कुछ ख्याल नहीं रहा, कि इस 'कोढ़ में खाज' से होनेवाला परिणामस्वरूप दुःख अभी और क्या क्या भोगना पड़ेगा। जब मैं इन कष्टों से व्याकुल हो गया, तब) घबराकर कृपालु संत समाज से पूछा कि कहिए मुझ सरीखे पापी को भी कोई शरण में लेनेवाला है? सन्तों ने तब यही उत्तर दिया, कि एक कोशलेन्द्र महाराजा रामचन्द्रजी ही ऐसे हैं, जो तुझे अपनी शरण में ले सकते हैं ॥३॥

कृपासिन्धु रघुनाथजी को छोड़कर और कौन दीनता और दरिद्रता को दूर कर सकता है? महाराजा दशरथ के पुत्र राम राजा ही (सच्चे) दानी हैं, तथा दानियों का बाना रखनेवाला में श्रेष्ठ हैं ॥४॥

(संत समाज के मुख से श्रीरामजी का यश इस भाँति सुनकर) मैं आजन्म का भूखा, भिखमंगा आपके द्वार पर आया हूँ। आप गरीबों को निहाल कर देनेवाले हैं। बस अब इस तुलसी को भक्तिरूपी अमृत के समान सुन्दर भोजन पेटभर खिला दीजिए (अपने चरणों में इतनी अधिक भक्ति दे दीजिए कि फिर मुझे कभी सांसारिक भोगों की ओर न दौड़ना पड़े) ॥५॥

शब्दार्थ—रिरिहा=रें रें करके या गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला। अरि=अड़, हठ। हहरि=डरकर। बाजु=छोड़कर, सिवाय।

विशेष—(१) 'भोर'—जीव के धन्य होने की मंगल वेला, विषय विरक्ति के प्रादुर्भाव का समय, जो 'भोर' ही से सावधान हो गया वही वस्तुतः सचेत है—

'पाव पलक की सुधि नहीं करै काल्ह का साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज॥'

[कबीर

(२) 'कलि कराल कुसाज'—पूर्णरूपक इस प्रकार कि, कलि=अवृष्टि धर्म=खेत सत्कर्म=कृषि अधर्म=दुर्भिक्ष मर्यादा=उद्यम का अभाव।

(३) कृपा-वारिधि बाजु'—श्रीवजनाथजी का अनुसरण करते हुए श्रीभट्टजी ने इसका यह अर्थ किया है—

'वे गरीबी और दरिद्रता (रूपी पक्षियों) के नाश करने को बाजरूप हैं (जो कहो कि बाज तो निर्दयी होता है, सो नहीं) वे दया के समुद्र हैं, अर्थात् जीव मात्र पर दया करते हैं)।

फिर भी 'बाजु' का स्वाभाविक तात्पर्य सिद्ध नहीं हुआ। 'बाजु' का अर्थ बाज चिड़िया नहीं, किन्तु 'छोड़कर, बिना' यह है।

२२०

करिय सँभार, कोसलराय।
और ठौर न और गति, अवलम्ब नाम बिहाय ॥१॥
बूझि अपनी, आपनो हितु, आप बाप न माय।
राम! राउर नाम गुर सुर, स्वामि, सखा, सहाय ॥२॥
रामराज न चले मानस मलिन के छल छाय।
कोप तेहि कलिकाल कायर मुएहि घालत घाय ॥३॥
लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय।
त्योंहि राम गुलाम जानि निकाम देत कुदाय ॥४॥
अकनि याके कपट-करतब अमित अनय अपाय।
सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहिं पछिताय ॥५॥
कृपासिन्धु! बिलोकिये जन मन की साँसति साय।
सरन आयो देव! दीनदयालु! देखन पाय ॥६॥
निकट बोलि न बरजिये, बलि जाउँ, हनिय न हाय।
देखिहैं हनुमान गोमुख-नाहरनि के न्याय ॥७॥
अरुन मुख, भ्रू बिकट, पिंगल नयन रोष कषाय।
बीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय ॥८॥
बिनय सुनि बिहँसे अनुज सो बचन के कहि भाय।
'भली कही' कह्यो लषन हूँ हँसि, बन सकल बनाय ॥९॥
दई दीनहिं दादि सो सुनि सुजन-सदन बधाय।
मिटे संकट-सोच पोच प्रपंच पाप निकाय ॥१०॥
पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय।
दासतुलसी कहत मुनिगन, जयति जय उरगाय' ॥११

भावार्थ—हे कोशलेन्द्र! मेरी रक्षा कीजिए। आपके नाम को छोड़कर मुझे न तो कहीं और ठौर ठिकाना है, और न किसी का सहारा ही (मेरी तो आपके नाम तक ही दौड़ है, सो आप नाम के नाते से मुझे बचा लीजिए ॥१॥

आप स्वयं समझ बूझकर अपने सेवकों का ऐसा कल्याण कर देते हैं, जैसा (सगे) माता पिता भी नही करते। (क्योंकि माता पिता मोक्ष का परमानन्द नही दे सकते।) हे रघुनाथजी! आपका नाम ही मेरे लिए गुरु देवता, स्वामी मित्र और बल है। (आपका नाम मेरे लिए जीवन सर्वस्व है) ॥२॥

हे नाथ! आपके 'रामराज्य' में मलिन मनवाले कलिकाल के कपट की छाया भी नही पड सकती। किन्तु यह कायर कलिकाल उसी क्रोध के कारण मुझ मरे हुए को भी अपनी चोटों से घायल कर रहा है। (एक तो यों ही मैं अपने दुष्कर्मों के मारे मर रहा हूँ, दूसरे यह दुष्ट विषय-वासनारूपी आघातों से मुझे असह्य पीडा दे रहा है। इसे इतना भी तो भय नहीं कि मैं 'राम राज्य' में बस रहा हूं) ॥३॥

जैसे गीदड मेढक को मारकर शेर के वैर का बदला चुकाता है वैसा ही यह मेरे साथ बर्ताव कर रहा है अर्थात जब इसकी दाल आपके सामने न गली तब आपके छोटे-छोटे दासों को यह सताने लगा! ॥४॥

यद्यपि महाराजा परीक्षित आनन्दपूर्वक भगवान के परमधाम वैकुण्ठ में वास कर रहे हैं, पर इसके कपट भरे काम, अनीति और अनेक विघ्न-बाधाएँ सुनकर उन्हें भी पछतावा हो रहा है (इसलिए पछतावा हो रहा है कि इसे पकडकर हमने क्यों जीवित छोड दिया?) ॥५॥

हे कृपासागर! तनिक कृपादृष्टि तो कीजिए जिससे इस दास के चित्त की पीडा शान्त हो जाय। हे दीनदयालो! हे देव! मैं आपके चरणों का दर्शन करने के लिए आपकी शरण आया हूँ ॥६॥

यदि आप (दयावश) उसे (कलियुग को) पास बुलाकर रोकना नहीं चाहते या उसकी हाय हाय की पुकार सुनकर उसे मारना नही चाहते तो हनुमान्‌जी को ही थोडा सा संकेत कर दीजिए। वे इसकी ओर वैसे ही ताकेंगे जैसे सिंह गाय के मुख की ओर घूरता है ॥७॥

जब हनुमान्‌जी लाल मुँह, टेढी भौंहें और पीली आँखों को क्रोध से लाल कर लेंगे तब पवन कुमार वीर हनुमान् का स्मरण करके इस चचल चित्तवाले कलि का सारा चाव चला जायगा (अपना सारा पौरुष भूल जायगा ॥८॥

मेरी यह विनय सुनकर श्रीरघुनाथजी मुस्कराये और अपने अनुज लक्ष्मण को इन बातों का आशय समझाया (कि, देखो, तुलसी कैसा चतुर है! कैसी-कैसी बात बना रहा है!)। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा कि यह ठीक तो कहता है।' बस अब मेरी सारी बात बन गई (क्योंकि वहाँ सिफारिश भी पहुँच चुकी है, और सिफारिश भी किसकी, सगे छोटे भाई की) ॥९॥

भगवान् रामचन्द्रजी ने इस गरीब का न्याय कर दिया। (कलियुग को डाँट डपट कर सामने से हटा दिया और अपने भक्त को अपनी शरण में रख लिया) यह सुनकर सन्तों के घर बधाई बजने लगी (कलि की बाधाओं से छूटकर सब आनन्द उत्सव मनाने लगे)। दुःख चिन्ता छल-कपट और पाप-पुंज सारे नष्ट हो गये ॥१०॥

गुणातीत (मायात्मक तीन गुणों से परे) पवित्र और निष्कपट प्रेम एवं विश्वास अपने सेवक पर देखकर हे तुलसीदास! मुनि लोग कहने लगे— उदार कीर्तिवाले

भगवान् की जय हो, जय हो ॥११॥

शब्दार्थ—सँभार = रचा । बिहाय = छोड़कर । भेक = मेढक । गोमाय = गीदड़ । कुदाय = कुघात । साय = शान्त हो । अकनि = सुनकर । अपाय = विघ्न । पिंगल = पीला । कषाय = लाल । दादि = इन्साफ । अमाय = निष्कपट । उरगाय = विष्णु भगवान् का एक नाम ।

विशेष—(१) 'आप माय'

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

(२) 'परीक्षित'—एक दिन महाराजा परीक्षित शिकार खेलते खेलते एक ऐसे जंगल में जा पहुँचे, जहाँ एक कृष्णकाय पुरुष एक गाय और एक लँगड़े बैल को मारता हुआ खदेड़ रहा था । पूछने पर पता चला कि गाय पृथिवी है, लँगड़ा बैल धर्म है और काला पुरुष है कलियुग । राजा ने ज्यों ही कलि को मारने के लिए तलवार म्यान से खींची वह गिड़गिड़ाकर उनके पैरों पर गिर पड़ा । शरणागत जानकर उसे राजा ने छोड़ दिया । पर उसने अपने रहने के लिए राजा से १४ स्थान माँग लिये, जिनमें एक सुवर्ण भी था । राजा जब शिकार खेल रहे थे प्यास के मारे व्याकुल एक ध्यानावस्थित ऋषि के पास पहुँचे । जब ऋषि ने कुछ उत्तर न दिया तब राजा उन्हें पाखण्डी समझकर उसके गले में एक मरा हुआ साँप डालकर चले गये । मुनि के पुत्र ने जब यह सुना तो उसने यह शाप दिया कि वह मदान्ध राजा साँप के डसने से सातवें दिन मर जाय । उस दिन राजा परीक्षित सिर पर सोने का मुकुट धारण किए हुए थे, और सोने में था कलि का वास । इसी से उनकी बुद्धि मारी गई । श्रीमद्भागवत का सप्ताह पारायण सुनकर महाराजा सातवें दिन स्वर्गस्थ हो गये । यह कथा श्रीमद्भागवत पुराण में आती है ।

(३) 'उरगाय'—इसका 'उर गाय' पाठ मानकर श्रीवैजनाथजी तथा कुछ टीकाकारों ने यह अर्थ किया है कि 'हृदय में राम के गुण गाकर' किन्तु 'उरगाय' पाठ ही ठीक है न कि 'उर गाय' । 'उरगाय अर्थात विष्णु भगवान की जय हो जय हो'—ऐसा मुनिजन कह रहे हैं । उरगाय पाठ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी ग्रन्थावली की विनयपत्रिका में पाया जाता है । यही पाठ शुद्ध है ।

(४) 'विनय सुनि'—यहाँ से लेकर पद के अन्त तक गोसाइंजी ने अपने मनोराज्य का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है और उसमें रहस्यमय विवरण भी । ऊँचे पाण्डित्य एवं काव्यकला की अभिव्यक्ति भी अनुपम हुई है ।

२२१

नाथ ! कृपा ही को पथ चितवत दीन हौं दिनराति ।
होइ धौं केहि काल दीनदयालु ! जानि न जाति ॥१॥
सुगुन, ग्यान बिराग भगति सुसाधननि की पाँति ।
भजे बिकल बिलोकि कलि अघ अवगुननि की थाति ॥२॥
अति अनीति-कुरीति भइ भुइँ तरनि हूँ ते ताति ।
जाउँ कहँ ? बलि जाउँ, कहूँ न ठाउँ, मति अकुलाति ॥३॥

आप सहित न आपनो कोउ, बाप ! कठिन कुभाति।
स्यामघन ! सीचिये तुलसी, सालि सफल सुखाति ॥४॥

भावार्थ—हे नाथ ! मैं दीन दिनरात आपकी कृपा की ही बाट जोहता रहता हूँ (यही टक लगाये बैठा रहता हूँ कि कब इस दीन पर आप कृपा कर दें) हे दीन दयालो ! पता नहीं कि किस घड़ी आपकी वह कृपा-दृष्टि मुझ पर होगी ॥१॥

सदगुण ज्ञान वैराग्य और भक्ति तथा अच्छे-अच्छे साधनों के समूह कलि को देखते ही व्याकुल हो भाग गये । रह गये पापों और दुर्गुणों के समूह ॥२॥

बड़े-बड़े अन्यायों और अनाचारों से पृथिवी सूर्य से भी अधिक तप्त हो गई है। (एही प्रकार के समान पृथिवी पर कोई कैसे रह सकता है ?) अब मैं कहाँ जाऊँ ? आपकी बलैया ले रहा हूँ मुझे रहने का कहीं ठौर ठिकाना नहीं रहा । बुद्धि बड़ी व्याकुल हो रही है (कहीं भागते भी नहीं बनता कि इस पापपूर्ण पृथिवी की असह्य ज्वाला से बच सकूँ) ॥३॥

हे पिता ! जब अपनी देह ही अपनी नहीं है तब दूसरे क्या अपने होंगे ? (साराश, अपना सगा-सम्बन्धी यहाँ कोई भी नहीं है।) सब कठोर दुराचारी ही दिखाई देते हैं। (न तो किसी में दया है और न सदाचार ही)। हे घनश्याम ! तुलसी रूपी फूली-फली धान की खेती सूखी जा रही है अब भी मेघ बनकर (भक्ति जल से) उसे सींच दीजिए ॥४॥

शब्दार्थ—थाति = धरोहर। भुइ = भूमि । तरनि = सूर्य । सालि=धान । सफल = फला हुआ ।

विशेष—(१) पथ चितवन—

आँखड़ियाँ झाँई परीं, पंथ निहारि निहारि।
जीहड़ियाँ छाला परा, नाम पुकारि-पुकारि ॥
बहुत दिनन को जोवती रटत तुम्हारो नाम।
जिउ तरसै तुव मिलन को मन नाहीं विश्राम ॥

(२) जाउँ कहँ अकुलाति—भक्तवर ललितकिशोरीजी भी दुनिया से ऊब कर ऐसा ही कह गये हैं—

'वृन्दावन अब रमते हैं दिल दुनिया से घबराया है।
मानुष-गन्ध न भाती है, सग मरकट मोर सुहाना है ॥

२२२

कहि जाउँ, और कासों कहौं ?
सदगुनसिंधु स्वामि सेवक हित कहुँ न कृपानिधि-सो लहौं ॥१॥
जहँ-जहँ लोभ लोल लालचबस निजहित चित चाहनि चहौं।
तहँ-तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु-कोटर गहौं ॥२॥
काल-सुभाव-करम बिचित्र फलदायक सुनि सिर धुनि रहौं।
मोको तौ सकल सदा एकहि रस दुसह दाह दारुन दहौं ॥३॥

उचित अनाथ होइ दुखभाजन, भयो नाथ ! किंकर न हौं ।
अब रावरो कहाइ न बूझिये, सरनपाल ! साँसति सहौं ॥४॥
महाराज ! राजीवविलोचन ! मगन पाप संताप हौं ।
तुलसी प्रभु जब-तब जेहि-तेहि विधि राम निबाहे निरबहौं ॥५॥

भावार्थ—बलिहारी ! और किसे जाकर सुनाऊँ ? (अपना रोना और किसके आगे रोऊँ ?) आपके समान सद्गुणों का समुद्र सेवकों की भलाई करनेवाला और कृपानिधान स्वामी अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलने का (जो आपके समान ही कोई दूसरा मालिक मिल जाता, तो मैं उसी को अपनी सारी व्यथा-कथा सुना देता, आपको कष्ट न देता, पर ऐसा कोई मिलता ही नहीं।) ॥१॥

जहाँ-जहाँ लोभ और लालच से चंचल चित्त में अपने कल्याण की कामना करता हूँ, वहाँ-वहाँ से मैं इस तरह निराश होकर लौट आता हूँ जैसे सूर्य को देखते ही उल्लू भटकता हुआ पेड़ के खोडर में घुस जाता है ॥२॥

जब यह सुनता हूँ कि काल, स्वभाव और कर्म विचित्र फल देनेवाले हैं, तब सिर पटक-पटककर रह जाता हूँ (कुछ उद्यम करने का साहस नहीं होता। इसलिए, कि कहीं कुछ-का कुछ फल न भोगना पड़े, क्योंकि कर्मों की गति बड़ी विचित्र है)। मैं तो सदा एक भी ही असहनीय और दारुण दाह से जला करता हूँ। (काल, स्वभाव और कर्म कभी मेरे अनुकूल नहीं हुए सदा प्रतिकूल ही रहे हैं) ॥३॥

मैं दुःखों का पात्र रहा सो ठीक ही है क्योंकि हे नाथ ! मैं अनाथ था मेरा कोई धनी धोरी नहीं था और न मैं आपका सेवक ही बना था, किन्तु हे शरणागत रक्षक ! अब आपका कहाकर भी मैं, न जाने क्या दुःख भोग रहा हूँ, यह समझ में नहीं आ रहा ॥४॥

हे महाराज ! हे कमलनेत्र ! मैं पाप-सन्ताप में डूब रहा हूँ। हे नाथ ! तुलसीदास का तो तभी निर्वाह हो सकता है, जब आप जैसे तैसे उसका निबाह करेंगे ॥५॥

शब्दार्थ—लोल=चंचल। तरनि=सूर्य। कोटर=पेड़ की पोल। साँसति=कष्ट।

विशेष—(१) तहँ-तहँ कोटर गहौं—इसका यह भी अर्थ हो सकता है—"मैं संसाररूपी वृक्ष में रहनेवाला हूँ। अनीति रात्रि में घूमता फिरता हूँ। सत्संगवश कभी बाहर भी निकलता हूँ तो ज्ञानरूपी प्रचण्ड सूर्य के सामने नहीं जा सकता। चकाचौंध लगने से फिर अपने उसी विषय-वासना के कोटर में आ घुसता हूँ।"

२२३

आपनो कबहुँ करि जानिहौ।
राम गरीबनिवाज राज-मनि, बिरद लाज उर आनिहौ ॥१॥
सील सिंधु सुन्दर सबलायक, समरथु सदगुन-खानि हौ।
पाल्यो है, पालत, पालहुगे, प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानिहौ ॥२॥

२२५

भरोसो और आइहै उर ताके।
कै कहुँ लहै जो रामहिं सो साहिब, कै आपना बल जाके ॥१॥
कै कलिकाल कराल न सूझत, मोह मार मद छाके।
कै सुनि स्वामि सुभाउ न रह्यो चित जो हित सब अँग थाके ॥२॥
हौं जानत भलिभाँति अपनपौ, प्रभु सो सुन्यो न साके।
उपल, भील, खग, मृग, रजनीचर, भले भये करतब ताके ॥३॥
मोको भलो रामनाम सुरतरु सो, रामप्रसाद कृपालु कृपा के।
तुलसी सुखी निसोच राज, ज्यों बालक माय बबा के ॥४॥

भावार्थ—उसी व्यक्ति के मन में किसी दूसरे का बल भरोसा होगा जिसे या तो कहीं श्रीरामचन्द्रजी के समान कोई मालिक मिल गया हो या जिसे अपने स्वयं के पुरुषार्थ का बल हो (मुझे न तो कोई ऐसा मालिक मिला है जो श्रीरघुनाथजी के समान समर्थ हो और न अपने खुद के पुरुषार्थ पर रत्ती भर भरोसा है। इसलिए मेरी दौड़ तो एक रामजी तक ही है) ॥१॥

अथवा जिसे अज्ञान काम और अहंकार में मतवाला हो जाने के कारण भीषण कलिकाल न सूझता हो (क्योंकि मदान्धों को सामने उपस्थित मृत्यु भी नहीं दिखाई देती है। मुझ पर मोह आदि मादक पदार्थों की इतनी कृपा है कि उन्होंने अन्धा नहीं किया कलिकाल मुझे सूझ रहा है और उसके विकराल भय से डरकर मैं भगवान् की शरण ले चुका हूँ), अथवा जिसके चित्त पर सब प्रकार से थके हुए लोगों के हितकारी प्रभु रामचन्द्रजी का स्वभाव सुनने पर भी ठीक ठीक न जमा हो (भगवान की पतित-पावनता, जन-वत्सलता आदि गुण जिसके हृदय-पटल पर अंकित न हुए हों, किन्तु भगवत्कृपा से मेरे सम्बन्ध में यह बात भी नहीं कही जा सकती।) मुझे तो सदा ही अपने दीनदयालु स्वामी के स्वभाव का ध्यान बना रहता है ॥२॥

मैं अपना पुरुषार्थ अपना बल भलीभाँति जानता हूँ (यह मुझे अच्छी प्रकार ज्ञात है कि मैं अपने परिमित पुरुषार्थ से अपरिमित हरि भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता हूँ)। और मैंने श्री रघुनाथजी के अतिरिक्त और किसी स्वामी की ऐसी कीर्ति-गाथा भी नहीं सुनी है (जो इस प्रकार महापापियों का उद्धार करता हो) पाषाणी (अहल्या) भील पक्षी (जटायु) मृग (मारीच) और राक्षस (विभीषण) इन सबों में से किसने शुभकर्म किये थे? (ये सभी घोर पापी थे, किन्तु भगवान ने इन सबका उद्धार कर दिया) ॥३॥

मेरे तो एक रामनाम ही कल्पवृक्ष के समान सुख देनेवाला बन गया है और यह कृपालु रामचन्द्रजी की कृपा से हुआ। (इसमें भी मेरा कोई पुरुषार्थ नहीं, कि राम नाम पर कल्पवृक्ष के समान मेरी श्रद्धा भक्ति हो गई है। यह भी भगवत्कृपा से ही बना है)। अब तुलसी इस अनुग्रह के कारण ऐसा सुखी और निश्चिन्त है जैसे कोई बालक अपने माता पिता के राज्य में होता है ॥४॥

शब्दार्थ—सब अंग=सब प्रकार से। साका=यश कीर्ति। उपल=पत्थर

यहाँ अहल्या से तात्पर्य है। निसोच = निश्चिन्त। बवा = बाप।

विनय—(१) इस पद में गोसाइंजी ने स्पष्टतया जीव की पौरुषहीनता और भगवदनुग्रह का प्राधान्य प्रतिपादित किया है। इस 'पौरुषहीनता' में निराशावाद अथवा कायरता का लेशमात्र भी नहीं है, प्रत्युत आशावाद और वीरता की ही झलक दीखती है।

(२) 'मृग' मारीच—यह रावण का मामा था। रावण की माया से मारीच माया-मृग बनकर पंचवटी में पहुँचा। वहाँ इसका अत्यन्त मनोहर रूप देखकर सीताजी ने इसका स्वर्णोपम चर्म लाने के लिए श्रीरामचन्द्रजी से कहा। जब इसे मारने के लिए रामचन्द्रजी गये, और बाद में इसके मरण समय का आर्त्तनाद सुनकर सीताजी ने लक्ष्मण को भी वहीं आग्रहपूर्वक भेज दिया, तब अवसर पाकर रावण आश्रम में पहुँचा और सीताजी को रथ पर बिठाकर लंका ले गया। मारीच श्रीराम का भक्त था, किन्तु रावण की प्रेरणा से उसे यह माया रचनी पड़ी। मायामृग के प्रसंग का गीतावली में निम्न लिखित पद बड़ा ही भावमय है

बैठे हैं राम, लखन अरु सीता।
पंचवटी बर परनकुटी तर, कहैं कछु कथा पुनीता॥
कपट-कुरंग कनक मनिमय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला।
पाये पालिबेजोग मंजु मृग, मारेहु मंजुल छाला॥
प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिं चाप सर लीन्हें।
चल्यो भाजि फिरि फिरि चितवत मुनि मख रखवारे चीन्ह॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम हरिन के पाछे।
धावनि नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसी उर आछे॥

२२६)

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो॥१॥
करम, उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो 'सावन के अंधहिं' ज्यों सूझत रंग हरो॥२॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परसि धरो॥३॥
स्वारथ औ परमारथ हू को 'नहिं कुंजरो नरो।'
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि-कटक तरो॥४॥
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु अरनि अरो॥५॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम-नामहिं तें तुलसिहिं समुझि परो॥६॥

भावार्थ—जिसे किसी दूसरे का भरोसा हो, सो (और साधन) करे। मेरे लिए

तो इस कलयुग में कल्याणरूपी फलों से फला एक राम नाम ही कल्पवृक्ष है। तात्पर्य यह कि मुझे तो राम नाम-द्वारा ही भगवद्भक्ति प्राप्त हुई है। किसी को यदि किसी अन्य साधन का भरोसा हो, तो वह भले ही उसे साधे ॥१॥

कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड ज्ञानकाण्ड एवं वैदिक सिद्धान्त ये सभी सब प्रकार से सच्चे हैं पर मुझे तो सावन के अन्धे की भाँति जहाँ भी देखता हूँ हरा ही हरा रंग दीखता है। भाव यह है कि जैसे यदि कोई सावन में हरी-हरी घास देखता हुआ अन्धा हो जाय, तो उसे सदा हरियाली का ही भास रहेगा। उसी प्रकार मुझे सदा सर्वत्र श्रीराम-नाम ही सूझ रहा है। ज्ञान कर्म आदि मेरे ध्यान में ही नहीं आ रहे, यद्यपि वे भी सच्चे हैं ॥२॥

मैं कुत्ते की नाई अनेक जूठी पत्तलों को चाटता फिरा, पर कभी पेट नहीं भरा। आज मैं नाम-स्मरण करने से अमृतरस परोसा हुआ देखता हूँ। भाव यह है कि मैंने अनेक साधन साधे पर किसी से भी परमानन्द की प्राप्ति नहीं हुई। अब राम-नाम के प्रभाव से मुझे ब्रह्मानन्द रस-पान करने को मिल गया है ॥३॥

मेरे लिए राम नाम स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों का ही साधक है। यह बात 'कुंजर है अथवा नर' की-सी दुविधा भरी नहीं है (क्योंकि मुझे तो प्रत्यक्ष प्राप्त है)। सुना है, कि राम-नाम के प्रभाव से बन्दरों की सेना पत्थरों का पुल बनाकर समुद्र को पार कर गई थी ॥४॥

जहाँ जिसका प्रेम और विश्वास है, वहीं उसका काम पूरा हुआ है (यह अमिट सिद्धान्त है) मेरे माँ बाप तो ये दोनों अक्षर 'र' और 'म'—है। इन्हीं के आगे मैं बाल हठ में अड़ रहा हूँ, मचल रहा हूँ (जो भी माँगूँगा, ये दोनों अक्षर मुझे वही देंगे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं) ॥५॥

यदि मैं कुछ भी छिपाकर कहता होऊँ तो भगवान् शिव साक्षी हैं मेरी जीभ गलकर गिर जाय। अर्थात् मैंने यहाँ कोई 'कवि-कल्पना' से काम नहीं लिया सच सच सुनाया है। बस तुलसीदास ने तो अपना कल्याण एक रामनाम में ही समझा है ॥६॥

शब्दार्थ—फरो=फला है। पातरि=पत्तल। परुसि=परोसा हुआ। नहिं कुंजरो नरो=नर या कुंजर या अर्थात् हाथी है या मनुष्य, ऐसी कोई दुविधा इसमें नहीं। सरो=पूरा हुआ। आखर=अक्षर। अरनि=हठ। अरो=अड़ गया हूँ, जिद पकड़ बैठा हूँ।

विशेष—(१) नहिं कुंजरो नरो—कुरुक्षेत्र में जब द्रोणाचार्य, कौरवों का पक्ष लेकर पाडवों की सेना का अधाधुंध संहार करने लगे, तब कृष्ण भगवान् ने अर्जुन से कहा कि अब द्रोणाचार्य का वध करना ही उचित होगा। गुरु-हत्या करने से अर्जुन कुछ हिचका। जब यह न हो सका तब श्रीकृष्ण की सलाह से भीमसेन ने अश्वत्थामा नामक एक हाथी को मार गिराया। अश्वत्थामा द्रोणाचार्य के पुत्र का भी नाम था और वह उन्हें बड़ा प्यारा था। यह सुनते ही द्रोणाचार्य ने धर्मराज युधिष्ठिर से पूछा कि कौन अश्वत्थामा मारा गया है? धर्मराज ने दबी जबान से कहा—'अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुंजरो वा' अर्थात् अश्वत्थामा नर मारा गया या हाथी। 'नर मारा गया' तो जोर से कह दिया और 'कुंजर' यह धीरे से। नीति का पालन करते हुए धर्मराज ने सत्य की रक्षा करनी चाही पर यह न हो सका। राजनीति और धर्म में भारी अंतर है। असत्य बोलने का कलंक धर्मराज पर लग ही गया। पुत्र का मरण सुनकर ज्योंही द्रोणाचार्य मूर्च्छित-से

हुए, त्योंही धृष्टद्युम्न ने उनका मस्तक काट लिया। तभी से 'नरो वा कुंजरो वा' यह लोकोक्ति के रूप में प्रयुक्त हुआ।

(२) दाउ आखर — रकार' और मकार। श्रीरामानुजाचार्य ने राममंत्र के 'र' और 'म' इन दोनों अक्षरों का यह अर्थ किया है

रकारार्थो रामः सगुणपरमैश्वर्यजलधि—
मकारार्थो जीवः सकलविधि कैङ्कर्यनिपुणः।
तयोर्मध्याकारो युगलमथसंबंधमनयो—
रनन्याहं ब्रूते त्रिनिगमसुसारोऽयमतुलः॥

२२७

नाम राम, रावरोई हित मेरे।
स्वारथ-परमारथ-साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टेरे॥
जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।
मोहुँ सो कोउ-कोउ कहत रामहि को, सो प्रसंग केहि केरे॥२॥
फिरयो ललात बिनु नाम उदरलगि, दुखउ दुखित मोहि हेरे।
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे॥३॥
साधत साधु लोक-परलोकहि सुनि गुनि जतन घनेरे।
तुलसी के अवलम्ब नाम को, एक गांठि कइ फेरे॥४॥

भावार्थ—हे रामजी! आपका नाम ही मेरा (सच्चा) हित करनेवाला है। यह बात मैं हाथ उठाकर स्वार्थ के और परमार्थ के सभी सगी साथियों से पुकार पुकारकर कहता हूँ (घोषणा कर रहा हूँ)॥१॥

माता पिता ने मुझे जन्म देकर ही छोड़ दिया था। और ब्रह्मा ने भी अभागा और कुछ बेढब सा बनाया था। फिर भी कोई कोई मुझे 'राम का' कहते हैं, सो यह किस नाते से कहते हैं? (कदाचित इसी राम-नाम के प्रताप से क्योंकि राम नाम स्मरण करने से ही 'भागवत' का पद मिलता है, अन्यथा नहीं)॥२॥

जब मैं राम नाम के शरण नहीं हुआ था तब पेट भरने को मैं (द्वार द्वार पर) ललाता फिरता था। मेरी ओर देखकर दुःख को भी दुःख होता था (मेरी बड़ी ही दयनीय दशा थी) पहले मेरे लिए जो बबूल और बहेड़े के वृक्ष थे आज उन्हीं पेड़ों से आम के फल मिल रहे हैं। (अभिप्राय यह, कि जो लोग पहले मेरा निरादर करते थे, वे ही आज राम-नाम के प्रभाव से मेरा आदर कर रहे हैं)॥३॥

सतजन तो (शास्त्रों को) सुनकर और मनन कर अनेक साधना से, अपना लोक और परलोक बना लेते हैं (शास्त्रों को सुनते हैं उन पर विचार करते हैं, अनुशीलन करते हैं और तदनुसार चलते हैं तब कहीं वे अपना लोक-परलोक सुधार सकते हैं), किन्तु तुलसी को तो एक राम-नाम का ही सहारा है। जैसे गाँठ तो एक ही होती है, लपेटे चाहे जितने हों (साधन चाहे अनेक हों, पर सबका आधार एक राम-नाम ही है)॥४॥

शब्दार्थ—रावरोई = आपका ही। अवडेर = बेढब। ललात फिरयो = ललचाता

हुआ दीन-सा जहाँ-तहाँ घूमता रहा। बबुर = बबूल। बहेर = बहेड़ा। रसाल = आम।

विशेष—(१) 'जननी जनक' —यह किंवदंती बहुत कुछ प्रसिद्ध है, कि गोसाईंजी की जन्मपत्री में कुछ ऐसे अनिष्टकारी ग्रह आ गये थे, जिससे उनके माता पिता ने, ज्योतिषी की राय से उन्हें बचपन में ही त्याग दिया था। 'अनिष्ट ग्रहों के कारण त्याग देना' यह मत ज्योतिष के किसी प्राचीन ग्रंथ में नहीं पाया जाता केवल 'मुहूर्तचिंतामणि' नामक ग्रंथ में इसका उल्लेख है। 'मुहूर्तचिन्तामणि' गोसाईंजी के बाद की रचना है। इस पद तथा कतिपय ऐसे ही पदों से लोगों ने यह अर्थ लगा लिया कि गोसाईंजी माता पिता द्वारा परित्यक्त बालक थे। सोचने की बात है। कैसे ही अनिष्ट ग्रह क्यों न हो, कोई माँ-बाप अपनी सन्तान को यों नहीं त्याग देता है। यह संभव है कि इन्हें छोड़कर इनके माता पिता बचपन में ही परलोकगामी हो गये हों, और यह निराश्रय होकर इधर उधर भटकते फिर रहे हों। और 'बिधिहु गुन्यो अवडर' इसका अर्थ साधारणतया यही है कि ब्रह्मा ने भी मुझे ऊटपटाँग-सा बनाया भाग्यहीन रखा।

(२) 'फिर्यो हेर' —इसी प्रसंग का 'कवितावली' में निम्नलिखित कवित्त मिलता है। देखिए—

'जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन
जानत हौं चारफल चार ही चनक को॥
तुलसी, सो साहिब समर्थ को सुसेवक है
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को।
नाम राम! रावरो सयानो किधौं बावरो
जो करत गिरी तें गुरु तृन ते तनक को॥

(३) 'लहत रसाल बहेरे' —श्रीवैजनाथजी इसका यह अर्थ करते हैं बबुर बहेरा के वृक्ष तें रसाल फल पाया। भाव पूर्व पिशाच सिद्धि द्वारा राम भक्ति लाभ भई, यह भक्तमाल में प्रसिद्ध है।

(४) 'एक गाँठि कई फेर' —राम-नाम के आधार पर ही सारे साधन दृढ़ता-पूर्वक अवलम्बित हैं।

[२२८]

प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य-परिनामो॥१॥
सकुचत समुझि नाम महिमा मद-लोभ मोह कोह कामो।
राम-नाम जप निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो॥२॥
नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो।
जो सुनि सुमिरि भाग भाजन भइ सुकृतसील भील भामो॥३॥
बालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन-सामो।
उलटे, पलटे नाम महातम गुंजनि जितो ललामो॥४॥

राम तें अधिक नाम-करतब जेहि किये नगर गत गामो।
भये बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से बामो ॥६॥

भावार्थ—जिसे राम-नाम की अपेक्षा श्रीरामचन्द्रजी भी प्यार नहीं है (जिस स्वयं श्रीरामचन्द्रजी से उनका नाम अधिक प्रिय है) उसका इस कराल कलिकाल में, आदि, मध्य और अन्त तीनों ही कालों में कल्याण होगा (क्योंकि कलियुग में मुक्ति का देनेवाला हरि-नाम-स्मरण ही है। जो नामानन्य होगा, वह सदा सर्वथा सुखी रहेगा।) ॥१॥

नाम की महिमा समझकर अहंकार, लोभ, अज्ञान क्रोध और काम भी सकुचा जाते हैं, सामने नहीं आते। जो सज्जन सदा राम-नाम-स्मरण करते हैं उन पर कड़ी धूप भी छाया कर देती है। (कठिन-से-कठिन अनिष्ट भी इष्ट हो जाते हैं, बड़े बड़े दुःख भी सुख में परिणत हो जाते हैं।) ॥२॥

यदि कोई कहे, कि नाम के प्रभाव से पत्थर पर कमल अंकुरित हुआ है, तो उसे सच ही मानना चाहिए। (नाम के प्रभाव से असम्भव बातें भी सम्भव हो जाती हैं।) जिस नाम को सुनकर और जपकर भीलनी शबरी भी भाग्यवती शीलवती और पुण्यमयी बन गई (तो क्या शिला-कमल वाली असम्भव घटना क्या सम्भव नहीं हो सकती ?) ॥३॥

वाल्मीकि और अजामेल के पास न तो कोई साधन था और न कोई सामग्री ही (न योगाभ्यास किया था, न यज्ञ-यागादिक ही) किन्तु उन्होंने भी, उलटे पुलटे राम-नाम के माहात्म्य से, घुघचियों से जवाहरात जीत लिये ॥४॥

नाम की शक्ति श्रीरघुनाथजी से भी बड़ी है! उसने ग्रामीण मनुष्यों को चतुर नागर बना दिया (जिनको बोलने रहन, उठन, बैठने की भी योग्यता नहीं थी, वे शिष्ट, कवि और महात्मा हो गये)। अधिक क्या, जिसे जपकर तुलसीदास सरीखे बुरे जीव भी डंके की चोट से, अच्छे हो गये (बौन्धियाँ भी अशर्फियाँ हो गईं।) ॥५॥

शब्दार्थ—परिनामो=(परिणाम) अन्त। कोह=क्रोध। सिला=पत्थर। सरोरुह=कमल। जामो=जम उठा, अंकुरित हुआ। भाग भाजन=भाग्यवती। भील भामो=भील की स्त्री शबरी। सामो=सामान। जितो=प्राप्त कर लिया। सलामो=(सलाम) यहाँ रत्न से तात्पर्य है। नगर-गत=नागर शहर में रहनेवाले चतुर मनुष्य। गामो=ग्रामीण। बजाइ=डंका बजाकर।

विशेष—(१) प्रिय रामो—भक्तपुंगव हनुमानजी ने भी यही बात कही है—

राम त्वत्तोऽधिकं नाम, इति मे निश्चला मतिः।
त्वया तु तारिताऽयोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम्॥

रामचरितमानस में—

निर्गुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नाम बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार॥

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किय साधु सुखारी॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा। भगत होंहि मुद मंगल बासा॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

रिषिहित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भवभयभंजन नाम प्रतापू॥
दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन। जनमन अमित नाम किय पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नाम सकलकलि-कलुष निकंदन॥

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, बेदबिदित गुनगाथ॥

राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ॥
राम अनेक गरीब निवाजे। लोक बेद बर बिरद बिराजे॥
राम भालु कपि-कटक बटोरा। सेतुहेतु श्रम कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं॥
राम सकुल रन रावन मारा। सीय सहित निजपुर पगु धारा॥
राजा राम अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बरबानी॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥

गोसाईंजी ने ही नहीं, अनेक अनुभवी साधु संतों ने राम-नाम का ऐसा ही प्रभाव कहा है। महाप्रभु चैतन्यदेव ने नाम-कीर्तन को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया है। कबीर साहब ने भी नाम की भारी महिमा गाई है—

राम का नाम संसार में सार है, राम का नाम है अमृत बानी।
राम के नाम ते कोटि पातक टरें, राम का नाम बिस्वास मानी॥

× × ×

कहाँलौं कहौं अगाध लीला रची, राम का नाम काहू न जानी।
राम का नाम [redacted] कृष्णगीता कथी, बाँधिया सेत सब सम जानी॥
ब्रह्म सनकादि कोई पार पावै नहीं तासु का नाम कह रामराया।
कहैं कबीर यह सहस दलकीकहर राम का नाम जो पूछो लामा॥'

अन्यत्र—

सूर मरै अजपा मरै, अनहद हू मरि जाय।
नाम सनेही ना मरै, कह कबीर समुझाय॥'

(२) 'करत छाँह घोर घामो'—प्रमाण है—

'जिमि जाहि छाया जलद सुखद बहै बर बात।
तस मग भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥

[रामचरितमानस

(३) 'उलटे ललामो'

उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भे ब्रह्म समाना॥'

[रामचरितमानस

उलटे नाम की कथा संस्कृत के किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं पाई जाती है। संस्कृत के अनुसार 'मरा मरा' का कुछ अर्थ भी नहीं होता। भाषा में भी 'मारो, मारो

होता है, 'मरा मरा' नहीं। श्री देवनारायण द्विवेदी का यह अर्थ ठीक जचता है कि जीवों की रक्षा करना तो सीधा नाम जपने का सार है, और हिंसा करना या वध करना उलटे नाम का जप है।

(४) दाहिने बामो'—कवितावली में अपने विषय में गोसाइंजी ने स्वयं कहा है—

'राम-नाम को प्रभाव पाउ महिमा प्रताप
तुलसी से जग मनियत महामुनी सो।
अति ही अभागो अनुरागत न रामपद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरजु देखि सुनी सो॥'

२२६

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।
जानकी-जीवन ! जनम-जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं॥१॥
तीन लोक, तिहूँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं।
तुम सों कपट करि कलप कलप कृमि ह्वै हौं नरक घोर को हौं॥२॥
कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौंतुवा भौंर को हौं।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल, बड़े ठेकाने ठौर को हौं॥३॥

भावार्थ—यदि मैं यह कहूँ, कि मैं रामजी को छोड़कर किसी दूसरे का हूँ, तो मेरी यह जीभ गल जाय। हे श्रीजानकीवल्लभ ! मैं तो इस संसार में आपके ही टुकड़ों से (जूठन से) जी रहा हूँ॥१॥

तीनों लोकों और तीनों कालों में (पृथिवी पाताल और स्वर्ग में, तथा भूत वर्तमान और भविष्यत में) आपकी बराबरी का कोई दूसरा हितू नहीं दिखाई दिया। यदि मैं आपके साथ छल कपट करूँगा तो मुझे घोर नरक का, कल्प-कल्प में कीड़ा होना पड़ेगा (क्योंकि आप सर्वव्यापी के आगे कपट जाल कब तक चल सकेगा ?)॥२॥

क्या हुआ जो कलियुग ने मिलकर मेरे मन को भँवर का भौंतुवा बना दिया ? आशय यह है कि भौंतुवा जैसे जल में रहता हुआ भी जल के ऊपर ही तैरता रहता है उसमें डूब नहीं सकता वैसे ही कलि ने यद्यपि मुझे भव नदी में डाल दिया है तो भी मैं आपके प्रताप से, उसमें डूबूँगा नहीं, ऊपर ऊपर ही तैरता रहूँगा। विषय भोग मुझ पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। इसी बल भरोसे पर तुलसीदास सदा शान्त रहता है, कि वह बड़े ठौर-ठिकाने का रहनेवाला है। (श्रीरघुनाथजी के राजदरबार का गुलाम है। कलियुग उसका क्या बिगाड़ सकता है)॥ ॥

शब्दार्थ—गरैगी=गल जायगी। ज्यायो=जिलाया हुआ। जोर=(जोड़) बराबरी। भौंतुवा=छोटा-सा काला कीड़ा जो प्रायः जल में नावों के पास रहा करता है।

विशेष—(१) 'जानकी ...को हौं'—यदि जीव श्रीजानकी-जीवन का गुलाम होकर नहीं रहा, तो उसका जीना न जीना बराबर ही है—

'तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेहु नहीं सो सही पसु पूँछ बिषान न है॥
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥'
[कवितावली

भक्तवर प्रह्लाद ने कहा है —

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम्॥
[श्रीमद्भागवत

(२) 'सुहृद'—श्रीरामजी के समान कोई दूसरा सखा और हितू कहाँ है ? हनुमान्‌जी कहते हैं—

'कहँ हम पसु साखामृग चंचल बात कहौं मैं बिद्यमान की।
कहँ हरि सिव-अज पूज्य ग्यानघन नहिं बिसरत वह लगनि कान की॥'
[गीतावली

अकारन को हितू और को है।
बिरद 'गरीब निवाज' कौन को, भौंह जासु जन जोहै॥१॥
छोटो बड़ो चहत सब स्वारथ, जो बिरंचि बिरचो है।
कोल कुटिल कपि भालु पालिबो कौन कृपालुहि सोहै॥२॥
काको नाम अनख आलस कहे अघ अवगुननि बिछोहै।
को तुलसी-से कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साइँ-द्रोहै॥३॥

भावार्थ—बिना ही किसी कारण के हित करनेवाला (श्रीरामचन्द्रजी को छोड़कर) और कौन [redacted] ? गरीबों को निहाल कर देने का बाना किसका है कि जिसकी भृकुटी की ओर यह जन देखा करे ? ॥१॥

छोटे या बड़े जो भी ब्रह्मा के रचे हुए हैं वे सभी अपना स्वार्थ साधना चाहते हैं (बिना स्वार्थ के कोई किसी का भला नहीं करता) भला भील, बंदर और रीछ आदि का पालन पोषण करना किस कृपालु स्वामी को शोभा देता है ? ॥२॥

ऐसा किसका नाम है जिसे आलस्य या क्रोध के साथ भी लेने से पाप और दोष दूर हो जाते हैं ? (श्रीराम नाम ही ऐसा है) जिसने सदा मूर्खतावश अपने स्वामी से द्रोह किया है, ऐसे तुलसी-सरीखे नीच सेवक को भी किसने अपना लिया ? ॥३॥

शब्दार्थ—जोहै=देखे। सोहै=शोभा देता है। अनख=क्रोध।

विशेष—(१) भौंह जोहै—भौंह जोहने का अर्थ कृपा कटाक्ष की प्रतीक्षा करनी, अनुगृहीत होने की आशा करनी।

(२) 'छोटो बिरचो है'—कहा भी है—

सुर नर मुनि सब ही की रीती। स्वारथ लागि करहिं ये प्रीती॥

तथा—

'जगत में झूठी देखी प्रीत।
अपने ही सुख सों सब लागे, क्या दारा क्या मीत॥
मेरो मेरो सभी कहत हैं, हित सो बाँध्यो चीत।
अंतकाल संगी नहिं कोऊ, यह अचरज की रीत॥
मन मूरख अजहूँ नहिं समुझत, सिख दै हारयो नीत।
'नानक' भव जल पार परै जो, गावै प्रभु के गीत॥'

(३) 'कोल'—यहाँ निषाद और शबरी दोनों से ही तात्पर्य है।

(४) 'मंगल आलस'—कहा भी है—

'भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू॥'

[रामचरितमानस

२३१

और मोहि को है, काहि कहिहौं?
रंकराज ज्यों मन-को-मनोरथ केहि सुनाइ सुख लहिहौं॥१॥
जम-जातना, जोनि संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं।
मोको अगम, सुगम तुमको प्रभु! तउ फलचारि न चहिहौं॥२॥
खेलिबे को खग मृग, तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं।
यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं॥३॥
इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं।
दीजे बचन कि हृदय आनिये तुलसी को पन निबहिहौं॥४॥

भावार्थ—हे नाथ! मेरे दूसरा कौन है मैं (तुम्हें छोड़कर) किससे (अपनी बात) कहूँ? मेरी कामना तो ऐसी है जैसी रंक की राजा बनने की होती है (अथवा हूँ तो मैं निपट कंगाल, पर मंसूबे राजाओं के जैसे बाँध रहा हूँ। तात्पर्य यह कि साधन तो एक भी नहीं, पर चाहता हूँ मोक्ष से भी महान् आनन्द!) सो यह मनोरथ किसे सुनाऊँ, कौन मेरी सुनकर पूरी करेगा? ॥१॥

यम-यातनाएँ एवं अनेक योनियों में दारुण दुःख भोगे हैं और भोगूँगा। हे प्रभो! मुझे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की लालसा नहीं है। मेरे लिए तो ये परम दुर्लभ हैं, पर तुम यदि चाहो, तो सहज में ही दे सकते हो॥२॥

(तो मुझे चाहिए क्या, सो सुनिए) हे रामजी! मैं तो तुम्हारे विहार करने का पक्षी, पशु, वृक्ष और कंकड़ पत्थर होकर भी रहना चाहता हूँ। इस नाते से मुझे नरक में भी सुख मिलेगा और यदि यह कामना पूरी न हुई तो मुझे मोक्ष की भी लालसा नहीं, क्योंकि बिना इस सुख के मोक्षपद भी दुःखदायी हो जायगा॥३॥

इस दास के मन में, बस, यही एक कामना है कि वह सदा तुम्हारा जूती पकड़े

रहे, (शरण में पड़ा रहे) या तो मेरा वचन ही रहा (कि हम तेरी यह कामना पूरी कर देंगे) या इस बात का मन में निश्चय कर ला कि हम तुम्हारा यह प्रण पूरा कर देंगे ॥४॥

शब्दार्थ—सचु=सुख विश्राम। पानही=जूतो।

विशेष—(१) खलिव रहिहौं—मुझे जो विहग-योनि में जन्म लेना पड़े तो तुम्हारे खेलने के शुक सारिका, मोर आदि होऊं जो पशु योनि में जाना पड़े, तो तुम्हारा घोड़ा, हाथी, हिरण आदि होऊं, और यदि किसी वृक्ष का जन्म लेना पड़े, तो तुम्हारे विहार-स्थल का कदम्ब, रसाल, तमाल आदि बनूं। भक्तवर ललितकिशोरी कहते हैं—

'जमुना पुलिन कुंज गहवर की कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊं।
पद पंकज प्रिय लाल मधुप ह्वै मधुरे मधुरे गुंज सुनाऊं॥
कूकर ह्वै बन बीथिन डोलौं, बचे सीथ रसिकन के पाऊं।
ललितकिसोरी' आस यही ब्रज रज तज अनत न जाऊं॥

और रसखानि का भी यह मनोराज्य जरा देखिए

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदंब की डारन॥

(२) यहि नात दहिहौं—कविवर बिहारी का इसी भाव पर एक सरस दोहा है

जो न जुगति पिय मिलन की धूरि मुकति मुख दीन।
जो लहिये संग सजन तो धरक नरक हूं कौन॥

सुकवि अहमद भी अपना स्वर मिला रहे हैं—

अहमद इहि सराहिये जो प्रीतम गल बाह।
कहा करौं बैकुण्ठ ल, कलपवृच्छ की छाह॥

२३२

दीनबन्धु दूसरो कहँ पावों?
को तुम बिनु परपीर पाइहै? केहि दीनता सुनावों॥१॥
प्रभु अकृपालु कृपालु अलायक जहँ-जहँ चितहिं डोलावों।
इहै समुझि सुनि रहौं मौन ही कहि भ्रम कहा गँवावों॥२॥
गोपद बूडिबे-जोग करम करौं बातनि जलधि थहावों।
अतिलालची काम किंकर मन, मुख रावरो कहावों॥३॥
तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनो कछुक जनावों।
सो कीजे जेहि भांति छाडि छल, द्वार परो गुन गावों॥४॥

भावार्थ—दीनों का बन्धु आपके (जैसा) दूसरा कहाँ मिलेगा? हे नाथ! आपको

छाँटकर पराई पीर समझनेवाला और कौन है ? जिसके आगे मैं अपना दुःख रोता फिरूँ ? (सिवा श्रीरामजी के न कोई परोपकार करनेवाला है, न दूसरे का दुःख जाननेवाला और उसे सान्त्वना देनेवाला है) ॥१॥

जहाँ जहाँ मैं अपने मन को दौड़ाता हूँ, वहाँ-वहाँ कहीं तो ऐसे स्वामी मिलते हैं जिनके हृदय में दया नहीं, और कहीं ऐसे जो दयावान तो हैं परन्तु असमर्थ हैं। (ना समझ की कृपा से क्या काम ?) यह सुन समझकर चुप हो रहता हूँ क्योंकि ऐसों के आगे कुछ कहना अपना मरम गँवाना है। (भेद खुल जायगा और कुछ होगा भी नहीं, इससे मौन धारण किए बैठा रहता हूँ) ॥२॥

मन तो ऐसे ऐसे क्रिया करता है कि गाय के खुर भर जल में डूब जाऊँ (चुल्लू भर पानी में डूब मरूँ), पर बातें बनाकर समुद्र का थाह ले रहा हूँ। (कोरी कथनी ही कथनी है, करनी रत्ती भर भी नहीं)। मेरा मन बड़ा ही लालुप है और काम का दास है किन्तु मुख से आपका सेवक बनता फिरता हूँ (हृदय में कामदास हूँ और ऊपर से रामदास! इस पाखंड का भी कोई ठिकाना!) ॥३॥

हे नाथ! आप तुलसी के मन की तो सभी (बुरी भली) बातें जानते ही हैं, तो भी मैं अपनी कुछ बातें बतलाना चाहता हूँ। कुछ ऐसा उपाय कीजिए, जिससे कपट छोड़ कर सच्चे हृदय से आपके द्वार पर पड़ा पड़ा केवल आपके ही गुण गाया करूँ ॥४॥

शब्दार्थ—पाछ्=समझ सकेगा। अथाह=अथाह।

विशेष—(१) 'अति लालची कहावा'—कबीर साहब कहते हैं—

'साधु भया तो क्या भया माला पहिरी चार।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार॥'

(२) द्वार गावो कविवर बिहारी भी ऐसा ही कहते हैं—

हरि, कीजत तुम सो यहै, बिनती बार हजार।
जेहि तेहि भाँति डरयो रहौं, पर्यो रहौं दरबार॥

२३३ Important

मनोरथ मन को एकै भाँति।
चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल, मनसा अघ न अघाति ॥१॥
करमभूमि कलि जनम, कुसंगति, मति बिमोह मद माति।
करत कुजोग कोटि क्यों पैयत परमारथ पद सांति ॥२॥
सेइ साधु गुरु, सुनि पुरान स्रुति बूझयो राग बाजी ताँति।
तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरु सो ज्यों दरपन मुख काँति ॥३॥

भावार्थ—मन की अभिलाषा भी एक ही प्रकार की है। वह ऐसे पुण्यों के फल की इच्छा करता है, जो मुनियों के मन को भी दुर्लभ है अर्थात् जिस परम पद के विषय में मुनिजन मन में विचार भी नहीं करते। किन्तु पाप करने से तृप्ति नहीं हो रही है (दोनों काम एक साथ कैसे हों? पाप भी कमाना जाय और पुण्य फल की भी इच्छा करे!) ॥१॥

कर्मभूमि भारतवर्ष में जन्म भी लिया, तो क्या हुआ? क्योंकि कलियुग में जन्म,

नीचा का सग और अहकार तथा अज्ञान से मतवाली बुद्धि एव करोड़ो बुरे-बुरे कर्म, इन सब कुयोगो से परमपद और परमशांति कैसे प्राप्त हो सकती है ? (इन अनिष्टो के कारण शांति-पद दुर्लभ ही दीखता है) ॥२॥

सतो और गुरु की सेवा करने तथा वेद पुराणो के पारायण से परम शांति का ऐसा निश्चय हो जाता है, जैसे सारगी के बजते ही राग पहचान लिया जाता है। (अर्थात जैसे सारगी छेडते ही गानेवाला राग का स्वरूप पहचान लेता है उसमे तनिक भी सन्देह नही रहता, उसी प्रकार गुरुजनो की सेवा से तथा वेद-पुराणों के सुनने से मुझे दृढ विश्वास हो गया है कि मुझे परमपद प्राप्त हो जायगा) हे तुलसी ! प्रभु रामचन्द्रजी का स्वभाव तो कल्पवृक्ष के समान अवश्य है (जो उनसे माँगा जाता है वह मिल जाता है) किन्तु साथ ही वह ऐसा है जसे शीशे मे चेहरे का प्रतिबिम्ब। (भाव यह है कि जैसा मुह बनाकर या बिगाडकर हम दर्पण में देखेंगे वसा ही वह दिखाई देगा। इसी प्रकार भगवान कल्पवृक्ष तो अवश्य है किन्तु उस वृक्ष के नीचे बठकर हम जसी इच्छा करेंगे वैसा ही फल मिलेगा) ॥३॥

शब्दार्थ —सुकृत=पुण्य। माति=मतवाली। साति=शाति। काँति=कांति, सौन्दर्य।

विशेष—इस पद में भगवत्कृपा और जीव के पुरुषार्थ का साथ साथ विवेचन किया गया है। एक ओर कर्मों का विवेचन हुआ है तो दूसरी ओर भगवत्कृपा का सुदृढ विश्वास प्रकट किया जाता है। भक्तिमार्ग मे यह सिद्धात बडा ऊचा माना गया है। पहले अन्त करण शुद्ध करके ही भगवान के सम्मुख जाना चाहिए भगवतरूपी दिव्य दर्पण में स्वच्छ मुख का देखना चाहिए। पाखडियो का तो उस दर्पण से दूर ही रहना अच्छा। कबीर साहब कहते है—

'मुखड़ा क्या देखे दरपन में तेरे दया धरम नहिं मन में ?

२३४

जनम गयो बादिहिं बर बीति।
परमारथ पाले न परयो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥१॥
खेलत खात लरिकपन गो चलि, जोवन जुवतिन लियो जीति।
रोग बियोग सोग स्रम सकुल बडि वय वृथहि अतीति ॥२॥
राग दोष इरषा बिमोह बस रुची न साधु समीति।
कहे न सुने गुनगन रघुबर के, भइ न रामपद प्रीति ॥३॥
हृदय दहत पछिताय अनल अब सुनत दुसह भवभीति।
तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिय समुझि बिरद की रीति ॥४॥

भावार्थ—ऐसा मेरा यह (मनुष्य) जीवन व्यर्थ ही बीत गया। परमार्थ तनिक भी हाथ न लगा। दिन दूना रात चौगुनी अनीति बढती ही गई ॥१॥

लडकपन तो खेलने खाने में बीत गया और यौवन को स्त्रियों ने जीत लिया। (जिस यौवन मे प्रतिभा और बुद्धि का विकास होता है इन्द्रियाँ चचल रहती है चित्त में उमग

और उत्साह बढ़ता है, उसे युवतियों ने नयन बाणों से छिन्न भिन्न कर दिया, सौंदर्य के पाश में बाँधकर गुलाम बना दिया।) अब रहा बुढ़ापा, सो वह रोग, वियोग और शोक तथा परिश्रम से परिपूर्ण रहने के कारण अकारथ बीत गया ॥२॥

राग द्वेष, ईर्ष्या और मोह के कारण न तो संतों की सभा अच्छी लगी और न रघुनाथजी की गुणावली का ही कहा और न सुना। श्रीरामजी के चरणों में प्रेम ही नहीं हुआ (सारांश, आत्म कल्याण के जितने भी मार्ग हो सकते हैं वे सभी विफल रहे।)॥३॥

अब यह हृदय पश्चात्ताप की आग में जला जा रहा है, क्योंकि असहनीय संसार के भय को सुन रहा हूँ। इस तुलसी के लिए अब तो अपने विरद की रीति को सोच समझकर जो कुछ भी प्रभु से हो सके सो करें। भाव यह है कि मुझसे तो कोई साधन बना नहीं, पर सुना है कि मेरे प्रभु पतित पावन हैं सो वे अपने इस नाम के नाते मुझ पापी का भी उद्धार कर ही देंगे ॥४॥

शब्दार्थ—बादिहि = व्यर्थ ही। पाले न परयो = हाथ न लगा। सोग=शोक। समीति = (समिति) सभा। पछिताय = पश्चात्ताप।

विशेष—(१) 'जनम गयो ... बीति'—कबीर साहब भी चेतावनी दे रहे हैं—

रात गँवाई सोय कर दिवस गवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था कौड़ी बदले जाय॥
आछे दिन पाछे गये गुरु से किया न हेत।
अब पछितावा क्या कर, चिड़िया चुग गइ खेत॥

(२) 'जलत ... प्रतीति'—श्रीशंकराचार्य भी बता गये हैं—
'बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः पारेब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः॥'

(४) 'प्रभु ... कीजिय'—सो अब तो—
अवगुन मेरे बापजी बकस गरीबनिवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज॥
तुम तो समरथ साइयाँ दृढ़ करि पकरो बाँह।
धुरहीलौं पहुँचाइयो जनि छाड़ो मग माहँ॥' —कबीर

२३५

ऐसेहि जनम समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ-से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने ॥१॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल, केवल कलि मल-साने।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक करि माने ॥२॥
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पाय पिराने।
सदा मलीन पंथ के जल ज्यों, कबहुँ न हृदय थिराने ॥३॥
यह दीनता दूर करिबे को अमित जतन उर आने।
तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने ॥४॥

भावार्थ—ऐसे ही अनेक जन्म (सर्व) बीत गये। प्राणनाथ रघुनाथजी सरीखे स्वामी को छोड़कर दूसरों के चरणों की सेवा करता रहा (द्वार द्वार पर जाकर सबकी खुशामद करता फिरा याचनाएँ की उनकी मार फटकारें सही फिर भी निलज्जता के कारण वैराग्य का उदय न हुआ)।१॥

जो मूर्ख जीव कपटी कायर और दुष्ट हैं और जो केवल धन के पाश में ही लिप्त हो रहे हैं, ऐसों की प्रशंसा करते करते मुँह सूख गया है (दिन रात उनकी प्रशंसा की) उन्हें भगवान से भी बड़ा समझ रखा है ॥२॥

सुख पाने के लिए सदा करोड़ों यत्न करते करते पैर नहीं दुखे (दिन रात झूठे विषयभोगों के पीछे इधर उधर भटकता फिरा)। रास्ते के जल की तरह अन्तर सदा मैला बना रहा, कभी निर्मल या स्थिर नहीं हुआ (जैसे रास्ते का जल हमेशा उस पर चलते रहने के कारण, कभी स्थिर नहीं होता वैसे ही निरन्तर विषय-वासनाओं की उथल-पुथल से हृदय निर्विकार और स्वच्छ नहीं हो पाता।) ॥३॥

जीव की इस दीनता को दूर करने के लिए मन में अगणित उपाय सोचे पर हे तुलसी ! चित्त की चिन्ता बिना चिन्तामणि (श्रीरघुनाथजी) को पहचाने, दूर होने की नहीं। (परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होने से ही सारी चिन्ताओं का समूल नाश होगा।)

शब्दार्थ—सिराने = बीत गये। बिराने = पराये दूसरे के। पिराने-पीड़ा हुई। थिराने = स्थिर हुए।

विशेष—(१) ऐसेहि सिराने—कैसे बीत गये सो सूरदास से सुनिए —

सब दिन गये विषय के हेत।
तीनो पन ऐसे ही बीते केस भये सिर सेत ॥
रूँधी साँस मुख बैन न आवत, चन्द्र ग्रस्यौ जिमि केत।
तजि गंगोदक पियत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत ॥
करि प्रमाद गोविन्द बिसारयौ बूड्यौ कुटुम समेत।
सूरदास कछु खरच न लागत रामनाम मुख लेत ॥

कुछ भी तो न बन पड़ा—

रुचिकै सँवार नाहिं अंग अंग स्यामा स्याम
एरी धिक्कार और नाना कर्म कीबे पै।
पायन को धोय निज कर तें न पान कियो
आली अँगार पर सीतल पय पीबे पै।
बिचरे न वृन्दावन कुञ्जन लतान तरे
गाज गिरै जाय फुलवारी—सुख लीबे पै।
ललितकिसोरी बीते बरस अनेक हग—
देखे नाहिं प्रानप्यारे छार ऐसे जीबे पै।

(२) 'यह दीनता'—तब तक दीनता जाने की नहीं जब तक कि आशा ने पिंड नहीं छोड़ा, कहा है —

आशा दासस्य ये दासास्ते दासा जगतामपि।
आशा दासीकृता येन तस्य दासायते जगत ॥

२३६

जोपै जिय जानकी-नाथ न जाने ।
तौं सब करम धरम स्रमदायक ऐसेइ कहत सयाने ।।१।।
जे सुर सिद्ध, मुनीस, जोगविद वेद पुरान बखाने ।
पूजा लेत, देत पलटे सुख, हानि-लाभ अनुमाने ।।२।।
काको नाम धोखेहूँ सुमिरत पातकपुंज पराने ।
विप्र, वधिक, गज, गीध, कोटि खल कौन के पेट समाने ।।३।।
मरु से दोष दूरि करि जन के, रेनु से गुन उर आने ।
तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहि न अजहूँ अयाने ।।४।।

भावार्थ—अरे जीव ! यदि तूने श्रीजानकीजीवन रघुनाथजी को नहीं जाना, तो तेरे सारे धर्म कर्म केवल परिश्रम ही देनेवाले हैं (उनसे तुझे कोई सच्चा लाभ होने का नहीं, सारा किया धरा बेकार जायगा) ऐसा ज्ञानी पुरुषों ने कहा है (श्रीरामचन्द्रजी को तत्त्वतः जान लेना ही समस्त कर्म धर्म को सिद्ध कर लेना है ।) ।।१।।

वेद एवं पुराण कहते हैं कि जितने देवता सिद्ध बड़े बड़े मुनि और योगाभ्यासी हैं, वे सब पूजा लेकर उसके बदले में (अनित्य) सुख देते हैं। और ऐसा वे अपनी हानि और लाभ का विचार करके करते हैं, (यों ही बिना विचारे नहीं दे डालते) ।।२।।

वह किसका नाम है जिसे धोखे से भी लेने से पापों के समूह भाग जाते हैं ? अजामेल ब्राह्मण, वाल्मीकि गजेन्द्र, जटायु गीध आदि करोड़ों दुष्टों को किसने अपनाया ? ।।३।।

जिन्होंने अपने सेवकों के सुमेरु पर्वत के समान (महान्) अपराधों को भुलाकर उनके बालू के कण के समान (छोटे छोटे) गुणों को अपने हृदय में रख लिया है, हे तुलसीदास ! हे मूर्ख ! सारी आशाएँ छोड़कर, तू उन्हीं को क्यों नहीं भजता ? ।।४।।

शब्दार्थ—जोगविद=योगक्रिया जाननेवाले । पराने = दूर हो गये । विप्र = अजामेल से तात्पर्य है । वधिक=बहेलिया, वाल्मीकि से तात्पर्य है । कौन के पेट समाने =किसने शरण में लिया । मेरु—सुमेरु पर्वत । रेनु=रज का कण । अयान=मूर्ख ।

विशेष—(१) जो पै ... जाने—इसी भाव के पद्य कवितावली में भी मिलते हैं । श्रीजानकी-जीवन के न जानने से जीव की क्या दशा होती है—

काम से रूप प्रताप दिनेस से, सोम से सील गनेस से माने ।
हरिचंद्र से साँचे, बड़े विधि-से मघवा से महीप विषै सुख साने ।।
सुक-से मुनि सारद से बक्ता, चिरजीवन लोमस ते अधिकाने ।
ऐसे भये तो कहा तुलसी जो राजिवलोचन राम न जाने ।।

× × ×

सुरराज-सो राज समाज समृद्धि बिरंचि धनाधिप सो धन भो ।
पवमान सो पावक सो जस सोम सा पूषन सो भवभूषन भो ।।
करि जोग समीरन साधि समाधि कै धीर बड़ो, बसहू मन भो ।
सब जाय सुभाय कहै तुलसी जो न जानकी जीवन को जन भो ।।

निज अवगुन, गुन राम रावरे लखि सुनि मति मन रूझै।
रहनि कहनि समुझनि तुलसी की को कृपालु बिनु बूझै ॥२॥

भावार्थ—हे श्रीराम ! हे नाथ ! इस जीव को यदि यह सूझ जाय कि उसकी भलाई आपसे प्रीति जोड़ने में ही है तो वह शरीर पर सिर रहते हुए तथा स्मरण रहते हुए कबन्ध की तरह क्यों लड़ता फिरे ? (भाव यह है कि जैसे वीर पुरुषों का मस्तक विहीन रुण्ड ही जो उसके आगे आता है उसे मारता चला जाता है चेतना रहित होने के कारण यह नहीं देखता कि किसे मारना चाहिए और किसे नहीं, बस ही यह जीव कामान्ध होकर अपना हित तो समझता नहीं, किन्तु सभी के साथ वैर बाँधता फिरता है, इसे इस बात का ज्ञान ही नहीं, कि मेरा हित मेरा कल्याण आपकी कृपा से ही हो सकता है। इसीलिए यह अन्धे की तरह ब्रह्म पीयूष को छोड़कर विषय विष का पान कर रहा है) ॥१॥

अपने दोषों और आपके गुणों को देख सुनकर हे रघुनाथजी ! मेरी बुद्धि और मन रुक जाते हैं। (जी में तो आता है कि आपके चरणारविंदों की शरण में आऊँ, पर अपने दोषों की ओर देखकर बुद्धि पंगु हो जाती है मन संकोच में पड़ जाता है। सोचता हूँ कि मुझ-सरीखे पापी को वहाँ कैसे स्थान मिल सकेगा !) तुलसी का आचरण, कथन और रहस्य आपको छोड़कर, हे कृपालो ! और कौन समझ सकता है ? (आप घट घट की बात जाननेवाले हैं, सो अपनी कृपा-दृष्टि से इसका उद्धार कीजिए) ॥२॥

शब्दार्थ—अछत = (अक्षत) जिसका नाश न हो अमर। कबंध = धड़, रुण्ड। जूझ = लड़। रूझै = उलझ जाय।

विशेष—(१) निज अवगुन—श्रीवजनाथजी ने पतित जीव के निम्न मुख्य मुख्य दोष गिनाये हैं—

> काम क्रोध-युत कृपाहत कुवादी अति लोभ।
> लपट लज्जाहीन गनि विद्याहीन, असोभ ॥
> आलस अति निद्रा बहुत दुष्ट दया कर हीन।
> सूम हरिद्री जानिये रागी सदा मलीन ॥
> देन कुपात्रहिं दान पुनि, मरण ज्ञान दृढ़ नाहिं।
> भोगी मत न समुझई कछु सास्त्रन के माहिं ॥
> अति अहार प्रिय जानिये, अहंकारयुत वेतु।
> महा अलच्छन पुरुष के ये अट्ठाइस लच्छ ॥'

(२) गुन राम रावर—वाल्मीकीय रामायण में श्रीराम के दिव्य गुणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

> इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
> नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥

बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी, श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हण ।
धर्मज्ञ सत्यसन्धश्च प्रजाना च हिते रत ॥
यशस्वी ज्ञानसम्पन्न शुचिर्वश्य समाधिमान् ।
प्रजापतिसम श्रीमान्धाता रिपुनिषूदन ॥
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठित ॥
× × ×
स च सर्वगुणोपेत कौसल्यानन्दवर्द्धन ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥'

(३) 'रहिन बूझ'—क्योंकि अन्तर्यामी ही हृदय की बात जानकर उसका यथेष्ट प्रतीकार कर सकता है। कबीर साहब विनती करते हैं —

'मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा विकार ।
तुम दाता दुखभञ्जन, मेरी करो सम्हार ॥
अन्तरजामी एक तुम आतम के आधार ।
जो तुम छोड़ो हाथ तो कौन उतारे पार ॥'

२३९

जाको हरि दृढ करि अंग कर्यो ।[1]
सोइ सुसील पुनीत बेदबिद, बिद्या गुननि भर्यो ॥१॥
उतपति पांडु-तनय की करनी सुनि सतपथ डर्यो ।
ते त्रैलोक्य-पूज्य, पावन जसु, सुनि सुनि लोक तर्यो ॥२॥
जो निज धरम बेद-बोधित सो करत न कछु बिसर्यो ।
बिनु अवगुन कृकलास कूप मज्जित कर गहि उधर्यो ॥३॥

---

१ इसी भाव का सूरदासजी का भी यह पद है

जाको मनमोहन अंग कर्यो ।
ताको केस खस्यो नहिं सिर तें जो जग बैर पर्यो ॥
हिरनकसिपु परिहारि थक्यो प्रह्लाद न नेकु डर्यो ।
अजहूँ लौं उत्तानपाद-सुत राज करत न मर्यो ॥
राखी लाज द्रुपद-तनया की कोपित चीर हर्यो ।
दुरजोधन को मान भंग करि बसन प्रवाह भर्यो ॥
विप्र भक्त नृप अंधकूप दिय बलि पढ़ि बेद छर्यो ।
दीनदयालु कृपानिधि की गुन काप न्ह्यो पर्यो ॥
जो सुरपति कोप्यो ब्रज ऊपर कहिधौं कछु न सर्यो ।
राखे ब्रजजन नंद के लाला गिरिधर बिरद धर्यो ॥
जाको, बिरद है गरबप्रहारी, सो कैसे बिसर्यो ।
सूरदास' भगवत भजन करि सरन गहे उधर्यो ॥

ब्रह्म बिसिष ब्रह्माण्ड-दहन छम गर्भ न नृपति जर्यो ।
अजर अमर, कुलिसहुँ नाहिन बध, सो पुनि फेन मर्यो ॥४॥
बिप्र अजामिल अरु सुरपति तें कहा जो नहिं बिगर्यो ।
उनको किये सहाय बहुत, उर को संताप हर्यो ॥५॥
गनिका अरु कंदर्प तें जग महँ अघ न करत उबर्यो ।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि निज हृदि भवन धर्यो ॥६॥
केहि आचरन भलो मानैं प्रभु सो तो न जानि पर्यो ।
तुलसिदास रघुनाथ कृपा को जोवत पंथ खर्यो ॥७॥

भावार्थ—जिसे श्रीहरि ने दृढ़तापूर्वक अंगीकार कर लिया वही सुशील है, पवित्र है, वेदज्ञ है और समस्त विद्या एवं सद्गुणों से परिपूर्ण है (क्योंकि वह राम का प्यारा है इसलिए बिना बुलाये ही सब गुण उसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं) ॥१॥

पाण्डु के पुत्रों की उत्पत्ति और उनकी करतूत को सुनकर सम्मान तक डर गया था, किन्तु वे श्रीहरि-कृपा से तीनों लोकों में पूजनीय हो गये और उनका पवित्र यश सुन सुनकर लोग (संसार सागर से) तर गये (मुक्त हो गये) ॥२॥

जो राजा नृग वेद विहित वर्णाश्रम धर्म से तनिक भी विचलित नहीं हुआ था, और जो बिना ही किसी दोष के गिरगिट होकर कुएँ में पड़ा हुआ था, उसे आपने हाथ पकड़कर बाहर निकाल लिया और उसका उद्धार कर दिया (गिरगिट की योनि से छुड़ाकर दिव्यलोक को भेज दिया) ॥३॥

ब्रह्माण्ड तक को भस्म कर देनेवाले (अश्वत्थामा के) ब्रह्मास्त्र से राजा (परीक्षित) गर्भ में नहीं जल सका और अजर एवं अमर (नमुचि) दैत्य जो वज्र से भी न मरा था फेन से मर गया ॥४॥

अजामिल ब्राह्मण और इन्द्र से ऐसी कौन सी बात थी जो न बिगड़ी हो ? किन्तु आपने उनकी भारी सहायता की और उनका कष्ट दूर कर दिया ॥५॥

वेश्या और कामदेव ने संसार में ऐसा कौन सा पाप है जो न किया हो किन्तु भगवान ने उनका चरित्र पवित्र समझकर उन्हें भी अपने हृदय मन्दिर में स्थान दिया ॥६॥

भगवान् किस आचरण से प्रसन्न होते हैं, यह समझ में नहीं आता । तुलसीदास तो श्रीरघुनाथजी की कृपा का ही मार्ग खड़ा-खड़ा देखता रहता है (वह और कुछ नहीं जानता, केवल कृपा की ही बाट जोहता रहता है ।) ॥७॥

शब्दार्थ—अंग कर्यो = अपना लिया वश किया । वाचित=विहित । कृकलास =गिरगिट । धर्म=(चर्म) समय । नृपति=महाराजा परीक्षित से आशय है । कन्दर्प = कामदेव । उबर्यो=बचा । खर्यो=खड़ा ।

विशेष—(१) उत्पत्ति पाण्डुतनय की—पाण्डु के पाँचों पुत्र पाँच देवताओं के वीर्य से उत्पन्न हुए थे । युधिष्ठिर धर्मराज से भीम वायु से अर्जुन इन्द्र से और नकुल-सहदेव अश्विनीकुमार से उत्पन्न माने जाते हैं ।

(२) 'करनी'—सबसे बुरी करनी तो यही है, कि पाँचों भाइयों ने एक ही स्त्री द्रौपदी के साथ पत्नी सम्बन्ध जोड़ा।

(३) 'ब्रह्म जरयो' अश्वत्थामा ने, पाण्डवों को निर्वंश करने के लिए परीक्षित को गर्भ में ही ब्रह्मास्त्र से मारना चाहा था, परन्तु भगवत्कृपा से वह ब्रह्मास्त्र से भी बाल-बाल बच गये।

(४) 'अजर मरयो'—नमुचि दैत्य ने ब्रह्मा से यह वर माँग लिया था कि मैं किसी भी अस्त्र शस्त्र से न मारा जाऊँ न शुष्क पदार्थ से मेरी मृत्यु हो न आर्द्र से हो। देवासुर-संग्राम में इसने बड़ा घोर उत्पात किया। इन्द्र इसे जब न मार सका, तब आकाशवाणी हुई कि यह किसी भी अस्त्र शस्त्र से नहीं मारा जा सकता। इसकी मृत्यु तो समुद्र के फेन से हो सकेगी, क्योंकि वह न शुष्क है और न आर्द्र। अतः वह फेन से मारा गया।

(५) 'सुरपति'—इन्द्र ने ऋषि पत्नी अहल्या के साथ सम्भोग किया, विश्वरूप ब्राह्मण का वध किया, तथा और भी कई पातक अन्धे होकर किए। इन्द्र की अनेक पापमयी कथाएँ पुराणों में प्रसिद्ध हैं।

(६) 'गनिका'—पिंगला से आशय है श्रीमुख से भगवान् ने उद्धव के प्रति इसकी प्रशंसा की है।

२४०

सोइ सुकृती, सुचि, साँचो जाहि राम ! तुम रीझे।
गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गये, लै करसी प्रयाग कब सीझे ॥१॥
कबहुँ न डग्यो निगम मग ते पग, नृग जग जानि जिते दुख पाये।
गज धौं कौन दिछित जाके सुमिरत, लै सुनाभ वाहन तजि धाये ॥२॥
सुर मुनि बिप्र बिहाय बड़े कुल, गोकुल जनम गोपगृह लीन्हो।
बायो दियो बिभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर घर कीन्हो ॥३॥
मानत भलहि भलो भगतनि ते, कछुक रीति पारथहि जनाई।
तुलसी सहज सनेह राम बस, और सबै जल की चिकनाई ॥४॥

भावार्थ—हे रामजी ! जिस पर आप प्रसन्न हो गये वही सच्चा पुण्यात्मा है और वही पवित्रात्मा। वेश्या (पिंगला) गीध (जटायु) और बहेलिया (वाल्मीकि) जो बैकुण्ठ धाम चले गये उन्होंने कब प्रयाग में आकर घोर तप किया, और कण्डों की आग में जलकर मरे ? (पञ्चाग्नि तप करते हुए मरे) ॥१॥

राजा नृग कभी वेदोक्त मार्ग पर से नहीं हटा था किन्तु संसार जानता है कि उसने कितने दुःख भोगे (गिरगिट की योनि पाकर हजारों वर्ष कुएँ में पड़ा सड़ता रहा) और वह हाथी कहाँ का बड़ा दीक्षित था जिसके एक बार स्मरण करते ही आप अपने वाहन गरुड़ को छोड़कर चक्र सुदर्शन लिये दौड़ आये ॥२॥

देवता मुनि और ब्राह्मणों के ऊँचे कुल को छोड़कर आपने गोकुल में एक ग्वाले के घर में जन्म लिया। कौरवराज महाराजा दुर्योधन के ऐश्वर्य को ठुकराकर आपने दीन

विदुर के घर जाकर (साग भाजी का) भोजन किया ॥३॥

भगवान् अपने अनन्य भक्तों के साथ प्रेम का ही नाता मानते हैं। (भाव, भक्तों के प्रेमाधीन रहते हैं अन्य साधना द्वारा वश में नहीं होते।) इस अनन्य प्रेम भक्ति की रीति कुछ कुछ आपने (अपने सखा) अर्जुन को बताई थी। हे तुलसीदास! श्रीरघुनाथ जी तो सरल सहज प्रेम के अधीन हैं दूसरे जितने भी साधन हैं, वे ऐसे हैं, जैसे पानी की चिकनाई। भाव यह है कि पानी पड़ते ही थोड़ी देर के लिए, शरीर चिकना सा मालूम देता है पर सूखने पर फिर ज्यों का त्यों रूखा हो जाता है। इसी प्रकार अन्य साधनों से क्षणिक सुख मिल जाता है, किन्तु दूसरी वासना पैदा होते ही, माया की हवा लगते ही वह सुख मिट जाता है ॥४॥

शब्दार्थ—सुकृती = पुण्यकर्मा। करसी=कंडो। दिच्छित=(दीक्षित) गुरुमुख। सुनाभ=चक्र। वाहन = गरुड से आशय है। पारथ = पृथापुत्र अर्जुन।

विशेष—(१) ल करसी सीझे — करसी के स्थान पर काशी' पाठ मानने वाले इसका यों अर्थ करते हैं —

वेश्या गिद्ध, निषाद को बैकुण्ठ ले गये सो इन्होंने काशी और प्रयाग में कब स्नान किए थे?

(२) भाया दियो कीन्हो —एक बार अभिमानी दुर्योधन ने अपना राज्य वैभव दिखाने के लिए श्रीकृष्ण को निमन्त्रण दिया। भगवान् उसका कपट भाव ताड़ गये। उसके यहाँ न जाकर वे गरीब विदुर के घर चले गये। विदुर की साध्वी स्त्री से जब कुछ खाने को मांगा तो सूखी साग भाजी खाकर वहाँ परम संतोष माना। कहते हैं कि विदुर की स्त्री ने प्रेमावेश में केले का गूदा तो फेंक दिया और छिलके श्रीकृष्ण के हाथ में दे दिये। सूरदासजी कहते हैं —

सन्तन भक्त मित्र हितकारी स्याम विदुर गृह आये।
अन्तिरत बाढ्यो प्रीति निरन्तर, साग भवन हूँ लाये ॥'

(३) रीति पारथहिं जनाई —श्रीकृष्ण भगवान ने सारथी बनकर अर्जुन का रथ हाँका, समय समय पर उसकी भली बुरी बात सुनी फिर भी सदा मैत्री का निर्वाह किया।

(४) श्रीसूरदासजी भी इसी रीझ पर गा रहे हैं —

आप दीनानाथ ढरैं।
सोइ कुलीन, बड़ो सुन्दर सोइ जापर कृपा करैं।
राजा कौन बड़ो रावन तें गर्वहिं गर्व गरै ॥
रंक सु कौन सुदामा हूँ तें आप समान करै।
रूपवान कौन अधिक सीता तें जनम वियोग भरै ॥
अधिक कुरूप कौन कुबजा तें हरि पति पाइ वरै।
जोगी कौन बड़ो संकर तें, ताकहँ काम छरै ॥
कौन विरक्त अधिक नारद तें निसिदिन भ्रमत फिरै।
अधम सु कौन अजामिल हूँ तें, जम तहँ जात डरै ॥
सूरदास भगवत भजन बिनु फिरि फिरि जठर परै।

२४१

तव तुम मोहूँ से सठनि को हठि गति देते ।[१]
कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर, सुनि आदर आगे ह्वै लेते ॥१॥
पाप खानि जिय जानि अजामिल, जमगन तमकि तये ताको भेते ।
लियो[२] छुड़ाइ, चले कर मीजत, पीसत दांत गये रिस रेते ॥२॥
गोतम तिय, गज, गीध, विटप कपि, हैं नाथहि नीके मालुम जेते ।[३]
तिन्ह तिन्ह काजनि साधु सभा[४] तजि कृपासिंधु तब-तब उठि गेते ॥३॥
अजहुँ अधिक आदर यहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते ।
मेरे पासगहु न पूजिहैं ह्वै गये, हैं, होने खल जेते ॥४॥
हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो, न रावरे चेते ।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै, सहि न जात मोपै परिहास एते ॥५॥

भावार्थ — तो आप मुझ-जैसे दुष्टों को भी हठपूर्वक परमगति देते। (जबकि आपने अनेक दुष्टों को परमगति दी है।) कोई कैसा ही पापी क्यों न हो, पर ज्योंही वह आपका (राम) नाम लेता है आप आदर के साथ उसे आगे जाकर लेते हैं (यह तो सिद्ध हो चुका कि आप बड़े बड़े पापियों और दुष्टों को शरण में ले लेते हैं, उन्हें संसार से मुक्त कर देते हैं। पर मुझे अभी तक क्या सुगति नहीं दी? क्या मैं वैसा दुष्ट नहीं हूँ? या तो नहीं कुछ और ही कारण होगा।) ॥१॥

(पापियों के उद्धार के प्रमाण लीजिए) यमदूतों ने अपने मन में, अजामिल को पापों की खानि समझकर, उसे डाँट डपटकर भय दिखाते हुए कष्ट दिया, किन्तु आपने उसे उनके हाथ से छुड़ा लिया। वे बेचारे यमदूत हाथ मलते और दाँत पीसते हुए क्रोध भरे चले गये। (कुछ भी वश न चला) ॥२॥

गौतम की स्त्री (अहल्या) हाथी, गीध (जटायु) वृक्ष (यमलार्जुन), वानर और जो जो आपको भलीभाँति मालूम हैं, उन सबका जब कोई काम पड़ा, तब आप संत समाज को भी छोड़कर वहाँ से चल दिये (उनका कष्ट आपको क्षण मात्र भी सहन न हो सका।) ॥३॥

आपके दरवाजे पर आज भी पापियों का बड़ा आदर है। न जाने कितने पापी यहाँ नित्य पवित्र बनाये जाते हैं। संसार में जितने भी पापी हुए हैं, मौजूद हैं, और आगे होंगे वे सब मेरे पासँग में भी पूरे न होंगे। (तब तो मेरा उद्धार सबसे पहले होना चाहिए था, पर अभी तक हुआ नहीं, इसका कारण क्या है?) ॥४॥

अब तक तो मैं आपके करतब की ओर टक लगाये देख रहा था (कि कब आप मुझे शरण में लेते हैं) पर आपने इधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसलिए अब

१ पाठान्तर 'तौ तुम मोहूँ से सठनि को हठि गति न देते।'
२ पाठान्तर 'लिए'।
३ पाठान्तर 'ते ते'।
४ पाठान्तर 'तिन्हके काज साधु-समाज।'

तुलसीदास आपके नाम का पुतला बाँधेगा, क्योंकि मुझसे अब इतना अधिक उपहास सहन नहीं हो सकता। (लोग तालियाँ पीट-पीटकर कहते हैं, कि देखो, यह कैसा पाखंडी है! बना चला था रामदास यह! यदि यह रामदास होता, तो क्या इस तरह मारा-मारा फिरा करता?) ॥५॥

शब्दार्थ—गति=मोक्ष। पामर=पापी। तमकि=क्रोध करके। रिस रैते=क्रोधित। विटप=यमलार्जुन से आशय है। ग ते=वे गये थे। पासग=तराजू के पलड़ा की कसर।

विशेष—(१) 'कसेहुँ लेते'—विभीषण इस प्रसंग का प्रमाण है। शरण में जाते ही भगवान ने उसका कैसा आदर सत्कार किया यह किसी से छिपा नहीं है —

'रामहिं करत प्रनाम निहारिकै।
उठे उमगि आनँद प्रेम परिपूरन बिरद बिचारिकै॥
भयो बिदेह बिभीषन उत इत प्रभु अपुनपौ बिसारिकै।
भली भाँति भावते भरत ज्यों भेंट्यो भुजा पसारिकै॥
सादर सबहिं मिलाइ समाजहिं, निपट निकट बैठारिकै।
बूझत छेम कुसल सप्रेम अपनाइ भरोसे भारिकै॥
नाथ! कुसल कल्यान सुमंगल बिधि सुख सकल सुधारिकै।
देत लेत जे नाम रावरो बिनय करत मुख चारिकै॥
जो मूरति सपने न बिलोकत मुनि महेस मन मारिकै।
तुलसी तेहि हौं लियो अंक भरि कहत कछू न सँवारिकै॥

[गीतावली

(२) पूतरा बाँधि है—जब नटों को खेल दिखाने पर कुछ भी नहीं मिलता, तब वे कपड़े का पुतला बाँस पर लटकाकर कहते हैं कि देखो यह सूम है। सूम इस नकल से लज्जित होकर उनको कुछ-न-कुछ दे ही देता है। इसी तरह मैं भी एक पुतला बना कर लिये फिरूँगा। लोग जब पूछेंगे कि यह क्या है तो यही उत्तर दूँगा कि यह सूम शिरोमणि अयोध्याधिप महाराजा रामचन्द्रजी हैं। इससे आप अवश्य लज्जित हो जायँगे, और तब मुझे अपनाना ही पड़ेगा।

२४२

तुम सम दीनबंधु न दीन कोउ मोसम, सुनहु नृपति रघुराई।
मोसम कुटिल मौलिमनि नहिं जग, तुमसम हरि न हरन कुटिलाई॥१॥
हौं मन बचन करम पातक रत, तुम कृपालु पतितन-गतिदाई।
हौं अनाथ प्रभु! तुम अनाथ हित, चित यहि सुरति कबहुँ नहिं जाई॥२॥
हौं आरत आरति-नासक तुम, कीरति निगम पुरानन गाई।
हौं सभीत, तुम हरन सकल भय, कारन कवन कृपा बिसराई॥३॥
तुम सुखधाम राम स्रम भंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध स्रम पाई।
यह जिय जानि दासतुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई॥४॥

भावार्थ—हे महाराज रामचन्द्रजी ! आपके समान तो कोई भी दीनजनों का भला करनेवाला बन्धु नहीं है, और मेरे समान कोई दीन नहीं। संसार में मेरी बराबरी का दूसरा कोई कुटिल शिरोमणि नहीं है, और आपके बराबर हे नाथ ! कुटिलता का नाश करनेवाला कोई नहीं है ॥१॥

मैं मन से, वचन से और कर्म से पापों में निरत रहता हूँ और हे कृपालो ! आप पापियों को मोक्ष देनेवाले हैं। हे प्रभो ! मैं अनाथ हूँ मेरा कोई धनी धोरी नहीं, और आप अनाथों का हित करनेवाले हैं। यह बात मेरे मन से कभी नहीं जाती ॥२॥

मैं दुखी हूँ तो आप दुःखों का निवारण करनेवाले हैं। आपका यह यश वेदों और पुराणों ने गाया है। मैं संसार से डरा हुआ हूँ (जन्म मरण के असह्य दुःख से डर रहा हूँ) और आप सब भय नाश करनेवाले हैं। (जब आपके और मेरे इतने सारे नाते हैं तब) क्या कारण है कि आप मुझ पर कृपा नहीं करते ? ॥३॥

हे श्रीरामजी ! आप आनन्द के धाम तथा श्रम के हरनेवाले हैं। मैं भी संसार के तीनों (दैहिक दैविक और भौतिक) श्रमों से अत्यन्त दुखी हो रहा हूँ। सो, अपने मन में इन सब बातों पर विचार करके और अपनी प्रभुता को समझकर तुलसीदास को अपनी शरण में अब रख ही लीजिए ॥४॥

शब्दार्थ—रत = लगा हुआ। गति=मोक्ष। त्रिविध श्रम = दैहिक भौतिक और दैविक दुःख।

विशेष—(१) इस पद में गोसाइंजी ने जीव और ब्रह्म के, दास्यभाव के अनुसार, अनेक सम्बन्ध गिनाये हैं। कवितावली में इसी अनेकविध सम्बन्ध को दूसरे ढंग से कहा है —

'राम मातु पितु, बंधु, सुजन गुरु, पूज्य परमहित।
साहिब, सखा सहाय, नेह नाते पुनीत चित॥
देस कोस कुल कर्म, धर्म, धन, धाम धरनि गति।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति॥
परमारथ, स्वारथ, सुजस सुलभ राम तें सकल फल।
कह तुलसिदास अब जब कबहुँ एक राम तें मोर भल।'

२४३

यहै जानि चरनन्हि चित लायो।
नाहिन नाथ ! अकारन को हितु, तुम समान पुरान स्रुति गायो ॥१॥
जननि, जनक, सुत दार, बंधुजन भये बहुत जहँ-जहँ हौं जायो।
सब स्वारथहित प्रीति कपट चित काहू नहिं हरिभजन सिखायो ॥२॥
सुर-मुनि मनुज दनुज अहि किन्नर मैं तनधरि सिर काहि न नायो।
जरत फिरत त्रयताप पापबस काहु न हरि ! करि कृपा जुड़ायो ॥३॥
जतन अनेक किये सुख कारन हरिपद विमुख सदा दुख पायो।
अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत बिपति जाल जग छायो ॥४॥

मो कहँ नाथ ! बूझिये यह गति सुख-निधान निज पति बिसरायो ।
अब तजि रोष करहु करुना हरि ! तुलसिदास सरनागत आयो ॥५॥

भावार्थ—यहाँ आकर मन आपके चरणों में स्थिर लगाया है, कि हे नाथ ! आपके समान, बिना ही कारण हित करनेवाला कोई दूसरा नहीं है ऐसा वेदों और पुराणों ने कहा है (आपको ही मैंने निष्कारण हितू सुना है अब सब ओर से मन को हटाकर आपके चरणारविन्दों में लगा दिया है) ॥१॥

जहाँ-जहाँ (जिस जिस योनि में) मैंने जन्म लिया वहाँ-वहाँ मेरे बहुत से पिता माता पुत्र स्त्री और भाई बन्धु हुए। ये सब अपना स्वार्थ साधन के लिए ही प्रेम करते रहे, पर मन में उनके छल-कपट रहा। किसी ने भी मुझे हरिभजन का उपदेश नहीं दिया (संसार-जाल में फँसने की ही सलाह दी छूटने की शिक्षा न भी न दी।) ॥२॥

शरीर धारण कर देवता मुनि मनुष्य राक्षस सर्प किन्नर आदि किसे मैंने सिर नहीं नवाया किसके पैरों पर नहीं पड़ा ? किन्तु हे हरे ! पाप के परिणामस्वरूप तीनों तापों से जलते हुए मुझे किसी ने तो दयाकर शीतलता प्रदान नहीं की (वे बेचारे स्वयं ही जब जले जा रहे हैं तो मुझे क्या शीतलता देंगे ?) ॥३॥

मैंने सुख प्राप्ति के अर्थ अनेक उपाय किए पर हरि चरणों से विमुख होने के कारण सदा दुःख ही मिला। संसार में विपत्तियों का जाल बिछा हुआ देखकर अब मैं (सब साधनों से) ऐसा थक गया हूँ, जैसे बिना पानी के नौका थक जाती है (नाव तो तभी चल सकती है जब पानी हो बिना पानी के वह कैसे चलेगी ? इसी तरह भगवद् भक्ति रूपी यदि जल का आधार है, तो साधनरूपी नौका चलेगी। बिना इस आधार के नौका का चलना सम्भव नहीं) ॥४॥

हे नाथ ! मेरी यह दशा इसीलिए हुई है कि मैंने अपने सुख निधान स्वामी को भुला दिया। हे हरे ! अब मेरे दोषों का विचार छोड़कर इस शरणागत तुलसीदास पर दया कीजिए ॥५॥

शब्दार्थ—जायो=जन्म लिया। जुड़ायो=ठंडा किया शान्त किया।

विशेष—(१) जननि हौं जायो'—ऐसे स्वार्थी माता पिता व भाई-बन्धुओं के विषय में गोसाइँजी ने कहा है —

जरउ सो संपति सदन, सुख, सुहृद मातु पितु, भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहज सहाइ ॥'

[दोहावली

(२) हरिपद पायो —

बिनु गुरु होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु ?
गावहिं बेद-पुरान सुख कि लहिय हरिभगति बिनु ?

[रामचरितमानस

(३) सुखनिधान निज पति'—वास्तव में इस जीव का सच्चा पति तो परमात्मा ही है। निज पति को भुला देने से जीव को विधवा की तरह, कैसी-कैसी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। कबीर साहब परम विरहाकुल होकर सुखनिधान निजपति' से मिलने

के लिए कसे अधीर हो रहे है —

'अविनासी दुलहा कब मिलिहौ भक्तन के रछपाल।
जल उपजी जल ही सो नेहा, रटत पियास पियास।
मै ठाढ़ी बिरहिन मग जोऊ, प्रियतम तुमरी आस।।
छोडे गेह नेह लगि तुम सो, भई चरन लौलीन।
तालाबेलि होत घट भीतर, जसे जल बिन मीन।।
दिवस न भूख रैन नहिं निंदिया, घर अंगना न सुहाय।
सेजरिया बरिन भइ हमको, जागत रैन बिहाय।।
हम तो तुमरी दासी, सजना तुम हमरे भरतार।
दीनदयाल दया कर आवो, समरथ सिरजनहार।।
कै हम प्रान तजत हैं प्यारे, कै अपनी कर लेव।
दास कबीर बिरह अति बाढ्यो, हमको दरसन देव।।'

२४४ 9mp

याहि तें मैं हरि ! ग्यान गँवायो।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं, बाहर फिरत बिकल भयो धायो।।१।।
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि, तरु, लता भूमि, बिल परमसुगंध कहां तें आयो।।२।।
ज्यों सर बिमलबारि-परिपूरन, ऊपर कछु सिवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजि हौं सठ, चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो।।३।।
ब्यापत त्रिबिध ताप तनु दारुन तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपनेहिं धाम नाम-सुरतरु तजि विषय-बबूर बाग मन लायो।।४।।
तुम सम ग्यान निधान, मोहि सम मूढ़ न आन पुराननि गायो।
तुलसिदास प्रभु! यह बिचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो।।५।।

भावार्थ—हे हरे ! अपने हृदय कमल में स्थित वस्तु को छोड़कर जो मै बाहर, इधर इधर अनेक साधनों के पीछे व्याकुल होकर दौड़ता फिरा, यही कारण है कि मैने (आत्म) ज्ञान को खो दिया (अज्ञान में पड़ गया, जिसका फल यह हुआ कि आज तक आपके दर्शन नहीं हुए।) ।।१।।

जसे महामूर्ख मृग अपने ही शरीर में (नाभि के भीतर) सुन्दर कस्तूरी के होते हुए भी उसका रहस्य नहीं जानता और पहाड़, पेड़, लता, धरती और बिलों में खोजता फिरता है, कि यह उत्तम सुगन्ध आ कहां से रही है। (उसी प्रकार मैं इधर उधर सुख पाने के लिए दौड़ रहा हूँ, यद्यपि अखंड ज्ञानस्वरूप परमात्मा मेरे अन्दर में ही निवास कर रहे हैं। यह मेरा भ्रम नहीं तो और क्या है?) ।।२।।

सरोवर निर्मल पानी से पूरा भरा हुआ है, पर ऊपर से कुछ सिवार घास छायी हुई है। उस तालाब का स्वच्छ जल छोड़कर मैं दुष्ट अपना हृदय जला रहा हूँ और इस प्रकार अपनी प्यास बुझाना चाहता हूँ। (भाव यह है कि हृदय-सरोवर में आत्मा-

न्दरूपी जल अगाध भरा है पर माया मोह की सिवार ऊपर छा जाने से यह दिखायी नहीं देता और यह जीव आनंद जल की उत्कण्ठा से व्याकुल हो रहा है, त्रिविध ताप से जला जा रहा है ॥३॥

एक तो वैसे ही शरीर में त्रिविध ताप व्याप रहे हैं जो असह्य हैं और तिस पर दारुण दरिद्रता सता रही है। यह इसलिए हुआ कि अपने ही घर में राम नामरूपी कल्प वृक्ष को छोड़कर मैंने विषयरूपी बबूल के बाग में अपना मन लगा रखा है ॥४॥

आपके समान तो ज्ञानराशि और मेरे समान मूर्ख कोई दूसरा नहीं है यह बात पुराणों ने कही है। हे नाथ! इस बात को ध्यान में रखकर आपको जो उचित लगे, वहीं इस तुलसीदास के लिए कीजिए ॥५॥

शब्दार्थ—मद=कस्तूरी से आशय है। सिवार=पानी में होनेवाली एक प्रकार की घास।

विशेष—(१) 'बाहर फिरत धायो'—किसी किसी टीकाकार के मत से बाहर शब्द का अर्थ तीर्थ यात्रा मूर्ति पूजा आदि है। पर यह ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि गोसाईजी ने तीर्थ-यात्रा और मूर्ति पूजा का खंडन नहीं किया बल्कि उन्हें भगवत्प्राप्ति का साधन बताया है। 'बाहर' से तो आशय यह है, कि भ्रमपूर्ण सांसारिक सुखों में परमानन्द की इच्छा करना कैसे बन सकता है? अतः 'विषयासक्ति' ही यहां बाहर है।

(२) कुरंग—कबीर साहब कहते हैं—

तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर ढूंढै घास॥'

। २४५ ।

मोहिं मूढ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुख रोयो ॥१॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहिं रहत, दूर जनु खोयो।
बहु भांतिन स्त्रम करत मोहबस, वृथहिं मदमति वारि बिलोयो ॥२॥
करम कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहिं मल धोयो।
तृषावत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो ॥३॥
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ॥४॥

भावार्थ—इस मूर्ख मन ने मेरा खूब ही नाश किया। सुनिए हे करुणामय! इसीके कारण मैं बार-बार जगत में जन्म लेकर रोता रोता फिरा ॥१॥

शीतल मधुर अमृत के समान सहज आत्मानन्द का जो समीप ही रहता है, मैंने इसके फेर में पड़कर यों भुला दिया जैसे वह बहुत दूर हो। अज्ञानवश मन अनेक प्रकार से श्रम किया। मूर्ख मैंने व्यर्थ ही पानी को मथा। (विषय वासनाओं का जल मथकर उसमें से आत्मानन्दरूपी मक्खन निकालना चाहा। पर कहीं पानी में से भी मक्खन निकलता है? वह तो भगवद्भक्तिरूपी दूध से ही निकलेगा।) ॥२॥

यद्यपि यह जानता था कि कर्म कीचड़ है, फिर भी चित्त को उसी में सान दिया और मल से ही मल को धोना चाहा। (देखते हुए भी अंध की तरह विषय वासना के पंक में जा फँसा)। मैं ऐसा दुष्ट और मूर्ख हूँ कि प्यास के मारे गंगा को छोड़कर बार बार व्याकुल हो आकाश को निचोड़ रहा हूँ। (दु:खरूप विषयों से चिपटकर आत्मानन्द प्राप्त करने की चेष्टा करता फिरता हूँ।) ॥३॥

हे नाथ! मैंने अपना एक भी अपराध नहीं छिपाया, अतः अब इस तुलसीदास पर कृपा कीजिए। बिस्तर बिछाते बिछाते ही सारी रात बीत गई पर हे नाथ! कभी नींदभर नहीं सोया। (सुख प्राप्ति के उपाय करते करते ही सारा जीवन बीत गया पर सच्चा भरपूर सुख आज तक कभी न मिला। यह अखंड सुख निद्रा केवल आपकी कृपा से ही प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं) ॥४॥

शब्दार्थ—बिगोयो=बिगड़ा। सहजसुख=परमानन्द। बिलोयो=मथन किया। कीच=कादव। निचोयो=निचोड़ा। गोयो=छिपाया। डासत=बिछौना बिछाते हुए।

विशेष—(१) माहिं ... बिगोया—बरबाद करेगा ही, क्योंकि—

बाजीगर का बंदरा ऐसा जिउ मन साथ।
नाना नाच नचाइके राखे अपने हाथ॥'

—कबीरदास

(२) 'कर्म कीच'—इस पद से यह न समझ लिया जाय कि गोसाइंजी ने कर्म योग का खंडन किया है। निष्काम कर्म का आदेश तो वह यत्र-तत्र दे ही रहे हैं। यहाँ सकाम और विषयासक्त कर्म से तात्पर्य है, जो वास्तव में बंधन का कारण है।

(३) मनहिं मल धोयो—

'मल की जाइ मलहिं के धोये ?'

[रामचरितमानस

यह तो—

'राम भक्ति जल बिनु खगराई। अभ्यंतर मल कबहुँ न जाई।'

(४) तृषावंत ... निचोया'—यों भी कहा है—

तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं वाञ्छति दुर्भगः।'

किन्तु गोसाइंजी की यह उक्ति इससे भी बढ़कर है। 'आकाश निचोयो' में एक निराला ही चमत्कार है।

२४६

लोक-बेद हूँ विदित बात सुनि समुझि
मोह मोहित विकल मति थिति न लहति।
छोटे बड़े, खोटे-खरे, मोटेऊ दूबरे,
राम! रावरे निबाहे सबही की निबहति ॥१॥

होती जो आपने बस रहती एक ही रस,
दुनी न हरष-सोक सांसति सहति।
चहतो जो जोई-जोई लहतो सो सोई सोई
केहू भाँति काहू की न लालसा रहति ॥२॥
करम, काल सुभाउ गुन-दोष जीव जग माया तें
सो सभय भौंह चकित-चहति।
ईसनि, दिगीसनि जोगीसनि, मुनीसनि हूँ,
छोड़ति छोड़ाये तें गहाये तें गहति ॥३॥
सतरंज को सो राज काठ को सब समाज,
महाराज बाजी रची प्रथम न हति।
तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो-जीतिबो नाथ !
बहु बेष, बहु मुख सारदा कहति ॥४॥

भावार्थ—छोटे-बड़े बुरे भले भाग्य और दुर्बल, इन सबके हे श्रीराम ! आपके ही नियम से नियमित है—यह बात संसार और वेदों में प्रकट है। किन्तु इसे सुन कर और विचारकर भी मोहवश मेरी बुद्धि ऐसी व्याकुल हो रही है कि यह स्थिर नहीं हो रही है ॥१॥

जो यह अपने वश में होती तो सदा एक रस ही में रहती। न किसी को हर्ष होता न शोक। और न यातना ही भोगनी पड़ती। जो जिस वस्तु की इच्छा करता वही उसे मिल जाती। किसी की कोई भी इच्छा बाकी न रहती (सारी कामनाएँ पूरी हो जाती।) ॥२॥

किन्तु ऐसा है नहीं। कर्म काल स्वभाव गुण और दोष ये सब आपकी माया से हैं और वह माया भी मारे डर के भौंचक्की सी होकर आपकी भृकुटि की ओर देखती रहती है (आपके रुख पर चलती है)। यह माया शिव, ब्रह्मा और दिक्पालों को, योगीश्वरों और मुनीश्वरों को आपके ही छुड़ाने से छोड़ती है और आपके ही पकड़ाने से पकड़ लेती है ॥३॥

इस माया का सारा समाज शतरंज का-सा राज्य है (झूठा है) सब काठ का बना है। असल में न तो कोई राजा है, न कोई वजीर। महाराज ! शतरंज की यह बाजी आपकी ही रची हुई है। यह पहले नहीं थी। तुलसीदास कहते हैं, कि हे प्रभो ! इस बाजी की हार जीत आपके ही हाथ में है (चाहे हराइए चाहे जिताइए चाहे बन्धन में डाल दीजिए, चाहे मुक्त कर दीजिए) यह बात सरस्वती ने अनेक रूप धारण कर, अनेक मुखों से कही है ॥४॥

शब्दार्थ—थिति = (स्थिति) स्थिरता, शांति। दुनी=दुनिया। सांसति=कष्ट। लालसा=इच्छा। हति=था।

विशेष—(१) 'राम ... निबहति' कहा है

होइ है वहि जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावहि साखा ॥'

× × ×

'राम कीन्ह चाहहिं सो होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥'

(२) 'छोड़ति गहति'—प्रमाण है,

'भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥'

[भगवद्गीता

तथा,

'उमा दारु-जोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं॥'

(३) 'सतरंज हवि'—श्रीवैजनाथजी का निम्नलिखित भाव चमत्कार द्रष्टव्य है

"हे रघुनन्दन! हे महाराज! मोह दल लेकर माया, तथा विवेक दल लेकर जीव दोऊ बाजी रचे खेलि रहे हैं, तथा प्रथम जो मोह का सेना है सो न हति नहीं मारे जाते हैं अरु पीछे कहे जो विवेक सेना सो मरत जाती है अर्थात् श्रवण, त्वचा नेत्र, रसना, नासिका, हाथ, पद लिंग इति आठ कोठा है, पुन प्रकृति बुद्धि अहंकार शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इति आठो पांतिन के चौंसठि कोठा भये पुन माया के दिशि माह बादशाह ताकी मिथ्या दृष्टि आठहू दिशि की चाल विवेक-दल को नाश करता है। काम वजीर पर-स्त्री में रति टेढ़ी चाल विवेक नाश करता है।' इत्यादि।

(४) 'बहु बेष बहु मुख'—अनेक भाषाओं और युक्तियों से तात्पर्य है।

२४७

राम जपु, जीह! जानि, प्रीति सों प्रतीति मानि,
रामनाम जपे जैहै जिय की जरनि।
रामनाम सों रहनि, रामनाम की कहनि।
कुटिल-कलि मल-सोक संकट-हरनि॥१॥
रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ,
कियो न दुराव, कही आपनी करनि।
भव-सागर को सेतु, कासी हूँ सुगति हेतु
जपत सादर सम्भु सहित घरनि॥२॥
बालमीकि ब्याध हे, अगाध अपराध निधि,
'मरा मरा' जपे पूजे मुनि अमरनि।
रोक्यो बिंध्य, सोख्यो सिंधु घटजहुँ नाम-बल
हारयो हियँ, खारो भयो भूसुर डरनि॥३॥
नाम महिमा अपार सेष सुक बार-बार
मति अनुसार बुध बेदहूँ बरनि।
नामरति-कामधेनु तुलसी को कामतरु
रामनाम है बिमोह तिमिर-तरनि॥४॥

भावार्थ—हे जीभ! राम-नाम का जप कर, उसे (यथार्थ) जान। (नाम-

सम्बन्धी यथेष्ट सत्त्व को प्राप्त कर और प्रेमपूर्वक उसमें विश्वास कर। एक राम-नाम के जप से ही तेरे हृदय की जलन शान्त हो सकेगी। राम नाम के परायण हो (मानव आचरण रामनाम के अनुकूल कर) और राम-नाम ही का कथन किया कर। कुटिल कलि युग के पापों दुःखों और अनिष्टों को हरनेवाली यह राम-नाम की प्रपन्नता है ॥१॥

राम-नाम के प्रभाव से गणेश (सर्वप्रथम) पूजे जाते हैं। गणेशजी ने अपनी करनी को स्वयं कहा है कुछ छिपाव नहीं रखा (किस प्रकार वह सर्वप्रथम पूज्य माने गये यह कथा स्वयं उन्होंने अपने मुख से सुनाई है।) यह राम नाम संसाररूपी समुद्र का पुल है (इस पर चढ़कर भक्तजन सहज ही भव-सागर पार हो जाते हैं)। काशी में भगवान शंकर भी पार्वती के सहित जीवों को मोक्ष प्रदान करने के लिए राम-नाम को जपा करते हैं ॥२॥

वाल्मीकि बहेलिये के अगणित पाप थे किन्तु उल्टा भी नाम मरा-मरा जप कर वे ऐसे (महात्मा) हो गये कि मुनियों और देवताओं ने भी उनकी पूजा की। अगस्त्य ऋषि ने भी इसी नाम के बल पर विन्ध्याचल को (असीम बढ़ने से) रोक लिया और समुद्र को सुखा दिया था। पीछे वह समुद्र उन्हीं ब्राह्मण (अगस्त्य) से मन में हार मानकर खारा हो गया ॥३॥

नाम की महिमा अपार है। शेष शुकदेव वेदों और पण्डितों ने बारबार अपनी बुद्धि के अनुसार इसका वर्णन किया है। राम-नाम से प्रीति का होना तुलसीदास के लिए मानो कामधेनु है और कल्पवृक्ष है। अधिक क्या रामनाम अज्ञानान्धकार नष्ट करने के लिए साक्षात् सूर्य है ॥४॥

शब्दार्थ—गनराउ = गणेश। घरनि=स्त्री पार्वती से तात्पर्य है। हे=थे। घटज=घड़े से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि।

विशेष—(१) राम जपु जरनि—दोहावली में गोसाईंजी ने राम-नाम की भूरि भूरि महिमा गाई है। इस सिद्धान्त के पुष्टिरूप कई दोहे मिलते हैं। जैसे

राम नाम रति राम गति, राम नाम विस्वास।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल दुहुँ दिसि तुलसीदास॥
प्रीति प्रतीति सुरीति सों, रामनाम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य, परिनाम॥
सकल कामनाहीन जे, राम भगति रसलीन।
नाम प्रेम पीयूष ह्रद तिनहुँ किये मन मीन॥
हिय निर्गुन नयननि्ह सगुन रसना नाम सुनाम।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम॥

(२) पूजियत गनराउ—कहते हैं कि बालकपन में गणेश बड़े उत्पाती थे। एक तो हाथी के जैसे भयावने दूसरे शिवजी के गणों के नायक। इन्होंने सकल मुनियों को मारा वृक्ष गिरा दिये जंगल उजाड़ डाले। शिवजी बड़ी चिन्ता में पड़ गये। श्रीराम का स्मरण किया। प्रकट होकर भगवान ने शंकर से अपने आवाहन का कारण पूछा। शंकरजी ने अपने पुत्र गणेश की कथा कह सुनाई और—कुछ ऐसा उपाय बतलाइए जिससे मेरा पुत्र ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाय। भगवान ने गणेशजी को राममन्त्रनाम जपने का उपदेश दिया। अनन्य निष्ठा से श्रीराम-नाम-स्मरण में गणेशजी शुद्ध हो गये और मगन

मूर्ति माने जाने लगे। गणेशजी ने स्वयं कहा है—

'ततस्तद्गृह्लादेव निष्पापोऽस्मि तदथ हि।
तदादिसर्वदेवानां पूज्योऽस्मि मुनिसत्तम॥'

इस कथा का ब्रह्मपुराण में उल्लेख है।

(३) 'संभु सहित घरनि'—शिवजी ने स्वयं कहा है—

'अहो भवन्नाम जपन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मंत्रं तव रामनाम॥'

[अध्यात्म रामायण

(४) 'सोखयो विन्ध्य'—एक पुराण कथा है कि विन्ध्याचल अत्यन्त ऊँचा पर्वत था। सूर्य के प्रचण्ड तेज के कारण जब उसके वृक्ष जलने लगे, तब उसे बड़ा क्रोध आया और सूर्य को ढक देने के लिए वह अपना शरीर बढ़ाने लगा। देवता घबराए। अगस्त्य ऋषि से उन्होंने प्रार्थना की। महर्षि ने राम-नाम का स्मरण कर विन्ध्याचल के मस्तक पर हाथ रखकर उससे कहा, 'देख जब तक मैं लौट न आऊँ, तब तक तू यहीं ऐसा ही पड़ा रह।' अगस्त्य फिर कभी न लौटे और न वह उठा। वैसा ही पड़ा रहा। यह राम नाम का प्रभाव है।

(५) सोख्यो सिन्धु—पौराणिक कथा है कि एक दिन सन्ध्या समय महर्षि अगस्त्य समुद्र तट पर पाठ-पूजा कर रहे थे। दिन पूर्णिमा का था। समुद्र का ज्वार प्रतिक्षण बढ़ने लगा। उसकी ऊँची ऊँची लहरें महर्षि की पूजा सामग्री बहा ले गई। उन्हें बड़ा क्रोध आया और 'राम' ऐसा कहकर तीन आचमन से सारे समुद्र को सुखा लिया। पीछे देवताओं के सविनय आग्रह से मूत्र के मार्ग से, खारा बनाकर, उसे बाहर निकाल दिया।

(६) कामतरु रामनाम'—

रामनाम कलि कामतरु सकल सुमंगलकन्द।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग-पग परमानन्द॥
नाम राम को कलपतरु कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदास॥

[दोहावली

२४८

पाहि पाहि राम! पाहि रामभद्र, रामचन्द्र!
सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन।
दीनबंधु! दीनता दरिद्र दाह-दोष दुख
दारुन दुसह दर दुरित[1]—हरन॥१॥
जब जब जग-जाल-व्याकुल करम काल
सब खल भूप भये भूतल भरन।
तब-तब तनु धरि भूमि भार दूरि करि
थापे मुनि, सुर, साधु, आस्रम-बरन॥२॥

१ पाठान्तर 'दरप'

वेद लोक, सब साखी, काहू की रती न राखी,
रावन की बंदि लागे अमर मरन।
ओक दै बिसोक किये लोकपति लोकनाथ
रामराज भयो धरम चारिहु चरन ॥३॥
सिला, गुह, गीध, कपि, भील, भालु, रातिचर,
ख्याल ही कृपालु कीन्हे तारन-तरन।
पील उद्धरन ! सीलसिंधु ! ढील देखियतु
तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन ॥४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! कल्याणस्वरूप रघुनाथजी ! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। आपका सुयश सुनकर मैं शरण आया हूँ। हे दीनबन्धो ! आप दीनता, दरिद्रता, संताप, दाप असह्य दुःख, भय तथा पापों का नाश करनेवाले हैं। मैं भी दीन हूँ, दरिद्र हूँ, त्रिताप से जल रहा हूँ, अपराधी हूँ अत्यन्त दुखी हूँ संसार से भयभीत हूँ और महान् पापी हूँ। विश्वास है आप मुझे इन दोषों से छुटकारा देकर अंगीकार कर लेंगे संसार सागर से पार उतार देंगे ॥१॥

जब-जब आपके भक्त जगज्जाल में फँसकर दुखी हुए, काल और कर्म के वश में जा पड़े और पृथिवी पर दुष्ट राजे भाररूप हो गये तब तब आपने अवतार ले-लेकर पृथिवी पर का भार दूर किया (दुष्टों का नाश कर दिया) और मुनि देव, साधु संत एवं वर्णाश्रम धर्म की स्थापना की ॥२॥

वेदों और संसार दोनों में ही प्रसिद्ध है, कि जब रावण ने किसी का भी मान न रहने दिया, सबको निस्तेज व ऐश्वर्यहीन कर दिया और उसके कारागृह में पड़े-पड़े कभी न मरनेवाले देवता भी मरने लगे तब हे भगवन् ! आपने ही लोकपतियों का, इन्द्र, कुबेर आदि का आश्रय देकर निश्चिन्त किया और उन्हें फिर से लोकों का अधिष्ठाता बनाया (जिसका जो लोक था, उसे वह दिला दिया)। आपके राज्य में तब धर्म चारों चरणों से युक्त हो गया (सत्य, तप दया और दान पनप उठे।) ॥३॥

हे कृपामूर्ते ! आपने लीलापूर्वक ही अहल्या, निषाद, जटायु वानर भील, भालु और राक्षसों को तरन-तारण बना दिया (उन्हें तो मुक्त किया ही, साथ ही उन्हें ऐसा पवित्र बना दिया कि उनके संसर्ग मात्र से दूसरे भी संसार-बन्धन से छूट गए)। हे गजेन्द्र उद्धारक ! हे शीलसागर ! इस तुलसी पर जो आपकी ओर से ढील सी दिखाई देती है, उससे यह ग्लानि के मारे गला चाहता है। (उसे इस बात पर लज्जा आ रही है कि बड़े-बड़े पापी तो तर गये, यही क्यों अभी तक बन्धन में पड़ा सड़ रहा है।) अतएव कृपाकर शीघ्र ही उसे अपना लीजिए ॥४॥

शब्दार्थ—पाहि=रक्षा करो। दुरित=पाप। भरन = भाररूप। थापे= स्थापित किए। रती = तेज। अमर=देवता। ओक = आश्रय। सिला = पत्थर यहाँ अहल्या से तात्पर्य है। रातिचर = राक्षस। ख्याल ही=लीलापूर्वक, या हो। पील = हाथी।

विशेष—(१) 'जब जब भरन'—यह गीता के निम्नलिखित श्लोकों का

छायानुवाद जान पड़ता है—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥,

२४६

भली भाँति पहिचाने-जाने साहिब जहाँ लौं जग
जूड़े होत थोरे ही थोरे ही गरम।
प्रीति न प्रवीन, नीतिहीन, रीति के मलीन,
मायाधीन सब किये कालहू करम॥१॥
दानव-दनुज बड़े महामूढ़ मूड़ चढ़े
जीते लोकनाथ नाथ बलनि भरम।
रीझि रीझि दिये बर खीझि-खीझि घाले घर,
आपने निवाजे की न काहू को सरम॥२॥
सेवा सावधान तू सुजान समरथ साचो
सदगुन धाम राम! पावन परम।
सुरुख, सुमुख, एकरस एकरूप, तोहि
विदित विसेषि घटघट के मरम॥३॥
तोसो नतपाल न कृपाल, न कँगाल मो सो
दया में बसत देव सकल धरम।
राम कामतरु-छाँह चाहै रुचि मन माँह
तुलसी बिकल, बलि, कलि कुधरम॥४॥

भावार्थ—दुनिया में जहाँ तक मालिक हैं, उन्हें मैंने अच्छी तरह समझ और पहचान लिया है। वे थोड़े में ही प्रसन्न हो जाते हैं और थोड़े में ही नाराज हो उठते हैं। (यह बात नहीं, कि जिसे अपना लिया उसे फिर बिगाड़ना क्या? जरा-सा चूक होते ही जाने पर, वे अपने सेवकों का सर्वनाश तक कर डालते हैं)। न तो वे प्रेम के निभाने में ही कुशल हैं, और न नीति को ही समझते हैं। उनका बर्ताव कपट से भरा है, क्योंकि काल, कर्म और माया ने उन्हें अपने अधीन कर रखा है॥१॥

हे नाथ! बल के भ्रम में महामूढ़ बड़े-बड़े दैत्य दानव सिर पर चढ़ गये थे और उन्होंने लोकपालों को भी जीत लिया था। इन लोगों पर इनके स्वामियों ने (ब्रह्मा, शिव आदि ने) पहले तो प्रसन्न होकर वरदान दिये पर पीछे इनके घर का सत्यानाश करा दिया। अपने कृपापात्रों को बिगाड़ते समय किसी को शर्म न आई॥२॥

हे रामजी! सेवकों को आप ही भली भाँति पहचानते हैं, क्योंकि सच्चे, समर्थ, सद्गुणों के स्थान और परम चतुर एक आप ही हैं। आप सब पर कृपा करनेवाले, प्रसन्न

गुण सदा एक रस (न हर्ष में प्रफुल्लित न शोक में चिन्तित) और उदार चतुर हैं। आपको विराग रीति से घट घट का हाल मालूम है। (जो जैसा होता है उसे वैसा ही फल देते हैं, कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती) ॥३॥

आपके समान शरणागत-पालक कृपालु स्वामी कोई दूसरा नहीं है और मुझ-सरीखा कोई अनाथ नहीं है। दुःख ही स्वयं मेरे सारे धर्मों का विनाश होता है। (इस-लिए मुझ दयापात्र पर दया कीजिए आप कल्पवृक्ष हैं। मेरी अभिलाषा है कि आपकी छाया में सदा रहूँ। (शरण में पड़ा रहूँ) अभिप्राय। यह तुलसीदास कलियुग के धर्मों (हिंसा असत्य पाखण्ड आदि) से बड़ा व्याकुल हो रहा है (इसलिए इसकी रक्षा कीजिए कहीं यह वचन का नहीं) ॥४॥

शब्दार्थ—जूड़=शीतल प्रसन्न। सरम=मर्मज्ञ। पाय=पाद लिए। सुदन=कृपा करनेवाले। प्रनतपाल=शरणागत का पालनेवाले।

विशेष—(१) 'हित सरम'—इस मतलबी यारों पर गिरिधर कविराय ने क्या खूब कहा है—

साँई या संसार में मतलब को व्यवहार।
जब लगि पैसा गाँठ में तब लगि ताको यार॥
तब लगि ताको यार यार संगहि सँग डोलै।
पैसा रहा न पास यार मुख सों नहिं बोलै॥
कह गिरिधर कविराय जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति यार बिरला कोई साँई॥

ऐसे स्वार्थी मित्रों पर ऊबकर सुकवि लछिराम कहते हैं—

भरम गँवार सरवेरा सग सीचन नैं कटीहित बेल बेलहीन प गिरत है।
परिहरि मालती सु माधवी समासहित अमल अमलन के अब अभिरत है।
'लछिराम' सोभा सरवर में विलास हरि मूरख मलिन्द मन पल न थिरत है।
रामचन्द्र चारु चरनाम्बुज बिसारि देत बन बन बेलिन-बबूर में फिरत है॥

(२) सद्गुनधाम—श्रीराम के अनेक सद्गुणों को वाल्मीकि रामायण में गिनाया गया है—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी॥
बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः॥
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥

२५०

तौ हौं बार बार प्रभुहि पुकारिकै खिझावतो न
जौ पै मोकों होतो कहूँ ठाकुर ठहरु।
आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे
राजा मेरे राजाराम अवध सहरु ॥१॥

सेये न दिगीस, न दिनेस न गनेस, गौरी ।
हित कै न माने विधि, हरिउ न हरु ।
रामनाम ही सों जोग छेम, नेम, प्रेम पन,
सुधा सो भरोसो एहु दूसरो जहरु ॥२॥
समाचार साथ के अनाथ नाथ ! कासों कहौं,
नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु ।
निज काज, सुरकाज आरत के काज राज !
बूझिये बिलंब कहा कहूँ न गहरु ॥३॥
रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सों,
डरत हों देखि कलिकाल को कहरु ।
कहेही बनैगी, कै कहाये, बलि जाउँ, राम,
'तुलसी ! तू मेरो हारि हिये न हहरु' ॥४॥

भावार्थ—हे नाथ ! यदि मुझे कहीं कोई दूसरा स्वामी या (आश्रय) स्थान मिल जाता, तो मैं बार बार आपको पुकारकर नाराज न करता (पर करूँ क्या, ऐसा कोई मिलता ही नहीं, जिसकी शरण में आकर निर्भय रह सकूँ। इसीलिए बार बार आपको पुकारता हूँ) । हे महाराज रामचन्द्रजी ! मुझ-सरीखे आलसियों और अभागों को तो आपने ही पाला पोसा है अत हे कृपालो ! आप ही मेरे राजा हैं और अयोध्या ही मेरे रहने के लिए एक नगर है ॥१॥

न तो मैंने दिक्पाल (कुबेर वरुण आदि), सूर्य, गणेश और पार्वती की प्रेमपूर्वक सेवा की है, और न श्रद्धा सहित ब्रह्मा, शिव और विष्णु की ही आराधना । मेरा तो योग क्षेम एक राम नाम से ही है। उसी से मेरा नेम है, उसी से प्रेम है और उसी में मेरी प्रण-पता है । उसका भरोसा मेरे लिए अमृत के समान है और दूसरे साधन हैं विष के समान ॥२॥

हे अनाथों के नाथ ! मेरे साथी चोर और चौकीदार सब आप ही के हाथ में हैं (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि चोरों को आप भगाकर विवेक वैराग्यरूपी चौकीदारों को सचेत कर देंगे, तो मेरा राम नाम प्रेमरूपी धन बच जाएगा ।) हे महाराज ! तनिक विचारिए तो, आपने अपने कामों में देवताओं के कामों में और दीन-दुखियों के कामों में क्या कभी देरी की है ? फिर मेरे ही लिए क्यों इतना विलम्ब हो रहा है ? ॥३॥

आपकी रीति (पतितपावनता, जन-वत्सलता आदि) सुनकर आप पर मेरी प्रतीति और प्रीति हो गई है, किन्तु कलियुग की अनीति को देखकर मैं बहुत डरता हूँ (कि कहीं यह मुझे आपसे विमुख कराकर विषयों में न फँसा दे) । हे रघुनाथजी ! मैं आपकी बलैयाँ लेता हूँ, मेरी तो आपके इतना कहने से या किसी के द्वारा कहलाने से ही बनेगी कि 'तुलसी ! तू मेरा है निराश होकर तू मत घबरा ॥४॥

शब्दार्थ—ठहरु = स्थान । सहरु = शहर । हरु = हर, शिव । जोग-छेम =

भावार्थ—हे रामजी ! जिनके हृदयरूपी सुंदर थाले में हरि भक्तिरूपी ऐसा कल्पवृक्ष सुशोभित हो रहा है जिसमें परम सुख के सरस फूल फूलते और मधुर फल फलते हैं, ऐसा शिव हनुमान लक्ष्मण और भरत आपके स्वभाव, सुख, शील और महिमा का प्रभाव (तत्त्व) जानते हैं ॥

आपने अपने स्वभाव के वश होकर शिवजी को स्वामी, हनुमान् को मित्र और लक्ष्मण एवं भरत को अपना भाई माना है, पर वे सब आपको अपना स्वामी ही मानते हैं प्रेम में सदा सावधान रहते हैं और आपसे डरा करते हैं (कि कहीं सेवा में कोई चूक न पड़ जाय)। यदि स्वामी और सेवक इस रीति से प्रेम करते रहें, नीति और नियमों को सदा निबाहते रहें और अपनी टेक से न टलें, तो उनकी प्रीति परम सीमा तक पहुँच जाती है ॥२॥

परम विरक्त होने से ही श्रीरघुनाथजी की महती भक्ति मिलती है—यह शुकदेव, सनकादिक प्रह्लाद, नारद प्रभृति भक्तों ने कहा है। और (परमात्मा के तात्त्विक) ज्ञान के बिना भक्ति प्राप्त नहीं होती किंतु वह ज्ञान, हे नाथ ! आपके हाथ में है (आपकी ही कृपा से जीव को 'स्वरूप' का ज्ञान प्राप्त होता है) इसी बात को खूब सोच-समझकर चतुर लोग आपके चरणों पर आकर गिरते हैं, (जिन्हें आपकी भक्ति एवं आपके स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति की इच्छा है, वे सब छोड़-छाड़कर आपकी ही शरण में आते हैं) ॥३॥

छह शास्त्रों के सिद्धान्त भिन्न भिन्न हैं, पुराणों का भी मत एक-सा नहीं है और वेद भी नित्य नेति, नेति ही कहते रहते हैं। (परमेश्वर के स्वरूप का यथार्थ बोध वेद शास्त्र और पुराण नहीं करा सकते)। तब औरों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ? मुझे तो बस एक ही बात अच्छी समझ पड़ती है, और उसी से भला हो सकता है। वह यह, कि राम-नाम स्मरण करने से तुलसी सरीखे भी (संसार सागर से) तर गये हैं। (राम नाम स्मरण ही सर्वप्रधान साधन है) ॥४॥

शब्दार्थ—फरत = फलता है। बिरति निरत = वैराग्य में अनुरक्त या परम विरक्त होने से। ॥ मत = छह शास्त्रों का मत। बिमत=प्रतिकूल मत।

विशेष—(१) हर'—श्रीरघुनाथजी के ऐश्वर्य को शिवजी ही जानते हैं। ऐश्वर्य का बखान करते हुए आप कहते हैं —

'आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा ॥
पग बिनु चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बक्ता बड़जोगी ॥
तनु बिनु परस, नयन बिनु देखा। गहै घ्रान बिनु बास असेषा ॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥
जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथसुत भक्तहित, कोसलपति भगवान ॥'

[रामचरितमानस

(२) 'हनुमान'—भगवान के सौशील्य के विषय में हनुमान्‌जी का यह कथन पर्याप्त है —

'कहँ हम पसु साखामृग चंचल बात कहौं मैं विद्यमान की ।
कहँ हरि ब्रह्म शिव-पूज्य ज्ञानघन नहिं बिसरति वह लगनि कान की ॥

(३) 'लखन'—जब श्रीरामजी ने लक्ष्मण को घर लौट जाने का आदेश दिया, तब उन्होंने प्रभु चरण पकड़ कर कहा —

'परम प्रीति उठे हिय ताही । बीरहि भुजहि, मुखहि सिर नाही ॥
मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला । मंदर मेरु कि लेहिं मराला ॥'

[रामचरितमानस

(४) भरत —श्रीरामजी के स्वभाव को सब भरतजी ही जानते हैं —
'मैं जानौं निज स्वामि-सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मैं प्रभु-कृपा रीति जिय जोही । हारेहु खेल जितावहिं मोही ॥
तथा—

जद्यपि मोहिं कै कुमातु तें है आई अति पोची ।
सनमुख गये सरन राखहिंगे रघुपति परम सँकोची ॥

[गीतावली

(५) 'मार मान' ... माह —शिवजी को श्रीरामजी पूज्य भाव से मानते हैं ।
यथा —

'औरो एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि ।
संकर भजन बिना नर, भगति न पाव मोरि ॥

और सत्यभाव से हनुमानजी से कहते हैं —

[रामचरितमानस

प्रत्युपकार करौं का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥

[रामचरितमानस

श्रीराम का लक्ष्मण पर जो वात्सल्य था वह अनुपम था। शक्ति-आहत लक्ष्मण को गोद में लिये श्रीराम कहते हैं —

'और निबाहि भली बिधि भायप, चल्यो लखन-सो भाई ।
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन बिपति बँटाई ॥
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई ।
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिस कठिनता पाई ॥
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न आई ।
तात मरन, तिय-हरन गीध-बध, भुज दाहिनी गवाँई ।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुल कालिमा लगाई ॥

[गीतावली

(६) 'शुक' —परमहंस शुकदेव कहते हैं —
'भजन्ति ये विष्णुमनन्यचेतसस्तथैव तत्कर्मपरायणा जनाः ।
विनष्टरागादिविमत्सरा नरास्तरन्ति संसारसमुद्रमव्ययम्॥'

[श्रीमद्भागवत

(७) 'प्रह्लाद'—भक्तवर प्रह्लाद का यह सिद्धान्त है—

यस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्च्यात्।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम्॥'

[श्रीमद्भागवत

(८) 'छ मत'—सांख्य, योग, वैशेषिक न्याय पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा।

२५२

आप, आपने करत मेरी घनी घटि गई।
लालची लबार की सुधारिये बारक, बलि,
रावरी भलाई सबही की भली भई॥१॥
रोगबस तनु, कुमनोरथ मलिन मनु,
पर अपवाद मिथ्या-बाद बानी हुई।
साधन की ऐसी विधि, साधन बिना न सिधि,
बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई॥२॥
पतित पावन, हित आरत अनाथनि को,
निराधार को अधार दीनबंधु दई।
इन्ह मे न एकौ भयो, बूझि न जूझयो न जयो
ताहिते त्रिताप-तयो, लुनियत बई॥३॥
स्वाग सूधो साधु को, कुचालि कलिते अधिक,
परलोक फीकी मति, लोक रग रई।
बडे कुसमाज राज! आजुलौं जो पाये दिन
महाराज! केहू भाति नाम ओट लई॥४॥
राम! नाम को प्रताप जानियत नीके आप,
मोको गति दूसरी न विधि निरमई।
खीझिबे लायक करतब कोटि-कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसी की निलजई॥५॥

भावार्थ—हे बापजी! मैंने अपने ही हाथों अपनी करनी बहुत बिगाड डाली है। मैं आपकी बलैया लेता हूँ इस लोभी और झूठे की बात एक बार तो सुधार दीजिए, क्योंकि जिस जिसके साथ आपने भलाई की उसी उसी की बात बन गई (सो आज मेरी भी बिगडी को बना दीजिए)॥१॥

शरीर रोगी है मन बुरी-बुरी वासनाओं से मैला हो गया है और वाणी दूसरों की निन्दा और बकवाद करते-करते नष्ट हो गई है रहे कुछ साधन, सो वे भी बिना साधे सिद्ध नहीं होते। अत हे कृपानिधे! आपकी एक कृपा ही ऐसी अनूठी है, जो मेरी बिगडी बात को बना देगी॥२॥

आप पापियों का उद्धार करनेवाले और दुखिया और अनाथों के हितू हैं, जिनका कहीं ठौर ठिकाना नहीं, उन्हें आप आश्रय देते हैं और दीनों का भला करते हैं। पर मैं तो इनमें से एक भी नहीं हूँ। (मुझ पर आप क्या कृपा करेंगे ?)। न तो मैंने विवेक रूप से अपने शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह) के ही साथ युद्ध किया और न उन पर विजय ही प्राप्त की। इसीसे मैं दैहिक, भौतिक और दैविक इन तीनों तापों से जल रहा हूँ। जो बोया सो काट रहा हूँ (किसे दोष दूँ ?) ॥३॥

मन स्वांग तो सीधे सादे साधु के जैसा बना लिया है, परन्तु पाप करने में कलि भी मेरे सामने नगण्य है। मेरी बुद्धि को परमार्थ की बातें नीरस जान पड़ती हैं क्योंकि वह संसार की बातों में रंगी हुई है (विषय वासनाएँ ही उसे अच्छी लगती हैं)। हे महाराज ! इस भारी दुष्ट समाज के साथ आज तक जितने दिन बीते, वे व्यर्थ ही गये। आज किसी तरह आपके नाम का सहारा लिया है (इससे समझ पड़ता है कि अब मेरे दिन फिरेंगे और करनी सुधर जायगी) ॥४॥

भलीभाँति आप जानते हैं कि आपके नाम का कैसा प्रताप है। सिवाय आपके नामरूपी विधाता ने मेरे लिए तो दूसरी गति ही नहीं रची है। आपको असंतुष्ट करने लायक मेरे करोड़ों कुकर्म हैं किन्तु संतुष्ट करने लायक तो मेरी एक यह निलज्जता ही है। (मेरी निलज्जता पर ही प्रसन्न होकर कृपा कर दीजिए) ॥५॥

शब्दार्थ—लबार=झूठा। बारक=(बार+एक) एक बार। हई=नष्ट की। जायो=जीता। जूझ्यो=युद्ध किया। रई=रंग गई। निरमई=रचा। निलजई=निलज्जता ही।

विशेष—(१) स्वांग सूधो साधु को .... रई—कलियुगी साधुओं पर श्री हरिराम व्यास ने एक बड़ा चुटीला पद कहा है —

साधत बैरागी जड़ जग।
धातु रसायन औषध सेवत, निसिदिन बढ़त अनंग ॥
गुरु बचनन को रंग न लाग्यो भयो न संसय भंग।
विष बिकार गुन उपज बित लगि सब करत वित भंग ॥
बन में रहत गहत कामिनि कुच सेवत पीन उतंग।
धनि धनि साधु ! दंभ की मूरति, दियो छाँड़ि हरि संग ॥
लोभ-वचन बानिन अँग-अंगनि सोभित निकर निखंग।
व्यास आस जमपास परे तिहि भाव राम न रंग ॥

(२) तुलियत वई —

तुमसों कहा न होय, हा हा ! बुझये मोहि।
हौं हूँ रहौं मौन ही, वयो सो जानि लुनिए ॥'

२५३ [हनुमानबाहुक

राम ! राखिय सरन, राखि आये सब दिन।
विदित त्रिलोक तिहूँ काल न दयालु दूजो,
आरत प्रनत-पाल को है प्रभु बिन ? ॥१॥

लाले पाले, पोपे-तोपे, आलसी, अभागो, अघी,
नाथ ! पै अनाथनि सों भये न उरिन ।
स्वामी समरथ ऐसो, हौं तिहारो जैसो तैसो,
काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन ॥२॥
खीझि रीझि बिहँसि अनख क्यों हूँ एक बार,
'तुलसी तू मेरो' बलि, कहियत किन ?
जाहि सूल निरमूल, होहिं सुखद अनुकूल,
महाराज राम ! रावरी सौं, तेहि छिन ॥३॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी मुझे अपनी ही शरण में रखिए क्योंकि आप सदा से (मुझ-जैसों को) अपनाते आये हैं। यह सबको विदित है, कि तीनों लोकों और तीनों कालों में आपके समान दयालु कोई दूसरा नहीं है। हे नाथ ! आपको छोड़कर दुखियों और दीनों की रक्षा करनेवाला और कौन है ॥१॥

आपने आलसी अभागे और पापी लोगों का लालन पालन किया उन्हें पाला पोसा और प्रसन्न रखा, तिस पर भी आप उनसे कभी उऋण नहीं हुए, कर्जदार ही बने रहे। हे प्रभो ! आप ऐसे समर्थ हैं, पर मैं जैसा कुछ हूँ आपका ही हूँ। कलिकाल की कुटिल चाल देखकर मेरे हृदय में घनी घिन हो रही है (यह शंका है कि कहीं यह दुष्ट आपके चरणों की ओर से मेरे मन को फेर न दे, तो सारी बनी बनाई बात मिट्टी में मिल जाय) ॥२॥

बलिहारी ! एक बार नाराजी से अथवा राजी से मुस्कराकर या तेवरी चढ़ा कर किसी भी तरह सही इतना आप क्यों नहीं कह देते कि 'तुलसी तू मेरा है ?' इतना कह देने मात्र से ही मेरा सारा दुःख जड़ मूल से नष्ट हो जायगा। हे महाराज रामचन्द्रजी ! मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ उसी क्षण समस्त सुख मेरे अनुकूल हो जायँगे ॥३॥

शब्दार्थ—अघी—पापी। उरिन=(उऋण) बेबाक। घनी=बहुत। अनख= क्रोध।

विशेष—(१) 'काल चाल ... घिन'—कलिकाल की माया देखकर भक्तवर हरिराम व्यास घबराकर कहते हैं—

'धर्म दुर्यो कलिराज दिखाई।
कीनों प्रगट प्रताप आपुनो, सब बिपरीत चलाई ॥
धन भो मीत, धर्म भो बैरी पतितन सों हितवाई।
जोगी, जती, तपी, सन्यासी व्रत छाँड्यो अकुलाई ॥
बरनाश्रम की कौन चलावै, सन्तनहू में आई।
देखत सन्त भयानक लागत भावत ससुर जमाई ॥
सम्पति सुकृत, सनेह मान चित गृह ब्योहार बड़ाई।
कियो कुमन्त्री लोभ आपुनो, महामोह ज्यु सहाई ॥

काम क्रोध मद मोह अरु मत्सर कीन्हीं देस दुहाई।
दान लेन को बड़े पातकी, मचलन दो बँभनाई॥
लरन मरन को बड़े तामसी बारों कोटि कसाई।
'व्यासदास के सुकृत साक्रे मे गोपाल सहाई॥'

(२) जाहि छिन —क्योंकि—
भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥'
[श्रीमद्भागवत

२५४

राम! रावरो नाम मेरो मातु पितु है।
सुजन सनेही गुरु साहिब सखा सुहृद
राम नाम प्रेम-पन अविचल वितु है॥१॥
सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि
लियो काढ़ि वामदेव नाम-घृतु है।
नाम को भरोसो बल चारिहूँ फल को फल,
सुमिरिये छाड़ि छल, भलो कृतु है॥२॥
स्वारथ साधक, परमारथ दायक नाम,
राम-नाम सारिखो न और दूजो हितु है।
तुलसी सुभाव कही, साचिये परेगी सही,
सीतानाथ-नाम नित चितहू को चितु है॥३॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी! आपका नाम ही मेरा माता पिता सगा सम्बन्धी स्नेही गुरु स्वामी मित्र और सखा है। आपके नाम में जो मेरा प्रेम का प्रण है वही मेरा अटल धन है (और धन तो खर्च करने से कम हो जाते हैं पर आपका नाम धन दिन-पर दिन बढ़ता है)॥१॥

शिवजी ने सौ करोड़ चरित्ररूपी अगाध दधि सागर से नामरूपी घी मथकर निकाल लिया है (आपके समस्त चरित्रों का सार रामनाम ही माना है)। आपके नाम का बल भरोसा चारों फलों का फल अर्थात् अर्थ धर्म काम और मोक्ष का साररूप है। अतएव कपटभाव छोड़कर इसी का स्मरण करना चाहिए। यही सर्वोत्तम यत्न है। (कलयुग में नाम कीर्तन के तुल्य कोई भी यत्न नहीं है)॥२॥

आपका नाम स्वार्थ का साधनेवाला एवं परमार्थ प्रदान करनेवाला है। श्रीराम नाम के समान हितू दूसरा कोई भी नहीं। यदि यह बात तुलसीदास ने स्वभाव से ही कही है तो सचमुच ही इस पर सही पड़ेगा। हे जानकीरमण! आपका नाम नित्य है और चित्त का भी चितू है॥३॥

शब्दार्थ—वितु=(वित्त) धन। दधिनिधि=दही का समुद्र। वामदेव=शिवजी। कृतु=कर्म यत्न। स्वारथ=व्यवहार। परमारथ=मोक्ष।

विशेष—(१) 'नामका भरोसो'—गोसाईजी ने अन्यत्र कहा है —

'राम नाम पर राम तें प्रीति प्रतीति भरोस ।
सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन सुमंगल-कोस ॥
राम नाम अवलंब बिनु, परमारथ की आस ।
बरषत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥'

(२) 'भलो हूतु है'—राम नामरूपी मन सदा शुभफलदायक है —

तुलसी प्रीति प्रतीति सों, राम नाम जप जाग ।
किये कोइ बिधि दाहिनो, देइ अभागेहि भाग ॥'

(३) 'परमारथ—दायक'—यथा—

'अविकारी विकारी वा, सर्वदोषकभाजन ।
परमेशपद याति, रामनामानुकीर्तनात ॥'

[विष्णुपुराण

२५५ 9m-5

राम ! रावरो नाम साधु सुरतरु है ।
सुमिरे त्रिबिध घाम हरत, पूरत काम,
सकल सुकृत सरसिज को सरु है ॥१॥
लाभहू को लाभ, सुखहू को सुख, सरबस
पतित पावन, डरहू को डरु है ।
नीचे हू को, ऊँचे हू को, रंक हू को, राव हू को,
सुलभ, सुखद अपनो - सा घरु है ॥२॥
वेद हू, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कह्यो,
नाम - प्रेम - चारिफल हू को फरु है ।
ऐसे राम-नाम सो न प्रीति न प्रतीति मन,
मेरे जान, जानिबो सोई नर खरु है ॥३॥
नाम सो न मातु - पितु मीत हित, बंधु, गुरु,
साहिब सुधी सुसील सुधाकरु है ।
नामसो निबाह नेहु दीन को दयालु देहु,
दासतुलसी को बलि, बडो बरु है ॥४॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! आपका (राम) नाम साधुओं के लिए मानो कल्पवृक्ष है, क्योंकि उसके स्मरण करते ही तीनों ताप (दैहिक भौतिक और दैविक) दूर हो जाते हैं । चित्त शान्त और सुखी हो जाता है सारी कामनाएँ सफल हो जाती हैं । वह पुण्य रूपी कमलों का सरोवर है (पुण्य के प्रताप से ही त्रिविध ताप दूर होता है और चित्त में सुख-शान्ति आती है) ॥१॥

वह लाभ का भी लाभ, सुख का भी सुख और (भक्तों का) सर्वस्व है । वह

पापियों का पावन करनेवाला और भय का भी भय, अर्थात् मृत्यु को भी भयभीत करनेवाला है। यह नाम बड़ों का बड़ा, रंक का राजा, सभी को सुलभ, सभी को सुख देनेवाला है, और भजन किया पर यह अमृत आराम देनेवाला है ॥२॥

यह नाम, तुलसी और विवेक … पुराणों-शास्त्रों का कहना है कि रामनाम के प्रति जो प्रीति है वह पुण्य का फल है (पुण्य … और मोक्ष का भी सार है)। ऐसे श्रीराम नाम पर जिसका प्रेम और विश्वास नहीं, मेरी समझ में उस मनुष्य को गधा समझना चाहिए (जैसे गधा … राख पीठ पर भार लादे चलता रहता है, उसी प्रकार वह मनुष्य जीवन का भार ढोता हुआ राम बिना इधर से उधर भटकता फिरता है) ॥३॥

पिता माता मित्र, हितू भाई, गुरु और स्वामी इनमें से कोई भी श्रीराम नाम के सदृश सुख देनेवाला नहीं है। वह परम सुजान कल्पवृक्ष के समान सुजान स्वामी है। हे कृपालो! बलिहारी, तुलसीदास को यही दान दीजिए कि आपके नाम के साथ मेरा जो प्रेम है वह निभ जाय। (बलिहारी! इस दास तुलसी के लिए आपका यही सबसे बड़ा वरदान है।) ॥४॥

शब्दार्थ—खर=गधा। पुरारि=पुर दैत्य के शत्रु शिवजी। फल=फल। सुधी=बुद्धिमान। वर=वरदान।

विशेष—(१) साधु सुरतरु से—इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि श्रीराम नाम संत और कल्पवृक्ष दोनों के ही समान सब फलों का देनेवाला है। संत से जो कुछ भी माँगा जाय वह दे देता है। यही स्वभाव कल्पवृक्ष का है।

(२) 'पुरारि हू कह्यो'—सुनिए काशी की वीथियों में एक जटिल तपस्वी क्या कहता हुआ घूम रहा है—

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामम्
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्।
जल्पं जल्पं प्रकृति विकृती प्राणिनां कर्णमूले,
वीथ्यां वीथ्यां अटति जटिलः कोऽपि काशी निवासी ॥

(३) 'सोई नर खर है'—भगवद्विमुख जीव को गधे की उपमा श्रीमद्भागवत में भी स्वयं श्रीमुख से भगवान ने दी है—

'यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।
तथाहि विप्रा षट्शास्त्रयुक्ता मद्भक्तिहीना खरवद्वहन्ति ॥

२५६

कहे बिनु रह्यो न परत कहे राम ! रस न रहत
तुमसे सुसाहिब की ओट जन खोटो खरो
काल की करम की कुसासति सहत ॥१॥

करत विचार सार पैयत न कहूँ कछु,
सकल बड़ाई सब कहाँ तें लहत ?
नाथ की महिमा सुनि, समुझि आपनी ओर,
हेरि हारिकै हहरि हृदय दहत ॥२॥
सखा न, सुसेवक न, सुतिय न, प्रभु, आप
माय-बाप तुहीं साँचो तुलसी कहत।
मेरी तौ थोरी है सुधरैगी बिगरियो,
बलि, राम रावरी सौं, रही रावरी चहत ॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! बिना कहे तो रहा नहीं जाता, और कह देने पर कुछ रस नहीं रह जाता (मज़ा किरकिरा हो जाता है)। आप सरीखे सुन्दर स्वामी का आश्रय पाकर भी आपका यह सेवक—भले ही वह बुरा हो या भला—असह्य दुःख भोग रहा है, (यही बात है जो मुँह से रोकने पर भी बरबस निकल ही आती है। यदि किसी दूसरे को यह सुनाऊँ तो उसमें क्या रस रहेगा ? क्योंकि कोई मेरा क्लेश तो हरेगा नहीं, उलटे हँसी ही उड़ाएगा) ॥१॥

विचार किया करता हूँ, पर कहीं रहस्य का कुछ पता नहीं मिलता, कि इन सब लोगों ने कहाँ से बड़प्पन पाया है (वह कौन सा साधन है जहाँ से ये लोग बड़े बन बनकर आते हैं)। आपकी महिमा सुन-समझकर जब अपनी दशा की ओर देखता हूँ तो निराश हो जाता हूँ और घबराहट से हृदय जलने लगता है (यह सुनकर कि आप पतित पावन हैं मैं आपकी शरण में आना चाहता हूँ पर जब आपकी ओर से कोरा जवाब मिलता है, तब जी में हार मानकर निराश बैठ जाता हूँ और हृदय में जलन होने से कुछ-का कुछ कह बैठता हूँ) ॥२॥

सुनिए, न तो मेरा कोई मित्र है न सच्चा सेवक है और न सुलक्षणा स्त्री है, और न कोई स्वामी है। मेरे तो सच्चे माई बाप आप ही हैं तुलसी यह सच बात कह रहा है (कवि-कल्पना न समझियेगा)। मेरी तो थोड़ी ही बात है बिगड़ने पर भी सुधर जायगी। किन्तु बलिहारी ! मैं आपकी शपथ खाकर कह रहा हूँ मैं आपकी बात ही रखना चाहता हूँ (कहीं संसार में आपकी जन वत्सलता और पतित पावनता की लाज न चली जाये, अत यदि आपको अपने विरद की लाज रखनी है तो मुझे अब तार ही दीजिए) ॥३॥

शब्दार्थ—दुसासति=असह्य कष्ट। हहरि=घबराकर।

२५७

दीनबन्धु ! दूरि किये दीन को न दूसरी सरन।
आपको भले हैं सब, आपने को कोऊ कहूँ
सब को भलो है राम ! रावरो चरन ॥१॥

लिए दुष्ट को मार डालना ही अच्छा है)। आप अब इन दोनों बातों पर विचार कर लीजिए। मैं आपका अब निबाह न करूँगा। बार बार ललकार कर तुलसी ने यह सच्ची बात कह दी है। जो आप (मेरा कल्याण करने में) देरी करेंगे, तो मैं आपके नाम की महिमा रूपी नौका को डुबो दूंगा। (मेरी दुर्गति को देखकर आपके नाम पर लोगों की श्रद्धा उठ जायगी) ॥४॥

शब्दार्थ—गारि=दोष। दोस कोस=अपराधों का खजाना। भुवन कोस=चौदहों लोकों से तात्पर्य है। टकटोरि आयो=खोज आया। लबार=झूठा। गहडारिहौं=भयंकर मना कर दूंगा।

विशेष—(१) 'आयो टकटोरिहौं'—सूरदासजी भी ऐसा ही कह रहे हैं —

'हरि, हौं सब पतितन को राव।
को करि सकै बराबरि मेरी सो धौं मोहि बताव॥
व्याध, गीध अरु पतित पूतना तिनमें बढ़ि जो और।
तिनमें अजामेल गनिका पति, उनमें मैं सिरमौर॥
जहँ-तहँ सुनियत यहै बड़ाई मो समान नहिं आन।
सब रहे आज-कालिह के राजा, हौं तिनमें सुलतान॥
अबलौं तो तुम बिरद बोलायो भई न मोसों भेंट।
तजौ बिरद, कै मोहि उधारौ सूर गही कटि फेंट॥

(२) ढील किये डारिहौं—जीव अणु होने के कारण स्वभाव से ही अधीर है। गोसाईजी ने तो धमकी ही दी है कि मुझे जल्दी ही तार दो नहीं तो मैं नाम महिमा की नौका को डुबा दूँगा पर कविवर बिहारी का धीरज न बचा और यहाँ तक गुस्ताखी कर डाली —

'कब को टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय।
तुम हू लागी जगतगुरु जगनायक! जगबाय?'

२५६

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी,
कहौं, बलि, बेद की न, लोक कहा कहैगो?
प्रभु को उदास भाव जन को पाप प्रभाव
दुहूँ भाँति दीनबन्धु! दीन दुख दहैगो ॥१॥
मैं तो दियो छाती पवि, लयो कलिकाल दबि,
सासति सहत परबस को न सहैगो?
बाँकी बिरदावली बनैगी पाले ही कृपालु।
अंत मेरो हाल हेरि यों न मन रहैगो? ॥२॥
करमी धरमी, साधु सेवक बिरत रत,
आपनी भलाई थल कहा कौन लहैगो?
तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर
लटे लटपटनि को कौन परिगहैगो ॥३॥

बाल पाय फिरत दसा दयालु ! सब ही की,
तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो।
बचन करम हिये कहौं राम ! सौंह किये,
तुलसी पै नाथ के निबाहेइ निबहैगो ॥४॥

भावार्थ—यदि तुम्हारी बनाई हुई मेरी बात मेरे बिगाड़ने से बिगड़ जायगी, तो तुम्हारी बलैया लेता हूँ, वहाँ तो संसार क्या कहेगा ? वेद की बात नहीं कहता हूँ। (वेद में चाहे जो लिखा हो, उससे कोई मतलब नहीं पर संसार क्या कहेगा ? यही कहेगा न कि परमेश्वर तुलसी ही है, क्योंकि रामजी की बनाई बात उसने बिगाड़ दी। पर, ऐसा हो कैसे सकता है ? मेरी बिसात क्या कि मैं तुम्हारी बात को बिगाड़ सकूँ ?) स्वामी की उदासीनता और मुझ सेवक का पाप प्रभाव यदि ये दोनों ही मिल गये तो हे दीनबन्धो ! यह दीन दुःख के मारे जल मरेगा (सारांश यह कि मैं तो महापापी हूँ ही, पर तुम मेरे प्रति उदासीन न हो जाओ, तुम्हें ऐसा करना शोभा न देगा) ॥१॥

मैंने तो अपनी छाती पर वज्र रख लिया है (हृदय को दुःख सहने के लिए वज्र के समान कठोर कर लिया है) कारण कि कलियुग ने मुझे दबोच लिया है और अब पराधीन होकर असह्य कष्ट सह रहा हूँ। (मैं ही क्या) जो भी परतन्त्र होगा, वह कष्ट सहेगा ही। किन्तु हे कृपानिधान ! तुम्हें अपनी बाँकी बिरदावली के वश होकर मुझे पालना ही होगा (यदि मेरी रक्षा न करोगे, तो लोग तुम्हें झूठा कहेंगे)। और, अन्त समय तो मेरा हाल देखकर तुम्हारा यह उदासीन भाव रह ही नहीं सकता तुम्हें अवश्य ही पिघलना पड़ेगा ॥२॥

कर्मकाण्डी धर्मात्मा, साधु, सेवक, विरक्त और संसारी जीव, ये सब अपने कर्मों के अनुसार कहीं-न-कहीं स्थान पा ही जायेंगे। परन्तु तुम्हारे मुँह फेर लेने से, उदासीन हो जाने से मुझ-जैसे कायर, कुपूत, दुष्ट नीच और गिरे-पड़े जीवों को कौन अंगीकार करेगा ? ॥३॥

हे दयालो ! समय आने पर सभी की दशा फिरती है पर तुम्हें छोड़कर मुझे तो कभी कोई नहीं चाहेगा। हे रघुनाथजी ! तुम्हारी शपथ खाकर मैं वचन, कर्म और मन से कहता [illegible] कि यह जन तो तुम्हारे ही निबाहे निभेगा। तुलसी का निर्वाह तो तुम्हारे ही हाथ में है ॥४॥

शब्दार्थ—पवि=वज्र। साँसति=कष्ट। करमी=कर्मकाण्डी। लटे=नीच, खोटे। लटपटेनि=लथपथ, गिरे-पड़े।

विशेष—(१) 'बाँकी बिरदावली कृपालु'—यदि शरण में नहीं लोगे, तो आपकी बिरदावली पर लोग विश्वास नहीं करेंगे, और यह सुनना पड़ेगा कि—

वेद औ पुरानन में की हाँ है बखान ऐसो
सतजुग बीच ध्रुव प्रह्लाद को तुठे हो।
त्रेता बीच नीच कुल की न करी कानि कछू,
भीलनी के साथ प्रभु खाये बेर जूठे हो॥

द्वापर के बत्र तुम द्रोपदी की राखी लाज,
पाण्डु के वार बल कौरव के हटे हौ।
अब कलिकाल में जो करो न सहाय मेरी
तुम्हें लोग हरि नहि कहेंगे 'हरि मूठे हौ ॥'

२६०

साहिब उदास भये दास खास खीस होत
मेरी कहा चली ? हौं बजाय जाय रह्यो हौं।
लोक में न ठाउँ, परलोक को भरोसो कौन ?
हौं तो बलि जाउँ रामनाम ही ते लह्यो हौं ॥१॥
करम, सुभाउ, काल काम, कोह, लोभ, मोह
ग्राह अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं।
छोरिबे को महाराज, बाँधिबे को कोटि भट,
पाहि, प्रभु ! पाहि तिहुँ ताप पाप-दह्यो हौं ॥२॥
रीझि बूझि सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार,
दूध को जरयो पियत फूँकि फूँकि मह्यो हौं।
रटत रटत लटयो, जाति-पाँति भाँति घटयो
जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं ॥३॥
अनत चह्यो न भलो, सुपथ सुचाल चल्यो
नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं।
तुलसी समुझि समुझायो मन बार बार
अपनो सो नाथ हू सों कहि निरबह्यो हौं ॥४॥

भावार्थ—जब मालिक अपना रुख फेर लेता है तब खास नौकर भी बरबाद हो जाता है, फिर मेरा तो पूछना ही क्या ? मैं तो डंके की चोट दुःखों में बहा चला जा रहा हूँ, जब मेरे लिए इस दुनिया में ही कहीं ठौर ठिकाना नहीं तब परलोक का क्या भरोसा करूँ ? हे नाथ ! मैं आपकी बलैया लेता हूँ, मैं तो एक राम नाम ही के साथ बिक चुका हूँ (वही मेरे लिए लोक है और वही परलोक।) ॥१॥

कर्म, स्वभाव काल काम क्रोध, लोभ और मोहरूपी बड़े बड़े ग्राहों ने और (साधनहीनतारूपी) दरिद्रता ने जोर से पकड़ रखा है। (तात्पर्य यह, कि जैसे आपने गजेन्द्र को ग्राह से छुड़ा लिया था वैसे ही मुझे भी इन विकराल ग्राहों से उबार लीजिए, क्योंकि) हे महाराज ! बन्धन काटने के लिए तो केवल एक आप हैं और बाँधने के लिए करोड़ों योद्धा हैं। अतएव हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिए ! मैं पापरूपी तीनों तापों से जल रहा हूँ (अपनी कृपा-वृष्टि से इस अग्नि को बुझा दीजिए) ॥२॥

(कदाचित आप यह कहें, कि हमारे ही पास तू बारबार आ जाता है, और कहीं क्यों नहीं जाता, तो) हे प्रभो ! सबका विश्वास और श्रद्धा तथा रीझ-बूझ तो एक आपके

हो द्वार पर है। मैं दूध का जला मट्ठा भी फूंक फूंककर पीता हूँ। (भाव यह कि मुझे सभी ने धोखा दिया है इसलिए बहुत ही सावधान होकर चल रहा हूं।) चिल्लाते चिल्लाते मैं हार गया हूँ। जाति पाँति और चाल चलन सभी से हाथ धो बैठा हूँ। अब तो केवल आपके जूठन का ही लालची हूं। मैं दूध से नहीं नहाना चाहता। भाव, मुझे स्वर्ग के ऐश्वर्य की इच्छा नहीं है मैं तो केवल आपका प्रेम प्रसाद चाहता हूँ ॥३॥

मैं और कहीं सुख-सुभाग पर अच्छी चाल चलाकर अपना भला नहीं चाहता हूँ। और यहाँ आपके द्वार पर मैं तिरस्कृत होकर भी अच्छी तरह रह रहा हूँ। (तात्पर्य यह कि और किसी दवी देवता के समीप रहकर यम-पालन करता हुआ भी निःशङ्क नहीं रह सकता, क्योंकि वह तनिक सी भूल पर रुष्ट होकर मुझे गिरा देगा पर आप निरादर भी करेंगे तो भी मुझे प्रसन्नता हो होगी, क्योंकि मा-बाप की नाराजगी कल्याण के लिए ही होती है)। तुलसी ने समझकर अपने मन को बार बार समझा दिया है और वह अपने स्वामी से भी कहकर निश्चिन्त हो गया है कि उसका निर्वाह आपके ही हाथ में है ॥४॥

शब्दार्थ—खीस होत = बरबाद हो जाते हैं। बजाय=डंके की चोट से। जाय रह्यो हौं=बिगड़ा जा रहा हूँ। गाढ़े=दढ़ता से। मह्यो = मट्ठा। मह्यो न चहौं = नहाना नहीं चाहता। अनत = अन्यत्र।

विशेष—(१) दूध—नह्यो —श्रीबजनाथजी दूधा क्यों हो, यह पाठ मानकर यह अर्थ करते हैं कि— दूध घृतादि उत्तम भोजन चाहता नहीं। और श्रीरामेश्वर भट्टजी ने न दूह्यो नह्यो हौं' ऐसा पाठ मानकर यह अर्थ किया है कि कुछ दूध मलाई नहीं चाहता हूँ। नह्यो का अर्थ मलाई लिखा गया है। हमें नागरीप्रचारिणी सभी की प्रति ही अधिक शुद्ध जान पड़ती है। उसमें 'दूध-नह्यो' पाठ है, मुहावरा भी है, कि वह तो दूध से नहा रहा है अर्थात बड़ा भाग्यशाली है। आशीर्वाद देता हुई बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ बहू बेटियों से कहा करती हैं, 'दूधों नहाओ, पतो फलो।'

(२) 'जूठनि को लालची'—इस दुर्लभ 'जूठन' पर भक्तवर हरिराम व्यास का यह पद कितना भावपूर्ण है —

'ऐसे ही बसिये ब्रज बीथिन।
साधुन के पनवारे चुनि चुनि, उदर पोषिए सीथिन॥
घूरन में के बीन चिनगटा रच्छा कीजे सीतन।
कुंज-कुंज प्रति लोटि लगै रज उड़ि ब्रज की अंगीतन॥
नितप्रति दास स्याम स्यामा को नित जमुना जल पीतन।
ऐसेहि 'व्यास' रुचै तन पावन ऐसेहि मिलत अतीतन॥'

२६०

मेरी न बनै, बनाये मेरे कोटि कलप लौं
राम! रावरे बनाये बनै पल पाउ में।
निपट सयाने हौ कृपानिधान! कहा कहौं?
लिये बेर बदलि अमोल मन माउ मैं॥१॥

मानस मलीन, करतब कलिमल-पीन
जीह हू न जप्यो नाम, बक्यो आउ-बाउ मैं।
कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलेहूँ भला,
बाल दसा हूँ न खेल्यो खेलत सुदाउ मैं ॥२॥
देखा देखी दंभ तें, कि संग तें भई भलाई,
प्रगटि जनाई, कियो दुरित दुराउ मैं।
राग रोष-द्वेष पोषे गोगन समेत मन,
इनकी भगति कीन्ही इनही को भाउ मैं ॥३॥
आगिली पाछिलौ, अबहूँ को अनुमान ही तें
बूझियत गति, कछु कीन्हो तो न काउ मैं।
जग कहै राम की प्रतीति प्रीति तुलसी हू
झूठे साचे आसरो साहब रघुराउ मैं ॥४॥

भावार्थ—मेरी करनी मेरे बनाने से करोड़ों कल्प तक भी न बनेगी। किन्तु, हे रघुनाथजी! आप चाहें तो चार पल में ही उसे बना दे सकते हैं। हे कृपानिधान! मैं क्या कहूँ, आप तो स्वयं परम चतुर हैं। मैंने अनमोल मणि के समान आयु के बदले में (विषयरूप) बेर बिसाह लिये हैं ॥१॥

मन मलीन हो गया और कर्म कलियुग के कारण और भी पुष्ट हो गये (नित्य नये-नये पाप बढ़ते गये) रही जीभ सो उसने भी आपका नाम नहीं जपा, सदा आयें बायें साय ही बकती रही (इस प्रकार मन, वचन और कर्म तीनों से ही बेकार हो गया) बुरे बुरे मार्गों पर बुरी चालें चलता रहा। (काम क्रोध में ही लिप्त रहा) भूलकर भी कभी कोई अच्छा काम नहीं बन पड़ा। बचपन में भी कभी खेलते समय मैंने अच्छा दाव नहीं खेला ॥२॥

हाँ किसी की देखा देखी या सत्संग से कभी कोई अच्छा काम बन गया तो उसे ढिंढोरा पीटता हुआ कहता फिरा और पापों को छिपा लिया। राग द्वेष, क्रोध और इन्द्रियों के सहित मन का खूब पोषण किया। इन्हीं की भक्ति की, और इन्हीं का भाव (सदा इन्द्रिय-लोलुपता ही रहा)। ॥३॥

मैंने बीते हुए का, अब का और आनेवाले का अनुमान कर लिया है, कि मैंने कभी कोई अच्छा काम नहीं किया किन्तु संसार कह रहा है कि तुलसी रामजी का है और मुझे भी आप पर पूरा विश्वास और प्रेम है। अब चाहे झूठ हो, चाहे सच, हे स्वामिन्! मैं तो आपके ही आसरे पड़ा हुआ हूँ ॥४॥

शब्दार्थ—आउ = आयु। पीन=पुष्ट। जीह=जीभ। आउ बाउ = आय बायँ अट सट। दुरित = पाप। गोगन=इन्द्रियों का समूह। काउ = कभी।

विशेष—(१) मेरी न बलप लों ज्यों ज्यों पारमार्थिक साधन साध साधकर छूटने का उपाय करता हूँ त्यों त्यों माया-मोह में और भी अधिक उलझता जाता हूँ। इस क्रम से मैं कब अपनी करनी बना सकता हूँ?

'ज्यों ज्यों सुरझन को चहत, त्यों-त्यो उरझत जात।'

२६२

कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत
बडो सुख कहत बडे सो, बलि, दीनता।
प्रभु की बडाई बडी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता, आपनी पाप-पीनता ॥१॥
दुहूँ ओर समुझि सकुचि सहमत मन,
सनमुख होत सुनि स्वामि समीचीनता।
नाथ-गुनगाथ गाये, हाथ जोरि माथ नाये,
नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रवीनता ॥२॥
एही दरबार है गरब तें सरब हानि,
लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।
मोटो दसकंध सो न, दूबरो बिभीषन-सो,
बूझि परी रावरे की प्रेम-पराधीनता ॥३॥
यहा को सयानप अयानप सहस सम,
सूधी सतभाय कहे मिटति मलीनता।
गीध सिला, सबरी की सुधि सब दिन किये
होइगी न साइ सो सनेह हित-हीनता ॥४॥
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु
सुमिरत होत कलिमल - छल - छीनता।
करुनानिधान! बरदान तुलसी चहत,
सीतापति भक्ति सुरसरि नीर मीनता ॥५॥

भावार्थ—हे नाथ! कुछ कहा भी नही जाता और बिना कहे रहा भी नही जाता। आपकी बलयाँ लेता हूँ! यद्यपि अपनी गरीबी बडो के आगे सुनाने में बडा आनद आता है (क्योकि, यह आशा रहती है न, कि बडे लोग गरीबी दूर कर देंगे), तथापि कहाँ तो स्वामी का महान बडप्पन और कहाँ मेरी अत्यन्त क्षुद्रता, कहाँ स्वामी की पवित्रता और कहाँ मेरे पापो की अधिकता ॥१॥

दोनो ओर की इन बातो पर विचार करके मन सकोच के मारे सहम जाता है (कुछ कहने का साहस नही पडता)। किन्तु स्वामी की सुन्दर साधुता (पतित पावनता, जन-वत्सलता आदि) को सुनकर यह मन फिर फिर सम्मुख जाता है। हे नाथ! जो आपके गुणो और चरित्रो का गान करता और हाथ जोडकर प्रणाम करता है उस नीच को भी आप, अपनी प्रीति और चतुरता से, निहाल कर देते है ॥२॥

इस दरबार में गर्व करने से सर्वनाश हो जाता है। यहाँ तो गरीबी और नम्रता

से ही योग क्षेम प्राप्त हो सकता है। रावण-सरीखा तो कोई महाप्रतापी नहीं था और विभीषण के समान कोई दुर्बल या दीन नहीं था। किंतु यहां आपकी प्रेमाधीनता ही स्पष्ट समझ में आती है। (अर्थात शरणागत भक्त विभीषण को अपनाकर लंका का राज्य दे दिया और रावण का सर्वनाश कर डाला) ॥३॥

आपके सामने जो चतुर बनता है वह हजारों मूर्खों के समान है। यहाँ तो सीधे सादे सच्चे भाव से अपना दोष स्वीकार कर लेने से ही मलिनता मिटती है। यदि तू नित्य जटायु अहल्या और शबरी की स्थिति को स्मरण किए रहेगा तो स्वामी के प्रति तेरा प्रेम कभी कम न होगा। भाव यह कि उन बेचारों में अहंकार का लेशमात्र भी नहीं था इसीलिए भगवान् ने उन्हें अपना अनन्य भक्त और कृपापात्र बनाया ॥४॥

आपका नाम कल्पवृक्ष की तरह सारी कामनाएँ सफल कर देता है। उसका स्मरण करते ही कलियुग के कपट और पाप क्षीण हो जाते हैं। हे कल्याणनिधान! तुलसी यही वर चाहता है कि वह श्रीसीतारमण रामचन्द्रजी की भक्ति भागीरथी के जल में मछली की तरह सदा डूबा रहे ॥५॥

शब्दार्थ—पीनता = पुष्टि, मोटाई। सहमत = डर जाना है पिछड़ जाना है। छेम = (क्षेम) रक्षा। मिसकीनता = गरीबी नम्रता। भयानप = अज्ञान।

विशेष—(१) गरीबी —गरीबी पर एक कवि ने क्या सुन्दर कहा है —

'करी है गरीबी तो बिभीषन ने राज पायो
रावन ने करी सुदी खोई सुधी जान की।
ध्रुव ने गरीबी के अटल पद राज पायो
केसो कंस ऐंठो, सुधि न रही गुमान की ॥
द्रौपदी गरीबी करी नगन न होन पाई
हारे पचि कौरो देखि लीला भगवान की ॥
गरीबी और अदगी की चारों बेद स्तुति करें
कहै को गरीबी वह बीजी है जहान की ॥'

और भी—

ऊँचे ऊँचे सब चलें नीचे चलै न कोय।
जोप, कोउ नीचे चलै ध्रुव तें ऊँचो होय ॥'

(२) मिसकीनता'— मिसकीन अरबी का शब्द है।

(३) माम जाग-क्षेम का —जो सारा अभिमान छोड़कर भगवान् की शरण में रहते हैं उन्हें भगवान् यह वचन दे चुके हैं —

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥'

[गीता

२६३

नाथ ! नीके कै जानिबी ठीक जन जीय की ।
रावरो भरोसा नाह कै सुप्रेम नेम लियो
रुचिर रहनि रुचि मति, गति, तीय की ॥१॥
कुकृत सुकृत बस सबही सो संग पर्यो,
परखी पराई गति, आपने हूँ कीय की ।
मेरे भले को गोसाइँ ! पोच को, न सोच संक,
होहुँ किये कहौं सौंह साँची सिय-पीय की ॥२॥
ग्यानहू गिरा के स्वामी बाहर अन्तरजामी,
यहाँ क्यों दुरैगी बात मुख की औ हीय की ?
तुलसी तिहारो तुमहीं पै तुलसी के हित,
राखि कहौं हौं जो पै, ह्वैहौं माखी घीय की ॥३॥

भावार्थ—हे नाथ ! आप अपने इस दास के मन की बात ठीक ठीक समझ लीजिए। मेरी बुद्धि रूपी सुन्दर (पतिव्रता) स्त्री ने आपके विश्वास को अपना स्वामी मानकर उसी के साथ शुद्ध प्रीति करने का प्रण किया है ॥१॥

पाप और पुण्य के अधीन होकर मुझे सभी के साथ रहना पड़ा, इसमें मैं अपनी और पराई दोनों की चाला को जाँच चुका हूँ। हे प्रभो ! मुझे अपनी भलाई या बुराई की कोई चिन्ता नहीं न कुछ डर है। क्योंकि मेरा तो सभी तरह से मेरे स्वामी ने भला कर दिया। यह मैं श्रीजानकी वल्लभजी की शपथ खाकर सच सच कह रहा हूँ ॥२॥

(यदि मैं बात बनाकर कहता तो वह चलनेवाली नहीं क्योंकि) आप ज्ञान और वाणी के अधिष्ठाता हैं। बाहर और भीतर दोनों की बात जाननेवाले हैं। आपके आगे मुँह की और हृदय की बात कैसे छिप सकती है ? तुलसी आपका है और आप ही उसका हित करनेवाले हैं। मैं कुछ कपट भरी बात कहता होऊँ, तो घी की मक्खी हो जाऊँ। (भाव, जैसे मक्खी घी में गिरकर तुरंत मर जाती है, उसी प्रकार मेरा भी सत्यनाश हो जाय) ॥३॥

शब्दार्थ—नाह = नाथ, पति। कुकृत = कुकर्म, पाप। सुकृत = सत्कर्म, पुण्य। कीय की = किए हुए की। पोच = नीच। सौंह — शपथ।

विशेष—(१) 'गिरा' क्योंकि—
जापर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर-अजर नचावहिं बानी ॥
(२) 'ग्यान'—इसी प्रकार—
सो जानहिं जेहि देहु जनाई।'

२६४

मेरो कह्यो सुनि पुनि भावै तोहि करि सो।
चारिहू विलोचन विलोकु तू तिलोक महँ
तेरो तिहुँ काल कहु को है हितु हरि-सो ॥१॥

नये नये नेह अनुभये देह गेह बसि,
परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो।
सुहृद समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत,
जब जाको काज तब मिलै पायँ परि सो ॥२॥
बिबुध सयाने पहिचाने कैधौं नाहीं नीके,
देत एक गुन, लेत कोटिगुन भरि सो।
करम धरम स्रम-फल रघुबर बिनु,
राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो ॥३॥
आदि अंत बीच भलो भलो करै सबही को,
जाको जस लोक बेद रह्यो है बगरि सो।
सीतापति सारिखो न साहिब सील निधान,
कैसे कल परै सठ! बैठो सो बिसरि सो ॥४॥
जीव को जीवन प्रान, प्रान को परमहित
प्रीतम, पुनीतकृत नीचन निदरि सो।
तुलसी! तोको कृपालु जो कियो कोसलपालु,
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥५॥

भावार्थ—रे मन! एक बार तो मेरी बात सुन ले फिर जो अच्छा लगे सो करना। तू अपने चारों नेत्रों (दो बाहर के और मन बुद्धिरूपी दो भीतर के) से देखकर बता कि तीनों लोकों और तीनों कालों में कहीं भी कोई दूसरा भगवान् के समान तेरा हित करनेवाला है? ॥१॥

तूने शरीर रूपी गृह में रहकर नये-नये (सम्बन्धियों के) प्रेम का अनुभव किया। और उनके कपट भरे प्रेम को भी परख लिया। अन्त में सबके प्रेम का भेद खुल गया। और, मित्रों का समाज क्या है? धोखेबाजी का व्यापार है। जब जिसका काम अटकता है तब वह पैरों पर गिरने लगता है (पर काम निकल जाने पर उधर देखता भी नहीं।) ॥२॥

तूने देवताओं को भली भाँति पहचाना या नहीं? वे भी बड़े चतुर हैं। देते तो एक गुणा हैं पर ले लेते हैं करोड़ गुणा। अब रहे कर्म धर्म सो बिना श्रीरामजी (के आधार) के वे भी परिश्रम मात्र के हैं। उनका करना कराना ऐसा है जैसे राख में हवन करना या ऊसर जमीन पर पानी का बरसना ॥ ॥

जो आदि में मध्य में और अन्त में सदा और सभी का भला (कल्याण) करते हैं तथा जिनकी कीर्ति-कौमुदी लोक और वेद में छिटक रही है ऐसे श्रीजानकीवल्लभ रघुनाथजी के समान शीलनिधान स्वामी दूसरा कोई नहीं है। अरे मूर्ख! तू उन्हें भुला सा बैठा है। फिर तुझे कैसे चैन पड़ रहा है? ॥४॥

अरे! जो जीव का भी जीवन, प्राणों का भी प्राण, परमहितू, अत्यन्त प्रिय और

नीचों को भी पवित्र करनेवाला है, उसका तू निरादर कर रहा है ! तुलसी ! श्रीराघवेन्द्र कृपालु श्रीरामजी ने तेरे लिए चित्रकूट में जो लीला रची थी, उसे चित्त में तू स्मरण कर ॥८॥

भावार्थ—अनुभवे=अनुभव किए। सौदा-सूत=लेन देन का व्यवहार। वरिखा =वर्षा। धगरि-सो=फूला-सा। चेतु=याद कर।

विशेष—(१) 'नये नेह ... उघरि सो'—नागरीदासजी ने क्या खूब बनावनी दी है—

'कहाँ वे सुत नाती हय, हाथी।
चले निसान बजाइ अकेले तहँ कोउ संग न साथी॥
रहे दास दासी सुत जोवन कर मीड़ैं सब लोग।
काल गह्यो सब सबहीं छाँड्यो, धरे रहे सब भोग॥
जहाँ-तहाँ निसिदिन जिनको भट्ट कहत बिरुत्त।
सो सब बिसरि गये एक रट राम नाम कही सत्त'॥
बदन देत हुते नहिं माखी कहँ जिसि चँवर सवाल।
लिये हाथ में लठठा ताको कूटत मित्र कपाल॥
सौंपत भोगी गात जारिक करि आये बन देरी।
घर आये तें भूलि गये सब धनि माया हरि तेरी॥
नागरिदास बिसरिये नाहीं यह गति अति असुहानी।
काल व्यान की दृष्ट निवारन भजि हरि जनम सयानी॥'

(२) चित्रकूट को चरित्र—कथा है कि एक दिन चित्रकूट में तुलसीदासजी को घोड़ों पर सवार दो अत्यन्त सुन्दर राजकुमार दिखाई दिये। गोसाइँजी कुछ ध्याना-वस्थित से थे। ध्यान में विघ्न पड़ने की आशंका से उन्होंने अपने नेत्रों को बन्द कर भूमि की ओर कर लिया। कुछ देर बाद हनुमानजी ने दर्शन देकर पूछा, 'क्या श्रीराम-लक्ष्मण के दर्शन मिले या नहीं ? जो दो राजकुमार अभी घोड़ों पर सवार इधर से निकले हैं, वे ही तो श्रीराम और लक्ष्मण हैं। गोसाइँजी पछताने लगे—

'लोचन रहे बरी होय।
जान बूझ अकाज कीना गये प्रभु ... गोय॥
अविगत प्रभु तेरी गति न जानी, रह्यो आसन सोय।
सब छबि की अवधि में हैं निकसि गे ... होय॥
करम हीन मैं पाइ हीरा दियो पल में खोय।
'दास तुलसी राम बिछुरे, कहो कैसी होय॥

इसी प्रत्यक्ष दर्शन की ओर गोसाइँजी का इस पद में संकेत जान पड़ता है।

२६५

तन सुचि मन रुचि मुख कहौं जन हौं सिय पी को'।
केहि अभाग जान्यो नहीं जो न होइ नाथ सो नातो नेह न नीको॥१॥

जल चाहत पावक लहौं, विष होत अमी को।
कलि कुचाल संतनि कही सोइ सही, मोहि कछु फहम न तरनि तमी को॥२॥
जानि अन्ध अंजन कहै बन-बाघिनि घी को।
सुनि उपचार विकार को सुविचार करौं जब-तब बुधि बल हरै ही को॥३॥
प्रभु सो कहत सकुचत हौं, परौ जनि फिरि फीको।
निकट बोलि, बलि बरजिये परिहरै ख्याल अब तुलसिदास जड जी को॥४॥

भावार्थ—हे प्रभो! मैं शरीर को पवित्र रखता हूँ, मन में भी रुचि है और मुँह से भी कहता हूँ, कि मैं श्रीजानकीवल्लभ का सेवक हूँ, किन्तु समझ में नहीं आता, कि किस दुर्भाग्य के कारण नाथ के साथ भली भाँति मेरा सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध और प्रेम नहीं होता। (तन मन वचन से आपका बनना चाहता हूँ और यथाशक्ति बनता भी हूँ, पर न जाने किस दुर्भाग्य से विघ्न बाधाएँ बीच में आ जाती हैं, जो सारा किया कराया मिट्टी में मिला देती हैं) ॥१॥

चाहता तो हूँ पानी पर मिलती है आग (शान्ति जल के बदले में अशान्ति का दाह मिलता है)। इसी प्रकार अमृत का विष बन जाता है (अमृत रूपी सत्कर्म दम्भ के सम्पर्क से विषवत् हो जाते हैं।) सन्तों ने कलियुग की जितनी कुछ कुटिल चालें कही हैं वे सब ठीक हो रही हैं। मैं यह नहीं जानता कि कहाँ तो सूर्य है और कहाँ रात्रि (मैं ज्ञान और अज्ञान को ठीक-ठीक नहीं पहचान पाता। मुझे तो संतों का वचन ही सच जँचता है) ॥२॥

कलियुग मुझे अन्धा समझकर बन की सिंहिनी के घी का अंजन आँजने की सलाह देता है। (सिंहिनी तो बन में रहती है, जिसका दूध भी कहीं नहीं मिलता और घी? फिर अंजन कैसा? संसार कानन में माया रूपी सिंहिनी रहती है। काम-वासना ही उसके दूध का घृत है। इस अंजन से क्या कोई बचेगा? कलियुग उपचार क्या बता रहा है? साक्षात् विष का प्रयोग!) जब मैं यह विकार भरा उपचार सुनता हूँ और इस पर विचार करता हूँ, तब उस पर का बुद्धि बल नष्ट हो जाता है, धारणा छूट जाती है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बल पराक्रम क्षीण हो जाता है॥३॥

(बुद्धि भ्रम से भ्रष्ट हो जाने से मुझे कलियुग का बताया उपचार अच्छा लगता है। माया में फँस जाता हूँ। कामी होकर विषयोपभोग करता हूँ। इसलिए आपके साथ निश्चित नाता नहीं जुड़ पाता और न आपके चरणों में प्रेम ही होता है) हे नाथ! आपसे कुछ कहता हूँ पर कहने में संकोच होता है कि कहीं मेरी बात फीकी न पड़ जाय। इसलिए मैं आपकी बलैया लेता हूँ (दास यही कहता है कि) पास बुलाकर इस (कलियुग को) डाँट दीजिए जिससे यह तुलसी सरीखे अभागे जीवों का ध्यान छोड़ दे॥४॥

शब्दार्थ—अमी=अमृत। फहम=ज्ञान, समझ। तमी=अँधेरा, रात। ख्याल=ध्यान।

विशेष—(१) इस पद में यह दिखाया गया है, कि भगवत्प्राप्ति का उपाय करते हुए भी जीव के निरन्तर विघ्न और भी बलवान होते जाते हैं। प्रत्येक सत्कर्म में दुष्कर्म के रूप में पाप सम्बन्ध से बाधा पहुँचती है। यही कहना है कि इस युग पर

रहे हैं किन्तु हमारे सुकृत-वस्त्र का छिपे छिपे अभिमान मूषक कुतर-काट डालता है या ममरूपी दीमक उसे छिन्न भिन्न कर देता है। छिपे छिपे ये कुचालें कलियुग चल रहा है। अतएव जैसे-तैसे भगवच्चरणों की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है।

कहा है!

'यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तं नाकपाल वसुपाल किरीट जुष्ट पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥

[श्रीमद्भागवत

२६६

ज्यों-ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूरि परयो हौं।
तुम चहुँजुग रस एक राम ! हौंहूं रावरो, जदपि अघ अवगुननि भरयो हौं ॥१॥
बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छरयो हौं।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृप तें भिखारि करि सुमति तें कुमति करयो हौं ॥२॥
अगनित गिरि कानन फिरयो, बिनु आगि जरयो हौं।
चित्रकूट गये हौं लखी कलि की कुचाल सब अब अपडरनि डरयो हौं ॥३॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खरयो हौं।
चीन्हो चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि प्रभु सों गुदरि निबरयो हौं ॥४॥

भावार्थ—हे कृपानिधान ! ज्यों-ज्यों मैं आपके निकट आना चाहता हूँ त्यों-त्यों दूर होता जाता हूँ (आपका सान्निध्य पाने के जितने भी उपाय करता हूँ वे माया मोह के संसर्ग से ऐसे बाधक हो जाते हैं कि मैं क्षण प्रतिक्षण पीछे रह जाता हूँ) हे रामजी ! आप चारों युगों में सदा एक से हैं और मैं भी आपका रहा आया हूँ, यद्यपि मैं पापों और दोषों से भरा हूँ ॥१॥

आपसे पृथक् रहने का मौका पाकर इस नीच कलियुग ने मुझे बीच ही में छलों से छल लिया (या ही मैं जीवत्व प्राप्त कर अविद्यावश भगवान से विमुख हुआ इसी दुष्ट कलि ने अपना इन्द्रजाल फैलाकर मुझे भूल भुलैया में डाल दिया)। मैं सुवर्ण था पर इसने कुवर्ण कर दिया सारे सद्गुणों को दोषों में परिणत कर दिया। राजा से रंक बना डाला, और ज्ञानी से अज्ञानी कर डाला। (पहले मैं शुद्ध सच्चिदानन्द का अंशस्वरूप था, पर कलि ने इन्द्रियपरायण करके दो कौड़ी का कर डाला) ॥२॥

तब से मैं (अनेक योनियों में) अगणित पहाड़ों और जंगलों में भटकता फिरा और वहाँ बिना ही आग के जलता रहा। परन्तु जब मैं चित्रकूट गया, तब इस कलि की सारी कुचालें तो समझ गया तो भी अब मैं अपने ही डर से डर रहा हूँ ॥३॥

मैं हाथ जोड़कर प्रभु के सम्मुख खड़ा मस्तक नवाकर कह रहा हूँ कि पहचाना हुआ चोर जीता नहीं छोड़ता मार ही डालता है (कलियुग पहचाना हुआ चोर है, वह मौके की ताक में बैठा है) इस बात को सुनकर तुलसी अपने स्वामी से विनय प्रार्थना कर चुका (अब आगे जो आपकी मरजी हो सो उपाय कीजिए) ॥४॥

शब्दार्थ—छरनि छरयो हौं = छलों से छला गया हूँ। अपडरनि = अपने डरों

मरेगा, और हानि-लाभ और सुख-दुःख सबको एक समान देखेगा, भलाई-बुराई में समभाव रखेगा और कलिकाल की कुचालों को छोड़ देगा, ॥३॥

जब मेरा मन प्रभु का गुणानुवाद सुनकर पुलकित होने लगेगा और नेत्रों से प्रेमाश्रु-धार बहने लगेगी, तभी तुलसीदास को यह विश्वास होगा, कि अब वह श्रीरामजी का दास हो गया। तब उस अनन्य प्रेम को देखकर आनन्द-रस हृदय में उमड़कर फूला नहीं समायेगा ॥४॥

शब्दार्थ—फिरि परिहै=फिर जायगा। ढरिहै=बहायगा।

विशेष—(१) 'तुम ... परिहै'—जो जीव भगवान् की अनन्य भक्ति को प्राप्त कर लेता है, उसकी मनोदशा अलौकिक हो जाती है। उसका सभी कुछ बदल जाता है। न वह तन रहता है न वह मन। मुख पर उसके दिव्य सौन्दर्य झलकने लगता है। वाणी अमृतमयी हो जाती है। आँखों में प्रेमाश्रु की लहर उठती दिखाई देती है। विषयों की ओर से मन एकदम फिर जाता है। यह दशा विलक्षण और अगोचर है।

(२) 'चातक ... टरिहै'—चातक की प्रेमानन्यता पर गोसाईंजी की अनेक अनूठी भावपूर्ण उक्तियाँ मिलती हैं, जैसे—

'डोलत बिपुल बिहंग बन पियत पोखरनि बारि।
सुजस धवल चातक नवल, तुही भुवन दसचारि॥
बध्यो बधिक पर्‌यो पुन्यजल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहु लगी न खोंच॥'

(३) 'प्रभु गुन ... ढरिहै'—नागरीदासजी ने प्रेम-दशा का क्या ही सजीव चित्र खींचा है।

कब दुखदाई होयगो मोको बिरह अपार?
रोय रोय उठि डोलिहौं कहि-कहि पिय सुकुमार॥
ता दिन हा! सें छूटिहैं लाज-काज अब सब।
छीन देह जीवन जगत, फिरिहौं हिये न चैन॥
मन इव जलधार बहै छिन छिन लेत उसास।
रजनि अँधेरी डोलिहौं गावत सुगन उदास॥
हेरत-टेरत डोलिहौं कहि-कहि स्याम सुजान।
फिरत फिरत बन सघन में यौंहीं छुटिहैं प्रान॥

२६९

राम! कबहुँ प्रिय लागिहौ, जैसे नीर मीन को?
सुख जीवन ज्यों जीव को, मनि ज्यों फनि को, हित ज्यों धन लोभ-लीन को॥१॥
ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को।
त्यों मेरे मन लालसा करिये करुनाकर! पावन प्रेम पीन को॥२॥
मनसा को दाता कहैं श्रुति प्रभु प्रवीन को।
तुलसिदास को भावतो, बलि जाउँ दयानिधि! दीजै दान दीन को॥३॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! क्या कभी मुझे एम प्यारे लगेंगे, जसे मछली को जल प्यारा लगता है, जीव को सुखमय जीवन प्यारा लगता ह अथवा मणि साँप का प्रिय जान पड़ता है या अत्यन्त कजूस को धन ? ॥१॥

अथवा, जसे किसी नवयुवक नायक को स्वभाव से ही नवयुवती नायिका प्यारी लगती ह, उसी प्रकार, हे करुणालय ! मेरे मन में अपने चरणारविन्दों में पवित्र और अनन्य प्रेम की ही एकमात्र उत्कण्ठा उत्पन्न करदें ॥२॥

वेद कहते हैं कि प्रभु मनोवाञ्छित फल देनेवाले हं, और बड़े ही चतुर ह (वे मन की बात तुरन्त ताड़ लेते है कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती) । हे दयानिधे ! म आपकी बलयाँ लेता हूँ, इस दीन तुलसीदास को भी उसकी मनचाही वस्तु दे दीजिए ॥३॥

शब्दार्थ—फनि=साप । सुभाय=स्वभाव से ही । पीन=पुष्ट, मोटा । भावतो =मनचाहा ।

विशेष—(१) 'जसे नीर मीन को'—मछली की जल के साथ कसी अनन्य प्रीति ह, इसे बताने की आवश्यकता नहीं । और पशु पक्षी तो जल के सूखते ही अन्यत्र चले जाते हं, पर मछलियाँ उसीके साथ सूखकर प्राण दे देती हैं । कविवर रहीम ने क्या कहा ह —

'सर सूखे, पछी उड़, और सरनि समाहिं ।
दीन मीन बिन पख के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥

गोसाइजी ने मीन की अनन्यता का दोहावली में वर्णन इस प्रकार किया ह —

देउ आपने हाथ जल मीनहिं माहुर घोरि ।
तुलसी जिय जो बारि बिनु तौ तु देहि कबि खोरि ॥
मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह ।
'तुलसी' एकै मीन को है साँचिलो सनेह ॥

(२) इस पद का निचोड़ गोसाईंजी ने इस दोहे में भर दिया ह —

'कामिहि नारि पियारि जिमि लोभी के जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम ॥'

२७०

कबहुँ कृपा करि रघुबीर ! मोहूँ चितैहौ ।
भलो बुरा जन आपनो जिय जानि दयानिधि ! अवगुन अमित बितैहौ ॥१॥
जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहि जितैहौ ।
हौ सनाथ ह्वै हौ सही, तुमहूँ अनाथपति जो लघुतहि न भितैहौ ॥२॥
विनय करौं अपभयहु तें तुम्ह परम हिते हौ ।
तुलसिदास कासों कहै तुमही सब मेरे प्रभु-गुरु मातु पिते हौ ॥३॥

भावार्थ—हे रघुबीर ! मेरी ओर भी कभी कृपाकर आप देखेंगे ? हे दया निधान ! भला या बुरा जो कुछ भी हूँ आपका सेवक हूँ, अपने मन में ऐसा समझकर

क्या मेरे अपार दोषों को नष्ट कर देंगे ? ॥१॥

अनेक जन्मों से मुझे यह मेरा मन जीतता चला आया है (मुझे अपने वश में चलाता आया है), अबकी बार क्या आप मुझे भी जितायेंगे ? (क्या यह आपकी कृपा से मेरे वश में होगा ?) तब तो मैं सचमुच ही सनाथ हो ही जाऊँगा। पर यदि आप भी मेरी क्षुद्रता से नहीं डरेंगे तो आप भी 'अनाथपति' पुकारे जाने लगेंगे (भाव, मेरी क्षुद्रता पर ध्यान न देकर मुझे अंगीकार कर लीजिए और 'अनाथपति' यह उपाधि भी धारण कर लें) ॥२॥

मैं अपने ही डर से इस प्रकार आपसे विनय कर रहा हूँ। आप तो मेरे परमहितू हैं। यह तुलसीदास अपना रोना और किसके आगे रोने जाय ? (संसार में कोई सुननेवाला भी तो नहीं है सब हँसी ही उड़ानेवाले हैं)। मेरे तो स्वामी गुरु, माता, पिता आदि सब आप ही हैं ॥३॥

शब्दार्थ—जित्यो = जीता गया। भितहो = डरोगे। अपभयहूँ तें = अपने ही भय से।

२७१

जैसो हौं तैसो राम ! रावरो जन जानि परिहरिये।
कृपासिंधु कोसलधनी ! सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिये ॥१॥
हौं तो बिगरायल और को बिगरो न बिगरिये।
तुम सुधारि आये सदा सबकी सबही बिधि, अब मेरियो सुधरिये ॥२॥
जग हँसिहै मेरे संग्रहे कत इहि डर डरिये।
कपि, केवट कीन्हे सखा जेहि सील, सरलचित, तेहि सुभाउ अनुसरिये ॥३॥
अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिये।
टूटियो बाँह गरे परे फूटेहू बिलोचन पीर होत हित करिये ॥४॥

भावार्थ—हे रघुनाथजी ! मैं (अच्छा बुरा) जैसा भी हूँ पर हूँ, तो आपका दास ही। इसलिए मुझे त्यागिए नहीं। हे कोशलेन्द्र ! आप कृपा के समुद्र और शरण में आये हुए जीवों की रक्षा करनेवाले हैं। अपनी इस शरणागतवत्सलता की रीति पर ही चलिए ॥१॥

मैं तो औरों के हाथ से बिगाड़ा हुआ पहले से ही हूँ (माया मोह मुझे पहले ही बेकार कर चुके हैं इन्द्रियों और मन ने मेरा सर्वनाश कर ही डाला है), अब आप इस बिगड़े हुए को और न बिगाड़िए, आप तो सदा से ही सबकी करनी सब तरह से सुधारते आये हैं सो अब मेरी भी सुधार दीजिए ॥२॥

क्या आप इस डर से डर रहे हैं कि मुझे अंगीकार करने से संसार आपका उपहास करेगा (कि, क्या कहना इस न्याय पर ! कहीं तुलसी सरीखे पापियों को भी अपनाना उचित था ? पर आप इस डर से न डरें नहीं, क्योंकि आपके लिए पापियों को अपनाना कोई नई बात नहीं) आपने जिस शील और सरल भाव से बन्दरों और केवट को अपना मित्र बनाया था उसी स्वभाव से मुझे भी अपना लीजिए ॥३॥

यद्यपि मैं अपराधी हूँ, तथापि हूँ तो आपका ही। तुलसी को आप न भुलाइए। अपना टूटा हुआ भी हाथ गले बँध जाता है (कोई उसे काटकर फेंक नहीं देता) और फूटी हुई आँख में भी जब पीड़ा होती है तब उसका भी इलाज किया जाता है (इसी प्रकार मैं यद्यपि आपके किसी काम का नहीं हूँ, पर हूँ तो आपका ही अंश। अतएव उस भाँ हाँ न छोड़ दीजिए) ॥६॥

शब्दार्थ—ढरनि—कृपा करने की प्रकृति। बिगरायल=बिगड़ा हुआ। संग्रहे =संग्रह करने से, अंगीकार करने से। गरे परै=गले बँध जाती है।

विशेष—(१) 'कैसी परिहरिये'—भगवच्चरणारविंदों से एक क्षण के लिए भी पृथक् होना असह्य हो जाता है। जैसे मछली पलमात्र भी जल से अलग नहीं होना चाहती वैसे ही भक्त भगवान से अलग होने में दारुण दुःख का अनुभव करता है। सुनिए, एक व्रजाङ्गना क्या कह रही है —

'गिरि से गिरावो, कारे नाग से डसावो हाहा
प्रीति ना छुड़ावो प्रानप्यारे नवलाल सों।'

कविवर बिहारी भी यही प्रार्थना करते हैं —

हरि कीजत तुम सों यहै, बिनती बार हजार।
जेहि-तेहि भाँति डर्यो रहौं परयो रहौं दरबार॥'

२७२

तुम जनि मन मैलो करो, लोचन जनि फेरो।
सुनहु राम! बिनु रावरे लोकहु परलोकहु काउ न कहूँ हितु मेरो॥१॥
अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो।
स्वारथ के साथिन्ह तज्यो तिजराको सो टोटक, औचट उलटि न हेरो॥२॥
भगतिहीन, बेद बाहिरो लखि कलिमल घेरो।
देवन हू, देव! परिहरयो, अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो॥३॥
नाम की ओट लै पेट भरत हौं पै कहावत चेरो।
जगत बिदित बात ह्वै परी, समुझिये धौं अपने, लोक कि बेद बड़ेरो॥४॥
ह्वै है जब तब तुम्हहिं तें तुलसी को भलेरो।
दिन दिनहूँ देव! बिगरिहै, बलि जाउँ, बिलंब किये, अपनाइये सबेरो॥५॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी! आप मेरे लिए मन को मैला न करें, मेरी ओर से अपनी नजर न फेरें। हे नाथ! इस लोक में और परलोक में भी आपको छोड़कर मेरा कल्याण करनेवाला कहीं कोई दूसरा नहीं॥१॥

स्वार्थी मित्रों ने मुझे मूर्ख, नालायक, आलसी, नीच और निकम्मा समझकर, तिजारी के टोटके की तरह छोड़ दिया, और फिर भूलकर भी पलटकर मेरी ओर नहीं देखा। (ऐसा छोड़ा कि फिर कभी मेरी याद तक नहीं की।) ॥२॥

मुझे भक्तिहीन, वेदोक्त मार्ग से बहिष्कृत एवं कलिकाल के पापों से घिरा हुआ देखकर, हे नाथ! देवताओं ने भी छोड़ दिया (यदि मैं आपका भक्त होता, वैदिक

मार्ग पर चलता होता और कलि के पापों से विमुख होता तो देखता मेरी बलयाँ लेते, खुशामद करते, पर मैं वैसा नहीं हूँ। इसलिए उन लोगों ने भी मुझे त्याग दिया) यह उनका कोई अन्याय भी नहीं है क्योंकि मैं सभी का अपराधी हूँ ॥३॥

यद्यपि मैं आपके नाम की आड़ लेकर पेट भरता हूँ, इतने पर भी लोग मुझे 'रामदास' कहते हैं। यह बात जगत्प्रसिद्ध हो गई है। आप विचार तो कीजिए, कि संसार बड़ा है या वेद ? (वेदों को देखा जाय तो मैं आपका सेवक नहीं हूँ किन्तु संसार जब मुझे आपका सेवक कहता है, तो कोई हजार में एक मिलेगा पर लोक की रीति प्रायः सभी मानते हैं। जब लोक में यह ढिंढोरा पिट चुका है कि—तुलसी रामदास है तब आपको यही सिद्ध करना होगा झूठी बात भी सच साबित करनी पड़ेगी) ॥४॥

तुलसी का भला चाहे जब हो और जैसे हो, पर होगा आपके ही हाथ से। (जब आपको भला करना ही है, तो शीघ्र कर देना अच्छा है।) मैं आपकी बलयाँ लेता हूँ यदि आप देर करेंगे तो यह गरीब दिन पर दिन बिगड़ता ही जायगा। (व्याधि का उपचार आरम्भ में ही कर लेना अच्छा है पीछे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है) अतएव मुझे शीघ्र ही अपना लीजिए ॥५॥

शब्दार्थ—अगुन=मूर्ख। अलायक=नालायक अयोग्य। अनेरो=बेकाम। तिजरा=तिजारी। टोटक=टोटका। भलेरो=भला कल्याण। सबेरो=जल्द ही।

विशेष—(१) तिजरा की-सी टोटक—जिसे तिजारी ज्वर आता है उसके ऊपर मिट्टी के कूंड़े में आटे के सात दीपक जलाकर और उसमें खीर हल्दी सेंदुर और सफेद फूल रखकर आधी रात के समय लोग उतारते हैं और उस कूंड़ को चौराहे पर रखकर चले आते हैं। उसकी तरफ लौटकर देखना भी नहीं होता है। कहते हैं यदि उस टोटके की ओर रखनेवाला देखले, तो उसे तिजारी आने लगता है। कुछ हेर-फेर के साथ भारत में प्रायः कई प्रान्तों में ऐसे ऐसे टोटके प्रचलित हैं।

२७३

तुम तजि हौं कासों कहौं और को हितु मेरे ?
दीनबंधु ! सेवक, सखा, आरत अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ॥१॥
बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे।
कृपा-कोप-सतिभायहूँ धोखेहूँ तिरछेहूँ राम ! तिहारेहि हेरे ॥२॥
जो चितवनि सौंधी लगै, चितइये सबेरे।
तुलसिदास अपनाइये, कीजै न ढील, अब जीवन अवधि अति नेरे ॥३॥

भावार्थ—हे नाथ ! आपको छोड़कर मैं और किससे कहूँ ? मेरा सच्चा हितू और कौन है ? (जहाँ-तहाँ स्वार्थी ही मिलेंगे। वे दूसरों का मर्म क्से समझेंगे ? मेरा भला तो आपसे ही होगा। इसीसे मैं बार बार आपसे ही कहता हूँ) हे दीनबन्धो ! सेवक पर मित्र पर, दुखिया पर और अनाथ पर स्वभावतः ही किसकी कृपा है, निष्कारण और निष्काम स्नेह और कौन करता है ? ॥१॥

बहुत से पापी इस संसार सागर को बिना ही नाव और बिना ही बेड़े के पार

बन गये। हे रामजी! उनको ओर कृपा से या क्रोध से, सच्चे भाव से या तिरछी दृष्टि से ही आपने देख भर लिया था ॥२॥

इन दृष्टियों में से जो भी आपको अच्छी लगे उसीसे देख लीजिए (चाहे कृपा दृष्टि से, चाहे कोप दृष्टि से अथवा प्रेम दृष्टि से या तिरछी दृष्टि से जो आपको पसन्द हो, उससे मुझे देखिए। मेरी बात तो किसी भी दृष्टि से देख देने मात्र से बन जायगी)। तुलसीदास को अब अपना ही लीजिए। देर न कीजिए, क्योंकि अब जीवन का अन्त बहुत समीप आ गया है। (जीवन-ज्योति टिमटिमा रही है, न जाने किस क्षण बुझ जाय) ॥३॥

भावार्थ—छाह = कृपा। तरि=नौका। बर = बेड़ा। सौंधी = भली।

विशेष—'कृपा कोप हेर—

कृपा-दृष्टि से अहल्या जटायु आदि को मुक्त किया कोप-दृष्टि से, रावण, कुम्भकर्ण आदि को मुक्त किया। सतिभाय अथवा सत्यभाव से निषाद सुग्रीव विभीषण आदि को अपनाया और बाँके की दृष्टि से यवन आदि का अंगीकार कर लिया।

(२) 'चितइय—नरे —न जाने किस घड़ी क्या हो जाय, इसलिए हे नाथ! मुझे शीघ्र ही शरण में लीजिए। कबीर साहब कहते हैं —

'साथी हमरे चलि गये हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही तातें लागी बार॥
'कबिरा रसरी पाँव में, कह सोवै सुख-चैन।
स्वास नगाड़ा कूच का बाजत है दिन रैन॥'

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी जीवन अवधि समाप्त जानकर अपने प्राणनाथ प्रियतम कृष्ण से अत्यन्त प्रेमाधीर होकर कह रहे हैं —

'बावरी गति भई मन की मति परि गई मंद,
सब झाँझरी सी ह्वै के देह लागी पियरान।
बावरी सी बुद्धि भई हँसी काहू छीन लई
सुख के समाज जित तित लागे दूर जान॥
हरीचंद रावरे बिरह जग दुखमयो
भयो कछु और होनहार लागे दिखरान।
नैन कुम्हिलान लागे, बैनहु अथान लागे,
आओ प्राननाथ! अब प्रान लागे मुरझान॥

२७४

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव! दुखित दीन को?
को कृपालु स्वामी सारिखो राखै सरनागत सब अंग बल बिहीन को ॥१॥
गनिहिं गुनिहिं साहिब लहै, सेवा समीचीन को।
अधन, अगुन आलसिन को पालिबो फबि आयो रघुनायक नवीन को ॥२॥
मुख कै कहा कहौं बिदित है जी की प्रभु प्रबीन को।
तिहूँ काल, तिहूँ लोक में एक टेक रावरी तुलसी से मन मलीन को

भावार्थ—हे देव ! कहाँ जाऊँ ? मुझ दुःखी और दीन के लिए दूसरा कहाँ ठौर ठिकाना है ? आपके समान दयालु स्वामी और कहाँ मिलेगा, जो सब पापों में सब भाँति बेचारे नरक का भागी शरण में आ सकता है ? ॥१॥

संसार में जो दुःख रूपी कीचड़ में धँसा हुआ है, उसे धनी ही दुःखी ही और मैं तो भाँति गंवार (अज्ञानी) हूँ) उन सबों बिना, दुःखी और कायरों को जानना ही हित उपकारी और रघुनाथ को ही मानना है ॥२॥

यह मैं क्या कहूँ ! क्षमा ! आप तो स्वयं चतुर हैं । आपका सभी गाथा करती प्रकट है । तुलसी सरीखे पतित मनुष्य के लिए तीनों लोकों (स्वर्ग, पृथिवी और पाताल) तथा तीनों कालों में एक आपका ही सहारा है ॥३॥

शब्दार्थ—गनिहि = (गनी) धनी का । मदाधार = दम्भ ।

विनोद—(१) जाऊँ कहाँ—भक्तवर हरिराम व्यास भी संसार के प्रपंचों से ऊबकर कहते हैं —

> जाएँ कौन के अब द्वार ।
> जो जिय होय प्रीति काहू के दुख कहिये सो बार ॥
> घर घर राजस तामस बाढ़ो धन जोबन को गार ।
> काम बिबस ह्वै दान देत नीचन को होत उदार ॥
> साधु न सूझत बात न बूझत, यह कलि के व्योहार ।
> व्यासदास कत भाजि उबरिये, परिये माझी धार ॥

(२) गनिहि—गनी यह अरबी भाषा का शब्द है ।

(३) बिदित है जो की—आपसे क्या छिपा है ? कोई अच्छी करनी भी हो तो आपसे कहूँ भी ! मैंने तो ऐसे ऐसे नारकीय कर्म किए हैं कि बहुत लज्जा आती है । मैं अपनी बात क्या मुँह लेकर कहूँ ? आप स्वयं ही चतुर हैं मन की बात स्वयं ही जान जायेंगे ।

: २७५ :

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ ।
हे दयालु दुनी दस दिसा दुख-दोष दलन छम
कियो न संभाषन काहू ॥१॥
तनु जन्यो* कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ ।
काहे को रोष, दोष काहि धौं मेरे ही
अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ ॥२॥
दुखित देखि संतन कह्यो, सोचै जनि मन माहूँ ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न,
सरन गये रघुबर ओर निबाहूँ ॥३॥

* पाठान्तर 'जनतेउ तनु तजेउ' ।

तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीत प्रतीति विना हूँ।
नाऊ की महिमा, सील नाथ को,
मेरो भलो बिलोकि अबतें सकुचाहुँ, सिहाहुँ ॥४॥

भावार्थ—हे नाथ! म द्वार द्वार पर दाँत निकालकर और पैर पड पडकर अपनी दीनता कहता फिरा। (यह बात नही, कि ससार में कोई मेरी गरीबी दूर करने योग्य नही ह) ससार में ऐसे एसे दयावन्त मौजूद हैं, जो दशा दिशाओ के दुखों और दोषो का नाश करने में समर्थ ह, किन्तु मुझसे तो किसी ने बात भी नही की (आँख उठाकर भी मेरी ओर न दखा) ॥१॥

माता पिता ने मुझे ऐसा त्याग दिया, जसे कुटिल कीडा अर्थात सर्पिणी अपने ही शरीर से जने हुए (बच्चे) को त्याग देती ह। किसलिए तब क्रोध करूँ, और किसे दोष लगाऊँ? यह सब मेरे ही दुर्भाग्य से हुआ। आज लोग मेरी छाया तक छूने में सकोच करते हैं ॥२॥

(मेरी यह दुदशा होने पर) सतो ने मुझे देखकर कहा 'तू अपने मन में चिन्ता म कर। तेरे समान अधम और पापी पशु पक्षियों तक का शरण में जाने पर श्रीरघुनाथ-जी ने अन्त तक निर्वाह किया ह। (सो तू भी उन्ही की शरण में जा, वे तेरी करनी सुधार देंगे और अत तक तुझे निभाएँगे) ॥३॥

मैं (तुलसी) आपका हो गया और जब से आपका हुआ हूँ, तब से म सुख में हूँ यद्यपि मेरी प्रीति और प्रतीति नही ह (जो कही प्रीति प्रतीति हो जाय तब तो आनन्द का कोई सीमा ही न रहे) हे नाथ! आपके नाम की महिमा तथा शील से मेरा जो भला हुआ उसे देखकर म लज्जित होता हूँ (इसलिए कि मने कृपा-पात्र होने योग्य तो एक भी काम नही किया फिर भी मुझ कृतघ्न पर प्रभु की ऐसी कृपा ह) और प्रशंसा करता हूँ (कि धन्य पतित-पावन प्रभो! जिस तुलसी का कहीं ठौर ठिकाना भी न था, उसे भी आपने कृतार्थ कर दिया।) ॥४॥

शब्दार्थ—काढि रद=दाँत निकालकर दीन बनकर। पा=पैर। दुनी=दुनिया। छम=(क्षम) समर्थ। ओर=अंत तक। सिहाहूँ=सराहना करता हूँ।

विशेष—(१) तनु जन्या —श्री बजनाथ जी ने 'त्वचा तजत' और भट्टजी ने 'तनु तजेउ' पाठ मानकर यह अर्थ किया, कि जसे साँप अपनी केंचुल को छोड देता है। बजनाथजी ने तो 'त्वचा' लिखकर स्पष्ट ही कर दिया ह। भट्टजी तनु का अर्थ 'काँचली' कर रहे ह। *नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति के अनुसार हमने तनु जन्या पाठ शुद्ध माना* है। सर्पिणी अपने बच्चो को जनते ही छोड देती ह। प्रवाद तो यह ह कि सर्पिणी उन्हें जनमते ही खा जाती है जो भागकर निकल जाते ह वे ही बचते ह।

श्रीदेवनारायण द्विवेदी ने दूसरा यह अर्थ किया ह— माता-पिता ने मुझे अपने शरीर से इस प्रकार पैदा किया जैसे दुष्ट कीडा अर्थात माता में दुष्ट कीडा था कि *माता पिता ने अपने शरीर से पैदा करके मुझे छोड दिया, स्वर्ग सिधार गये।* ' यह भी समीचीन अर्थ हो सकता ह।

(२) काहे अभाग—सच्चे वैष्णव न तो किसी को ... [illegible] हैं और

न दोष देते हैं। वैष्णवों के लक्षण भक्तवर भगवत्‌रसिकजी ने इस प्रकार कहे हैं—

'हिंसा, लोभ, दंभ छल त्यागी, विष-सम देखे माया।
हरि को भजन, साधु की सेवा, सबभूत पर दाया॥
सहनसील आसय उदार अति धीरज सहित बिवेकी।
सत्य बचन सबको सुखदायक गहि अनन्य व्रत एकी॥

(३) 'दुरित … कह्यो'—क्योंकि स्वभाव से ही संत दयालु होते हैं—

कोमल बानी संत की स्रवत अमृतमय आइ।
'तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ॥
जड़ जीवन को करै सचेता। जगमाहीं बिचरत एहि हेता॥'

[वैराग्य-सन्दीपिनी

२७६

कहाँ न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो?
राम! रावरे बिन भये जन जनमि जनमि,
जग दुख दसहूँ दिसि पायो॥१॥
आस बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो।
हाहा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार बार
परी न छार मुँह बायो॥२॥
असन बसन बिनु बावरो जहँ तहँ उठि धायो।
महिमा मान प्रिय प्रान ते तजि खोलि खलनि,
आगे खिनु खिनु पेट खलायो॥३॥
नाथ! हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायो।
साँच कहौं, नाच कौन सो जो न मोहिं लोभ,
लघु हौं निरलज्ज नचायो॥४॥
स्रवन नयन-मन मग लगे, सब थलपति तायो।
मूड़ मारि, हिय हारिकै हित हेरि,
हहरि अब चरन सरन तकि आयो॥५॥
दसरथ के समरथ तुहीं, त्रिभुवन जसु गायो।
तुलसी नमत अवलोकिये, बलि,
बाँह बोल दै बिरुदावली बुलायो॥६॥

भावार्थ—मैंने क्या करने को छोड़ा? कौन सी जगह थी जो जाने को बची? और किसके आगे सिर नहीं झुकाया? (जितने भी उपाय हो सकते हैं वे सभी कर चुका हूँ।) किंतु हे श्रीरामजी! जब तक आपका सेवक नहीं हुआ तब तक संसार में जन्म ले-लेकर मैंने दसों दिशाओं में केवल दुःख ही पाया (सुख किसे कहते हैं यह आज तक नहीं जाना)॥१॥

आपका खास दास होकर भी सुख पाने की आशा से अपने आका क्षुद्र प्रभुओं के आगे जताता फिरा, (यद्यपि जन्म से ही मैं आपका दास हूँ, तत्वतः जीव परमात्मा का अंशस्वरूप है किन्तु झूठी आशा को लेकर क्षुद्र मनुष्यों को अपना स्वामी मान उनसे अपनी रामकहानी सुनाता फिरा।) द्वार-द्वार पर अपनी गरीबी सुनायी, पर सब व्यर्थ गया ॥२॥

भोजन और वस्त्र के बिना पागल के जैसा जहाँ-तहाँ दौड़ता फिरा। प्राणों से भी प्यारी मानप्रतिष्ठा को भी त्यागकर दुष्टों के आगे क्षण क्षण पर यह पेट खोल-खोलकर दिखाया ॥३॥

हे प्रभो! लोभ के मारे बहुत लालच की पर हाथ कुछ भी न लगा। सच कहता हूँ ऐसा कौन सा नाच बचा है जो क्षुद्र लाभ ने मुझ निर्लज्ज को न नचाया हो? (जितने पेट भरने के स्वाग रचे और पाखण्ड किए उन्हें कहाँ तक गिनाऊँ!) ॥४॥

कानों, आँखों और मन को अपने अपने मार्ग पर लगाया पर सभी जगह गिरावट ही होती गई। (सब राजे महराजे भी जाँच लिये) जब कहीं किसी के द्वारा सुख-शान्ति न मिली, (तब) सिर पीटकर निराश हो गया। अब घबराकर आपके चरणों की शरण तककर आया हूँ, क्योंकि यहाँ पर मुझे अपना हित दिखाई देता है। (मुझे निश्चय हो गया है कि आपकी शरण में जाने से ही मेरी जन्म जन्मान्तर की दरिद्रता दूर हो जायगी) ॥५॥

हे दशरथे! आपही समर्थ हैं। त्रिलोक में आपका ही यश गाया जाता है। देखिए, तुलसी आपके चरणों में विनत हो रहा है। मैं आपकी बलैया लेता हूँ। आपकी विरदावली ने ही मुझे बाँह और (अभय) वचन देकर बुलाया है (यह न कहिएगा कि मैं बिना बुलाये ही चला आया अतएव उपेक्षणीय हूँ। यदि आया हूँ, तो आपकी विरदावली क्योंकि वही मुझे यहाँ तक खींचकर लाई है।) ॥६॥

शब्दार्थ—छार=राख धूल। असन=भोजन। छिनु छिनु=क्षण क्षण।

विशेष—(१) कहा न कियो ... दिसि धायो—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस पर क्या ही मर्म भरा पद कहा है—

तुम बिन प्यारे, कहुँ सुख नाहीं।
भटक्यो बहुत स्वाद रस-लम्पट ठौर ठौर जग माहीं॥
प्रथम चाव करि बहुत पियारे, जाइ जहाँ ललचाने।
तहँ तें फिरि ऐसो जिय उचटत आवत उलटि ठिकाने॥
जित देखौं तित स्वारथ ही की निरस पुरानी बातें।
अतिहि मलिन व्यवहार देखिकै, घिन आवत है तातें॥
जानत भले तुम्हारे बिनु सब, बादिहि बीतत साँसें।
हरीचंद नहिं टूटति तउ यह कठिन मोह की फाँसें॥

(२) 'सब थलपतित ताया'—श्री वैजनाथजी ने 'सब थल पतितायो' पाठ मानकर यह अर्थ किया है 'विषयनवश सब थल पतियायो सबै स्थान पर अधिक पतित होत गयो।

यही पाठ माना है, हम श्रीरामेश्वर भट्ट ने भी लिखा है कि 'सब जगह पति पहिचान यह पादलिपियों को ताका जाना।

२७७

राम राय! बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो?
स्वामी सहित सबसों कहौं सुनि-गुनि,
बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥१॥
देह-जीव जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो।
किये बिचार सार-कदली ज्यों,
मनि कनकसंग लघु लसत बीच बिच काँचो ॥२॥
'बिनय-पत्रिका' दीन की बापु! आप ही बाँचो।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय,
सही करि बहुरि पूछिए पाँचो ॥३॥

भावार्थ—हे महाराज रामचन्द्रजी! आपको छोड़कर मेरा सच्चा हितू दूसरा कौन है? मैं अपने स्वामी सहित सभी से कहता हूँ, उसे सुन समझकर यदि कोई और बड़ा हो, तो दूसरी लकीर खींच दीजिए। (मेरी बात को काटकर दूसरा सिद्धान्त बता दीजिए, मुझे झूठा साबित कर दीजिए।) ॥१॥

(यदि आप यह कहें कि संसार में तेरे बहुत-से सगे सम्बन्धी हैं, क्या वे तेरा हित न करेंगे, तो) शरीर और जीवात्मा के सम्बन्ध के जितने सखा या हितैषी मिलते हैं वे सब मिथ्या टाँकों से सिले हुए हैं। (जो टाँके ही मिथ्या हैं, जिनका वास्तविक अस्तित्व ही नहीं उनसे सिली हुई चीज कहाँ तक सच हो सकती है? जैसा कारण, वैसा कार्य।) विचार करने पर ये सब केले के वृक्ष के सार के समान हैं। (ऊपर से देखने पर जान पड़ता है कि भीतर गूदा भरा होगा, पर छीलने पर अन्त तक उसमें से छिलके के सिवा कुछ भी नहीं निकलता, वैसे ही ज्ञान दृष्टि से देखने पर संसार के सारे ही सम्बन्ध वैसे ही हैं)। ये सुन्दर जान पड़ते हैं, जैसे, मणि सुवर्ण के संयोग से बीच बीच में तुच्छ काँच भी शोभा देता है (यहाँ, मणि ईश्वर है और सुवर्ण है जीव, दोनों के संयोग से काँचरूपी संसारी सम्बन्ध भी सुन्दर भासित होते हैं, वस्तुतः ये तुच्छ काँच ही हैं। मणि तो उनसे सर्वथा भिन्न है) ॥२॥

हे पिताजी! इस दीन की लिखी 'विनय-पत्रिका' स्वयं आप ही पढ़िएगा (किसी पेशकार से न पढ़वाइएगा। सम्भव है वह कुछ का-कुछ पढ़ जाये या कुछ अंश ही छोड़ दे। अतः आप ही पढ़िए)। तुलसी ने इसमें अपने हृदय की सच्ची-सच्ची बातें ही लिखी हैं। पहले आप अपने स्वभाव से इस पर 'सही' बना दीजिएगा। फिर पीछे पंचों से पूछिएगा (क्योंकि यदि आपने उनसे पहले ही सलाह ली तो शायद वे यह कह दें कि 'पत्रिका' का मजमून बिगड़ गया है, यह राजदरबार के योग्य नहीं है तो मेरा सारा किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा) ॥३॥

शब्दार्थ—टाँचन=टाँक। पाँचो=पंचों से।

विशेष—(१) देह ... टाँचा—इसका यह अर्थ न लगाया जाए कि गोसाइं जी समाज प्रेम, देश प्रेम या विश्व प्रेम के विरोधी थे। आशय इतना ही है कि ईश्वर प्राप्ति या सत्यान्वेषण के मार्ग में जो कष्ट या बाधक हैं, वे असत हैं, अतः परित्याज्य हैं। किन्तु जो मित्र और संबंधी सत्यान्वेषण के साधक हैं, वे सत्य और प्रिय हैं। कहा है —

'तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥'

२७८

पवन सुवन! रिपुदवन! भरतलाल, लखन! दीन की।
निज निज अवसर सुधि किये, बलि जाउँ,
दास आस पूजिहै खास खीन की॥१॥
राजद्वार भली सब कहैं साधु समीचीन की।
सुकृत सुजस साहिब कृपा स्वारथ परमारथ
गति भये गति विहीन की॥२॥
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की।
प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल,
कृपालुहिं परमिति पराधीन की॥३॥

भावार्थ—हे पवनकुमार! हे शत्रुघ्नजी! हे भरतलालजी! हे लखनलालजी! अपने अपने अवसर में इस दीन तुलसी की याद रखना। मैं आप लोगों की बलैयाँ लेता हूँ। आपके ऐसा करने से इस अत्यन्त दुर्बल दास की आशा पूरी हो जायगी (श्रीरघुनाथ जी मेरी 'पत्रिका' पर 'सही' कर देंगे)॥१॥

राजदरबार में सच्चे सज्जनों की बात तो सभी अच्छी कहते हैं (इसमें कोई विशेषता नहीं है) पर यदि आप लोग इस शरणरहित दीन की सिफारिश कर देंगे तो इसे भगवान् की शरण मिल जायगी आपको पुण्य प्राप्त होगा और आपका सुयश फैलेगा, आपके स्वामी आप पर कृपा करेंगे (क्योंकि जो उनकी पतित-पावनता के विरद में सहायक बनेगा, उनसे मुझ सरीखे पापियों की सिफारिश करेगा उस पर वे और भी कृपा करेंगे) आपके स्वार्थ और परमार्थ दोनों बन जायेंगे॥२॥

इसलिए मौका देखकर (क्योंकि राजदरबार में बे मौके बात नहीं करना होती है) इस पतित तुलसी की बात सुधार देना (सिफारिश करके मेरी 'विनय-पत्रिका' पर सही लिखवा देना) भक्तवत्सल दयालु रघुनाथजी से मुझ परतन्त्र जीव की प्रेम पद्धति की परमिति समझाकर कह देना॥३॥

शब्दार्थ— खीन = (क्षीण) दुर्बल। परमिति = सीमा।

विशेष—(१) पवन-सुवन ... दीन की—इस पद में गोसाइंजी पत्रिका भेजने के पूर्व ही अपनी तरफ राज दरबारियों को विनती कर कर मिला रहे हैं। लालच भी उन्हें काफी दी गई है।

(२) समुझाइबी — इस शब्द पर बैजनाथजी लिखते हैं— "'समुझाइबी' यह वाचक स्त्रीलिंग में है, तातें यह प्रार्थना किशोरीजूमा है।'

यह युक्ति ठीक नहीं जँच रही। समुझाइबी बुन्देलखण्डी प्रयोग है। 'करबी', 'जायबी', 'समुझाइबी' आदि क्रिया प्रयोग आज भी वहाँ प्रयुक्त होते हैं। यह प्रयोग पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों के लिए होता है।

२७९

मारुति मन, रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहुँ नाथ! नाम सों प्रतीति प्रीति
एक किंकर की निबही है॥१॥
सकल सभा सुनि लै उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की, देखत
गरीब को साहब बाँह गही है॥२॥
बिहँसि राम कह्यो 'सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।'
मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की
परी रघुनाथ हाथ सही है॥३॥

भावार्थ—हनुमान् और भरत की रुचि देखकर लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा — हे नाथ! कलियुग में भी आपके एक सेवक की आपके नाम में प्रीति और प्रतीति निभ गई (इसलिए उसकी यह 'विनय-पत्रिका' भी याद है।) ॥१॥

यह सुनकर सारी राजसभा एक स्वर से कह उठी — हाँ, यह सच है, सभा भी उसकी रीति को जानती है। गरीबनिवाज श्रीरामचन्द्रजी की उस पर भारी कृपा है। स्वामी ने गरीब देखते-देखते उसकी बाँह पकड़कर अपना लिया है ॥२॥

ो भी वे अच्छा समझते थे। अत उन्ही से सिफारिश कराई गई।

(२) सुधि मैं हू लहो है —कदाचित श्रीजानकी ने कहा होगा, क्योंकि गोसाइंजी नमे पहले ही निवेदन कर चुके थे,

कबहुँक अंब! अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ।

विनय-पत्रिका

समाप्त



अन्तर्कथाएँ

अंधक—यह बड़ा उत्पाती और प्रबल दैत्य था। हिरण्याक्ष का पुत्र था यह। ब्रह्मा से इसे यह वर मिला था कि मार डाले जाने पर इसका दूसरा शरीर उत्पन्न होगा। इसके भय से देवगण मन्दराचल पर चले गए। पर यह वहाँ भी उन्हें सताने लगा। देवताओं की प्रार्थना पर शंकर भगवान् ने उसको त्रिशूल से बेध दिया जिससे उसे ज्ञान प्राप्त हुआ, और उसने भव व अम्बिका का स्तवन करके शरीर त्याग दिया।

अम्बरीष—महाराजा अम्बरीष परम भक्त थे। एकादशी का नियमित व्रत करवाने वालों में एक ही थे। एक बार द्वादशी के दिन महर्षि दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे। राजा ने उन्हें भोजन का सादर निमन्त्रण दिया। अम्बरीष द्वादशी के दिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर बाद में प्रसाद लेते थे। उस दिन द्वादशी थोड़ी ही थी उपरान्त त्रयोदशी लग जानेवाली थी। धर्मशास्त्र के अनुसार द्वादशी में पारण कर लेना चाहिए। ब्राह्मणों के कहने पर राजा ने यह दोष मिटाने के लिए भगवान् का चरणोदक ले लिया। इतने में दुर्वासा आ गए। यह जानकर कि राजा ने बिना मेरे खाए पारण कर लिया है वे आगबबूला हो गए, और राजा को शाप दिया कि तुझे जो यह घमण्ड है कि मैं इसी जन्म में मुक्त हो जाऊँगा, वह मिथ्या है। अभी जलचर, नभचर, मनुष्य आदि के तुझे दस सहस्र शरीर धारण करने होंगे। दुर्वासा ने कृत्या नाम की एक राक्षसी भी उत्पन्न की। वह राजा को खाने को दौड़ी। उधर श्रीहरि ने चक्र सुदर्शन को आज्ञा दी। चक्र ने कृत्या को मारकर दुर्वासा का पीछा किया। ऋषि तीनों लोकों में भागते फिरे पर किसी ने भी उन्हें शरण न दी। तब लाचार होकर अम्बरीष की ही शरण ली। राजा ने सुदर्शन चक्र को शान्त कर दिया। भगवान् ने दुर्वासा से कहा कि 'तुमने मेरे भक्त को जो शाप दिया है उसे मैं ग्रहण करता हूँ। मैं स्वयं दस शरीर धारण करूँगा।"

अगस्त्य—लिखा है कि समुद्र तट पर टिटहरी का एक जोड़ा रहता था। उनके अण्डे समुद्र अपनी लहरों से बहा ले जाता था। सन्तान वियोग से वे समुद्र पर क्रुद्ध हो गए। अपनी चोंच में बालू भर भरकर वे समुद्र को पाटने की कोशिश करने लगे। यह देखकर अगस्त्य मुनि को उनकी दशा पर दया आ गई। मुनि ने उन्हें सान्त्वना देते हुए ॐ राम कहकर तीन आचमनों से समुद्र को सुखा दिया। बाद में देवताओं की प्रार्थना पर उसे खारा करके पेट से बाहर निकाल दिया।

अगस्त्य मुनि की एक और भी कथा है। लिखा है कि विन्ध्य पर्वत बड़ा ऊँचा था। सूर्य के प्रचण्ड तेज के कारण जब उसके वृक्ष जलने लगे तब सूर्य को ढक देने के लिए वह अपना शरीर बढ़ाने लगा। देवता यह देखकर बहुत घबराए। अगस्त्य ऋषि से आकर उन्होंने प्रार्थना की। ऋषि ने रामनाम का स्मरण किया और विन्ध्य पर्वत के मस्तक पर

हाथ रखकर उनसे कहा, "देख जब तक मैं लौटकर न आऊँ तू यहाँ ऐसे ही पडा रहना।" न अगस्त्य कभी लौटे और वह न उठा। वैसा ही पड़ा रहा।

अजामिल—यह बड़ा दुराचारी ब्राह्मण था। इसके कनिष्ठ पुत्र का नाम 'नारायण' था। मरते समय जब यम के दूत इसे ले जाने लगे, तब इसने भयभीत होकर चार-पाँच बार 'नारायण' को पुकारा। नारायण तो न आया पर भगवान नारायण के पार्षद आ पहुँचे। उन्होंने हठपूर्वक यमदूतों को डाँटकर इसे छुड़ा लिया, क्योंकि अन्त समय इसने 'नारायण' का नाम स्मरण किया था।

अनसूया—चित्रकूट में महर्षि अत्रि और उनकी परम पतिव्रता साध्वी पत्नी अनसूया ने पुत्र-कामना से घोर तप किया। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने उनको दर्शन दिए और वर माँगने को कहा। अनसूया ने यह वर माँगा कि मेरे गर्भ से तुम्हारे सदृश पुत्र जन्म लें। त्रिदेव को 'तथास्तु' कहना पड़ा। सीता ने भगवती अनसूया के गर्भ से जन्म लिया। ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और शिव के अंश से दुर्वासा जनमे।

अहल्या—अनिन्द्य सुन्दरी महर्षि गौतम की पत्नी थी। उनके रूपलावण्य पर मुग्ध हो एक दिन इन्द्र जब गौतम सन्ध्या-वन्दन करने के लिए गये हुए थे गौतम का रूप धारण कर अहल्या के पास पहुँचा और उसने उससे रतिदान माँगा। कुसमय में अहल्या ने पहले तो उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी परन्तु पतिव्रता होने के कारण कपटवेशधारी इन्द्र के साथ उस अनिच्छा से संभोग करना पड़ा। इतने में गौतम आ गए। उन्होंने योगदृष्टि से सारा रहस्य जानकर इन्द्र को यह शाप दिया कि तेरे शरीर में एक सहस्र भग हो जाएँ। अहल्या को भी शाप दिया कि तू पाषाण मूर्ति हो जा। बाद में क्रोध शान्त होने पर दोनों के शाप का प्रतीकार महर्षि ने इस प्रकार कर दिया कि श्रीराम के चरणों के स्पर्श से पाषाणी अहल्या का उद्धार हो जायगा और जब रामचन्द्रजी शिव का धनुष तोड़ेंगे, तब इन्द्र के सहस्र भग सहस्र नेत्रों में परिणत हो जाएँगे।

उग्रसेन—कंस के पिता का नाम उग्रसेन था। यह श्रीकृष्ण के नाना थे। आततायी कंस अपने पिता को कैद में डालकर राजसिंहासन पर बैठा था। श्रीकृष्ण ने कंस को मारकर उग्रसेन को पुनः राजा बनाया और स्वयं उनके द्वारपाल बने।

घण्टाकर्ण—यह ब्राह्मण था और भगवान शिव का अनन्य भक्त था। शिव के अतिरिक्त किसी देवता का नाम तक नहीं सुनना चाहता था। जो कोई विष्णु आदि का नाम उसके आगे ले देता तो वह दूर भाग जाता था। उसने अपने कानों में घंटे बाँध रखे थे, जिससे विष्णु आदि का नाम न सुनाई पड़े। जहाँ वह रहता था उस स्थान को काशी में आज भी लोग घण्टाघटा के नाम से जानते हैं।

कालकूट—देवों और दैत्यों ने मिलकर एक बार अमृत निकालने के लिए समुद्र का मंथन किया। सबसे पहले उसमें से हालाहल निकला। विष की प्रचंड ज्वाला से सब जलने लगे। सबने एक साथ आर्त वाणी से शिव का आवाहन किया। सिवा शिव के किसमें सामर्थ्य था जो उसे पान कर सकता था? उसे वे पी गये। किन्तु तत्काल उन्हें स्मरण आया कि हृदय में तो श्रीराम का निवास है अतः हालाहल को कण्ठ के नीचे नहीं उतरने दिया। विष के प्रभाव से कण्ठ नीला हो गया। तभी से वे 'नीलकण्ठ' कहे जाने लगे।

भक्तवत्सल भगवान् शंकर ने इस प्रकार विष की ज्वाला से जलते हुए देवों तथा दैत्यों की रक्षा की।

कालनेमि—यह बड़ा ही मायावी था। जब लक्ष्मण मेघनाद की शक्ति से आहत हो गये और हनुमान संजीवनी लेने जा रहे थे तब रावण की सलाह से इसने साधु का वेश धारण कर हनुमान के साथ छल किया। किंतु भेद खुल जाने पर हनुमान ने इसे पूँछ में लपेटकर तत्काल यमलोक को भेज दिया।

कालिय—यमुना में कालिय नाम का एक भयंकर नाग रहता था। उसके विष से वहाँ का जल सदा खौलता रहता था। श्रीकृष्ण ने कालिय नाग को नाथकर अपने वश में कर लिया और वह यमुना को छोड़कर समुद्र में जाकर रहने लगा।

कुबरी—यह कंस की दासी थी। यह कुबड़ी थी। जब श्रीकृष्ण मथुरा में राजा कंस के दरबार में जा रहे थे तब यह रास्ते में कंस के लिए चन्दन का लेप लिये हुए मिली। भक्तिवश चन्दन का वह सुंदर लेप श्रीकृष्ण के मस्तक पर लगा दिया। वह कृतकृत्य हो गई। श्रीकृष्ण ने इसका कूबड़ छुटा दिया। गोपियों ने सौतिया डाहवश इसे हजारों कटूक्तियाँ और व्यंग्य सुनाए पर प्रेम पथ पर से वह तनिक भी न डिगी।

गजेन्द्र—एक बार एक सरोवर में एक बड़ा मदोन्मत्त हाथी हथिनियों के साथ जल विहार कर रहा था। इतने में एक मगर ने उसका पैर पकड़ लिया। हाथी ने अपनी सारी शक्ति लगा दी। तब मगर की पकड़ से निःशक्त और निराश हो उसने श्रीहरि को पुकारा। हरि कहते ही गरुड़ की सवारी छोड़कर भगवान तुरंत उस सरोवर पर पहुँचे और चक्रसुदर्शन से गजेन्द्र का फन्दा काट दिया। गजेन्द्र मुक्त हो गया। श्रीमद्भागवत में यह सुंदर कथा 'गजेन्द्रमोक्ष' के नाम से आई है।

गुणनिधि—गुणनिधि नामक एक ब्राह्मण महान चोर था। एक दिन वह एक शिवालय में घंटा चुराने चला। घंटा बहुत ऊँचा बंधा था। वहाँ तक वह न पहुँच सका तो शिवलिंग के ऊपर चढ़कर उसे खोलने लगा। भगवान शिव प्रकट हो गये और प्रसन्न होकर उससे बोले— जो वर तुझे माँगना हो माँग ले मैं तुझ पर परम प्रसन्न हूँ क्योंकि तूने मुझ पर अपना सर्वस्व चढ़ा दिया है। शिव की कृपा से वह कैलाश-लोक को चला गया और कुबेर पद का अधिकारी हुआ।

जटायु—पौराणिक कथा के अनुसार यह सूर्यनारायण के सारथी अरुण का पुत्र एवं सम्पाति का बड़ा भाई था। इसने रावण द्वारा हरी गई सीता को छुड़ाने के लिए रावण के साथ घोर युद्ध किया और मारा गया। श्रीराम ने अपने पिता के समान जटायु का दाह संस्कार स्वयं अपने हाथ से किया।

जयन्त—देवराज इन्द्र का पुत्र जयन्त एक दिन चित्रकूट में सीताजी के दिव्य सौन्दर्य पर मोहित हो गया। कौवे का रूप धरकर उसने उनके स्तन पर चोंच मारी। स्तन से रुधिर बहता देख रघुनाथजी ने उस पर एक सींक का बाण मारा। बाण के भय से बेचारा सारे ब्रह्माण्ड में भागता फिरा, पर कहीं भी उसे त्राण न मिला। लाचार रामचन्द्रजी की शरण में आया। प्रभु ने उसका प्राणान्त न कर एक आँख फोड़कर उसे छोड़ दिया। तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में स्तन के स्थान पर चरणों में चोंच मारना लिखा है, जो भाव की मर्यादा के अनुकूल है।

जलधर—इसका जन्म समुद्र से माना जाता है। बड़ा प्रतापी राजा था यह। इसने सारे देवताओं को अपने अधीन कर लिया था। शिवजी इसे मारने के लिए उद्यत हुए पर जीत न सके, क्योंकि इसकी स्त्री वृन्दा बड़ी पतिव्रता थी। छल पूर्वक विष्णु ने जब इसका सतीत्व नष्ट कर दिया, तब शिव जलधर का वध कर सके। वृन्दा ने इस छल पर विष्णु को शाप दिया, कि 'कालान्तर में मेरा पति रावण का रूप लेकर तुम्हारी पत्नी का हरण करेगा।

जह्नु-कन्या या जाह्नवी—जब महाराजा भगीरथ गंगा को हिमालय से उतारकर अपने रथ के पीछे-पीछे ला रहे थे उस समय मार्ग में ध्यानावस्थित जह्नु ऋषि आसन लगाए बैठे थे। गंगा ने ज्यों ही उनके आश्रम में प्रवेश किया, वह उन्हें चुल्लू में भरकर पी गए। पश्चात् भगीरथ के बहुत अनुनय विनय करने पर ऋषि ने गंगा को जंघा के द्वार से निकाल दिया। तभी से गंगा का नाम जाह्नवी या 'जह्नु-बालिका पड़ गया।

दक्ष यज्ञ—शिवजी की प्रथम पत्नी सती दक्ष प्रजापति की पुत्री थी। एक बार दक्ष ने एक बड़ा यज्ञ रचा। कुछ वैमनस्य हो जाने के कारण दक्ष ने अपने जामाता शिव को निमन्त्रण नहीं दिया। पितृ स्नेहवश बिना बुलाए ही सती यज्ञ देखने चली गई। वहाँ सब देवताओं के बीच में शिव का अपमान न देख उन्हें अत्यन्त क्रोध आया और पिता को दुर्वचन कहती हुई वे योगाग्नि में जलकर भस्म हो गई। यह सुनते ही शिवजी ने अपने गणराज वीरभद्र को वहाँ भेजा। वीरभद्र ने दक्ष का संपूर्ण यज्ञ विध्वंस कर दिया। बाद में शिवजी ने प्रसन्न होकर यज्ञ का पुनरुद्धार किया।

त्रिपुर—दनु का पुत्र त्रिपुर बड़ा अत्याचारी दैत्य था। जब उसके अत्याचारों से तीनों लोकों का नाक में दम आ गया, तब प्रार्थना करने पर भगवान शंकर ने उसे एक ही बाण से मार गिराया। तभी से शिवजी को त्रिपुरारि कहा जाने लगा।

द्रौपदी—जब दुर्योधन ने पाण्डवों का सर्वस्व जुए में जीत लिया तब द्रौपदी को भी दाँव पर रखवा लिया। दुःशासन द्रौपदी के केश पकड़कर उस भरी सभा में ले आया और लगा उसकी साड़ी खींचने। पाँचों पाण्डव, द्रोणाचार्य भीष्म आदि सभा चुपचाप बैठे रहे किसी ने भी दुर्योधन के डर के मारे द्रौपदी की मर्यादा बचाने का प्रयत्न नहीं किया। तब वह करुणासिंधु द्वारकानाथ को जोर जोर से पुकारने लगी। भगवत्कृपा से उसकी साड़ी इतनी लम्बी हो गई कि दुःशासन खींचते खींचते थक गया, पर उसका ओर-छोर न पा सका। इस प्रसंग पर अनेक कवियों ने अतिशयोक्ति का प्रयोग कर अनेक पद्य लिखे हैं। ऐसा ही एक कवित्त है—

'पाय अनुसासन दुसासन कै कोप धायो
द्रुपद-सुता को चीर गहै भीर भारी है।
भीषम, करन, द्रोन बैठे व्रतधारी तहाँ,
कामिनी की ओर काहू नेक न निहारी है॥
सुनिकै पुकार धाये द्वारका तें जदुराई
बाढ़त दुकूल खैंचे भुजबल हारी है।
सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है॥''

ध्रुव—महाराजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं—एक का नाम था सुनीति और दूसरी का सुरुचि। राजा छोटी रानी सुरुचि को ही अधिक मानते थे। एक दिन सुनीति के पुत्र ध्रुव ने सुरुचि के पुत्र उत्तम के साथ राजा की गोद में बैठना चाहा। इस पर विमाता सुरुचि ने उसे व्यंग्य के साथ डाटकर हटा दिया। बेचारा बालक रोता हुआ अपनी माँ सुनीति के पास गया और उनके उपदेश से कठोर तपस्या कर सर्वोच्च पद का अधिकारी हो गया।

नल—राजा नल जुए में अपना सारा राज्य हार गये और उन्हें वन वन भटकना पड़ा। चित्रकूट में आने पर ही उनकी विपत्ति दूर हुई। बृहद्रामायण में लिखा है—

दमयन्तीपतिर्वीरो राज्यं प्राप्य हतानुभः।
मंदाकिनी पुण्यतमा गंगा त्रैलोक्यविश्रुता॥

निषादराज गुह—यह जाति का केवट था। रघुनाथजी इन्हें सखा या भ्राता के समान मानते थे। लक्ष्मण और सीता के साथ वन जाते समय गंगा पार उतारने के लिए जब गुह से नाव मँगाई तब यह गद्गद कंठ से बोला—

मागी नाव, न केवट आना। कहइ, तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन-कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष-करनि मूरि कछु अहई॥
छुवत सिला भई नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई॥
जो प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

× × ×

'बरु तीर मारहु लखन पै, जबलगि न पाँय पखारिहौं।
तबलगि न 'तुलसीदास,' नाथ कृपालु पार उतारिहौं॥'

नृग—राजा नृग महान दानी था। यह नित्य एक करोड़ गौवों का दान करता था। एक बार इसने एक ब्राह्मण को एक गाय दान में दी। वह गाय किसी तरह भाग कर फिर राजा की गायों में आ मिली। दूसरे दिन राजा ने उसे न पहचानकर एक दूसरे ब्राह्मण को दान में दे दिया। पहला ब्राह्मण अपनी गाय की खोज में घूम ही रहा था। उसने इस ब्राह्मण के पास गाय देखकर इसे चोर समझा और दोनों में झगड़ा होने लगा। दोनों ही राजा के पास न्याय कराने पहुँचे। राजा ने उन्हें राजी करना चाहा, पर वे राजी न हुए। गाय छोड़कर वह शाप देकर चले गये कि 'तूने हमें धोखा दिया है। जा, गिरगिट की योनि को प्राप्त हो।' राजा गिरगिट हो गया। एक सहस्र वर्ष तक द्वारिकापुरी के एक कुएँ में पड़ा रहा। श्रीकृष्ण ने उसे निकालकर उसका उद्धार कर दिया और वह दिव्य शरीर पाकर बैकुण्ठ चला गया।

पारथ (पाण्डव)—जब दुर्योधन ने जुए में पाण्डवों का सर्वस्व जीत लिया, और उनको नगर से निकाल दिया तब वे वन भटकते भटकते चित्रकूट पहुँचे। वहाँ तप साधना कर चित्रकूट के प्रभाव से सुखी हुए। बृहद्रामायण में लिखा है—

'चित्रकूटे शुभे क्षेत्रे श्रीरामपद भूषिते।
तपश्चचार विविधवद्धर्मराजो युधिष्ठिरः॥'

एक ही स्त्री द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर आदि पाँचों पाडवा का सयाग यही उनके पतन का कारण था। इनका उद्धार श्रीकृष्ण ने सत्यप्रेमवश किया। (प० १०६)

पाडवा क हित-साधन क अर्थ भगवान् कृष्ण ने क्या-क्या नही किया। उनके लिए वे दूत बनकर दुर्योधन के पास गये उसस भला-बुरा भी सुना। द्रौपदी की आर्त्त पुकार सुनकर उसकी सहायता की। भारत-युद्ध म अर्जुन के रथ के स्वय सारथी बने, और अपना प्रतिज्ञा भी तोडी।

पिंगला—पिंगला नाम की एक वश्या थी। एक दिन जब उसका प्रेमी आधी रात तक न आया, और वह शृङ्गार किए उसकी बाट जाहती रही, तब उस मन में भारी ग्लानि हुई। "जितने समय तक म इसकी राह देखती रही यदि उतना समय भगवद्भजन में लगाया होता तो मेरा उद्धार ही न हो जाता!' उस दिन स वश्यावृत्ति छोडकर पिंगला सच्चे हृदय स रामनाम जपन लगी। फलत उस मोक्ष-लाभ हो गया।

पूतना—यह पिछले पूर्वजन्म में अप्सरा थी। भगवान् वामन का सुदर रूप देख कर वात्सल्य-स्नेहवश इसके मन म आया, कि मैं इस बालक को पुत्र मानकर अपने स्तनो का दूध पिलाऊँ। अन्तर्यामी भगवान् उसक मन की भावना जान गये। वही अप्सरा पूतना नाम से किसी घोर पाप के कारण, राक्षसी हुई। श्रीकृष्ण ने मातृ भक्ति भावना स उसे स्वर्ग-धाम भेज दिया।

प्रद्युम्न—श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कामदेव क अवतार थे। कामदेव ने सारे जगत को पाप वासना में लिप्त कर रखा था, तथापि भगवान् ने उसे अपने पुत्र के रूप म वात्सल्य प्रदान किया।

प्रह्लाद—प्रह्लाद का सत्याग्रह प्रसिद्ध ह। पिता हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को राम नाम जपने स रोकता था, पर यह निरतर 'राम राम' ही कहा करत। यह न माने, न मान। अन्त में, उसने इन्हें एक गरम खम्भे से बाध दिया और तलवार लेकर मारने को तयार हो गया। भक्तवत्सल भगवान नसिंह रूप में खम्भा फाडकर निकल पड और देखते देखत हिरण्यकशिपु का चीर-फाड डाला। प्रह्लाद की गणना महाभागवतो में ह। कवित्त रामायण में तुलसीदासजी न प्रह्लाद पर एक सुदर सवया लिखा ह—

आरत-पाल कृपाल जो राम जुहीं सुमिरे तेहि को तहँ ठाढे।
नाम प्रताप महामहिमा अकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढे॥
सेवक एकतें एक अनेक भये तुलसी तिहुँताप न माढे।
प्रेम बडो प्रहलादहि को जिन पाहन तें परमेसुर काढे॥'

बक (पद १४६)—वाल्मीकीय रामायण म उलूक का प्रसग आया ह, बगुले का नहीं। *श्री अवनीशजी ने 'बक' के स्थान पर खग पाठ शुद्ध माना है।* सभव ह 'बक' की कथा का उल्लेख किसी अन्य रामायण में हो। वाल्मीकीय रामायण में उलूक और गीध की कथा इस प्रकार लिखी ह—एक वन में एक उल्लू और एक गीध दोनो एक ही घर में रहते थे। एक दिन गीध न, दुष्यावश घर पर अपना अधिकार करना चाहा। उसन उल्लू से कहा— हमारा घर खाली कर दो, इस पर तुम्हारा कोई हक नही। दोनो में झगडा बढ गया। अन्त में श्रीरामचन्द्रजी स फसला कराने क लिए, दोनो दरबार में

पहुँचे। रामचन्द्रजी ने उल्लू से पूछा—'घर किसका है ? तू उसमें क्यों रहता है ?' उल्लू ने उत्तर दिया—महाराज, जबसे वृक्षों की सृष्टि हुई तबसे मैं उसी घर में रहता हूँ।' गीध ने कहा कि 'जबसे मनुष्यों की सृष्टि हुई, तभी से मैं उसमें रहता हूँ।' भगवान् ने निर्णय किया कि 'मनुष्यों से वृक्षों की सृष्टि पहले हुई है, अतः यह घर उल्लू का ही हो सकता है, गीध का नहीं।' घर उल्लू को दिला दिया गया।

बलि—जब राजा बलि ने वामन भगवान् को तीन पग पृथ्वी देने का वचन दिया, तब शुक्राचार्य ने विष्णु भगवान् का छल समझकर, बलि को दान देने से बहुत कुछ रोका। परन्तु सत्य-संकल्पवाला राजा बलि अपनी प्रतिज्ञा से पीछे नहीं हटा। उस समय उसने अपने गुरु शुक्राचार्य का भी सत्य की हत्या होने के कारण, परित्याग कर दिया।

भगीरथ-नन्दिनी—सूर्यवंशी महाराजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। उन्होंने अज्ञानवश योगेश्वर कपिलदेव पर यह दोषारोपण कर दिया कि उन्होंने हमारे पिता का अश्वमेध का घोड़ा चुरा लिया है, यद्यपि उसे चुराया था मायावी इन्द्र ने। इस पर कपिलदेव ने उन सबको अपनी योग ज्वाला से भस्म कर दिया। उनके उद्धार के लिए उनके पौत्र महाराजा भगीरथ कठोर तपस्या कर शिवजी की जटाओं से गंगा को भूतल पर उतार लाये। इसीलिए गंगा को भागीरथी कहते हैं।

मय—यह था तो दैत्य पर पूरा भगवद्भक्त था। इसकी स्थापत्य रचना की प्रशंसा महाभारत, रामायण आदि ग्रंथों में यत्र-तत्र मिलती है। रावण की स्वर्ण लंका का निर्माण इसीने किया था। इसीने महाभारत में वर्णित पाण्डवों के इन्द्रप्रस्थ नगर का निर्माण किया था जिसमें दुर्योधन को जल में स्थल का और स्थल में जल का भ्रम हो गया था।

महिषासुर—यह शिवजी के अंश से उत्पन्न हुआ था। बड़ा ही प्रबल और प्रचण्ड दैत्य था यह। जब इसे देवगण न जीत सके, तब कालिका ने इसका संहार कर पृथ्वी पर शान्ति स्थापित की।

मार्कण्डेय—मार्कण्डेय ऋषि ने कठोर तप करने के पश्चात् भगवान् से प्रार्थना की कि मुझे आप प्रलय का दृश्य दिखा दीजिए। बिना ही कल्पान्त के अकस्मात् उन्हें भगवान् की प्रलय-लीला देखनी पड़ी। मार्कण्डेय ने उस समय सारे ही ब्रह्माण्ड को जल मय देखा, केवल नारायण शिशुरूप में एक वट-पत्र पर खेलते हुए दृष्टिगोचर हो रहे थे।

यवन—किसी यवन ने कहते हैं सूअर के आघात से मरते समय 'हराम' कहा था। बिना जाने ही उस शब्द में 'राम' आ जाने से उसकी मुक्ति हो गई।

रक्तबीज—यह एक दैत्य था। इसे शिवजी से यह वर मिला था कि उसकी रक्त धरती पर गिरने से उसकी प्रत्येक बूंद से उसीके समान पराक्रमी हजारों राक्षस पैदा हो जायेंगे। इस वर के प्रभाव से लोग बड़े भयभीत हो गये। अन्त में, देवताओं ने भगवती कालिका से प्रार्थना की। चण्डिका ने प्रकट होकर रक्तबीज से युद्ध किया। एक-एक बूंद रक्त के गिरने से जब सहस्रों नये राक्षस पैदा होने लगे तब भगवती काली ने अपनी जीभ इतनी लम्बी बढ़ा दी कि उसका सारा रक्त भूमि पर गिरने से पहले ही जीभ से चाट लिया। इस तरह नये-नये राक्षसों की उत्पत्ति रोककर उन्होंने रक्तबीज का वध किया।

राहु—जब समुद्र मथने से अमृत निकला, तब देव और दैत्य उसे पाने के लिए

आपस में लड़ने लगे। विष्णु भगवान् ने मोहिनी रूप धारण कर अमृत का घड़ा अपने हाथ में ले लिया। राक्षस उनके अलौकिक रूप पर मोहित हो गये। एक ओर देवता और दूसरी ओर दैत्य पंक्तियों में बिठा दिये गये। अमृत का वितरण देवताओं की पंक्ति से आरम्भ किया गया। राहु नामक एक दैत्य विष्णु का कपट समझ गया और वह सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आ बैठा। धोखे से मोहिनी ने उसे भी अमृत पिला दिया। पर सूर्य चन्द्र के इशारे से कि यह दैत्य है, भगवान ने अपने चक्र से उसका मस्तक उड़ा दिया। मुण्ड का बन गया राहु, और रुण्ड का केतु। कहते हैं उसी पुराने वैर से, राहु, ग्रहण के समय चन्द्र और सूर्य को दुःख दिया करता है।

लवणासुर—यह मथुरा का राजा था। अपने घोर अत्याचारों से इसने गौ ब्राह्मणों को जब बहुत कष्ट दिया तब श्रीराम की आज्ञा से शत्रुघ्न ने जाकर इसे अपने अतुल पराक्रम से मार डाला।

बाणासुर—यह राजा बलि का पुत्र था। इसके एक हजार हाथ थे। यह परम-शैव था। इसकी पुत्री उषा, श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का मनोहारी रूप स्वप्न में देखकर, उन पर मोहित हो गई। अपनी सखी चित्रलेखा के चित्रों द्वारा अनिरुद्ध कुमार का पता लगाकर चुपके से उन्हें अपने अन्तःपुर में बुला लिया। जब यह बात बाणासुर को मालूम हुई तो उसने अनिरुद्ध को कैद में डाल दिया। श्रीकृष्ण के साथ युद्ध होने पर कटते कटते जब इसके केवल चार हाथ रह गये, तब यह भगवद्भक्त हो गया। तत्पश्चात् इसने अनिरुद्ध के साथ उषा का विवाह कर दिया।

वामन—दानवीर राजा बलि से तीन पग भूमि के बदले त्रिलोक लेने के लिए विष्णु भगवान् ने वामन अवतार धारण किया था। उन्होंने पृथ्वी का साम्राज्य देवताओं को दिया, क्योंकि वे बेचारे बलि के आगे तेजहीन हो गये थे। साथ ही बलि को वामन भगवान् ने निर्द्वन्द्व कर अपना परमभक्त बना लिया। उसका दानाभिमान भी चूर चूर हो गया। एक कार्य के करने में कई कार्य सध गये।

वाल्मीकि—पहले इनका नाम रत्नाकर था। ब्राह्मण होकर भी यह व्याध का काम करते थे। जंगल में पशुओं का शिकार करने के साथ ही उस मार्ग से जानेवालों को भी लूट लिया करते थे। एक दिन दैववश देवर्षि नारद उधर से आ निकले। उनको भी लूटना चाहा, पर बाद में उन्हीं के उपदेश से जीवहिंसा छोड़कर रत्नाकर भगवद्भजन करने लगे। अभ्यास न होने से सीधा 'राम राम' तो जपते बना नहीं, उलटा 'मरा मरा' जपते रहे। किन्तु इसी के प्रताप से वे ब्रह्मर्षि हो गये। कहा भी है—

'उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भे ब्रह्म-समाना॥'

विदुर—यह दासी-पुत्र थे, पर भगवद्भक्त होने के कारण सर्वमान्य समझे गये। श्रीकृष्ण भगवान् जब हस्तिनापुर गये, तब दुर्योधन के घर पर न जाकर विदुर के ही अतिथि हुए। विदुर उस समय घर पर नहीं थे, वहाँ उनकी स्त्री थी। वह प्रेम में इतनी बेसुध हो गई कि भगवान् को जब खिलाने बैठी तो केले छील-छीलकर गूदे नीचे गिराती गई और छिलके उनके हाथ में देती गई। भगवान् ने उन छिलकों को बड़े प्रेम से खाया। भगवान् ने विदुर के कुल शील पर ध्यान न देकर उनकी भक्ति भावना को ही प्रधानता दी।

को देख हनुमान् उन्हें भी खाने को दौड़। इतने में इन्द्र ने उनकी हनु अर्थात् ठोड़ी पर ऐसे जोर से वज्र मारा कि वह मूर्च्छित हो गए। वज्र भी टूट गया। इसी कारण हनुमान् नाम पड़ गया।

(२) एक बार शिवजी ने श्रीराम से कहा मैं आपकी दास्य भाव से सेवा करना चाहता हूँ मुझे यह वर दीजिए। रघुनाथजी ने वर दे दिया। कालान्तर में हनुमान् के रूप में शिवजी ने श्रीरामचन्द्र की दास्यभक्ति प्राप्त की। इसीलिए हनुमान् को ग्यारहवाँ रुद्र माना गया है।

(३) हनुमान् ने सूर्यनारायण से विद्या प्राप्त की थी। दक्षिणारूप में सूर्य ने हनुमान् से यह वर माँग लिया था कि तुम सदा मेरे पुत्र सुग्रीव की रक्षा करना। जब तक सुग्रीव को राज्य नहीं मिला वह बराबर उसकी रक्षा करते रहे।

(४) भीम और हनुमान् के सम्बन्ध की महाभारत में दो कथाएं मिलती हैं— वनवास काल में एक दिन भीमसेन को मार्ग में एक महान वानर आड़ा लटा हुआ मिला। भीमसेन की गर्जना से वानर ने आँखें खोलीं। भीमसेन ने उससे कहा— भाई रास्ते से हट जाओ। वानर का उत्तर था— मैं वृद्ध हूँ, उठने-बैठने में कष्ट होता है तुम्हीं मेरी पूंछ हटाकर क्यों नहीं चले जाते? भीमसेन ने अपनी सारी शक्ति लगाकर पूंछ उठाई पर वह टस से मस न हुई। यह जानने पर कि वह वानर साक्षात हनुमान हैं भीमसेन ने उसे साष्टांग प्रणाम किया।

एक बार भीमसेन ने हनुमान से कहा— मुझे आप अपना वह रूप दिखाइए जो राम रावण युद्ध में धारण किया था। हनुमान ने कहा— मेरा वह रूप बड़ा ही विकराल है। तुम देखते ही डर जाओगे। भीमसेन ने जब बहुत आग्रह किया तब हनुमान् प्रचण्ड रूप में देखते देखते प्रकट हो गये। भीमसेन की आँखें बन्द हो गईं देह थर थर काँपने लगी। हाथ जोड़कर वे हनुमान् के चरणों पर गिर पड़े।

(५) महाभारत के युद्ध में अर्जुन कर्ण के रथ पर बाण चलाते तो उनका रथ कोसों दूर हट जाता और कर्ण के बाण से अर्जुन का रथ ज़रा-सा ही खिसकता। यह देख अर्जुन को अपने बल-पराक्रम पर बड़ा गर्व हुआ। अन्तर्यामी श्रीकृष्ण इस रहस्य को समझ गये। श्रीकृष्ण ने हनुमान् से रथ की ध्वजा पर से हट जाने को कहा। हनुमान् हट गये। अब कर्ण के बाण से अर्जुन का रथ बहुत दूर जा गिरा। अर्जुन ने घबराकर पूछा— यह हुआ क्या?' श्रीकृष्ण ने कहा— तुम्हारा बल ही कितना है! यह सारा पराक्रम तो हनुमान् का था। इस समय वे तुम्हारे रथ की ध्वजा पर नहीं हैं। यदि वे भी यहाँ से हट जाते तो न जाने तुम्हारा रथ कहाँ गिरता!' अर्जुन लज्जा से पानी-पानी हो गया।

(६) एक बार भगवान् विष्णु ने गरुड को हनुमान् को बुला लाने की आज्ञा दी। हनुमान् ने गरुड से कहा—'आप चलिए। मैं पीछे आ रहा हूं। आपसे पहले ही पहुँच जाऊंगा।' गरुड को अपनी वायु-गति का बड़ा गर्व था। उड़ते हुए भगवान् के पास पहुंचे तो देखते क्या हैं, कि हनुमान् तो वहाँ पहले से ही बैठे हैं। गरुड का सारा गर्व चूर चूर हो गया। यह कथा 'स्कन्द पुराण' में है।

(७) हनुमान् ने सूय भगवान से विद्याए पढी थी । वेदों और शास्त्रा पर भाष्य, पिंगल पर टीका, काव्यों पर टिप्पणियाँ तथा वेदाङ्गा पर भी कई ग्रथ उन्होने रचे थे । हनुमन्नाटक हनुमत् ज्योतिष आदि कुछ ग्रथ आज भी प्राप्य हैं । कहते ह, चित्रकाय के आदि आविष्कर्त्ता भी हनुमान ही थे ।



पद-सूची

*